



सप्तशतसर्वस्वम्

प्राच्य प्रकाशन, वाराणसी

सिरीज

३०४



प्राच्य प्रकाशन

3.180

वाराणसी तान्त्रिक टेक्स्ट्स सिरीज नं ५

सप्तशतीसर्वस्वम्

नाम

नानाविधसप्तशतीरहस्यसंग्रहः

जयपुरमहाराजाश्रितेन द्विवेदोपाख्येन पण्डितराधाकृष्णात्मजेन

पण्डितसरयूप्रसादेन

संगृहीतः



प्राच्य प्रकाशन

वाराणसी-२२१००२

० नं प्रिन्टिग प्रिन्टिग प्रिन्टिग

प्रथमवार १९८६

प्रकाशक :

प्राच्य प्रकाशन

पोस्ट बाक्स नं० २०३७

७४-ए, जगतगंज

वाराणसी - २२१००२ (भारत)

सर्वाधिकार: सुरक्षित

मूल्य

Rs.

75/-

मुद्रक ।

अनूप प्रिन्टिंग वर्क्स, जगतगंज, वाराणसी

VARANASI TANTRIKA TEXTS SERIES
No. 5

Saptashati Sarvasvam

(A collection of various mysteries of Saptashati)

by

Pt. Saryu Prasad



Prachya Prakashan

Varanasi - 221 002

1976

VARANASI TANTRA TEXTS SERIES
No. 5

First Edition : 1986

PRACHYA PRAKASHAN

Post Box No. 2037

VARANASI—221002 (INDIA)

Phone : 53252

All Rights Reserved

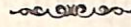
No part of this book may be translated or reproduced in
any form, by print, photoprint, microfilm or any other
means without written permission from the publishers.



Price Rs. 0.00

*Printed by P. K. Rai at the Anoop Printing Works, Varanasi,
and Published by Rakesh Rai for Prachya Prakashan, Varanasi.*

सप्तशतीसर्वस्वस्य भूमिका



सुप्रसिद्धमेवास्ति, यत्खलु नानाविधसत्कर्मप्रकर्षः^१मुष्मिन्भारत-
वर्षादिकालप्रवर्तमानः सकलपुरुषार्थसाधकः सप्तशतीस्तत्रो मनो-
विषयातिगाभिलाषसम्पादकत्वेन चिन्तामणि—कामधेनुकल्पवृक्षानति-
शेते । अत एवायमहरहरुच्चावचपरिपाटीपुरः सरं तत्तद्विषयवास्तव्यै-
रास्तिकपुङ्गवैः सादरं पठ्यते । अतश्चात्र नानाविधाः पाठभेदाः
सम्प्रदायभेदाच्चोपलभ्यन्ते । नन्वमुष्याम्नायवन्मन्त्ररूपत्वात् 'मन्त्रोहीनः
स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं
हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः' स्वरतोऽपराधात्' इत्यादिनीत्या वर्णमात्रव्यत्या-
सस्याप्यङ्गवैगुण्यप्रयोजकत्वादीहितार्थसार्थमूलच्छेद एव फलितो न
तावदैहिकामुष्मिकफलोदय सम्भावनाभासोऽपीति चेत् । न सम्प्रदाय-
भेदेन तत्तच्छाखामन्त्रभेदवदिहापि फले वैषम्याभावस्याङ्गीकारात् ।
अत एवाह भगवान् भाष्यकारः—“एकशतमध्वर्युंशाखाः^२, सहस्रवर्त्मा
सामवेदः, एकविंशतिधा वाह्वृच्यं^३, नवधायर्वणो वेदः” इति । अथाति-
क्रामतिकालचक्रेऽमुष्यगुणगरिष्णाऽनेकविधा गौडदाक्षिणात्यसम्प्रदाय-
गतपाठपरिचायिकाष्टीकाष्टिपण्यश्च सञ्जाताः । तत्र साम्प्रतमेता उप-
लभ्यन्ते—

(१) शान्तनवी, शंतनुप्रणीता ।

(२) पुष्पाञ्जलिः, लालमणिमिश्रविरचितः ।

१ अत्रेमाख्यायिका—पुराकिल विश्वरूपाख्ये त्वष्टुः पुत्रे महेन्द्रेण हते
सति कुपितस्त्वष्टा महेन्द्रस्य हन्तारं वृत्राख्यं पुत्रान्तरस्मुत्पिपादयिपुराभिचारिकं
यागं कृतवान् । तत्र च इन्द्रस्य शातयिता शत्रुः, हिंसक इति यावत् । तथाभूतः
सन् वर्धस्वेति प्रतिपादयितुं 'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व' इति प्रयुक्तम् । इन्द्रशत्रुत्वस्य
विधेयत्वान्न सम्बोधनविभक्तिः । एवं स्थिते इन्द्रशत्रुशब्दे तत्पुरुषसमासप्रयुक्तेऽन्तो-
दात्ते वक्तव्ये प्रगादादाद्युदात्तः किलोक्तः । तथा च पूर्वपदप्रकृति स्वरेण बहु-
बोधार्थोऽलम्बः ।

२ अध्वर्युयंजुर्वेदः ।

३ बह्वृचानामाम्नायो वाह्वृच्यम् । 'छन्दोगीयिक-' इत्यादिनाज्यप्रत्ययः ।

- (३) रामाश्रमी, रामाश्रमाचार्यकृता ।
- (४) नागेशी, नागेशभट्टरचिता ।
- (५) गुप्तवती, भास्कररायगुम्फिता ।
- (६) दंशोद्धारः, काशिनाथशास्त्रिकल्पितः ।
- (७) दुर्गाप्रदीपः, नीलकण्ठस्वामिग्रथितः ।

एवं चतुर्भुजमिश्र—भीमभट्टादिप्रणीता अन्येऽपि टीकाग्रन्थाः प्राप्यन्ते । सप्तशतीस्तत्रसम्बन्धिनः क्षुद्रकायाः शुद्धा अशुद्धा नानाविधाः प्रयोगविधयोऽपि तत्र तत्रोपलभ्यन्ते । एतासु टीकासु प्रथमा, केवल-व्याकरणांशप्रचुरा । दृश्यते चात्र भूयान्पाठभेदः । द्वितीया, व्याकरण-योजनपुरःसरं नानाविधान्दृढयंगमानर्थानाविष्करोति । पाठविसंवादांश्च परिहरति । किं बहुना, निजलेखन पाठवेन सर्वानपि सप्तशतीटीका-ग्रन्थानधरीकुर्वते । तृतीया, सामान्यापि कुत्रचित्सम्यङ्मूलं योजयति । चतुर्थी विख्यातगुणगोखा । पञ्चमी, केवलमन्त्राक्षयप्रकाशिका गूढप्रमे-यांशाच । षष्ठी, विषमार्थद्योतनिका । सप्तमी, कतिपयप्रयोगविधिप्रदर्शिका शक्तितत्त्वनिश्चायिका च वर्तते ।

इत्थं च स्फुटं परिणमति, यत्खलु कयाचिदप्येकया व्याख्यया साकल्येन सप्तशतीप्रमेयांशो नावगन्तुं शक्यत इति हेतोर्बहुनायासेन मया नानाविधांस्तटीकाग्रन्थान्, कात्यायनीतन्त्र घटतन्त्र—क्रोडतन्त्र—मेरुतन्त्र—मरीचिकल्प—चिदम्बरसंहितादीनां गममूलग्रन्थांश्च निपुणं पर्यालोच्य सप्तशतीसर्वस्वनामधेयोऽसौ ग्रन्थोऽग्रन्थि ।

अत्र ग्रन्थे त्रयो भागा वर्तन्ते । तत्र प्रथमभागे—शक्तिप्राधान्य-प्रतिपादनम्, पाठक्रमनिर्णयः नवार्णार्थमीमांसा, सव्याख्यानि कवचाङ्गला-कीलकानि, सभाष्यं रात्रिसूक्तं च वर्तते ।

द्वितीयभागे—व्याकरणादिप्रमाणपुरस्सरं त्रयोदशाध्यायानां व्या-ख्यानम् । तत्र गौडपाठामूले दाक्षिणात्यपाठाष्टीकायां च न्यस्ताः । प्रत्याध्यायप्रारम्भे मन्त्रविभागो दर्शितः ।

तृतीयविभागे—सभाष्यं देवीसूक्तम्, सविवरणं रहस्यत्रयम्, खिलमार्कण्डेयोक्तमुपासनकाम्यप्रयोगादि, तन्त्रोक्तं दीपदानादि, मन्त्र-न्यासध्यानादि चास्ते ।

अथ यथामति परिष्कृत्यादो ग्रन्थरत्नं सी. आई. ई. पदभूषिताय भार्गवकुलकुमुदिनीचन्द्राय सौजन्यामृतसागराय परोपकारनिरताय

श्रीयुतमुंशीनवलकिशोरमहोदयाय समर्पितम् । तेनाप्युत्साहभाजा
लक्ष्मणपुरे स्वकीये यन्त्रालये मुद्रायितं च ।

सोऽयमास्माकीनः परिश्रमो गुणकपक्षपातिनां सौजन्यामृततरङ्गि-
तान्तःकरणानामास्तिकसत्तमानां विद्वज्जनानामुपकारायानन्दोद्गमाय
च भविष्यतीति संभावयति

३० । ७ । १८६२ । }
जयपुरे

द्विवेदोपाख्यः
सरयूप्रसादधर्मा ।



महाशयः । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।
मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।
मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।
मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।
मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।

मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं । मन्त्रोऽयं ।

॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥ १००० ॥

अथ सप्तशतीसर्वस्वसूचीपत्रम्

| विषयाः | पृष्ठ | पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ | पंक्ति |
|----------------------------------|-------|--------|----------------------------|-------|--------|
| मङ्गलाचरणम् | १ | १ | गुरुकीलकपटलः | ३३ | २८ |
| ग्रन्थस्थविषयसूची | ॥ | १० | समाख्यदेवीसूक्तम् | ३५ | २४ |
| प्रकृतिपुरुषयोरेक्यम् | ३ | ७ | ॐ नमश्चण्डिकायैव्याख्या | ४० | ९ |
| प्रणवमायाबीजयोरेक्यम् | ४ | १ | नवार्णमन्त्रव्याख्या | ४१ | १८ |
| मायाबीजातित्रिशक्तीनामुत्पत्तिः | ॥ | ७ | सप्तशतीमन्त्रविभागव्यवस्था | | |
| त्रिशक्तीनां नवार्णसप्तशत्यो- | | | तत्क्रमश्च | ४५ | १ |
| मन्त्रयोः साम्यम् | ॥ | ११ | प्रथमाध्यायारम्भः | | |
| सप्तशतीस्वरूपम् | ॥ | २२ | सप्तशत्युपोद्घातः | ४६ | ८ |
| सप्तशतीसप्तशतीनिरुक्तिः | ५ | ११ | सार्वर्णि सूच्यं | ॥ | १९ |
| सप्तशत्याः पाठभेदमूलम् | ॥ | २६ | महामायानु | ४७ | ६ |
| सप्तशतीपाठक्रमः | ६ | ९ | स्वारोचिषेऽ | ४८ | १० |
| रात्रिसूक्तदेवीसूक्तयोर्व्यवस्था | ॥ | १९ | तस्यपालयतः | ॥ | २५ |
| पाठेशापोद्धारकीलकौ | ७ | ४ | तस्यतैरभ | ४९ | ८ |
| पाठे नियमाः | ॥ | १९ | ततःस्वपुरमा | ॥ | २२ |
| स्तोत्रन्यासः | ८ | ११ | अमात्यैर्बलि | ५० | ४ |
| ध्यानं पूजाच | ॥ | २० | ततोमृगयाख्या | ॥ | १५ |
| रहस्योक्तपूजाप्रकारः | ९ | ५ | सतत्राश्रममद्रा | ॥ | २८ |
| अङ्गषट्क प्रशंसा | १० | ५ | तस्थौकिञ्चित्स | ५१ | २१ |
| सविवरणकवचारम्भः | ॥ | १२ | सोऽचिन्तयत्तदा | ॥ | ३० |
| कवचस्थशक्तीनां नामक्रमः | | | न जानेसप्रधानो | ५२ | १६ |
| कवचश्लोकसंख्याच | २४ | १ | येममानुगता | ५३ | १ |
| अर्गलास्तुतिसविवृतिः | २५ | १ | असम्यग्व्ययशीलै | ॥ | १० |
| अर्गलाश्लोक संख्या | २९ | १० | तत्रविप्राश्रमा | ५३ | २६ |
| अर्गलामन्त्राणां प्रयोगाः | ॥ | १० | सशोक इव | ५४ | ६ |
| सटीकंकीलकम् | ३० | १८ | प्रत्युवाच | ॥ | १५ |
| कीलकश्लोकसंख्या | ३३ | २७ | समाधिर्नाम | ॥ | २३ |

| विषयाः | पृष्ठ | पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ | पंक्ति |
|---------------------|-------|--------|----------------------------|-------|--------|
| विहीनश्रद्धनैः | ५५ | १० | योगनिद्रां | ६७ | २८ |
| सोऽहंनवेधि | " | २४ | तदाद्वावसुरौ | ६८ | १३ |
| किनुतेषां | ५६ | ५ | सनाभिकमले | " | २५ |
| यैर्निरस्तो | " | १६ | विश्वेश्वरीज | ६९ | २२ |
| एवमेतद्यथा | " | २५ | त्वंस्वाहात्वंस्व | ७० | १० |
| यैःसंत्यज्यपितृ | ५७ | १ | अदंमात्रास्थि | " | २८ |
| किमेतन्नाभिजा | " | १० | त्वयैतद्वायंते | ७१ | २८ |
| तेषांकृतेमे | " | १७ | विसृष्टौसृष्टि | ७२ | १४ |
| ततस्तौसहितौ | ५८ | ४ | महाविद्यामहामा | " | २८ |
| कृत्वातुतो यथा | " | १२ | प्रकृतिस्त्वंचसर्वस्य | ७३ | १४ |
| भगवंस्त्वामहं | " | २१ | त्वंश्रीस्त्वमीश्वरी | ७४ | ५ |
| ममत्वंगतरा | ५९ | ९ | खड्गिनीशूलिनी | " | २० |
| अयंचनिकृतः | " | १७ | सौम्यासौम्यतरा | ७५ | २१ |
| एवमेष तथा | " | २७ | यच्चकिञ्चित्त्वचिद्व | ७६ | २३ |
| तत्केनैतन्महा | ६० | ६ | ययात्वयाजगत्स | ७७ | ३ |
| ज्ञानमस्ति स | " | २९ | विष्णुः शरीरग्रह | " | १५ |
| दिवांधाः प्राणिनः | ६१ | २२ | सात्वमित्यं-प्रबोधं२ | " | २२ |
| ज्ञानिनोमनुजाः | ६२ | ३ | एवंस्तुता-नेत्रास्य | ७८ | १६ |
| ज्ञानं च तन्मनुष्या | " | १९ | उत्तस्थौ च-मधुकैटभौ३ | ७९ | ७ |
| ज्ञानेऽपि | ६३ | ३ | समुत्थायततस्ता | " | ३१ |
| मानुषामनुजव्या | " | १४ | तावप्यतिबलो | ८० | ११ |
| तथापिममतावर्ते | " | २४ | भवेतामद्यमे | " | २१ |
| तन्नात्रविस्मयः | ६४ | ७ | वञ्चिताभ्यामि | ८१ | २ |
| ज्ञानिनामपिचे | " | २४ | तथेत्युक्त्वाभगवता | " | २२ |
| तयाविसृज्यते | ६५ | ९ | एवमेवासमुत्पन्ना | ८२ | २७ |
| साविद्यापरमा | ६६ | १ | द्वितीयाध्यायारम्भः | | |
| भगवन्काहिसा | " | २० | मन्त्रविभागः | ८४ | १ |
| यत्स्वभावाच्च | " | २२ | देवासुरमभू | " | १२ |
| नित्यैवसाजग | ६७ | ७ | तत्रासुरैर्म | ८६ | २९ |
| देवानांकार्यं | " | २० | ततःपराजिता | ८७ | ९ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|--------------------|--------------|-------------------|--------------|
| यथावृत्तं | ८७ २४ | आः किमेतदिति | १०३ ९ |
| सूर्येन्द्राग्नयनि | ८८ ५ | सददर्शिततो२ | " १८ |
| स्वर्गान्निराकृ | " ३० | ततःप्रवृत्ते | १०४ १७ |
| एतद्वःकथितं | ८९ १२ | महिषासुरसे | " २८ |
| इत्थंनिशम्य | " ३० | रथानामयुतैः | १०५ १४ |
| ततोऽतिकोपपू | ९१ १ | पञ्चाशद्भिश्च | १०६ १ |
| अन्येषांचैवदे | " ८ | गजवाजिसह | " १२ |
| अतीवतेजसःकूटं | " २१ | विडालाख्यो | " २४ |
| अतुलंतत्रत्तेजः | ९२ ७ | अन्येचतत्रायु | १०७ ३ |
| यदभूच्छाम्भवं | " २६ | कोटिकोटिस | " १३ |
| सौम्येनस्तनयोः | ९३ ५ | तोमरैर्भन्दि | " १९ |
| ब्रह्मणस्तेजसा | " २७ | केचिच्चचिक्षिपुः | १०८ १४ |
| तस्यास्तुदन्ताः | ९४ १५ | सापिदेवीततस्ता | " २३ |
| भ्रुवौचसन्व्यः | " २४ | अनायस्तानना | १०९ ६ |
| ततःसमस्तदे | ९५ ५ | सोऽपि क्रुद्धोधुत | " २० |
| शूलंशूलाद्वि | " १५ | निःश्वासान्मुमुचे | ११० ४ |
| शङ्खंचवरुणः | " २८ | युयुधस्तेपरशु | " १२ |
| वज्रमिन्द्रःस | ९६ ७ | अवाद्यन्तपट | " १८ |
| कालदण्डाद्य | " २४ | ततोदेवीत्रिशूलेन | " २९ |
| समस्तरोमकू | ९७ ५ | पातयामसचैवा | १११ ८ |
| क्षीरोदश्चामलम् | " ३० | केचिद्विधाकृताः | " १९ |
| चूडामणिं३ | ९८ ८ | वेमुश्चकेचिद्रु | " २९ |
| अम्लानपङ्कजां | ९९ १७ | निरस्तराःशरी | ११२ १२ |
| हिमवान्वाहनं | " ३० | केषांचिद्बाहवः | " २२ |
| शेषश्चसर्वनागे | १०० १२ | विच्छिन्नजङ्घाः | " ३० |
| अन्यैरपिसुरैर्दे | " २८ | छिन्नेऽपिचान्ये | ११३ ८ |
| तस्यानादेनघो | १०१ १५ | ननृतुश्चापरे | " १९ |
| क्षुक्षुभुःसकला | १०२ २ | कबन्धाश्छि | " २० |
| जयेतिदेवाश्च | " १३ | पातितैरथना | ११४ १७ |
| दृष्ट्वासमस्तं | " २८ | शोणितौघा | " २७ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|---------------|--------------|------------|--------------|
| क्षणेनतन्महा | ११५ १२ | ततःसिंहोऽभ | १२८ ४ |
| सचसिंहोमहा | " २६ | ततएवाशु | " ५ |
| देव्यागर्णश्च | ११६ ६ | करेणचम | " २२ |

अथ तृतीयाध्यायारम्भः

| | |
|--------------------------|-------|
| ततोमहामुरो | १२९ ७ |
| तृतीयाध्याय मंत्र विभागः | ११७ १ |
| ततःक्रुद्धाजग | " १७ |
| निहन्यमानं | " ९ |
| ननर्दचासुरः | " २८ |
| तस्यच्छित्त्वा | ११८ ९ |
| साचतान्गहि | १३० ८ |
| चिच्छेदच | " २२ |
| गर्जगर्जक्षणं | " १९ |
| सच्छित्तधन्वा | ११९ ७ |
| एवमुक्त्वा | १३१ ३ |
| सिंहमाहत्य | " १७ |
| ततःसोऽपि | " १० |
| तस्याःखड्गो | १२० ३ |
| अर्द्धनिष्क्रान्त | " १८ |
| चिक्षेपच | " १५ |
| ततोहाहाकृतं | " २३ |
| दृष्ट्वातदाप | " २५ |
| तुष्टुवुस्तांसु | १३२ ६ |

चतुर्थाध्यायारम्भः

| | |
|-------------------------|--------|
| चतुर्थाध्यायमंत्रविभागः | १३३ १ |
| हतेतस्मिन् | १२१ ४ |
| सोऽपिशक्ति | " १३ |
| शक्रादयः | " ९ |
| भगनांशक्ति | " २१ |
| देव्यायया | १३४ १५ |
| ततःसिंहः | " २९ |
| यस्याःप्रभाव | १३५ १३ |
| युध्यमानौ | १२२ ८ |
| याः श्रीःस्वर्यसु | " ३० |
| ततोवेगात्खमु | " ३० |
| किवर्णयाम | १३६ २४ |
| उदग्रश्चरणे | १२३ १० |
| हेतुःसमस्त | १३७ १५ |
| देवीक्रुद्धागदा | " १९ |
| यस्याःसमस्त | १३८ ६ |
| उग्रास्यमुग्रवी | " २८ |
| यामुक्तिहेतु | " २७ |
| विडालस्यासिना | १२४ ५ |
| शब्दात्मिकासु | १३९ २२ |
| एवंसंक्षीयमाणे | " १८ |
| मेधासिदेवि | १४१ १७ |
| कांश्चित्तुण्ड२ | " ३१ |
| ईषत्सहासमम | १४२ १३ |
| निपात्यप्रमथा | १२५ २० |
| दृष्ट्वातुदेविकुपि | " २९ |
| सोऽपिकोपान्म | १४३ ६ |
| धुतशृङ्गवि | १२६ १८ |
| देविप्रसीद परमा | " ३१ |
| इतिक्रोध | १२७ ५ |
| तेसम्मताजनपदे | १४४ २३ |
| साक्षिप्त्वा | " १४ |
| धर्म्याणिदेवि | १४५ ८ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|--------------------------|--------------|--------------------|--------------|
| दुर्गेस्मृताहरसि | १४५ २७ | अतिसौम्या | १६३ ४ |
| एभिर्हर्तैर्जगदु | १४७ ३ | यादेवीत्यादि २३ | " १८ |
| हृष्टवकिन्नम | " २१ | इन्द्रियाणा | १६९ १ |
| खङ्गप्रभानि | १४८ १४ | चितिरूपेण | " १७ |
| दुर्वृत्तवृत्त | " २७ | स्तुतासुरैःपूर्वं | " २६ |
| केनोपमा | १४९ १३ | यासांप्रतम् | १७० ११ |
| त्रैलोक्यमेत | १५० ५ | एवंस्तवादि | " २५ |
| शूलेनपाहि | " २४ | साम्बोक्तान्सु | १७१ ६ |
| प्राच्यांरक्षप्र | १५१ १ | स्तोत्रंममैतत् | १७१ २१ |
| सौम्यानि | " २५ | शरीरकोशाद्यत्त | " २७ |
| खङ्गशूल | १५२ ७ | तस्यांविनिर्गतायां | " १० |
| एवंस्तुतां २ | " २० | ततोऽम्बिकाम् | " ३० |
| त्रियतां | १५३ १८ | ताभ्यांशुम्भाय | १७३ १० |
| भगवत्या | " २६ | नैवतादृक् | " १९ |
| यदिवापि | १५४ ४ | स्त्रीरत्नमति | " २७ |
| यश्चमर्त्यः | " २२ | यानिरत्नानि | १७४ ६ |
| इतिप्रसादि | १५५ १० | ऐरावतःसमा २ | " १४ |
| इत्येतत्कथि | " २४ | निधिरेष २ | १७५ १० |
| पुनश्चगौरी २ | १५६ ३ | मृत्योस्तृकान्ति | १७६ १५ |
| पञ्चमाध्यायारम्भः | | निशुम्भस्याब्धि | " २९ |
| पञ्चमाध्यायमंत्रविभागः | १५८ ४ | एवंदैत्येन्द्र | १७७ ८ |
| पुराशुम्भ निशुम्भा | " २६ | निशम्भेतिव | " १८ |
| तावेवसूर्यतां | १५९ १५ | इतिचेतिच | १७८ १ |
| तावेवपवर्नादिं | " २५ | सतत्रगतवा | " १० |
| हृताधिकाराः | १६० २ | देविदैत्येश्वरः | " २१ |
| तयास्माकं २ | " १४ | अव्याहताज्ञः | " २९ |
| ममोदेव्ये | १६१ २ | ममत्रैलोक्य | १७९ १८ |
| रोद्राये | " १७ | त्रैलोक्येवर | " २९ |
| कल्याण्यै | १६२ ४ | क्षीरोदमन्वनी | १८० ६ |
| दुर्गायिदुर्गं | " १८ | यानिबाभ्या | " १७ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|-----------------|--------------|-----------------------------|--------------|
| स्त्रीरत्नभूतां | १८० २४ | क्षणेनतद्वलं | १९० १ |
| मां वाममानु | " २९ | श्रुत्वा तमसुरं | " ७ |
| परमैश्वर्यं | १८१ ५ | हे वण्डहे मुण्ड | १९० २० |
| इत्युक्तासा | " १४ | केशेष्वाकृष्य | १९१ ३ |
| सत्यमुक्तं | " २७ | तस्यां हतायां | " ११ |
| कित्वन्नयत्प्र | १८२ ७ | अथ सप्तमाध्यायारम्भः | |
| यो मां जयति | " १६ | सप्तमाध्यायमन्त्रविभागः | १९२ २ |
| तदा गच्छतु | " २५ | अज्ञसास्ते | " ९ |
| अवलिप्तासि | १८३ ४ | ददृशुस्ते | " १७ |
| अन्येषामपि | " ६ | ते दृष्ट्वा | " २५ |
| इन्द्राद्याः सक | " १५ | ततः कोपं | १९३ ११ |
| सारवं गच्छ | " २१ | भ्रुकुटीकुटि | १९४ १ |
| एवमेतद्वली | " २९ | विचित्रवट्वाङ्ग | " १४ |
| सत्वं गच्छ | १८४ १० | अतिविस्तार | १९५ १ |

अथ षष्ठाध्यायारम्भः

| | | | |
|------------------------|--------|----------------|-------|
| षष्ठाध्यायमन्त्रविभागः | १८५ २ | सावेगेनाभि | " १४ |
| इत्याकर्ण्य | " १२ | पाणिग्राहां | " २० |
| तस्य दूतस्य | " २२ | तथैव यो धं | १९६ ३ |
| हे धूम्रलोच | १८६ ३ | एवं जग्राहके | " ३ |
| तत्परित्राणदः | " ९ | तैर्मुक्ता निच | " २२ |
| तेनाज्ञसः | " २० | बलिनां तद्वलं | " २७ |
| सदृष्ट्वा तां ततो | " २९ | असिनानिहताः | १९७ ७ |
| न चेत्प्रीत्याद्य | १८७ ८ | क्षणेन तद्वलं | " १३ |
| दैव्येश्वरेण प्र | " १८ | शरवर्षमहा | " १८ |
| इत्युक्तः सोऽम्य | " २६ | तानि चक्राय | " २७ |
| अथ क्रुद्धं | १८८ ४ | ततो जहासाति | १९८ ८ |
| ततो धुतसटः | " १८ | उत्थाय च महा | " १६ |
| कांचित्करप्र | " ३० | अथ मुण्डोऽम्य | " २४ |
| केषांचित्पाट | १८९ १२ | हतशेषं तत | " २९ |
| विच्छिन्नबाहु | " २१ | शिरश्चण्डस्य | १९९ ७ |
| | | मया तवात्रो | " १२ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|----------------------------|--------------|----------------|--------------|
| तावानीतो | १९९ २४ | ततःप्रथम | २११ १२ |
| यस्माच्चण्डं च | " २९ | साचतान्ग्रहि | " २७ |
| अथाष्टमाध्यायारम्भः | | तस्याग्रतस्त | २१२ ४ |
| अष्टमाध्यायमन्त्रविभागः | २०१ २ | कमण्डलु | " १२ |
| चण्डेचनिहतेर | " ९ | माहेश्वरी | " २१ |
| अद्यसर्वबलैः | " २६ | ऐन्द्रीकृलि | " २८ |
| कोटिवीर्याणि | २०२ १६ | तुण्डप्रहार | २१३ ७ |
| कलाकादौहृदा | " २६ | नखैर्विदारि | " २१ |
| इत्याज्ञाप्यासुर | २०३ ५ | चण्डाट्टहासै | " २७ |
| आयान्तंचण्डि | " १२ | इतिमातृगणं | २१४ ११ |
| ततःसिंहोमहा | " २० | पलायनपरान् | " २० |
| धनुर्ज्या सिंह | " २८ | रक्तबिन्दुयंदा | २१५ ५ |
| तंनिनादमु | २०४ ११ | युयुधेसगदा | " १९ |
| एतस्मिन्नन्तर | " १७ | कुलिशेनाहत | " २७ |
| यस्यदेवस्य | २०५ १२ | यावन्तः पतितः | २१६ १३ |
| हंसयुक्त | " २१ | तेचापियुयुधुः | " २३ |
| माहेश्वरीवृ | २०६ ६ | पुनश्चवज्र | " ३० |
| कौमारीशाक्त | " १८ | वैष्णवीसमरे | २१७ २३ |
| तथैववैष्णवी | २०७ १ | वैष्णवीचक्रभि | " ३० |
| यज्ञवाराहम् | " १७ | शक्त्याजघान | २१८ ७ |
| नारसिंहोवृ | " २७ | सचापिगदया | " १७ |
| वज्रहस्ता | २०८ ४ | तस्याहतस्य | २१९ ५ |
| ततःपरिवृतः | " १५ | तैश्चासुरासृक् | " १३ |
| ततादेवीशरी | " २३ | तान्विषण्णान् | " २६ |
| साचाहधुञ्ज | २०९ ५ | मच्छन्नपात | २२० १४ |
| ब्रूहिशुम्भनि | " १४ | भक्षयन्तीच | " २२ |
| त्रैलोक्यमिन्द्रो | " २२ | भक्ष्यमाणाः | " २९ |
| बलाबलेपा | २१० ४ | मुखेनकाली | २२१ ६ |
| यतानियुक्तो | " १२ | नवास्यावेर | " १६ |
| तेऽपिभुक्त्वा | " २८ | मुखेसमुद्ग | " २१ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|-------------|--------------|--------------|--------------|
| देवीशूलेनव | २२२ १४ | ततःसाचण्डि | २३५ १४ |
| सपपातमही | २२२ ३० | ततोनिशुम्भः | " २४ |
| ततस्तेहर्षम | २२३ २२ | पुनश्चकृत्वा | २३६ ५ |

अथ नवमाध्यायारम्भः

| | | | |
|-----------------------|--------|---------------|-------|
| नवमाध्यायमन्त्रविभागः | २२५ २ | ततोभगवती | " १५ |
| विचित्रमिदमा | " ९ | ततोनिशुम्भो | " २७ |
| भूयश्चेच्छाम्यहं | " २० | तस्यापततए | २३७ ४ |
| चकार कोपमतुलं | २२६ ९ | शूलहस्तंसमा | " १२ |
| हन्यमानं | " १६ | भिन्नस्यतस्य | " २४ |
| तस्याग्रतस्तथा | " २८ | तस्यनिष्क्राम | २३८ ४ |
| आजगाममहा | २२७ १२ | ततःसिंहश्च | " १६ |
| ततोयुद्धमतीवा | " २० | कौमारीशक्ति | " २२ |
| चिच्छेदास्तान् | २२८ १ | माहेश्वरीत्रि | २३९ ३ |
| निशुम्भोनिशि | " ११ | खण्डंखण्डं च | " ९ |
| ताडितेवाहने | " २० | केचिद्विनेशुर | " २५ |

अथ दशमाध्यायारम्भः

| | | | |
|----------------|--------|-----------------------|--------|
| छिन्नेचर्मणि | २२९ १ | दशमाध्यायमन्त्रविभागः | २४१ २ |
| कोपाध्मातो | " ८ | निशुम्भंनिहतं | " १३ |
| आविध्याथ | " १९ | बलावलेपदुष्टे | " २५ |
| ततःपरशु | " २९ | एकैवाहंजगत्य | २४२ २६ |
| तस्मिन्नियु | २३० ११ | ततस्समस्तास्ता | २४३ १८ |
| सरथस्थः | " २२ | अहंविभूत्या | २४४ ३ |
| तमायान्तं | " २९ | ततःप्रववृते | " २५ |
| पूरयामा | २३१ ७ | शरवर्षे | २४५ ४ |
| ततःसिंहो | " १९ | दिव्यान्यस्त्रा | " १४ |
| ततःकाली | २३२ १ | मुक्तानितेन | " २९ |
| अट्टट्टहास | " २० | ततःशरशतैः | २४६ ८ |
| दुरात्मस्तिष्ठ | २३३ ९ | छिन्नेधनुषि | " २० |
| शुम्भेनागत्य | " २१ | ततःखड्गमु | " २९ |
| सिंहनादेन | २३४ ७ | तस्यापतत | २४७ ११ |
| शुम्भमुक्तान् | २३५ ४ | हताश्वः | " २१ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|----------------------------|--------------|-------------------|--------------|
| चिच्छेदाप | २४८ ४ | मयूरकुक्कुट | २६६ ५ |
| समुष्टिपा | „ ११ | शङ्खचक्रगदा | „ २८ |
| तलप्रहारा | „ २५ | गृहीतोग्रमहाचक्रे | २६७ १५ |
| उत्पत्यच | २४९ ४ | नृसिंहरूपेणोग्रे | „ २५ |
| नियुद्धं | „ १८ | किरीटनिमहा | २६८ ५ |
| ततोऽनियुद्धं | २५० ३ | शिवदूतीस्वरू | „ २२ |
| सक्षिप्तोद्य | „ २० | दंष्ट्राकरालवदने | २६९ ३ |
| तमायान्तं | „ २७ | लक्ष्मिलज्जेम | „ १४ |
| सगातासुः | २५१ ६ | मेघेसरस्वति | २७० ९ |
| ततःप्रसन्न | „ २६ | सर्वस्वरूपेसर्वे | „ २९ |
| उत्पातमेघाः | २५२ ५ | एतत्तेवदनं | २७१ १७ |
| ततोदेवगणाः | „ २३ | ज्वालाकराल | २७२ ४ |
| अवादयंस्त | २५३ ३ | हिनस्तिदैत्य | „ १९ |
| जज्वलुश्चाग्न | „ १४ | असुरासृग्बसा | २७३ ६ |
| अथैकादशाध्यायारम्भः | | रोगानशेषानप | „ २६ |
| तत्रैकादशाध्यायमन्त्र | | एतत्कृतंयत्कद | २७४ १५ |
| विभागः | २५४ २ | विद्यासुशास्त्रे | २७५ ७ |
| देव्याहतेतत्र | „ २३ | रक्षांसियत्रोग्र | „ ८८ |
| देविप्रपत्ताति | २५५ १८ | विश्वेश्वरित्वं | २७६ १७ |
| आधारभूता | २५६ १० | देविप्रसीद | „ २९ |
| द्वं वैष्णवीशक्ति | „ २१ | प्रणतानां | २७७ १७ |
| विद्याः समस्ता | २५७ २२ | वरदाहंसुर | „ १८ |
| सर्वभूतायदा | २५९ २२ | सर्वाबाधाप्र | २७८ ११ |
| सर्वस्यबुद्धि | २६१ ८ | वैवस्वतेऽन्त | २७९ ३ |
| कलाकाष्ठादि | „ ३१ | नन्दगोपगृहे | „ ३० |
| सर्वमङ्गलमङ्गल्ये | २६२ १५ | पुनरप्यति | २८० १० |
| सृष्टिस्थिति | २६३ १४ | भक्षयन्त्याश्च | २८१ २१ |
| शरणागत | २६४ १३ | ततोमादेवता | २८२ १४ |
| हंसयुक्तवि | „ २९ | भूयश्च | „ २४ |
| निष्कूलचन्द्रा | २६५ १९ | ततःशतेन | २८३ ४ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|------------------------------|--------------|-------------------------------|--------------|
| ततोहमस्मि | २८३ १७ | इत्युक्त्वासाभ | २९९ १३ |
| तत्रैवच | २८४ ६ | तेऽपिदेवा | " २३ |
| पुनश्चाहं | " २४ | देत्याश्चदेव्या | ३०० ४ |
| तदामांमु | २८५ २ | एवंभगवती | " १४ |
| यदारुणा | " १२ | तयैतन्मोह्यते | " २० |
| त्रैलोक्यस्य | " २५ | व्याप्तंतयै | ३०१ ४ |
| इत्थंयदायदा | २८६ ७ | सैवकाले | " २४ |
| अथ द्वादशाध्यायारम्भः | | भवकाले | ३०२ ५ |
| द्वादशाध्यायमन्त्रविभागः | २८७ २ | स्तुतासम्पूजि | " १२ |
| एभिस्तवैश्च | " १९ | अथ त्रयोदशाध्यायारम्भः | |
| मधुकैटभनाशं | २८८ ६ | त्रयोदशाध्यायमन्त्र विभागः | ३०३ २ |
| शत्रुतोभयं | २८९ ८ | एतत्तेकथितंभूप | ३०४ ११ |
| तस्मान्ममैतन्मा | " २८ | विद्यातथैवकि | " २० |
| उपसर्गानशे | २९० १ | तामुपैहि | ३०५ ८ |
| यत्रैतत्पठ्यते | " ३१ | इतितस्यवचः२ | ३०६ ३ |
| बलिप्रदाने | २९१ १६ | संदर्शनार्थमम्बाया | " १९ |
| जानताजान | २९२ १ | तीतस्मिन्पुलिने | ३०७ ४ |
| शरत्काले२ | " १७ | निराहारौ | " १३ |
| श्रुत्वाममै | २९३ १० | एवंसमाराध | " २८ |
| रिपवःसंक्ष | " २० | यत्प्रार्थ्यते | ३०८ ९ |
| शान्तिकमं | २९४ १ | ततोवत्रे | " १९ |
| उपसर्ग | " ११ | सोऽपिवैश्यः | " २९ |
| बालग्रहाभि | " ३० | स्वल्पैरहोभिः | ३०९ १८ |
| दुर्वृत्तानाम | २९५ १३ | मृतश्चभूयः | " २६ |
| पशुपुष्पाद्यं | " २८ | वैश्यवयंत्व | ३१० ४ |
| श्रुतंहरति | २९७ १ | इतिदत्त्वा | " २२ |
| युद्धेषुचरि | " १० | एवंदेव्यावरं | ३११ १ |
| युष्माभिः | " १८ | अथोत्तरभागारम्भः | |
| अरण्येप्रां४ | " २७ | अथदेवीसूक्तं | ३१२ |
| ममप्रभावात् | २९९ ३ | प्राधानिकरहस्यं | ३१६ |

| विषयाः | पृष्ठ पंक्ति | विषयाः | पृष्ठ पंक्ति |
|----------------------------------|--------------|---------------------------------|--------------|
| वैकृतिकरहस्यम् | ३२९ | सम्पुटीकरणादिनानाविध | |
| मूर्तिरहस्यारम्भः | ३४० | प्रयोगाः । तल्लक्षणंच | ३६० ७ |
| श्रीचण्डिकाराधनक्रमः | | पुरश्चरणस्वरूपं | ३९२ २२ |
| खिलमार्कण्डेयोक्तः | ३४९ | केषांचिन्मन्त्राणान्यासध्याना | |
| चण्डिकोपासनापद्धतिः | ३५८ | निशरणागतमन्त्रः | ३९३ १९ |
| नित्यचण्डीक्रमः | ३६७ ५ | सर्वापत्तिवारणाय | ,, २६ |
| नित्यचण्डीपद्धतिः | ,, १३ | भयनिवृत्तिप्रकारः | ,, ३१ |
| नवदुर्गाक्रमः | ३६८ ८ | इत्थंयदायदावाधा | ३६४ २२ |
| नवदुर्गापद्धतिः | ,, १८ | हिनस्तिदैत्य | ,, २६ |
| कालरात्रिपद्धतिः | ,, १८ | एवमुक्तवेति | ,, ३२ |
| नवचण्डीमहोत्सवः | | ज्ञानिनां | ३९५ ६ |
| नवचण्डीपद्धतिः | ३६९ १६ | रोगानशेषान | ,, १४ |
| शतचण्डीक्रमः | ३७१ १२ | इत्युक्त्वा | ,, १५ |
| शतचण्डीपद्धतिः | ३७५ ३ | भगवत्याकृत | ,, १७ |
| सहस्रचण्डीक्रमः | ३७७ २६ | देविप्रपन्नति | ,, १८ |
| कुमारीपूजनक्रमः | ३७८ ११ | सर्वमङ्गलमङ्गल | ,, २२ |
| कुमारीपूजापद्धतिः | ३७९ ९ | इन्द्रियाणाम् | ,, २६ |
| कुमारोलक्षणम् | ,, २७ | सृष्टिस्थिति | ,, २८ |
| चण्डीहोमक्रमः | ३८० ६ | ज्वालाकराल | ३९६ १ |
| होमपद्धतिः | ३८१ २८ | सर्वाभीष्टप्राप्तिः | ,, ५ |
| तान्त्रिकदेवीसूक्तरात्रिसूक्तकव- | | पत्नीप्रकारः | ,, १३ |
| चार्गलास्तुत्यादिनिर्णयः | ३८४ १ | महाभयनिवृत्तिः | ,, १६ |
| सार्द्धनवकप्रयोगक्रमः | ,, ११ | नानाकाम्यप्रयोगाः | ,, २३ |
| सार्द्धनवकप्रयोगः | ३८५ १ | वैदिकमन्त्रप्रयोगाः | ३९७ २७ |
| दीपदानक्रमः | ३८६ २५ | श्रीदुर्गानामप्रयोगः | ४०० २१ |
| दीपदानपद्धतिः | ३८७ २७ | इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वसूचीपत्रं | |
| नित्यदीपदानपद्धतिः | ३८९ १ | समाप्तिमगात्—शुभम्— | |

| श्री १० | श्री ११ | श्री १२ | श्री १३ |
|---------|---------|---------|---------|
| १० | १०५ | १०६ | १०७ |
| ११ | १०८ | १०९ | ११० |
| १२ | १११ | ११२ | ११३ |
| १३ | ११४ | ११५ | ११६ |
| १४ | ११७ | ११८ | ११९ |
| १५ | १२० | १२१ | १२२ |
| १६ | १२३ | १२४ | १२५ |
| १७ | १२६ | १२७ | १२८ |
| १८ | १२९ | १३० | १३१ |
| १९ | १३२ | १३३ | १३४ |
| २० | १३५ | १३६ | १३७ |
| २१ | १३८ | १३९ | १४० |
| २२ | १४१ | १४२ | १४३ |
| २३ | १४४ | १४५ | १४६ |
| २४ | १४७ | १४८ | १४९ |
| २५ | १५० | १५१ | १५२ |
| २६ | १५३ | १५४ | १५५ |
| २७ | १५६ | १५७ | १५८ |
| २८ | १५९ | १६० | १६१ |
| २९ | १६२ | १६३ | १६४ |
| ३० | १६५ | १६६ | १६७ |
| ३१ | १६८ | १६९ | १७० |
| ३२ | १७१ | १७२ | १७३ |
| ३३ | १७४ | १७५ | १७६ |
| ३४ | १७७ | १७८ | १७९ |
| ३५ | १८० | १८१ | १८२ |
| ३६ | १८३ | १८४ | १८५ |
| ३७ | १८६ | १८७ | १८८ |
| ३८ | १८९ | १९० | १९१ |
| ३९ | १९२ | १९३ | १९४ |
| ४० | १९५ | १९६ | १९७ |
| ४१ | १९८ | १९९ | २०० |
| ४२ | २०१ | २०२ | २०३ |
| ४३ | २०४ | २०५ | २०६ |
| ४४ | २०७ | २०८ | २०९ |
| ४५ | २१० | २११ | २१२ |
| ४६ | २१३ | २१४ | २१५ |
| ४७ | २१६ | २१७ | २१८ |
| ४८ | २१९ | २२० | २२१ |
| ४९ | २२२ | २२३ | २२४ |
| ५० | २२५ | २२६ | २२७ |
| ५१ | २२८ | २२९ | २३० |
| ५२ | २३१ | २३२ | २३३ |
| ५३ | २३४ | २३५ | २३६ |
| ५४ | २३७ | २३८ | २३९ |
| ५५ | २४० | २४१ | २४२ |
| ५६ | २४३ | २४४ | २४५ |
| ५७ | २४६ | २४७ | २४८ |
| ५८ | २४९ | २५० | २५१ |
| ५९ | २५२ | २५३ | २५४ |
| ६० | २५५ | २५६ | २५७ |
| ६१ | २५८ | २५९ | २६० |
| ६२ | २६१ | २६२ | २६३ |
| ६३ | २६४ | २६५ | २६६ |
| ६४ | २६७ | २६८ | २६९ |
| ६५ | २७० | २७१ | २७२ |
| ६६ | २७३ | २७४ | २७५ |
| ६७ | २७६ | २७७ | २७८ |
| ६८ | २७९ | २८० | २८१ |
| ६९ | २८२ | २८३ | २८४ |
| ७० | २८५ | २८६ | २८७ |
| ७१ | २८८ | २८९ | २९० |
| ७२ | २९१ | २९२ | २९३ |
| ७३ | २९४ | २९५ | २९६ |
| ७४ | २९७ | २९८ | २९९ |
| ७५ | ३०० | ३०१ | ३०२ |
| ७६ | ३०३ | ३०४ | ३०५ |
| ७७ | ३०६ | ३०७ | ३०८ |
| ७८ | ३०९ | ३१० | ३११ |
| ७९ | ३१२ | ३१३ | ३१४ |
| ८० | ३१५ | ३१६ | ३१७ |
| ८१ | ३१८ | ३१९ | ३२० |
| ८२ | ३२१ | ३२२ | ३२३ |
| ८३ | ३२४ | ३२५ | ३२६ |
| ८४ | ३२७ | ३२८ | ३२९ |
| ८५ | ३३० | ३३१ | ३३२ |
| ८६ | ३३३ | ३३४ | ३३५ |
| ८७ | ३३६ | ३३७ | ३३८ |
| ८८ | ३३९ | ३४० | ३४१ |
| ८९ | ३४२ | ३४३ | ३४४ |
| ९० | ३४५ | ३४६ | ३४७ |
| ९१ | ३४८ | ३४९ | ३५० |
| ९२ | ३५१ | ३५२ | ३५३ |
| ९३ | ३५४ | ३५५ | ३५६ |
| ९४ | ३५७ | ३५८ | ३५९ |
| ९५ | ३६० | ३६१ | ३६२ |
| ९६ | ३६३ | ३६४ | ३६५ |
| ९७ | ३६६ | ३६७ | ३६८ |
| ९८ | ३६९ | ३७० | ३७१ |
| ९९ | ३७२ | ३७३ | ३७४ |
| १०० | ३७५ | ३७६ | ३७७ |



श्रीगणेशाय नमः

सप्तशतीसर्वस्वं

भागत्रयभूषितं

प्रारभ्यते

गजाननं विघ्नहरं गणार्चितपदाम्बुजम् ।

सेवितं सिद्धिबुद्धिभ्यामनिशं श्रेयसे श्रेये ॥ १ ॥

नित्यामनन्तां प्रकृतिं पुराणीं चिदीश्वरीं सर्वजगन्निवासाम् ।

शिवाद्धंदेहामगुणां गुणाश्रयां वर्णार्थरूपां प्रणमामि देवीम् ॥ २ ॥

श्रीमद्गुणानन्दनाथांघ्रिपद्मं नत्वा स्तुत्वा सम्प्रदायप्रणेतृन् ।

पूर्वाचार्यप्रोक्तटीकाविगाह्य यद्यत्सारं तत्तदेवाचिनोमि ॥ ३ ॥

सप्तशत्याः प्रसादेन सप्तशत्यर्थसंग्रहम् ।

प्रयोगानपि लब्ध्वांश्च विचिनोमि यथामति ॥ ४ ॥

श्रीसप्तशत्याः सर्वस्वे निखिलार्थप्रदे शिवे ।

सूचीं वक्ष्येऽथ सर्वस्य ज्ञानाय विषयस्य च ॥ ५ ॥

विश्रामे प्रथमे चात्र ब्रह्ममायैक्यनिर्णयः ।

त्रिशक्तीनां समुत्पत्तिर्मायाबीजात्ततः परम् ॥ ६ ॥

नवार्णसप्तशत्यौ द्वौ मन्त्रौ तासां निरूपितौ ।

तयोर्निरूपणं तद्वन्माहात्म्यमपि कीर्तितम् ॥ ७ ॥

नामानि सप्तशक्तीनां प्रत्येकचरितं प्रति ।

सम्प्रदायपरत्वेन तथा पाठ्यवस्थितिः ॥ ८ ॥

पाठक्रमः सप्तशत्याः सूक्तयोरपि निर्णयः ।

शापोद्धारः कीलकश्च पाठे सप्तशतीमनोः ॥ ९ ॥
 विधिस्तथा निषेधश्च पाठे सम्यक् प्रकीर्तितः ।
 स्तोत्रन्यासस्तथाध्याने मुख्यशक्तिविनिश्चयः ॥ १० ॥
 नित्यपाठे त्वर्चनस्य प्रकारः समुदीरितः ।
 सप्तशत्याः षडङ्गानि निर्णीतानि प्रयत्नतः ॥ ११ ॥
 विश्रामेऽथ द्वितीये तु कवचं विवृतिस्फुटम् ।
 व्याख्या तथा तृतीये तु सानुष्ठानार्गलास्तुतेः ॥ १२ ॥
 चतुर्थे कीलकव्याख्या तथा च गुरुकीलकम् ।
 पञ्चमे चाथ विश्रामे सव्याख्यं रात्रिसूक्तकम् ॥ १३ ॥
 ॐ नमश्चण्डिकायै तु नवार्णस्य महामनोः ।
 व्याख्या सङ्कलिता चात्र सम्प्रदायपुरःसरम् ॥ १४ ॥
 एवं प्रथमभागेऽत्र पदार्था अथ मध्यमे ।
 भागे त्रयोदशाध्यायव्याख्या मन्त्रभिदान्विता ॥ १५ ॥
 भागेऽन्तिमेऽथ प्रथमे विश्रामे व्याकृतिस्फुटम् ।
 देवीसूक्तं द्वितीये तु प्राधानिकरहस्यकम् ॥ १६ ॥
 सव्याख्यानं वैकृतिकं रहस्यं तु तृतीयके ।
 विवृत्यालङ्कृतं मूर्तिरहस्यं तु तुरीयके ॥ १७ ॥
 पञ्चमेऽखिलमार्कण्डेयोक्त आराधनक्रमः ।
 सोद्दारा सप्रकाशा च पद्धतिर्नित्यकर्मणाम् ॥ १८ ॥
 नित्यचण्डीविधानं च नवदुर्गाविधिस्तथा ।
 नवचण्डीक्रमश्चापि शतचण्डीविधिस्तथा ॥ १९ ॥
 सहस्रचण्डिकारीतिः कुमारीपूजनक्रमः ।
 तथा होमविधिश्चण्ड्या विश्रामे चाथ षष्ठके ॥ २० ॥
 विधिः सार्द्धनवस्याथ दीपदानं ततःपरम् ।
 नानाकाम्यप्रयोगास्तु मन्त्रसम्पुटयोगतः ॥ २१ ॥

एवं तज्जलनिधिलोचनप्रमाणैर्विश्रामैर्विविधविधिक्रमं वहद्भिः ।
सम्पूर्णं परगुणकप्रसत्तिभाजां सर्वैर्यं भवतु मुदे सुसाधकानाम् । २२।

अथात्र प्रपञ्चे पदार्थद्वयमेव मुख्यं सर्वप्रपञ्चमूलभूतं ब्रह्म माया चेति
निर्विवादमितरत्सर्वं तद्विकारभूतमित्यपि निर्विवादमेव । तथा च श्रुतिः,
श्वेताश्वतराणाम्, मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम् । तयोर्वि-
भूतिलेशोवै जगदेतच्चाचरमिति । स्मृतिश्च । शक्तिश्च शक्तिमांश्चैव
पदार्थद्वयमुच्यते । शक्तयोऽस्य जगत्सर्वं शक्तिमांश्च महेश्वर इति । शास्त्र-
कारा अपि । मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त । षोडश-
कस्तु विकारो न प्रकृतिर्नविकृतिः पुरुष इति । तदेतत्पदार्थद्वयं न भिन्नम् ।
किन्तु चन्द्रचन्द्रिकयोरिव तादात्म्यापन्नमेव । तदुक्तम् शक्तिश्च शक्ति-
मद्वाद्द्वयतिरेकं न वाञ्छति । तादात्म्यमनयोनित्यं वह्निदाहकयोरि-
वेति । तत्र यथा ब्रह्मणो मुख्यो मन्त्रः प्रणवः । तथा मायाया मन्त्रः मुख्यं
मायाबीजमिति । तच्च तैत्तिरीयश्रुतौ कण्ठरवेणोपात्तम् । ह्रीश्च ते
लक्ष्मीश्च पत्न्याविति । बृहदारण्यकेऽपि । इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते
युक्ताह्यस्य हरयः शतादशेत्ययं वै हरय इति । सामवेदेऽपि । तदेव माया-
बीजं रकाररूपकीलकरहितं ह्रस्वेकारघटितं कण्ठरवेणोपात्तम् । पृथ्वी
हिङ्कार आदित्यो हिङ्कारः द्यौर्हिङ्कारः पुरोवातो हिङ्कारः प्रजापति-
हिङ्कार उद्यन्हिङ्कारो मनोहिङ्कार इति । एतद्वे भुवनेश्वरीसंहितायाम् ।
साममु प्रथमा भक्तिर्हिङ्कारो मे मनुर्मतः । ह्रस्वेकारयुतं तत्तु मायाबीजं
प्रवक्षत इति । देव्यथर्वशीर्षेऽपि । वियदीकारसंयुक्तं बीतिहोत्रसमन्वितम् ।
अद्वैन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम् । एवमेकाक्षरं मन्त्रं यतयः
शुद्धचेतसः । ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशय इति । अत एव
यानि यानि ब्रह्मणो नामानि ध्रुवस्तारइत्यादीनि तानि तान्येव तद्वा-
चकस्य प्रणवस्य । तथा मायाबीजस्य यानि यानि नामानि शक्तिर्माया
इत्यादीनि तानि तान्येव तद्वाचकमायाबीजमन्त्रस्य नामानि । तच्च
यथा । मायाबीजस्य नामानि मालिनी शिववल्लरी । माया मूर्तिः कला
वाणी बीजशक्तिश्च कुण्डलीति । तत्र ब्रह्मायायोरभिन्नत्वाद्ब्रह्मवाच-
कोऽपि प्रणव उभयवाचकः । एवं मायावाचकमपि मायाबीजं ब्रह्मायो-
भयवाचकम् । यच्च ब्रह्माण्डपुराणे । ह्रीङ्कार उभयात्मक इति । प्रपञ्च-
सारे आचार्या अपि । तदा तां तारमित्याहुरोमात्मेति बहुश्रुताः । तामेव

शक्तिं ब्रुवते हरीमात्मैति चापर इति । इत्थं सर्वोत्तमयोः प्रणवमाया-
 बीजमन्त्रयोर्वान्यं शबलब्रह्मरूपं बिन्दुपदेन तान्त्रिकव्यवहारात् । तदुक्तं
 शारदायाम् । आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद्विन्दुसमुद्भव इति ।
 आचार्या अपि भुवनेश्वरीस्तुतौ । नमस्ते समस्तेषि बिन्दुस्वरूपे इति ।
 तत्र प्रणवस्य शिवो देवताधिष्ठात्रीति प्रणवोत्पत्तिप्रकरणे । रुद्रो देवतेति
 गोपयन्नाहणात् । मायाबीजस्य भुवनेश्वरी देवता अत एवैतद्बीजस्य
 भुवनेश्वरीबीजमिति सकलशास्त्रसिद्धान्तः । तत्रैवं सति यथा बीजा-
 दङ्कुरकाण्डपुष्पफलात्मको वृक्षो भवति तद्वन्मायाबीजवाच्याद्विन्दो-
 रिच्छाज्ञानक्रियारूपिण्यो रौद्रीज्येष्ठावाभात्मिकाः शक्तयो भवन्ति । ता
 एव महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः । तासां च मन्त्रेषु मन्त्र-
 द्वयमेव मुख्यम् । नवार्णः सप्तशती चेति । तत्र मन्त्रद्वये प्रधानोपसर्जन-
 भेदेन प्रकारद्वयमपि । तत्र नवार्णस्य प्राधान्ये सप्तशत्यास्तदङ्गत्वमित्येकः
 प्रकारः । स च मेरुतन्त्रादिबहुषु तन्त्रेषु दृष्टः । तत्राद्ये यः साधकः प्राधा-
 न्येन नवार्णदीक्षां गृह्णाति तेन नवार्णोक्त्यन्त्रे नवार्णदेवताः सम्पूज्य
 नवार्णजपं कृत्वा तदङ्गत्वेन सप्तशत्याः पाठः कर्तव्य इति प्रथमः प्रकारः ।
 यस्तु सप्तशतीमालामन्त्रे दीक्षितो भवति तेन रहस्योक्तप्रकारेण तदुक्त-
 यन्त्रे सप्तशतीदेवताः सम्पूज्य तदङ्गत्वेन पूर्वोत्तरभागयोर्नवार्णमन्त्रं
 जपित्वा सप्तशतीपाठः कर्तव्य इति द्वितीयः प्रकारः । उभावपि प्रकारौ
 कीलकाध्याये स्पष्टौ । तदुक्तम् । सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकील-
 कम् । सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्पर इत्यादि । एतेन स्तुवतां
 देवीस्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति इति तट्टीकायां चैतत्स्पष्टीभविष्यति । अथेदं
 सप्तशतीस्तोत्रं मार्कण्डेय उवाचेत्यारभ्य सार्वर्णिर्भविता मनु रित्यन्तं
 त्रयोदशाध्यायात्मकं मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतं सर्वकामदुर्घनं केनचिन्निमित्त-
 मिति । किन्तु वेदवदनाद्येव । तदुक्तं भुवनेश्वरीसंहितायाम् । यथा वेदो
 ह्यनादिर्हि तद्वत्सप्तशतीस्मृतेति । मेरुतन्त्रेऽपि । सप्तशत्याश्च सकल तत्त्व-
 वेद्यग्रहमेवहि । पादोनं श्रीहरिर्वेत्तिवेत्यद्वन्द्वं प्रजापतिः । व्यासस्तुर्याशकं
 वेत्ति कोट्यशमित्तरे जना इति । व्यासन प्रकटीकृतत्वात्तु लोके व्यासकृत-
 मिति व्यवहारः । रुद्रयामलेऽपि अस्ति गृह्यतमं देव्या माहात्म्यं सर्व-
 सिद्धिदम् । वाक्यैरर्थश्च पद्यैश्च सप्तशत्यात्मकं शुभम् । सविशेषपरं साक्षा-
 त्चिच्छक्तिर्महिमाश्रयम् । तात्पर्यगत्या तत्कृत्स्नं निविशेषचिदाश्रय-
 मिति । चिदम्बरसंहितायामपि । का च सप्तशती नाम देवी दारिद्र्य-
 नाशिनी । तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि तत्त्वतः परमेश्वर । शिवः । शृणु देवि

प्रवक्ष्यामि सप्तशत्या महोदयम् । यस्याश्चपठनान्मन्त्री त्यजेन्नमदरिद्र-
ताम् । या चिन्मयी परा देवी त्रिपुरा त्रिविधाभवत् । देवकार्यसुसिद्धयर्थं-
मसुराणां वधाय च । महत्यापदि सम्प्राप्ते देवाः सन्तुष्टुवुर्भूशम् । तदा
सा चिन्मयी शक्तिः कालीरूपा बभूव ह । सैव कालान्तरे लक्ष्मीस्तथैव च
सरस्वती । तासां कथानकं भद्रे त्रिदशाध्यायरूपकम् । मार्कण्डेयपुराणोक्तं
स्तवं सप्तशताभिधम् । स्तवस्य तस्य पठनात्सर्वसौख्यं लभेद्भूवम् ।
तस्मिन्देव्याः स्तवे पुण्ये मन्त्राः सप्तशतं शिवे । तस्मात्सप्तशती नाम
स्तवं परमदुर्लभम् । स्तवस्य पठनादेव सर्वं नश्यत्युपद्रवा इति । डामर-
तन्त्रेऽपि । यथाश्वमेधः क्रतुषु देवानां च यथा हरिः । स्तवानामपि सर्वेषां
तथा सप्तशतीस्तवः । नातः परतरं स्तोत्रं किञ्चिदस्ति वरानने । भुक्ति-
मुक्तिप्रदं पुण्यं पावनानां च पावनमिति । अथास्य सप्तशतीस्तोत्रस्य सप्त-
शती सप्तशती चेतिनामद्वयम् । तद्व्युत्पत्तिर्मरुतन्त्रे । सप्तशत्याश्चरित्रे तु
प्रथमे पद्मजो मुनिः । छन्दो गायत्रमुदितं महाकाली तु देवता । वाग्बीजं
पावकस्तत्त्वं धर्मार्थं विनियोजनम् । प्रयोगानान्तु नवतिर्मारणे मोहनेऽत्र
तु । उच्चाटे स्तम्भने वापि प्रयोगानां शतद्वयम् । मध्यमेऽथ चरित्रे
स्यात्तृतीयेऽथ चरित्रके । विद्वेषवश्ययोश्चात्र प्रयोगारिकृते मताः । एवं
सप्तशतं चात्र प्रयोगाः सम्प्रकीर्तिताः । तस्मात्सप्तशतीत्येवं प्रोक्तं व्यासेन
धीमता । महाविद्येत्यादिसत्यः सप्तकल्पे तथादिमे । ब्रह्मेन्द्रगुरुशुक्राणां
विष्णुहृद्रसुरद्विषाम् । उपास्या देवता जातास्ताश्चात्र ब्रह्मणा स्तुताः ।
तस्मात्सप्तशतीत्येवव्यासेन परिकीर्तिताः । ताश्चसत्य आद्येचरित्रे ।
कालीतारा छिन्नमस्ता सुमुखी भुवनेश्वरी । बाला कुब्जेति सप्तसत्यः ।
मध्यमचरित्रे तु । लक्ष्मी ललिता काली दुर्गा गायत्री अरुन्धती सरस्वती-
चेति सप्त सत्यः । तथोत्तर चरित्रे । ब्राह्मद्याद्याश्चामुण्डान्ताः सप्त सत्यः ।
अथैतासामेकविंशतिसतीनां समष्टिरूपा नन्दा शताक्षी शाकम्भरी भीमा-
रक्तदन्तिका दुर्गा भ्रामर्यः सत्यः सप्त संख्याता उक्ताः । तस्मात्सप्त-
सतीनामेत्यादि मेरुतन्त्रे स्पष्टम् । अथास्याः सप्तशत्याः सप्तसत्याश्च पाठ-
क्रमोऽनेकतन्त्रानुरोधादनेकविध एव तेषु च स्वदेशिकमतानुसरणमेव
श्रेयस्करमिति । यतस्ते च गौडकेरलकाश्मीरसामयिका अतस्तेषामनु-
रोधोऽत्रफलाभिव्यञ्जकः । एतन्मूलकमेव नानात्वम् । मरौचिकल्पानु-
यायिनां पाठक्रमो यथा । रात्रिसूक्तं पठेदादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम् ।
प्रान्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रम इति । वेदागमेऽपि । निर्विशेष-

परामन्त्राः सविशेषपराश्च ये । प्रत्यध्याय निगूढास्ते तेनेयं सर्वतः परेति । तस्य च पाठक्रम एवम् । कवचं बीजमादिष्टमर्गला शक्तिरुच्यते । कीलकं कीलकं प्राहुः सप्तशत्या महामनोरिति वचनाद्यथा सर्वमन्त्रेषु बीजशक्ति-कीलकानां प्रथममुच्चारणं तथा सप्तशतीपाठेऽपि कवचकीलागलानां प्रथमं पाठः । चिदम्बरसंहितायां पाठक्रमस्तु । अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत् । जपेत्सप्तशतीं पश्चात्सिद्धिकामेन मन्त्रिणा । रहस्यत्रयमप्यन्ते पठितव्यं प्रयत्नतः । मध्ये नवाणंपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत् । अत्र सम्पुटक्रमस्तु डामरतन्त्रे । शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाणंकम् । चण्डीं सप्तशतीमध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृत इति । अत्र सर्वेषु क्रमेषु नित्य-कृत्यानन्तरं आसनशोधनाचमनशिखाबन्धनप्राणायामसङ्कल्पमातृकान्यासादिन्यासांश्च विधाय श्रीदेवीं ध्यात्वा रहस्योक्तक्रमेण श्रीदेवीं वक्ष्यमाणे नवकोष्ठात्मके यन्त्रे सम्पूज्य कवचागलकीलकरात्रिसूक्तानि पठित्वा विनियोगर्ण्यादिन्यासपूर्वकं नवाणामादावष्टोत्तरशतं जपित्वान्ते पाठक्रमेण सप्तशतीमावर्त्यन्ते पुनर्नवाणमन्त्रस्याष्टोत्तरशतं जपं विधाय ऋष्यादिपूर्वकं श्रीदेव्यै समर्प्य देवीसूक्तं पठित्वा रहस्यत्रयमावर्त्यन्ते प्रार्थनामन्त्रैर्देवीं क्षमाप्य प्रणम्य च विहरेदिति क्रमः । अत्र नवाणमन्त्रजपोत्तरं रात्रिसूक्ता पाठमाह कश्चित्तदसत् । पुटितं मूलमन्त्रेणेति वचनात्पुटितमध्येऽन्यमन्त्रप्रवेशस्य विरोधात् । शतमादौ—इत्यारभ्य सम्पुटोऽयमुदाहृत इति डामरवाक्यविरोधाच्चेति । अथ रात्रिसूक्तदेवीसूक्तयोर्व्यवस्था । तत्र रात्रिसूक्तदेवीसूक्ते द्विविधे । वेदोक्ते तन्त्रोक्ते च ते च वैदिकानां प्रथमे एव मुख्ये । अन्येषां तान्त्रिकाणान्तु यथेच्छं विकल्पः । तत्र वैदिकं रात्रिसूक्तं रात्री व्यूह्यदायतीत्याद्यष्टमृगवेदे प्रसिद्धम् । तथा देवीसूक्तमपि अहंरुद्रेभिरित्याद्यष्टमृगवेदे प्रसिद्धम् । यद्वा रात्रिसूक्तंसामवेदे प्रसिद्धं रात्रि प्रपद्ये इत्याद्येकऋग्वेदम् । तान्त्रिकान्तु रात्रिसूक्तं सप्तशत्यां प्रथमाध्याये विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीमित्यादि पठितरूपम् । देवीसूक्तं तु नमो देव्यै महादेव्यै इति पञ्चमाध्यायपठितरूपम् । यद्वा । उड्डामरतन्त्रोक्तसहस्राक्षरमन्त्ररूपं देवीसूक्तम् । एवं विवेके होमप्रकरणे मारीचिकल्पे । कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णा चतुर्दशी । वृद्धयैकोत्तरया जाप्यं पूर्वसम्पुटितं तु तत् । एवं देवि मया प्रोक्तः पौरश्चरणिकक्रमः । तदन्ते हवनं कुर्यात्प्रतिश्लोकेन पावके । रात्रिसूक्तं प्रतिऋचं तथा देव्याश्च सूक्तकम् । हुत्वान्ते प्रजपेत्स्तोत्रमादौ पूजादिकं मुने इति । प्रतिश्लोकेनेति सप्तशतं मन्त्रविभागोपलक्षणेन । रात्रिसूक्तं देव्याः सूक्तं च प्रतिऋचं हवनं कुर्यादिति ।

अत्र ऋगुपलक्षणेन वैदिके एव रात्रिसूक्तदेवीसूक्ते लभ्येते । ते च ऋग्वेदे शाकलसंहितायां च प्रसिद्धे । प्रतिश्लोकेन प्रतिऋचमिति नियतनिर्देशात् । ऋक्सूक्तादिशब्दानां वैदिकमन्त्रेष्वेव रूढ्या प्रसिद्धेश्च । अथ च सप्तशतीपाठारम्भे शापोद्धारादिकमपि लभ्यते । तत्प्रकारो यथा । तन्त्रे । अन्त्या १३ द्या १ कं १२ द्वि २ रुद्र ११ त्रि ३ दि १० गन्ध्य ४ छ्मे ६ ष्वि ५ भ ८ तंवः ६ । अश्वो ७ श्व ७ इतिसर्गाणां शापोद्धारो मनोः क्रम इति । अस्यार्थः । त्रयोदशप्रथमौ । द्वादशद्वितीयौ । एकादशतृतीयौ । दशमचतुर्थौ । नवमपञ्चमौ । अष्टमषष्ठाध्यायौ पठित्वा सप्तमाध्यायं द्विः पठेदिति शापोद्धारः । उत्कीलनं यथा । उत्कीलने चरित्राणां मध्याद्यन्तमिति क्रमः । अस्यार्थः । आदौ मध्यमचरित्रं पठित्वा ततः प्रथमचरित्रं ततस्तृतीयचरित्रमित्युत्कीलनम् । यत्तु ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसिद्धयतीतिविहितं दानप्रतिग्रहनामकं महोत्कीलनं तत् कीलकाध्याये स्पष्टीभविष्यति । वस्तुतस्तु । एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिहेति रहस्याध्यायवचनेन यस्यैकपाठावसरो नास्ति तस्य मध्यमचरित्रपाठाभ्यनुज्ञानात्तादृशस्य पुरुषस्य पूर्वोक्तशापोद्धारकीलकानुष्ठानस्यासम्भवात्तदभ्यनुज्ञानं व्यर्थमेव स्यात् । अन्यच्च । नियमेनैकपाठवतामेकस्मिन्दिने सम्पूर्णपाठाशक्तौ पा १ ठो २ यं १ व ४ र २ का १ रः २ एवंछलाक्षरसूत्रक्रमेण सप्तभिदिनैरेकावृत्तिः । एतस्माच्छापोद्धारादिकमपि नावश्यकमिति प्रतिभाति । अथ पाठक्रमोयथा । वाराहीतन्त्रे चिदम्बरसंहितायामपि । ध्यात्वा देवीं पञ्चपूजां कृत्वा योन्या प्रणम्य च । आधारं स्थाप्य मूलेन स्थापयेत्तत्र पुस्तकम् । अनुक्रमात्पठेद्देवि शिरःकम्पादिकं त्यजेत् । शिरःकम्पादिकन्तु । रागी शीघ्री शिरःकम्पी स्वतो लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठी च षडेते पाठकाधमाः । यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत्पठन् । यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये । पुनरध्यायमारभ्य पठेत्सर्वं मुहुर्मुहुः । अज्ञानात्स्यापिते हस्ते पाठे ह्यर्द्धफलं ध्रुवम् । न मानसं पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते । उच्चैःपाठं निषिद्धं स्यात्स्वरां च परिवर्जयेत् । शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः । कण्ठस्थपाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत् । न स्वयं लिखितं स्तोत्रं नाब्राह्मणलिपिं पठेत् । एवं स्तोत्रेषु सर्वत्र क्रमोज्ञेयो विचक्षणः । पुस्तके वाचनं हस्ते सहस्रादधिकं यदि । ततोऽन्यूनस्य तु भवेद्वाचनं पुस्तकं विना । अत्र सहस्रान्यूनमन्त्रस्य पाठसत्वे पुस्तकं विनैव वाचनं तदभावे आधारे पुस्तकनैव वाचनम् । सहस्राधिकस्य तु पाठसत्वे आधारस्थापितपुस्तकोपर्यं वाचन-

मिति तद्वचनार्थः । प्रकृतस्तोत्रस्य सहस्रान्यूनत्वात् । ततः । कृताञ्जलि-
 पुटोभूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैरिति वैकृतिरहस्ये विधानाच्च । सहस्र-
 पाठाभावे पुस्तकस्याधारस्थापनेनैव वाचनं कण्ठपाठीकृत्य पुस्तकं विनैव
 तु कृताञ्जलितया पठनमुत्तममिति द्रष्टव्यम् अत्र सहस्रशब्दो द्वात्रिंशत्स्व-
 रात्मकस्यैकैकानुष्टुप्त्वकल्पनेन तादृशानुष्टुप्छन्दः सहस्रं ज्ञेयमिति शक्ति-
 सङ्गमतन्त्रे स्पष्टम् । यच्च । द्वात्रिंशता स्वरैर्युक्त एको ग्रन्थो निगद्यते ।
 स एव गदितः श्लोकस्तारानेत्रसमुद्भवइत्यादि तेन गद्यात्मकमाला-
 मन्त्रेष्वप्यस्य प्रसरोज्ञेयः । स्तोत्रस्य पूर्वोत्तरभागपाठाभावे नैष्कल्यादि-
 वचनानि शक्तिसङ्गम-एव द्रष्टव्यानि । ऋषिश्छन्दो देवतानि पठेत्स्तोत्रे
 समाहितः । यत्र स्तोत्रे न दृश्येत प्रणवस्यासमाचरेदिति । स्तोत्रन्यासश्च
 डामरे । सप्तशत्याश्चरित्रे तुप्रथमे पञ्चभूमुनिः । छन्दोगायत्रमुदितं महा-
 काली तु देवता । वाग्बीजं पावकस्तत्त्वं धर्मार्थं विनियोजनम् । मध्य-
 मस्य चरित्रस्य विष्णुर्मुनिरुदाहृतः । उष्णिक्छन्दोमहालक्ष्मीर्देवता बीज-
 मद्विजा । वायुस्तत्त्वं धनप्राप्त्यै विनियोग उदाहृतः । उत्तमस्य चरित्रस्य
 मुनिःशङ्कर ईरितः । त्रिष्टुप्छन्दोदेवतास्य महापूर्वा सरस्वती । कामो
 बीजं रविस्तत्त्वं कामार्थं विनियोजनम् । मायान्ते चण्डिकायै च व्यस्त-
 वर्णैः समस्तकैः । कृत्वा षडङ्गमृष्यादि स्मृत्वा ध्यात्वोक्तमार्गतः ।
 रहस्योक्तप्रकारेण पूज्य लक्ष्मीं विधानतः । सार्थस्मृतिं पठेच्चण्डीस्तवं
 स्पष्टपदाक्षरम् । समाप्तौ तु महालक्ष्मीं ध्यात्वा कृत्वा षडङ्गकम् । जपे-
 दष्टशतं मूलं देवतायै निवेदयेत् । एवं यः कुरुते स्तोत्रं नावसीदति जातु-
 चिदिति । अत्र ध्यात्वोक्तमार्गत इत्युक्तं तत्र ध्यानप्रकारश्चेत्यम् । सप्त-
 शतीरहस्ये । सर्वस्याद्या महालक्ष्मीरित्यत्र तुरीयस्वरूपाभिमानिनी या
 देवी तस्यास्तप्तकान्धनवर्णेत्यादि रहस्योक्तप्रकारेण ध्यानम् । इदं च रूपं
 साम्यावस्याभिमानिनी प्रणवमायाबीजवाच्यं पूर्वमुक्तं तदस्ति । पश्चात्त-
 मोगुणोद्रेकात्तदभिमानि महाकालीरूपं जातमस्ति । तस्य ध्यानं सा
 भिन्नाञ्जनसङ्काशेति । अस्याश्च काल्या बहिस्तमोगुणवत्त्वेऽप्यन्तः सत्त्व-
 रजोगुणावपि विद्येते । एवं सर्वस्य गुणत्रयात्मकतास्ति पश्चात्सत्त्वगुणोद्रे-
 केण तदभिमानिसरस्वतीरूपमभवत्तस्य ध्यानमक्षमालाङ्कुशधरेति । इद-
 मप्यन्तस्तमोरजोगुणवत् । रजोगुणोद्रेकस्यत्वभिमानि स्वयं महालक्ष्मी-
 रूपमेवाभवत्तस्य महालक्ष्मीध्यानमेव ध्यानम् । पश्चान्मधुकैटभवधार्यं
 यन्महाकाल्याः सकाशात्कालीरूपमभवत्तस्य ध्यानं दशवक्त्रा दशभुजेति ।
 तथा महिषवधार्यं यन्महालक्ष्म्याः सकाशाद्रूपमभवत्तस्य ध्यानं श्वेतानना

नीलभुजिति । तथा शुम्भवधार्थं महासरस्वतीरूपमभवत्तस्य ध्यानं दधौ
चाष्टभुजा बाणं मुसलेत्यादि । तथा च मूलप्रकृतिध्यानसहितानि सप्त-
ध्यानान्यभवन् तानि यथास्थाने ध्यात्वा नवकोष्ठे यन्त्रे तासामेव सप्त-
शक्तीनां पूजासंकल्पादिकं तत्तन्नाम्ना कार्यं सर्वं चेदं रहस्यद्वये स्पष्टम् ।
अयं सम्प्रदाय इदानीमुच्छिन्नोऽपि श्रीरहस्योक्तत्वात्सर्वबुद्धिमद्भिरालो-
च्यादरणीयइति । अथासां रहस्योक्तनित्यपूजाप्रकारो लिख्यते । यथा ।
महालक्ष्मीर्यदापूज्या महाकालीसरस्वती । दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो
मिथुनत्रयम् । विरिञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रगौर्या च दक्षिणे । वामे लक्ष्म्या
हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् । अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशा-
नना । दक्षिणेष्वष्टभुजालक्ष्मीमंहतीति समर्चयेदिति । अत्रायंप्रकारः ।
स्वर्णरजतताम्रभूजाद्यन्यतमपीठे स्थण्डिले वा नवकोष्ठं यन्त्रं विधाय
तत्र प्रथमपंक्तौ ईशानकोणमारभ्याग्नि कोणपर्यन्तं रुद्रगौर्या विरिञ्चि-
सरस्वत्यौ विष्णुलक्ष्म्यौ पूजयेत् । मध्यपंक्तौ क्रमेण उत्तरकोष्ठादि दक्षि-
णान्तं महाकाली महालक्ष्मी महासरस्वतीत्रयम् । तृतीयपंक्तौ वायु-
कोणान्निर्ऋतिकोणपर्यन्तं दशाननाष्टादशभुजाष्टभुजाः पूजयेत् । तत्र-
वाग्भवबीजान्तेमहाकाल्यैनमइतिमन्त्रेण महाकालीद्वयस्यपूजनम् । माया-
बीजान्ते महालक्ष्म्यैनम इतिमन्त्रेण महालक्ष्मीद्वयस्य पूजनम् । माया-
बीजेनैव तुरीयमहालक्ष्म्याःपूजनम् । कामबीजान्ते महासरस्वत्यैनमइति
मन्त्रेण सरस्वतीद्वयस्य यथा सम्भवोपचारैःपूजनमिति विवेकः । अस्यां
च पूजायां महालक्ष्म्यास्तृतीयपंक्तिमध्यकोष्ठस्थाया दक्षिणभागे सिंहं
वामे महिषं च पूजयेत् । इत्थं पूजां समाप्य मूलभूतां तुरीयां महालक्ष्मीं
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीमित्यादिभिश्चरित्र त्रयोक्तैःस्तोत्रैस्त्रिभिः स्तुवीत ।
तदनन्तरं पूर्वोक्तक्रमेण कवचादिपूर्वकं मालामन्त्रं जपेदिति नित्यः
पौरश्चरणिको वा पाठक्रमः । काम्ये तु तत्तत्कामनाभेदेन यदा तत्तच्च-
रित्रान्तर्गतैकैकस्यमन्त्रस्योपासनं क्रियते । यथा । ज्ञानिनामपि चेतांसि
दुर्गं स्मृता सर्वाबाधा प्रशमनमित्यादि । तत्र प्रथमं पूर्वोक्तां पूजां समाप्य
पुनस्तत्तन्मन्त्रघटिततत्तच्चरित्रस्य तां तां देवतां सम्पूज्य तस्यास्तस्या
निकटे कालमृत्यू च सम्पूज्य तत्तच्चरित्रगतस्तोत्रेण । यथा । विश्वेश्वरीं
जगद्धात्रीमिति । शक्रादयः सुरगणा इति । नमो देव्यै महादेव्यै इत्यादि-
केन तां तां देवतां स्तुत्वा तत्तन्मन्त्रं जपेदिति काम्ये विशेषः । यच्च
सप्तशतीरहस्ये । नमोदेव्या इतिस्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् । अवतार-
त्रयाच्चर्यां स्तोत्रमन्वास्तदाश्रया इति । अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या

नराधिप । दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा । कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये इति । अस्मिन्विषये एकैकस्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकं तु यदि नोपलभ्यते तदा । समन्त्रोयच्चरित्रस्थस्तच्चरित्र-
ऋष्यादिकमेव ग्राह्यमिति । अयपूजानन्तरं कवचाङ्गलकीलकानां पाठ-
स्यावश्यकत्वम् । यच्च कात्यायनीतन्त्रे । अङ्गहीनो यथा देही सर्वं कर्मसु
न क्षमः । अङ्गषट्कविहीना तु तथा सप्तशतीस्तुतिः । तस्मादेतत्पठित्वैव
जपेत्सप्तशतीं पराम् । अन्यथा शापमाप्नोति हानिं चैव पदे पदे । रावणा-
द्याःस्तोत्रमेतदङ्गहीनं निषेविरे । हता रामेण ते यस्मान्नाङ्गहीनं पठे-
त्ततः । अङ्गषट्कं कवचकीलाङ्गलं रहस्यत्रय सहितमिति ।

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे पूर्वभागे सरयूप्रसादसंगृहीते
उपासनाक्रमो नाम प्रथमो विश्रामः ॥ १ ॥

अथाङ्गषट्कारम्भः । तत्रादौ कवचं सविवरणं संगृह्यते ।
तत्र कवचांशे ब्रह्माणं प्रति मार्कण्डेयप्रश्नः ।

मार्कण्डेय उवाच :

यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।

यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ १ ॥

यदिति । लोके यत्परममुत्कृष्टं गुह्यं रहस्यमस्ति तन्मे ब्रूहि तत्किं
ब्रह्मरूपं । नेत्याह : सर्वरक्षाकरं येन सर्वेषामपि रक्षा भवति । पामर-
प्रभृतीनामपि तादृशमित्यर्थः । ननु लोके अयान्यपि कवचानि सन्ति
किमिति प्रश्नेनेति सत्यम् । सन्ति तथापि यद्भवता कस्यचित् कस्यापि
नाख्यातं निधिवुद्ध्या स्थापितमस्ति । तदित्यर्थः । तेन च निःसंशयमेव
रक्षणं स्यादिति भावः । अन्यथा निधिवुद्ध्या तस्य रक्षणं निरर्थकं
स्यादिति । ननु किमत्युत्कृष्टं वस्तु मया देयमिति चेत्तत्राह : हे पितामह
स्वसन्ततिरक्षणार्थं पितामहेनावश्यं देयमित्यर्थः ॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच :

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।

देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥ २ ॥

अस्तीति । हे विप्र यत्त्वया पृष्ठं तादृशं गुह्यतमं अतिगोप्यं पुण्यं सर्व-

भूतानामुपकारकं रक्षणायभीष्टदं देव्याः कवचं अस्ति तन्महामुने शृणुष्व
महामुने चेति सम्बोधनं लोकोपकारार्थं प्रवृत्तत्वादिति ॥ २ ॥

तत्र सा कवचाधिष्ठात्री नवमूर्त्यात्मिका ध्येयेत्यभिप्रायेण
तासां मूर्तीनां नामान्याह :

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।

तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥ ३ ॥

प्रथममिति । नामज्ञाने जाते तद्वाच्याकारस्य प्रसिद्धत्वादेव ज्ञानं
भविष्यतीति भावः । सर्वोत्तरेष्वपि भगवती शैलेन भक्तेन हिमाचले-
नातितपश्चर्यायां प्रार्थिता सती कारुण्यवशादतिनीचमपि पुत्रीत्वं स्वीकृत-
वतीत्यहोभक्तवात्सल्यं कियद्वर्णनीयं भगवत्या इति कूर्मपुराणे प्रसिद्धम् ।
ब्रह्मचारिणीति । ब्रह्मसच्चिदानन्दरूपं तन्चारयितुं प्रापयितुं शीलमस्याः
सा ब्रह्मचारिणी ब्रह्मरूपप्रदेत्यर्थः । चन्द्रघण्टेति । चन्द्रो हस्तगतायां
घण्टायां यस्याः । चन्द्रवन्निर्मलघण्टा इति वा । आह्लादकारिणीदेवी
चन्द्रघण्टेति कीर्त्यते इति रहस्यागमोक्तेः । चन्द्रं घण्टयति प्रतिवादितया
भाषते स्वस्याह्लादकारित्वाभिमानेनेति चन्द्रघण्टा चन्द्रापेक्षयाप्यति-
शयेन लावण्यवतीत्यर्थः । पटपुटेति दण्डकपठितस्य चुरादेर्घटिधातो-
र्भाषार्थस्य पचाद्यचि रूपम् । चन्द्रस्य घण्टा चन्द्रघण्टेति वा । कूष्माण्डेति ।
कुत्सित ऊष्मा सन्तापस्तापत्रयरूपो यस्मिन्संसारे स संसारोऽण्डे मांस-
पेश्यामुदररूपायां यस्याः सा त्रिविधतापयुक्तसंसारभक्षणकर्त्रीत्यर्थः ।
अण्डः पेशी च मुष्कञ्चेति चेदिती ॥ ३ ॥

पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।

सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥ ४ ॥

पञ्चममिति । सनत्कुमारस्य भगवतीवीर्यादुद्धूतस्य स्कन्द इति संज्ञा ।
भगवान्सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षत इति छान्दोग्यश्रुतेः तथा च ।
ज्ञानिभिरपि यदुदरे जन्माभिलषणीयमित्यतिशुद्धेत्यर्थः । कात्यायनीति ।
देवकार्यार्थं कात्यायनाश्रमे आविर्भूता तेन कन्यात्वेन स्वीकृतेति कात्या-
यनी नाम भगवत्याः अस्या निरन्तरं कुमारीत्वेन पत्यनधीनतया
स्वातन्त्र्यम् । कालरात्रीति । सर्वमारकस्य कालस्य रात्रीर्नाशिकेत्यर्थः
प्रलये कालस्यापि नाशात् । कृदिकारादक्तिन इति ङीप् । महागौरीति ।
इयं च महामानिनी नर्मोक्त्या शिवेन कालीत्युक्ते तपसा गौरवर्णस्य

सम्पादनत्वादितत्कालीपुराणे स्पष्टम् ॥ ४ ॥

नवमं सिद्धिदा प्रोक्ता नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।

उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥ ५ ॥

नवममिति सिद्धिदा । मोक्षदेत्यर्थः । इतीतिशेषः । सिद्धिदेति नवम-
मित्यन्वयः । नवदुर्गा इति योगिनः । कायव्यूहवदेकस्या एव दुर्गाया एते
एव नव भेदा ये शास्त्रे ध्येयत्वेन प्रोक्तास्ते मया कीर्तिता इत्यर्थः । अत
एव देव्याः कवचमित्येकवचनं सङ्गच्छते । नाम्नां स्वकल्पितत्वशङ्काव्यु-
दासार्थमाह—उक्तान्येतानीति । महात्मना सर्वज्ञेन ब्रह्मणैव वेदेनैव
एतान्युक्तानीत्यर्थः ॥ ५ ॥

इत्थं कवचपाठे ध्येयं देवतारस्वरूपं प्रदर्श्य तत्फले अविश्वासो

नैव कर्त्तव्य इति कैमुतिकन्यायेनाह :

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।

विषमे दुर्गमे चैव भयार्त्ताः शरणं गताः ॥ ६ ॥

अग्निनेति । योऽग्निना दह्यमानो रणे शत्रुमध्ये च गतः सन् शरणं
गत इतिशेषः । अथ ये विषमे दुर्गमे चातिसङ्कटे भयार्त्ताः भयपीडिताः
सन्तः शरणं गताः ॥ ६ ॥

तेषां तस्य च भक्तिरहितेन स्मरणमात्रेणापि तत्फलं

भयादिकं न भवतीत्याह :

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसङ्कटे ।

नापदं तस्य पश्यन्ति सर्वदुःखक्षयङ्करी ॥ ७ ॥

न तेषामिति । एतेषां नाम्नां मध्ये यस्य कस्यापि नाम्नो ये शरणं
गताः तदाश्रयं प्राप्ताः तेषामशुभममङ्गलं न जायते मङ्गलमेव भव-
तीत्यर्थः । ननु कुत्राशुभं न जायते तत्राह—रणे संग्रामे यत्सङ्कटं तस्मिन् ।
नापदमिति । येनापत्तेनापत्ताशाय एताः पूर्वोक्ताः शैलपुत्र्यादयः स्मृताः
तस्यापदं ता न पश्यन्ति । किन्त्वापदं दूरीकुर्वन्तीत्यर्थः । पुनः सर्वदुःख-
क्षयङ्करी तासामेकापि स्मृतेति भावः ॥ ७ ॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषामृद्धिः प्रजायते ।

यैस्त्विति । यैस्तु भक्त्या स्मृता भवति तेषां पूर्वोक्तं फलम् ऋद्धिः
धर्मार्थकाममोक्षाणां च भवतीत्यर्थः ।

भक्त्युत्पादनार्थमिदानीं देव्या अतिवात्सल्यं दर्शयति :

प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ॥ ८ ॥

ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ।

माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ॥ ९ ॥

ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ।

प्रेतसंस्थेत्यादि सप्तमातृणां वर्णनं श्लोकद्वयेन स्पष्टमिति ॥ ८।९ ॥

नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥ १० ॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।

नानेति । वक्ष्यमाणा देव्यः दृश्यन्त इति सप्तमातृभिन्नायाश्च देव्यस्ता अपि भक्तरक्षणार्थं क्रोधसमाकुला रथमारूढा दृश्यन्ते देवादिभिरिति शेषः ॥ १० ॥

तासामायुधान्याह :

शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥ ११ ॥

खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।

कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गायुधमनुत्तमम् ॥ १२ ॥

शङ्खमिति । शं मुखं खनति अवदारयति शत्रूणामिति । यद्वा । शं मुखं खनति ददाति स्वनेन स्वपक्षाणामिति । खनु अवदारणे खनदाने चानयो रूपम् । चक्रमिति निष्पिबति शत्रूनि चक्रम् । अत्यग्निमति सूर्यं च चकत्येव दिवानिशम् । प्रतिघातयते शत्रुश्चक्रं तेन प्रकीर्तितमिति । गदति रुजति शत्रूनि गदा । शक्नोति शत्रुं हन्तुं समर्था भवतीति शक्तिः । हलति विदारयति शत्रूनि हलम् । हल विलेखने । मुस्यते खण्डयते शत्रूनि मुसलं मुसखण्डने तदेवायुधमिति । खे अन्तरिक्षे अटति गच्छति रक्षार्थमिति खेटकम् । तौ तितुः सौत्रोगतौ । विच् । म्रियते । मृङ्प्राणत्यागे अन्तर्भावितण्यर्थः । अच्-तौश्चासौ मरश्च । तौगन्ता म्रियते अनेन वा पुंसीति घः तोमरं । परान् शत्रून् शृणातीति परशुः शृङ्गसायाम् । पाशति बध्नाति शत्रूनि पाशः पाशबन्धने ॥ ११ ॥ कुणति शब्दं करोति शत्रुविद्धोजनेनेति कुन्तः । स चासावायुधं च तत् । त्रयः शूला यस्मिन्निति त्रिशूलं । शृङ्गाभ्यां निमित्तं शार्ङ्गम् । न उत्तमं यस्मात्तदनुत्तमं शार्ङ्गं च तदेवायुधमनुत्तमं चेति ॥ १२ ॥

ताः सप्त मातरः शङ्खचक्रमित्याद्यायुधानि किमर्थमित्यं धारयन्ती-
त्याह ।

दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।

धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥ १३ ॥

दैत्यानामिति । दैत्यानां देहनाशार्थं भक्तानामभयार्थं देवानां च हितार्थमभिलषितप्राप्तये चेत्यर्थः । अयं भावः अप्रायिता अप्येता महत्यो देवताः जगद्रक्षणे वत्सलतयैव प्रवृत्ताः मातृवत्ताः कुतो न मन्दभाग्यैः स्वरक्षणार्थं प्रार्थ्यन्त इति ॥ १३ ॥

कञ्चनपाठस्यादाविमं मन्त्रं पठित्वा पश्चात्कञ्चं पठनीयमित्याशयेन स्वरक्षार्थं देव्यः प्रार्थनीया इति देवीं सम्बोधयन्प्रार्थयेदित्याह :

महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।

त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ॥ १४ ॥

महाबले इति । महद्वलं सायाशक्तिरूपं यस्याः सा । महानुत्साहो जगद्रक्षणे यस्याः साः । महाभयं मृत्युरूपं तस्य ज्ञानदानेन नाशयितुं शीलमस्याः । दीव्यति क्रीडति द्योतते रोचते सर्वत्रेति देवी । दुष्प्रेक्ष्ये । दुःखेन बहुतप आदिकृच्छ्रेण प्रेक्ष्यते अवलोक्यते तद्भूतैरिति । दुर्दर्शनीयेन सदृशे तिष्ठति रूपमस्येति श्रुतेः । शत्रूणां कामक्रोधादीनां विपक्षाणां वा भयं वर्द्धयतीति । तत्तत्सम्बुद्धौ रूपाणि । दुर्गे त्वमेतादृशगुणोपेता त्राहि मां पालयेत्यर्थः ॥ १४ ॥

प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेयामग्निदेवता ।

दक्षिणे रक्ष वाराही नैऋत्यां खड्गधारिणी ॥ १५ ॥

पूर्वमात्मरक्षाप्रार्थनानन्तरं दिग्प्रक्षामाह : प्राच्यामिति । प्राच्यां दिशि । स्थिता ऐन्द्री मां रक्षत्वित्यर्थः । प्राच्यां स्थितं मामिति वा एवमुत्तरत्रापि । शक्तिशक्तिमतो रभेदादग्निरूपादेवताग्निशक्तिरित्यर्थः । अत्र रक्षत्वित्यनुवृत्तिः । आग्नेयामग्निदिशि । वाराही वरानाहन्तीति वराहो यमः आर्षः प्रयोगः तस्य शक्तिर्वाराही । अणन्तान्छीप् । यमशक्तिरित्यर्थः दशदिक्पालप्रकरणात् । सप्तमात्रन्तर्गता वाराहीति वा । हे वाराहि दक्षिणदेशे स्थिता त्वं मां रक्षेत्यर्थः । स्थितं मामिति वा । खड्गधारिणी निऋतिशक्तिः नैऋत्यां दिशि रक्षत्वित्यर्थः ॥ १५ ॥

प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद्वायव्यां मृगवाहिनी ।

रक्षेदुदीच्यां कौमारी ईशान्यां शूलधारिणी ॥ १६ ॥

प्रतीच्यामिति । रक्षत्वित्यस्य मध्ये विच्छेदादध्याहारः कर्तव्यः ।
प्रतीच्यां दिशि वारुणी वरुणशक्तिः रक्षेत् रक्षां कुर्यात् आशिषिविधि-
सम्भावना । आर्षत्वात् रक्षत्वित्यर्थः । मृगवाहिनी वायुदेवताया मृग-
वाहनत्वाद्वायुशक्तिरित्यर्थः । रक्षेदित्यनुवृत्तिः । कौमारी कुत्सितो मारो
मदो यस्य स कुमारः कुबेरः । तस्येयं शक्तिः कौमारी दिक्पालप्रकरणात् ।
यद्यपि कौबेर्यारक्षणस्थानमग्रे वक्ष्यमाणमस्ति तथाप्येकस्याएव स्थानद्वय-
रक्षकत्वे बाधकाभावः । सप्तमात्रन्तर्गतावा । शूलधारिणी ईशानशक्ति-
रीशान्यां दिशि रक्षत्वित्यर्थः ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा ।

एवं दशदिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ॥ १७ ॥

ऊर्ध्वमिति । हे ब्रह्माणि ब्रह्माशक्ते ऊर्ध्वं स्थिता भवती मां रक्षेदि-
त्यर्थः । मे ऊर्ध्वं भागमिति वा । ब्रह्माणमानयति जीवयतीति कर्मण्यणि-
रूपम् । तथा अधस्ताद्वैष्णवी विष्णुशक्तिः अधःस्थाने रक्षतु । अव्ययत्वा-
त्सार्वभौतिकस्तसिः । दशदिक्पालदेवतावदेव मे इति शेषः । एवं
पूर्वोक्तप्रकारेण शववाहना चामुण्डा दश दिशः दशदिक्पालदिशः मे
मत्सम्बन्धिनी रक्षेदिति पर्यवसितोऽर्थः । अन्यथा केवलदिशां रक्षणे प्रयो-
जनाभाव इति ॥ १७ ॥

दश दिक्षु रक्षार्थं देवीं सम्प्रार्थ्येदानीं स्वसमीपचतुर्भागेषु देवीं स्थातुं
प्रार्थयति ।

जया मे चाग्रतः स्थातु विजया स्थातु पृष्ठतः ।

अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ॥ १८ ॥

जयेति । जयाशक्तिः मत्संरक्षणार्थं अग्रतोऽग्रे स्थातु तिष्ठतु आर्षः
प्रयोगः । अन्यत्स्पष्टम् जयति रिपून्यस्याः प्रसादादिति जया । विशेषेण
जयतीति पूर्ववत् । न केनापि जिता अजिता । न कदाचित्पराभवो
भङ्गोऽस्याः साऽपराजिता । अपरैः शत्रुभिर्जतुमशक्येत्यर्थः ॥ १८ ॥

एवं परितो रक्षार्थं देवीं प्रार्थ्येदानीं शिखाप्रभृतिसर्वाङ्गरक्षार्थं देवीं
प्रार्थयति ।

शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ।

मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद्यशस्विनी ॥ १९ ॥

शिखामिति उद्योतिनी उद्योतयति प्रकाशयति लोकान्सर्वेभ्यर्णेत्यु-

द्व्योतिनी नामिका देवी मम शिखायां स्थिता सती मच्छिन्नां रक्षेदिति प्रत्यक्षयवं सर्वत्र योजनीयम् । अवति रक्षति भक्तानित्युमा । वा उमेति तपसोनिषेधकत्वात् । यच्च । उमेति मात्रा तपसो निषिध्येति वा । उः ईश्वरः उकारः शङ्करः प्रोक्त इति कोशात् तं माति मानयति पति-
त्वेनेत्युमा । सा मूर्ध्नि व्यवस्थिता सती मूर्ध्नि रक्षेदित्यर्थः । एवं यथा-
योग्यं सर्वत्राध्याहार्यम् । मालाधरी मुण्डमालाधरी ललाटे स्थिता तं
रक्षेदिति । यशो विद्यते यस्याः सा भ्रुवौ भ्रूद्वयं रक्षेदिति ॥ १९ ॥

त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ।

शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोद्धारवासिनी ॥ २० ॥

त्रिनेत्रेति । त्रीणि नेत्राणि यस्याः सा भ्रुवोर्मध्ये स्थिता तं रक्षतु ।
यमाः द्वादशयोगशास्त्रप्रसिद्धा घण्टावद्घोषरूपेण प्राप्तये यस्याः सा ।
नासिके नासापुटे इत्यर्थः । उत्तरत्र नासिकाशब्देन नाशादण्डइति ।
शङ्खोऽस्या अस्तीति सा चक्षुषोर्नययोर्मध्ये रक्षतु । श्रोत्रयोद्धारवासिनी
रक्षेदिति । द्वाशब्दश्छिद्रोपलक्षणस्तस्मिन्वायुरूपेण वासो विद्यतेऽस्याः
॥ २० ॥

कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ।

नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ॥ २१ ॥

कपोलाविति । कलयति पीडयति दैत्यानि । वा कलयति जना-
नानाकर्मसु प्रेरयतीति काली । सा एव कालिका कपोलौ रक्षेत् । कर्ण-
योर्मूले शं सुखं करोतीति शङ्करः तस्येयं शक्तिः शाङ्करी रक्षेदिति ।
सुष्टुगन्धः शरीरे यस्याः सा । नासिकायां रक्षेत् । चर्च्यते पूज्यते स्वका-
माप्तये जनैरिति चर्चिका चर्चपूजने । उत्तरोष्ठे ऊर्वोष्ठभागे तस्मिन्नक्षतु
॥ २१ ॥

अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ।

दन्ताग्रक्षतु कौमारी कण्ठमध्ये च चण्डिका ॥ २२ ॥

अधर इति । अमृतकला षोडशांशो यस्याः सा । यद्वा । अमृतं कल-
यति संख्यापयति भक्तपालनार्थमिति । अमृतकला अधरे अधरोष्ठे
रक्षतु । सरः प्रसरणं विद्यते यस्याः सा सरस्वती जिह्वायां रक्षतु । कुईष-
न्मारः कुमारः स्वामिकार्तिकेयः । वा कौ पृथिव्यां मारयति जनानिति
कौमारी । अलुक् समासः । सा दन्ताग्रक्षतु । चण्डयति कुप्यति दैत्या-
निति चण्डिका कण्ठमध्ये रक्षतु ॥ २२ ॥

घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ।

कामाक्षी चिबुकं रक्षेद्वाचं मे सर्वमङ्गला ॥ २३ ॥

घण्टिकामिति । चित्राद्भुता अद्भुतगुणवती घण्टा यस्याः सा । अद्भुतत्वे हेतुः । स्वनेनैव भक्ताभक्तविवर्द्धिनी घातिनी च सा चित्रघण्टा घण्टिकां गलशुण्डिकां रक्षेदिति । मीयते जनैरिति माया महती चासौ माया चेति सा तालुके तालुदेशे रक्षेत् । कामाक्षी कामानि कमनीयान्यक्षाणीन्द्रियाणि यस्याः सा कामरूपपीठाधिष्ठात्री चिबुकं अधराधोभागं रक्षेत् । सर्वेषां मङ्गलं कल्याणं यस्याः सा सर्वमङ्गला वाचं वाणीं रक्षेदिति ॥ २३ ॥

ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्दरी ।

नीलग्रीवा बहिष्कण्ठे नलिकां नलकूबरी ॥ २४ ॥

ग्रीवायामिति । भद्रं कल्याणं कलयति प्रेरयति भक्तेष्विति सा । यद्वा भद्रा चासौ कालीचेति ग्रीवायां रक्षेत् । धनुर्धारयतीति धनुर्दरी पृष्ठवंशे रक्षेत् । नीला ग्रीवा यस्याः सा कण्ठस्य बहिर्भागो बहिष्कण्ठः तस्मिन्नक्षेत् । नलकूबरः कुबेरपुत्रस्तस्मैयं शक्तिः सा नलिकां कण्ठनालं रक्षेत् । णित्वाभाव आर्षः ॥ २४ ॥

खड्गधारिण्युभौ स्कन्धौ बाहु मे वज्रधारिणी ।

हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चांगुलीषु च ॥ २५ ॥

खड्गधारिणीति । खड्गन्धारयतीति सा उभौ स्कन्धौ रक्षेत् । स्कन्धमारभ्य कूर्परपर्यन्तभागो बाहुः । तौ वज्रधारिणी इन्द्रशक्तिः रक्षेत् । कूर्परमारभ्यांगुलिपर्यन्तो हस्तः । तयोर्दण्डिनी लघुडधरा रक्षेत् । अम्बते जनयति सर्वमित्यम्बिका । वा अम्बति गच्छति जानाति सर्वमित्यम्बिका । अंगुलीषु रक्षेत् । अम्बगतौ गत्यर्थस्य धातोर्ज्ञानार्थत्वादिति ॥ २५ ॥

नखाजू शूलेश्वरी रक्षेत्कक्षौ रक्षेन्नलेश्वरी ।

स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनःशोकविनाशिनी ॥ २६ ॥

नखानिति । शूलेश्वरी शूलशक्तिः शूलिनीत्यागमप्रसिद्धा नखान्करयोर्नखात्रक्षेत् । अनलोऽग्निः तस्येश्वरी कक्षौ रक्षेत् । अत्राकाराभावः ॥ २६ ॥

आर्षः । बाहुमूले उभैकक्षावित्यमरः । महतां त्रिगुणजातानां देवी द्योत-
नशीलेति महादेवीतिविशेषणम् । मनसः शोकं विशेषेण नाशयतीति
मनःशोकविनाशिनी नामिका शक्तिः स्तनी रक्षेदिति ॥ २६ ॥

हृदयं ललिता देवी ह्युदरे शूलधारिणी ।

नाभिं च कामिनी रक्षेद्गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ॥ २७ ॥

हृदयमिति । ललति विलसति संसारे चित्तिरूपेण सा ललिता देवी
प्रकाशमाना हृदयं रक्षेत् । शूलं धारयितुं शीलमस्या इति उदरे रक्षेत् ।
कामोऽभिलाषो विद्यते यस्याभक्तस्थापामिति कामिनी । यद्वा । कमति
दीव्यति प्रकाशते लोकेष्विति कामिनी । कमुकान्तो । सा नाभिं रक्षेत् ।
गुह्येश्वरी नेपालपीठाधिष्ठात्री गुह्यं गुदमेढ्रान्तरालं गुह्येन्द्रियं रक्षेत् । वा
गुह्यं गोप्यतया क्रियमाणं रहस्यं मन्त्रमिति ॥ २७ ॥

भूतनाथा च मेढूं च गुदं महिषवाहिनी ।

कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ॥ २८ ॥

भूतनाथेति । भूतानामाकाशादिपञ्चानां नाथा उत्पत्तिविलयाधिष्ठा-
नत्वात्स्वामिनी सा मेढूं शिवं रक्षेत् । महिषं वोढुं शीलं यस्याः सा गुदे
अपानद्वारे रक्षेत् । भगमैश्वर्यषट्कं विद्यते यस्याः सा भगवती । यच्च ।
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामगतिगतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो
भगवानिति तस्येयं शक्तिः । षडैश्वर्यन्तु । ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य
यशसः श्रियः । वैराग्यस्य च मोक्षस्य षण्णां भग इतीर्यते । सा कट्यां
कटिदेशे रक्षेत् । विन्ध्ये पर्वते वसितुं निवासं कर्तुं शीलं यस्याः सा
जानुनी रक्षेदिति ॥ २८ ॥

जंघे महाबला रक्षेज्जानुमध्ये विनायकी ।

गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे मितौजसी ॥ २९ ॥

जघेति । महद्वलं शिवादिष्टथिव्यंतं षट्त्रिंशत्तत्त्वव्यूहो यस्याः सा
जंघे रक्षेत् । आगमशास्त्रप्रसिद्धा सा महाबलेत्यर्थः । विशेषेण नयति
प्रापयति नीतिमार्गं जनानिति विनायकी । यद्वा । वीना पक्षिणां नायको
गरुडस्तस्येयं शक्तिर्विनायकी । जानुमध्ये रक्षेत् । नरसिंहस्येयं शक्ति-
र्नारसिंही गुल्फयोः रक्षेत् । मितं प्रमितं कार्यरूपमोजो विद्यते यस्याः सा
पादपृष्ठे रक्षेदिति ॥ २९ ॥

पादांगुलीः श्रीधरी च पादाधस्तलवासिनी ।

नखान् दंष्ट्रा कराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ॥ ३० ॥

पादांगुलीरिति । श्रियं शोभां धारयति निजाङ्गेष्विति श्रीधरी सा पादयोरंगुलीरक्षेत् । पादाधइति भिन्नं पदम् तलशब्दः पातालोपलक्षकः तत्र वसितुं शीलमस्याः सा पादाधो रक्षेत् । दंष्ट्राभिः कराली भयानका नखान्पादनखान्नक्षतु । ऊर्ध्वं केशाः विद्यन्ते यस्याः सा केशान्नक्षेदिति ॥ ३० ॥

रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ।

रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ॥ ३१ ॥

रोमकूपेष्विति । कौबेरी कुबेरशक्तिः रोम्णां कूपेषु गर्तषु रक्षेत् तथा वागीश्वरी वाचामीश्वरी त्वचमङ्गचर्मरक्षेत् । पार्वती पर्वतो हिमवान् तस्य पुत्री रक्तं च मज्जा च वसा च मांसं च तानि । अस्थीनि च मेदांसि च तानि पार्वती रक्षेत् ॥ ३१ ॥

अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी ।

पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा ॥ ३२ ॥

अन्त्राणीति । अम् धातोस्त्रेरनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः अन्त्राणि । कालरात्रिः कालोपलक्षणा रात्र्यभिमानिनी देवता रक्षेत् । पित्तं पित्तधातुं मुकुटेश्वरी रक्षेत् । पद्मकोशे पद्मानां मूलाधारादिसहस्रारान्तानां कोशे समूहे पद्मावती अर्हद्दर्शनप्रसिद्धा रक्षेत् । चूडामणिवत्सर्वोपरि-प्रकाशमाना कफे कफधातुविशेषे रक्षतीति । चूडामणिनाम्नी तारका-सुरवधे प्रसिद्धेति वा ॥ ३२ ॥

ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ।

शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ॥ ३३ ॥

ज्वालामुक्तीति । नखज्वालां नखनिष्ठं तेजः ज्वाला वह्निर्मुखे यस्याः सा रक्षेत् । न भिद्यते शस्त्रविशेषेयां सा अभेद्या सर्वे समस्ताश्च ते सन्ध-यश्च शरीरस्य तेषु सर्वसन्धिषु स्थिता सती सर्वसन्धीन्नक्षेत् । हे ब्रह्माणि भवती मे शुक्रं रक्षेत् । छत्रेश्वरी छायां देहप्रतिबिम्बं रक्षेदिति ॥ ३३ ॥

अहङ्कारं मनोबुद्धिं रक्ष मे धर्मचारिणि ।

प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानमेव च ॥ ३४ ॥

अहङ्कारमिति । धर्मं वर्णाश्रमात्मकं चरितुमाचरितुं ज्ञातुं वा शीलं
यस्याः सा चरगतिभक्षणयोः । हे धर्मचारिणि अत्र त्वमित्यध्याहारः
रक्षेति मध्यमपुरुषात् । अहङ्कारादित्रयं चित्तस्था त्वमत्र रक्षेति भावः
तथा पञ्चप्राणानपि रक्षेति । चकारः पादपूरणे ॥ ३४ ॥

यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च सदा रक्षतु चक्रिणी ।

गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके ॥ ३५ ॥

यश इति । चक्रिणी चक्रधरा सदा सर्वस्मिन्काले यशः कीर्तिं लक्ष्मीं
च रक्षतु । हे इन्द्राणि भवती मे गोत्रं रक्षेदिति । मे पशून् चतुष्पदान्
हे चण्डिके त्वं रक्षेति ॥ ३५ ॥

पुत्रात्रक्षेन्महालक्ष्मीभार्या रक्षतु भैरवी ।

मार्गं क्षेमङ्करी रक्षेद्विजया सर्वतः स्थिता ॥ ३६ ॥

पुत्रानिति । महालक्ष्मीः पुत्रात्रक्षेत् । भैरवी भार्या रक्षतु । क्षेमङ्करी
मार्गं रक्षेत् । सर्वतः सर्वस्माद्भूयाद्विजया स्थिता सती सर्वव्यापिनी
विजया रक्षेदिति ॥ ३६ ॥

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु ।

तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥ ३७ ॥

अथ पितामहः फलस्तुतिं वक्तुमधिकारिणं प्रथममुपदिशति ।

रक्षाहीनमिति । यत्स्थानं रक्षया हीनं भवति कुत इति चेत्कवचेन
तु वर्जितं कवचे यस्य स्थानस्योहो न कृतस्तत्सर्वं हे देवि मे मम त्वं
रक्ष यतस्त्वं जयन्ती सर्वोत्कृष्टा पापनाशिनी असि ॥ ३७ ॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।

पदमेकमिति । यदि आत्मनः आत्मा शरीरं तत्सम्बन्धि शुभं
कल्याणमिच्छेत्तदा पुरुषः कवचेनरहितमेकं पदं न गच्छेत् । क्षणमात्र-
मपि देवीस्मरणं विना न क्षपणीयमिति तात्पर्यम् । यच्च देवीपुराणे ।
स्वर्पस्तिष्ठन्ब्रजन्मार्गे प्रलपन्भोजने रतः । कीर्तयन्सततं देवीं स वै मुच्येत
बन्धनादिति ।

इत्युपदिश्य फलं कथयति

कवचोनावृतो नित्यं यत्र यत्र हि गच्छति ॥ ३८ ॥

तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सर्वकामिकः ।

कवचेनावृतः कृतकवचरक्षः यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्र अर्थलाभः ।
मनोरथाप्तिः विजयः व्यवहारे सर्वाः कामनाः यस्मिन्नेवं विधः ॥ ३८ ॥

यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ३९ ॥

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ।

निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ॥ ४० ॥

त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ।

यंयमिति श्लोकाभ्यामन्वयः । पुमानावृतकवचः एवं यं यं कामं
वाञ्छितं चिन्तयते तं तं निश्चितं प्राप्नोति ॥ ३९ ॥ पुनः परमैश्वर्य-
मष्टसिद्धिरूपम् । परमातिशायि वा । अतुलं परतुलनाशून्यं भूतले ।
अनेनास्मिन् जन्मन्येव प्राप्स्यते इतिभावः । निर्भयः रिपुबाधारहितः ।
संग्रामेषु परैः शत्रुभिरजितोभवतीत्यर्थः ॥ ४० ॥ पुनः कृतकवचरक्षः
त्रैलोक्ये त्रयाणां लोकानां समाहारः तत्र पूज्यो भवतीति ।

इदन्तु देव्याः कवचं देवानामति दुर्लभम् ॥ ४१ ॥

इदं पूर्वोक्तरूपं देव्याः चिद्रूपविलासिन्याः कवचं सर्वाङ्गरक्षकं पुनः
देवानां सर्वेषां देवानामपि दुर्लभमसुलभमिति ॥ ४१ ॥

यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ।

दैवीकला भवेत्तस्य त्रैलोक्ये चापराजितः ॥ ४२ ॥

यः पठेदिति । प्रयतः नियमान्वितः नित्यं व्यवधानशून्यमव्यवहित-
मित्यर्थः । त्रिसन्ध्यं प्रातर्मध्यसायमिति । श्रद्धाभरितान्तरः एवं यः तस्य
दैवी कला देवसम्पत्तिर्भवेत् । च पुनः अपराजितोऽपि भवेत् कस्मिन्
त्रैलोक्ये अव्याहृतैश्वर्यगतिः स्यादिति भावः ॥ ४२ ॥

जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ॥ ४३ ॥

जीवेदिति । कवचेनावृतः कृतकवचरक्षः पुमान् अपमृत्युवर्जितः साग्रं
शतवर्षं विशोत्तरं शतवर्षं जीवेत् । लूता लुनन्ति छिन्दन्ति शरीरत्वच-
मिति लूताः कृमिविशेषाः । विस्फोटको रक्तविकारविशेषः । तदादि येषां
ते व्याधयः सर्वे नश्यन्ति कवचावर्तनेनैव नाशं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

स्थावरं जङ्गमं चापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राण भूतले ॥ ४४ ॥

स्थावरमिति । चतुर्थनान्वयः । कवचे हृदि संस्थिते स्मरणरूपेण हृदयस्थीकृते एते वक्ष्यमाणाः सर्वे नश्यन्ति । तान्वक्ष्यति : स्थावरं विषं वृक्षगुल्माद्यद्भवम् । जङ्गमं विषं सर्पदंशादि जातम् । कृत्रिमं अहिफेन-
तैलसंयोगादिभवं पुनः यानि भूतले सर्वाणि अभिचाराणि परकृत्यादीनि
यानि मन्त्रयन्त्राणि तान्यपि नश्यन्तीति ॥ ४४ ॥

भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ।

सहजाः कुलजामाला डाकिनी शाकिनी तथा ॥ ४५ ॥

भूचरा इति । भुवि चरन्ति गच्छन्ति ये ते भूचरा ग्रामदेवाः खेच-
रन्ति ये ते खेचरा देवविशेषा आकाशगामिनः । जलजाः जलसम्बन्ध-
जाता देवविशेषाः वरुणगणाः । च शब्दो व्यवधाने । उपदेशिकाः उपदेश-
मात्रेण ये सिद्धयन्ति ते उपदेशिकाः क्षुद्रदेवताभेदाः । सह जायन्ते इति
सहजाः । कुले जायन्ते इति कुलजाः कुलदेवविशेषाः । मालाः । मल
मल्लगतौ । मालयन्ते इति मालाः सन्ततगमनशीलाः मार्गमिलिता इति ।
डाकिनी डकारो भैरवे प्रोक्त इत्येकाक्षरात् । डं भैरवं अकं दुःखं विद्यते
यस्याः सा । शाकिनी । शक्नोति समर्था भवति जनान् हन्तुमिति
शाकिनी एताः क्षुद्रदेवता अपि कवचधारकदर्शनान्नश्यन्तीति ॥ ४५ ॥

अन्तरिक्षचराघोराडाकिन्यश्च महाबलाः ।

ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥ ४६ ॥

ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डाभैरवादयः ।

नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ॥ ४७ ॥

अन्तरिक्षेति । अन्तरिक्षे चरन्तीति अन्तरिक्षचराः अन्तरिक्षनिवा-
सिनः । घुरयति भीषयति जनानिति घोराः । घुर भीमशब्दार्थयोः ।
डाकिन्यस्तन्मन्त्रसिद्धाः स्त्रियः । कीदृश्यः महद् बहुबलं वीर्यं यस्याः सा
महाबलाः गृह्णन्ति लोकाञ्छलेनेति ग्रहाः । भवन्ति नानारूपेण जने-
ष्विति भूताः । पिशं मांसमश्नति पूजयन्त्यभ्यवहारार्थमिति पिशाचाः ।
ग्रहाश्च भूताश्च पिशाचाश्च ते ग्रहभूतपिशाचाः । यक्षाः गन्धर्वाः देव-
योनिषुप्रसिद्धाः । एतेऽपि कवचधारणान्नश्यन्तीति ॥ ४६ ॥ ब्रह्मेति ।
ब्राह्मणाश्च ते राक्षसाश्चेति ब्रह्मराक्षसाः । वा विकल्पेन इतं प्राप्तं लान्ति
गृह्णन्तीति वेतालाः । ब्रह्मराक्षसाश्च ते वेतालाश्चेति । कोः पृथिव्या
ऊर्गमां डान्तीति कूष्माण्डाः भैरवाः भयकारिणः । एते देवजातिविशेषाः

कवचे हृदि संस्थिते तस्य कवचस्मर्तुः साधकस्य दर्शनादेतेऽनिष्टकारिणो
नश्यन्तीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

मानोज्ञतिर्भवेद्राक्षस्तेजोवृद्धिकरं परम् ।

यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ॥ ४८ ॥

मानोज्ञतिरिति । तस्य पूर्वोक्तरूपसाधकस्य राज्ञः सकाशान्मानोज्ञ-
तिर्मानवृद्धिर्भवेत् । तस्यैव परमुत्कृष्टं तेजोवृद्धिकरं स्यात् । यः कवचं
हृद्गतं करोति सः । कीर्तिमण्डितभूतले यशसा वर्द्धते । स्वकीर्तिभूषित-
भूमौ यशोवृद्धिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

अधुना सप्तशत्यङ्गत्वं कवचस्य विधत्ते ।

जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ॥ ४९ ॥

तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रकी ।

जपेदिति । सादृश्लोकेनान्वयः । पुरा प्रथमतः कवचं कृत्वा पश्चा-
त्सप्तशतीं सप्तशतमन्त्रात्मिकां चण्डीं चण्डघडिष्ठात्रीं स्तुतिं यः जपेत् स
महामायाप्रसादतः । अनन्त इति शेषः । अनन्तः यावत् सशैलवनकाननं
भूमण्डलं धत्ते तावत्तस्य कवचस्मर्तुः पुत्रपौत्रकी सन्ततिः मेदिन्यां भूमौ
तिष्ठति अविच्छिन्नसन्ततिर्भवेदित्यर्थः ॥ ४९ ॥

कवचधारको देहान्ते यत्प्राप्नोति तदाह ।

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥ ५० ॥

प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ।

देहान्त इति एवं विधमैश्वर्यं सर्वोत्कृष्टतां निरतिशायि सुखं च भुक्त्वा
यत्स्थानं सुरैर्देवादिभिरपि दुर्लभं पुरुषः महामायाप्रसादतस्तत्प्राप्नोति ।
परममुत्कृष्टं स्थानं मोक्षरूपं ज्ञानद्वारा प्राप्नोतीत्यर्थः । यच्च यमेवैष
वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैवैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वामिति श्रुतेः । य एतां
मायार्शक्तिं वेद स मृत्युं जयति स आत्मानं तरति सोऽमृतत्वं च गच्छ-
तीति श्रुतेः । अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिरिति
श्रुतेश्च । पार्वती परमा विद्या ब्रह्माविद्याप्रदायिनी । विशेषेणैव जन्तूनां
नात्र सन्देहकारणमिति सूतसंहितोक्तेरिति शिवम् । विवृतावत्र व्याख्या-
नद्वयसङ्कलनमस्ति । श्रीदेवीभागवतटीकाकृशीलकण्ठ स्वामिनां नारा-

यणपण्डितानां च । कवचेऽस्मिन्साद्धपञ्चाशत्संख्याकश्लोकसंग्रहाः । आधि-
 क्यन्यूनतादोषपरिहारचिकीर्षया । देवीनाम्नां क्रमस्यापि कथनं क्रियतेऽत्र
 तु । ते च श्लोकाः प्राचीनसंगृहीता एव लिख्यन्ते । दशदिक्पालदेव्यश्च
 चामुण्डा च ततः परम् । जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता ॥ १ ॥
 उद्योतिनी ततश्चोमा मालाधारी यशस्विनी । त्रिनेत्रा यमघण्टा च
 शङ्खिनी द्वारवासिनी ॥ २ ॥ कालिका शाङ्करी पञ्चात्सुगन्धा चर्चिका
 तथा । अमृतादिकलापश्चात्ततः स्यात्तु सरस्वती ॥ ३ ॥ कौमारी चण्डिका
 चित्रघण्टा माया महादिका । कामाक्ष्यनन्तरं सर्वमङ्गला भद्रकालिका
 ॥ ४ ॥ धनुर्द्धरी नीलग्रीवा ततः स्यान्नलकूबरी । खड्गधारिणिका पूर्वं
 वज्रधारिण्यनन्तरम् ॥ ५ ॥ दण्डिनी चाम्बिका शूलेश्वरी स्यात्तु नलेश्वरी ।
 मनःशोकविनाशा स्याल्ललिता शूलधारिणी ॥ ६ ॥ कामिनी गुह्यपूर्वा
 स्यादीश्वरी च ततः परम् । भूतनाथा ततः स्यात्तु महामहिषवाहिनी ॥ ७ ॥
 भगवत्यपि विन्ध्यस्था महापूर्वाबला तथा । विनायकी नारसिंही ततः
 पञ्चान्मत्तोजसी ॥ ८ ॥ श्रीधर्यन्ते च पातालवासिन्यन्ते करालिनी ।
 ऊर्ध्वकेशी च कौबेरी वागीशी पार्वती तथा ॥ ९ ॥ कालरात्रिश्च मुकुटे-
 शानी पद्मावती तथा । चूडामणिस्तथा ज्वालामुख्यभेद्या ततः स्मृता
 ॥ १० ॥ ब्रह्माणी छत्रपूर्वा स्यादीश्वरी धर्मचारिणी । चक्रिणीन्द्रबधूश्चण्डी
 महालक्ष्मीश्च भैरवी ॥ ११ ॥ क्षेमङ्करी तथा प्रोक्ता विजया च जयन्तिका ।
 इत्येताः सम्यगाख्याताः कवचस्थाश्च शक्तय इति ॥ १२ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे पूर्वभागे सरयूप्रसादसंगृहीते
 कवचार्यसंग्रहो नाम द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥



अथार्गलास्तुतिः सविर्वृतः संगृह्यते

तत्र प्रथमत उद्देश्याया देवताया ध्यानोपयोगिगुणान्नमन्नाह

मार्कण्डेय उवाच :

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ॥ १ ॥

जयन्तीति । जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते इति जयन्ती । सर्वोत्कृष्टेत्यर्थः । गुणत्रयसाम्यावस्थोपाधिकब्रह्मरूपिण्या भगवत्याः सर्वकारणत्वात् । मङ्गला मङ्गलं जननमरणादिरूपं संपन्नं भक्तानां लाति गृह्णाति नाशयति सा मङ्गला मोक्षप्रदेति । मणि गतौ । न तस्य प्राणा उत्क्रामन्तीति श्रुतेः । काली कलयति भक्षयति । प्रलयकाले सर्वमेतदिति काली । ब्रह्म क्षत्रं चोभे भवत ओदनः मृत्युर्यस्योपसेचनमिति श्रुतेः । भद्रकाली भद्रं मङ्गलं सुखं वा कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्योदातुमिति । भद्रकाली सुखप्रदेति रहस्यागमैर्गोपयिता । कपालिनी । कपालोऽस्त्री शिरोऽस्थि स्यादघटादेः शकलेषु चेति मेदिनी । ब्रह्मादीनिहत्य तेषां कपालं गृहीत्वा प्रलयकाले अटतीति प्रपञ्चरूपाम्बुजहस्ते यस्या इति वा कपालिनी । मत्वर्थीय इति । प्रपञ्चाम्बुजहस्ताच्च कपालिन्युच्यते परेति रहस्यागमात् । दुर्गा दुःखेनाष्टाङ्गयोग कर्मोक्तोपासनारूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते सा दुर्गा । तां दुर्गां दुर्गमां देवीमित्यथर्वशिरसः । क्षमा भक्तानामन्येषां वा सर्वानपराधान् क्षमते सहते जननीत्वादतिशयकारुण्यवती क्षमेत्युच्यते । शिवाचिद्रूपिणीत्यर्थः । चिन्मात्राश्रयमायायाः शक्त्याकारे द्विजोत्तमाः । अनुप्रविष्टा या संविन्निर्विकल्पा स्वयं प्रभा । सदाकारा सदानन्दा संसारोच्छेदकारिणी । सा शिवा परमा देवी शिवाभिन्न-शिवङ्कुरीति सूतसंहितोक्तेः । धात्री सर्वप्रपञ्चधारणकर्त्री । अहं रुद्रे-भिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुतविश्वदेवैः । अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यह-मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभेति श्रुतेः । स्वाहा देवपोषिणी । स्वधा पितृ-पोषिणी । एतादृशपूर्वोक्तमहागुणवती या त्वमसि ततस्ते तुभ्यं नमो

नमस्कार एवास्तु केवलं न तु तादृश्याः परिचर्यायां सामर्थ्यमस्तीति भावः ॥ १ ॥

मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः ।

रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥ २ ॥

मधुकैटमेति । मधुकैटभयोविद्राविणी नाशिनी च सा विधातृवरदा चेति विग्रहः । मधुकैटभनाशार्थं ब्रह्मणा स्तुता सती तस्मै वरं ददाविति कथा पुराणप्रसिद्धा । रूपं रूप्यते ज्ञायते इति रूपं परमात्मवस्तु । रूपं भवेद्विन्दुरमन्दकान्तिरित्यागमात् । तद्देहि मह्यं मत्कृतनमस्कारेणैव प्रसन्ना सती । तथा जयं जयत्यनेन परमात्मनः स्वरूपमिति । अथवा जयो वेदस्मृतिराशिः । ततो जयमुदीरयेदित्यत्र प्रसिद्धस्तम् । यशोदेहि सहनौयश इति श्रुतिप्रसिद्धं तत्त्वज्ञानसम्पादनजन्यं यशस्तद्देहि । द्विषः कामक्रोधलोभादीञ्जवृञ्जहि । नाशयेत्यर्थः । यद्वा रूपं सौन्दर्यं स्वीयानां मोहनं द्विषां भीषणं लावण्यं वा । जयं यतः कुतश्चित्पराभवाभावम् । यशः सार्वत्रिकी दुर्गुणरहिततपोदानसौजन्यादिप्रशंसारूपं देहि प्रयच्छमे इति शेषः । द्विषः आध्यात्मिकादीन्विपरीतान् जहीति भावः ॥ २ ॥

महिषासुरनिर्नाशविधात्रि वरदे नमः । रूपं० ॥ ३ ॥

महिषासुरेति । महिषासुरनिर्नाशविधात्रोत्येकम्पदम् । वरदेति पृथक्पदम् । रूपमित्यादि पूर्ववत् ॥ ३ ॥

वन्दितांघ्रियुगे देवि देवसौभाग्यदायिनि । रूपं० ॥ ४ ॥

वन्दितेति । ब्रह्माविष्णुरुद्रादिभिर्वन्दितमंघ्रियुगं यस्याः तेषामेतदपेक्षया न्यूनोपाधिकत्वात् । भक्त्यतिशयेन देवीत्यस्य पुनरुक्तिः । देवानां सौभाग्यं शत्रुबाधारहितं राज्यं दातुं शीलमस्येति वा ॥ ४ ॥

रक्तबीजवधेदेवि चण्डमुण्डविनाशिनि । रूपं० ॥ ५ ॥

रक्तबीजेति । रक्तबीजस्य वधो यस्याः सकाशात्सेति विग्रहः । रक्तबीजस्य वधः कर्तव्यतयास्ति यस्याः सेति वा । अर्श आद्यजन्तम् । रक्तबीजवधकर्त्रीत्यर्थः । अत्र शुम्भासुरेति श्लोकपाठोऽप पाठः । प्राचीनैरव्याख्यातत्वात् प्राचीनपुस्तकेष्वपठनान्चेति ॥ ५ ॥

अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि । रूपं० ॥ ६ ॥

अचिन्त्येति यतो वाचो निवर्तन्ते इति श्रुतेः योऽस्या अध्यक्षः परमे व्योमन् सो अद्भु वेद यदि वा न वेदेति श्रुतेः । अचिन्त्यान्यतर्क्याणि

रूपाणि चरितानि च यस्याः । सर्वान्निःशेषान् शत्रून्विनाशयति भक्ताना-
मिति ॥ ६ ॥

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके प्रणताय मे । रूपं० ॥७॥

नतेभ्य इति । हे चण्डिके परब्रह्मरूपिणि । सर्वदा भक्त्या नतेभ्यः
प्रणतेभ्यो भक्तेभ्यः मे मह्यं प्रणताय च रूपं देहीत्यन्वयः ॥ ७ ॥

स्तुवद्भयोभक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि । रूपं० ॥८॥

स्तुवद्भ्य इति । व्याधीनाशयतीति व्याधिनाशिनी तत्सम्बोधने ।
भक्तिपूर्वं यथास्यात्तथा त्वां स्तुवद्भ्यो भक्तेभ्यः हे चण्डिके परब्रह्म-
महिषि । रूपं देहीत्यन्वयः ॥ ८ ॥

चण्डिके सततं येत्वामर्चयन्तीह भक्तितः । रूपं० ॥ ९ ॥

चण्डिकेति । सततमित्यत्रापि तथैव येत्वामर्चयन्ति तेभ्य इति
शेषः । रूपं देहीति पूर्ववत् ॥ ९ ॥

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि देवि परं सुखम् । रूपं० ॥१०॥

देहि सौभाग्यमिति । हे देवि प्रकाशरूपे । सुष्ठु भगस्य षडैश्वर्यस्य
भावः सौभाग्यम् । न विद्यते रोगो यस्यासौ अरोगः तस्य भाव आरोग्यं
परमुत्कृष्टं ब्रह्मानन्दसुखं एतत्सर्वं मे मह्यं देहीत्यर्थः ॥ १० ॥

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः । रूपं० ॥ ११ ॥

विधेहीति । द्विषतां द्वेष्टणां नाशं उच्चकैः अतिशयेनोच्चं सर्वाति-
शायि बलं सामर्थ्यं मम विधेहीति ॥ ११ ॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि विपुलां श्रियम् । रूपं० ॥१२॥

कल्याणं विपुलां श्रियं सम्पत्तिं विधेहि कुर्वित्यर्थः ॥ १२ ॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु । रूपं० ॥१३॥

विद्यावन्तं ब्रह्मविद्यावन्तं यशस्वन्तं यशोयुक्तं लक्ष्मीवन्तं जनं भक्त-
जनं मां कुरु । अथ च रूपं देहीत्यर्थः ॥ १३ ॥

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे । रूपं० ॥ १४ ॥

प्रचण्डेति । प्रचण्डाः प्रबला ये दैत्याः तेषां दर्पं हन्तीति तत्सम्बोधनं
चण्डिके प्रणताय मे मह्यं रूपं देहीत्यादि ॥ १४ ॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि । रूपं० ॥ १५ ॥

चतुर्भुजे इति चतुर्वर्गधारणार्थं चत्वारो भुजा यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ ।

चतुर्वक्त्रो ब्रह्मा तेन स्तुते परमेश्वरि परमेश्वरदयिते । रूपं देहीत्यादि ॥ १५ ॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्धक्त्या तथाम्बिके । रूपं ० ॥ १६ ॥

कृष्णेनेति । इयं कथा देवीभागवते प्रसिद्धा ॥ १६ ॥

हिमाचलसुतानाथापूजिते परमेश्वरि । रूपं ० ॥ १७ ॥

हिमाचलेति । हिमाचलसुतानाथः शिवस्तेन पूजिते । रूपं देही-
त्यादि ॥ १७ ॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके । रूपं ० ॥ १८ ॥

सुरासुरेति । सुराणामसुराणां च शिरोरत्नैः मुकुटमणिभिः नितरां
घृष्टौ चरणौ यस्याः । अनेन च देवीस्वरूपदर्शनेन निर्वैरता अद्वैतभावोऽपि
भवतीति ध्वनितम् । सुरासुरयोः सामानाधिकरण्यकथनात् ॥ १८ ॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि । रूपं ० ॥ १९ ॥

इन्द्राणीति । इन्द्राण्या पतिसद्भावस्य पत्युरिन्द्रस्य सत्ताया विद्य-
मानतायाः ज्ञानार्थं पूजिते । इन्द्रेण कालविशेषे निलीय क्वचित्सरसि
कमलविशान्तश्चिरं स्थितः तदा देव्याराधनेन पौलोम्या तत्स्थानं लब्ध-
मिति पुराणप्रसिद्धा कथा । इन्द्राणीपतिना सद्भावेन पूजितेति वा ॥ १९ ॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि । रूपं ० ॥ २० ॥

देवीति । हे क्रीडाशीले । प्रचण्डा दोर्दण्डा भुजदण्डा येषां ते च
अमी दैत्याश्च तेषां दर्पं गर्वं विनाशयितुं शीलं यस्यास्तदामन्त्रणे रूपं
देहीत्यादि ॥ २० ॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके । रूपं ० ॥ २१ ॥

देवीति । देवि द्युतिमति । भक्तजनेषु ये उद्दामा निरर्गलभक्तिमन्तः
तेभ्यो दत्तभानन्दोदयो मोक्षो यया तदामन्त्रणे अम्बिके मातः । अम्बा
एवाम्बिका तत्सम्बुद्धौ । रूपमित्यादि पूर्ववत् ॥ २१ ॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।

तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥ २२ ॥

पत्नीमिति । पत्नीं भार्यां मनोरमां मनोमोहयित्रीं मनसो यद्वृत्तं
तदनुसर्तुं मन्तुं गन्तुं शीलं यस्यास्ताम् । दुर्गसंसारसागरस्य तारिणीं
तारणकर्त्रीम् । मार्कण्डेयपुराणप्रसिद्धया मदालसया वा वासिष्ठरामायण-
प्रसिद्धया चूडालया च तुल्यां । आद्यया पुत्रस्तारितो द्वितीयया पतिस्ता-
रित इति तत्राख्यानात् ॥ २२ ॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्त्रोत्रं पठेन्नरः ।

स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदः ॥ २३ ॥

इदमिति । महास्तोत्रं सप्तशत्याख्यं अनेनार्गलास्तुतिरपि सप्तशत्य-
ङ्गत्वं बोधितं य एवमर्गलास्तुतिं पठित्वा सप्तशतीस्तोत्रं पठति स तु स
एव सप्तशत्याः संख्याजपसंख्या तथा यज्जायमानं वरं फलं श्रेष्ठं फलं
तत्प्राप्नोति नाम्न्यः । सम्पदोऽपि प्राप्नोति । तस्मादवश्यमर्गलास्तोत्रं
पठनीयमिति भावः ॥ २३ ॥ सिद्धिप्रतिबन्धकं पापमर्गलासदृशत्वादर्गला
तन्नाशकस्तोत्रस्यापि लक्षणयार्गलेतिसञ्ज्ञेति शिवम् । एतद्वीकापि नील-
कण्ठस्वामिनारायणपण्डितकृत टीकाद्वयसङ्कलनरूपेति । त्रयोविंशति-
संख्यानां श्लोकानामत्रसंग्रहः । एषां प्रयोगमधुना क्रमेणात्र विलिख्यते
॥ १ ॥ जयन्ती मङ्गला काली श्लोकसम्पुटितेन च । महामार्या भवे-
च्छान्तिः सर्वोपद्रवनाशनम् ॥ २ ॥ मधुकटैर्भविद्रावीत्येतत् सम्पुटितेन
वै । राजचोरादिभीतेश्च शान्तिः स्यादिति निश्चितम् ॥ ३ ॥ मधुकैटभ-
निर्नाशमन्त्रेण स्याद्विपुक्षयः । वन्दितांघ्रियुगे मन्त्रो राजसन्मानदायकः
॥ ४ ॥ रक्तबीजबधे मन्त्रः शत्रुभीतिविनाशनः । अचिन्त्यरूपचरिते मन्त्रो-
रोगविनाशनः ॥ ५ ॥ नतेभ्यः पुटिते नाथ सर्वापन्नाशमश्नुते । स्तुवद्भ्यः
सम्पुटेनाथ जपेन व्याधिनाशनम् ॥ ६ ॥ चण्डिके सततं मन्त्रः सर्वसौभाग्य-
कारकः । देहि सौभाग्यमारोग्यं मन्त्रसम्पुटितेन च ॥ ७ ॥ सर्वार्थसिद्धि-
र्भवति केवलेन जपेन वा । विधेहि द्विषतां नाशं मन्त्रेणानेन शत्रवः ॥ ८ ॥
संक्षयं यान्ति सततं सम्पुटेन जपेन वा । विधेहि देवि कल्याणं मन्त्रेण
सकलापदः ॥ ९ ॥ नश्यन्ति सकुटुम्बस्य पशोः संरक्षणं जपात् । विद्या-
वन्तं सम्पुटश्च यशोलक्ष्मीजयप्रदः ॥ १० ॥ प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने मन्त्रसम्पुटि-
तेन च । विवादे व्यवहारे च जयमाप्नोति मन्त्रवित् ॥ ११ ॥ चतुर्भुजे
चेति मन्त्रश्चतुर्वर्गफलप्रदः । कृष्णेन संस्तुते मन्त्रः पुरुषार्थसमृद्धिदः ॥ १२ ॥
तपश्चर्यादिसंसिद्ध्यै हिमालयसुतामनुः । सुरासुरशिरोरत्नमन्त्रः सर्वज्ञ-
कारकः ॥ १३ ॥ इन्द्राणीपतिमन्त्रश्च चित्तमालिन्त्यनाशनः । देवि प्रचण्ड-
मन्त्रश्च जलोदरविनाशकृत् ॥ १४ ॥ देविभक्तजनोद्दाममन्त्रसम्पुटितेन
च । अनावृष्टिनिवृत्तिः स्यात्केवलं तज्जपेन च ॥ १५ ॥ पत्नीं मनोरमां
देहि जपेन सम्पुटेन वा । पत्नीं मनोरमां प्राप्य परत्रेह च मोदते ॥ १६ ॥
इति तन्त्रान्तरे ।

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे पूर्वभागे सरयूप्रसादसंगृहीते अर्गलास्तुति-
मन्त्रार्थप्रयोगसंग्रहो नाम तृतीयो विश्रामः ॥ ३ ॥

अतः परं सविवरणं देवीकीलकं संगृह्यते ।

तत्र मार्कण्डेयऋषिः शिष्यानुपदिदेशेति स संवादस्तन्त्रेषु कथित इति तन्त्रस्थमेवैतत् । ऋषिरुवाच । मार्कण्डेयऋषिः स्वशिष्यान्प्रतीत्यर्थात्कीलकमुपदिशति ।

अथादौ ऋषिः सर्वविघ्नोपशान्तिपूर्वकभुक्तिमुक्तिफलाप्तये निष्कीलकार्थं कीलनकर्तारं श्रीशिवं नमस्करोति :

विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।

श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ १ ॥

विशुद्धेति । सोमार्द्धं चन्द्रार्द्धं धत्तुं शीलमस्येति सोमार्द्धधारी शिवस्तस्मै नमः । कीदृशाय विशुद्धं निर्मलमात्मलक्षणं ज्ञानरूपं देहं शरीरं यस्य तस्मै । निर्मलज्ञानरूपायेत्यर्थः । त्रिवेदीवेदत्रयरूपं दिव्यं चक्षुर्यस्य तस्मै । श्रेयः प्राप्तेः कल्याणप्राप्तेर्निमित्ताय । कारणायेत्यर्थः । अत्र केचिदयं श्लोकस्तत्कमीमांसावार्त्तिके । अत्रापि प्रथमो बहुभिः पठ्यते परन्त्वनार्थमाहुः । परं त्वत्रत्य एव श्लोको मङ्गलार्थं वार्त्तिककारैर्गृहीत इति कुतो न स्यात् । न हि कुत्रचित्स्थितः श्लोको मङ्गलार्थमन्यत्र न गृहीतव्य इति राजाज्ञास्ति तस्मात्सर्वपुस्तकेषूपलम्भादावप्येव श्लोक इति ॥ १ ॥

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामपि कीलकम् ।

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥ २ ॥

सर्वमेतदिति । किमुवाच मन्त्राणां सर्वेषां अभिकीलकं वक्ष्यमाणरीत्या सर्वमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकशापरूपकीलकनाशकत्वाज्ञक्षणया सप्तमतीस्तोत्रमभिकीलकं तत्सर्वं विजानीयादुपासीतेत्यर्थः । नन्वन्यमन्त्रोपासनाभिः किं क्षेमं न स्याद्यतोऽत्रैवाग्रहः क्रियत इति चेद्भवत्येवेत्याह सोऽपीति । तत्सप्तमतीस्तोत्रं विना सततं जाप्यतत्परः नानामन्त्राणां जपरूपे कर्मणि निरन्तरं निष्ठा यस्य स तत्परो यस्तु पुरुषः सोऽपि क्षेमं सर्वं क्षेमं कल्याणं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ २ ॥

सिद्धयन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।

एतेन स्तुवतां देवीस्तोत्रमात्रेण सिद्धयन्ति ॥ ३ ॥

सिद्धयन्तीति । एवं जपतत्परस्य पुरुषस्योच्चाटनादीनि कर्माणि सिद्धयन्ति । तथा सकलानि वस्तून्त्यलभ्यानि सिद्धयन्तीति । एवं सप्तमतीपाठरहितानामपि पुरुषाणां केवलमन्त्रजपेन सिद्धिमुक्त्वा मन्त्रजप-

रहितानामपि पुरुषाणां केवलसप्तशतीपाठेनापि सर्वा सिद्धिमुपदिशति । एतेनेति । एतेन प्रकृतेन स्तोत्रमात्रेण सप्तशत्याख्यस्तोत्रमात्रेण स्तुवतां स्तोत्राणां देवी भगवती सच्चिदानन्दरूपिणी सिद्धयति प्रसीदति ॥ ३ ॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।

विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥ ४ ॥

अस्य पुरुषस्य नान्यमन्त्राद्युपयोग इत्याह—न मन्त्र इति । तत्र तस्य पुरुषस्य कार्यसिद्धौ न मन्त्र उपयुक्तो भवति । तथा नौषधम् । तथा न किञ्चिदन्यदपि योगसिद्ध्यादिरूपं साधनं विद्यते उपयोगाय । किन्तु जाप्येन विना तत्तन्मन्त्रजपरूपकर्माभावेऽपि सर्वमुच्चाटनादिकमाभिचारिकं कर्म तथा समग्राण्यभिलषणीयानि कार्याणि सिद्ध्यन्ति केवलस्तोत्रमात्रेणेति । एतावत्पर्यन्तं सप्तशत्युपासनया केवलया सर्वं कल्याणं भवति । तथा सप्तशत्यन्यमन्त्रोपासनयापि सर्वं कल्याणं भवतीति पक्षद्वयमुपपादितम् ॥ ४ ॥

समग्राण्यपि सेत्स्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।

कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥ ५ ॥

एवं पक्षद्वयमस्तीति या पक्षद्वयविषयिणी लोकानां शङ्का तां प्रथमतो हरः कृत्वा तच्छङ्कानिरासार्थं निमन्त्रयामास निमन्त्रितवान् अर्थाल्लोकानागतानाह—किमिति एवं वक्ष्यमाणप्रकारेणेतं सप्तशत्याख्यमेव शुभमिति । अत्र तानाहेति शेषः ॥ ५ ॥

स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुह्यं चकार सः ।

समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावच्छिन्यन्त्रणाम् ॥ ६ ॥

स्तोत्रमिति । अनन्तरं च चण्डिकायास्तु चण्डिकाया एव स्तोत्रं सप्तशत्याख्यं तच्च गुह्यमतिरहस्यं चकार । पूर्वोक्तमन्त्रजपरूपपक्षापेक्षया द्वितीयं पक्षमेव सारभूतं चकारेत्यर्थः । इति मार्कण्डेयेन तन्त्रोक्तं पूर्ववृत्तं कथितं पुनः शिष्यान् सप्तशतीमाहात्म्यं कथयन् शिवाभिप्रायं कथयति—यस्मादेतत्स्तोत्रपाठजन्यफलस्य न समाप्तिः कदापि भवति तत्तन्मन्त्रजपजन्यपुण्यस्य तु समाप्तिरस्ति तस्मात्तां पूर्वोक्तां शिवेन कृतां नियन्त्रणां प्रथमपक्षस्य सङ्कोचरूपां यथावद्यथार्थमेव जानीध्वमिति शेषः ॥ ६ ॥

सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेव न संशयः ।

कुण्ठायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥ ७ ॥

सोपीति । सोऽपि तत्तन्मन्त्रजपकर्त्तापि एतत्स्तोत्रजपसहितश्चेदेव सर्वं क्षेममवाप्नोति । तस्मात्तं प्रथमपक्षं विहाय सप्तशतीपाठे सर्वैरेवादरः कर्त्तव्य इत्यर्थः । एतेनान्ये मन्त्रा अपि सप्तशतीपाठं कृत्वैव जपनीयाः । अन्यथा तत्तन्मन्त्रफलप्राप्तिर्न स्यादिति बोधितम् । यत एतत्सर्वमन्त्रसिद्धिप्रतिबन्धकनाशकं भवति तस्मादेव मन्त्राणामभिकीलकमेतदिति पूर्वमुक्तमिति बोध्यम् । अभिकीलकं सिद्धिप्रतिष्ठम्भकरं दोषरूपं तन्नाशकत्वादस्यापि लक्षणयाभिकीलकत्वम् । नन्वत्रापि नवार्णमन्त्रजपापेक्षास्त्येवेति चेत्सा-शीघ्रफलार्थमिति ब्रूमः ननु तद्विना फलमेतस्यानास्तीति एतद्विना तु मन्त्राणां फलमेव न भवतीति विशेषः ॥ ७ ॥

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।

इत्थं रूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥ ८ ॥

ददातीति । परन्तु हे शिष्याः । तत्स्तोत्रं सर्वेषामप्यचिन्त्यफलप्रदं जातमिति सर्वेऽपि सर्वेश्वरा भवन्तीति ज्ञात्वा महादेवेन कीलितमस्तीत्याह—कृष्णायामिति पूर्वोक्तान्वयः । कृष्णचतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहित एकाग्रः सन्य उपासको निजं सर्वं धनं न्यायेनोपाजितं देव्यै ददाति समर्पयति हे देवि इत आरभ्येदं सर्वं धनं मदीयं तुभ्यं मया दत्तमस्ति इति समर्पयति पश्चात्संसारयात्रानिर्वाहार्थं गृहाणेदं द्रव्यं मत्प्रसादभूतमिति देव्यानुज्ञां मनसा गृहीत्वा तद्द्रव्यं प्रसादबुद्ध्या प्रतिगृह्णाति गृहीत्वा च धर्मशास्त्रोक्तमार्गेण तस्य व्ययं कुर्वन्निरन्तरं देव्यधीनो भवति तस्यैषा सप्तशती प्रसन्ना भवति नान्यथा । इत्थं रूपेण कीलेन सिद्धिप्रतिष्ठम्भकरेण महादेवेन कीलितमस्ति । अयं च कीलकस्यार्थो रहस्यागमे गुरुकीलकपटले प्रदर्शितं तदग्रे स्पष्टमेव्यति ॥ ८ ॥

तर्हि किं कर्त्तव्यमित्याह :

योनिष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।

स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायतेऽवने ॥ ९ ॥

योनिष्कीलामिति । यस्मादेवं तस्माद्योहि पुरुष एनां सप्तशतीं पूर्वोक्तदानप्रतिग्रहकरणेन निष्कीलां विधाय संस्फुटं यथा स्यात्तथा जपति स एव सिद्धो भवति स एव देव्यागणो भवति सोऽपि स एव अवने जगद्रक्षणे गन्धर्वो बृहदारण्यके तस्यासीद्बुद्धिता गन्धर्वगृहीतेति श्रुत्या उक्तदेवताविशेषो गन्धर्वो जायते सहि समर्थः सर्वजगद्रक्षणे इति ॥ ९ ॥

नचैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।

नाल्पमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ १० ॥

नचैवेति । दृष्टफलान्याह—तस्य जापकस्य यत्र कुत्राप्यटतो भयं न जायते । अल्पमृत्युवशमपि न प्राप्नोति । किन्तु पूर्णायुर्भुक्त्वान्ते मोक्षं प्राप्नुयादिति ॥ १० ॥

ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत ह्यकुर्वाणो विनश्यति ।

ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः ॥ ११ ॥

ज्ञात्वेति । एतादृशकीलकमज्ञात्वा पाठकर्तुं दोषमाह—पूर्वोक्तं कीलकं ज्ञात्वा तत्परिहारपूर्वकं प्रारभ्य पाठं कुर्वीत । तत्परिहारमकुर्वाणो विनश्यति । यस्मादेवं तस्मात्कीलकं ज्ञात्वैव सम्पन्नं निर्दुष्टमिदं स्तोत्रं बुधैः प्रारभ्यते । अत्र विनाशकथनं कीलकज्ञानस्यावश्यकार्थमेव यथा कथञ्चित्पाठस्यापि वचनान्तरैरनुज्ञानात् । तेन जाप्यमिति तेन हेतुनेत्यर्थः ॥ ११ ॥

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद्दृश्यते ललनाजने ।

तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥ १२ ॥

सौभाग्यादीति । यत्किञ्चित्सौभाग्यादि शुभगत्वं ललनाजने दृश्यते तत्सर्वं तत्तस्याः प्रसादेनैव तेनेदं शुभकृष्णाप्यं स्यादित्यर्थः ॥ १२ ॥

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन्स्तोत्रे सम्पत्तिरुचकैः ।

भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥ १३ ॥

शनैस्त्विति । शनैः स्वकर्णागोचरं यथा स्यात्तथा पाठे यत्किञ्चित्सम्पत्तिरेव भवति । उच्चकैः उच्चैः पाठे तु समग्रापि भवत्येव । तत उच्चकैरे वैतत्प्रारभ्यमित्यर्थः ॥ १३ ॥

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।

शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ १४ ॥

इत्थं मुनिः कीलकविधिं समाप्य जनानाक्रोशति—ऐश्वर्यमिति । परो मोक्षः कैवल्यमोक्षः अहो मन्दभाग्या एते दृष्टिगोचरं चिन्तामणिं कामदुग्धां भगवतीं विहाय स्वकल्याणार्थमन्यदेवतोपासनरूपां वराटिकां किमर्थं गृह्णन्तीति शिवम् ॥ १४ ॥ श्लोकाश्चतुर्दशैवात्र कीलके सम्प्रतिष्ठिताः । अत्राप्युभयोष्ठीका सङ्कलितेति । अथ प्राचीनाचार्यसंगृहीतरहस्य-

तन्त्रस्थगुरुकीलकपटलोलिख्यते । 'यथा'—गुप्तवतीटीकायाम् । शिव-
 उवाच । पुरा सनत्कुमाराय दत्तमेतन्मयानघ । संवर्त्तयि ददौ तच्च
 सचान्यस्मै ददौ च तत् ॥ १ ॥ सर्वत्र चण्डीपाठस्य प्राचुर्येण महीतले ।
 ब्रह्मकाण्डः कर्मकाण्डस्तन्त्रकाण्डश्च सर्वथा ॥ २ ॥ अभूत्प्रतिहतोनेन
 शीघ्रसिद्धिप्रदायिना । तदा तेषां च सार्थक्यं कर्त्तुं कामेन भूतले ॥ ३ ॥
 दानप्रतिग्रहत्वेन मन्त्रोयं कीलितोमया । दानप्रतिग्रहाख्यं यत्कीलकं
 समुदाहृतम् ॥ ४ ॥ तदारभ्य च मन्त्रोयं कीलकेनाभिकीलितः । न सर्वेषां
 भवेत्सिद्धये ये कीलकपराङ्मुखाः ॥ ५ ॥ ये नराः कीलकेनेन जपन्ति
 परया मुदा । तेषां देवी प्रसन्ना स्यात्ततः सर्वाः समृद्धयः ॥ ६ ॥ त्वत्प्रसूत-
 स्त्वदाज्ञप्रस्त्वहासस्त्वत्परायणः । त्वन्नामचिन्तनपरस्त्वदर्थेऽहं नियोजितः
 ॥ ७ ॥ मयार्जितमिदं सर्वं तव स्वं परमेश्वरि । राष्ट्रं बलं कोशगृहं सैन्य-
 मन्यच्च साधनम् ॥ ८ ॥ त्वदधीनं करिष्यामि यत्रार्थं त्वं नियोक्ष्यसि ।
 तत्र देवि सदा वर्त्तं तवाज्ञामेव पालनात् ॥ ९ ॥ इति सन्धिन्त्य मनसा
 स्वार्जितानि धनानि च । कुष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः
 ॥ १० ॥ समर्पयेन्महादेव्यै स्वार्जितं सकलं धनम् । राष्ट्रं बलं कोशगृहं
 नवं यद्यदुपार्जितम् ॥ ११ ॥ अस्मिन्मासि मया देवि तुभ्यमेतत्समर्पितम् ।
 इति ध्यात्वा ततो देव्याः प्रसादात्प्रतिगृह्य च ॥ १२ ॥ विभज्य पञ्चधा
 सर्वं त्र्यंशान्स्वार्थं प्रकल्पयेत् । देवपित्रतिथीनां च क्रियार्थं त्वेकमादिशेत्
 ॥ १३ ॥ एकांशं गुरवे दद्यात्तेन देवो प्रसीदति । तस्य राज्यं बलं सैन्यं
 कोशः साधु विवर्द्धते ॥ १४ ॥ नाना रत्नाकरः श्रीमान्यथा पर्वणि वारिधिः ।
 ज्ञात्वा नवाक्षरं मन्त्रं जीवब्रह्मसमाश्रयम् ॥ १५ ॥ तत्त्वमस्यादिवाक्यानां
 सारं संसारभेषजम् । सप्तशत्याख्यमन्त्रस्य यावज्जीवमहं जपम् ॥ १६ ॥
 कुर्वस्ततो न प्रमादं प्राप्नुयामिति निश्चयम् । कृत्वा प्रारभ्य कुर्वीत
 ह्यकुर्वाणो विनश्यति ॥ १७ ॥ नाहं ब्रह्म निराकुर्यां मां मा ब्रह्म निरा-
 करोत् । अनिराकरणं मेऽस्तु अनिराकरणं मम ॥ १८ ॥ इति वेदान्त-
 मूर्द्धन्ये छान्दोग्यस्य प्रपञ्चनात् । प्रारभ्य तत्पारित्यागो न तस्य श्रेयसे
 ततः ॥ १९ ॥ नाब्रह्मवित्कुले तस्य जायते हि कदाचन । न दारिद्र्यं कुले
 तस्य यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ २० ॥ प्रतिशंवत्सरं कुर्याच्छारदं वार्षिकं
 तथा । तेन सर्वमवाप्नोति सुरासुरसुदुर्लभम् ॥ २१ ॥ अथ च यद्य-
 त्कल्याणं जायते तत्क्षणे क्षणे । सत्यं सत्यमिदं सर्वं गोपनीयं प्रयत्नतः
 ॥ २२ ॥ पुत्राय ब्रह्मनिष्ठाय पित्रा देयं महात्मना । अन्यथा देवता तस्मै
 शापं दद्यान्न संशयः ॥ २३ ॥ अत्रायम्भावः । पित्रार्जितं विना स्वेनैव मन्त्र-

प्राप्त्युत्तरं यद्यनूतनधनमर्जितं तदर्जनमाससम्बन्धिकृष्णचतुर्दश्यष्टम्य-
न्यतरदिवसे देवीनिकटे स्थित्वा देशकालौ संकीर्त्य दानप्रतिग्रहाख्येन
कर्मणा श्रीदेवीं प्रीणयिष्ये इति सङ्कल्प्य त्वत्प्रसूत इत्यादिस्लोकत्रयमर्था-
सन्धानपूर्वकं पठित्वा राष्ट्रं बलं कोशमिति श्लोकमन्त्रेण देवोचरणयोर्दत्त-
मिवानुसन्धाय प्रसन्नया देव्याज्ञप्त इव पुनः प्रतिग्रहं विभाव्य तन्मध्ये
पञ्चमं भागं श्रीगुरवे तत्पुत्रादिभ्यो वा दत्त्वा अवशिष्टेन चतुर्थशेन
क्रियमाणपञ्चयज्ञादिधर्मव्ययार्थं निष्काश्य इतरत्स्वार्थं यथेष्टं नियोजये-
दिति । अत्रामान्तश्चान्द्रमासोग्राह्यः अमायामूर्जितस्य तूत्तरमासे दानं
मन्त्रे पूर्वमासीत्पूहो यथान्यायं तन्त्रेण दानादावूह्य इति । दानप्रतिग्रहे
एकमन्त्रसाधारण्येन मन्त्रस्वीकारादि यावदायुषोभागत्रये प्रथमाद्येकैक-
भागेष्वेवोत्पन्नभक्त्यातिशया उपासकास्त्रिविधाः अधममध्यमोत्तमाः
तन्त्रेषु परिगणितास्तद्विदां स्पष्टाः । प्रकृते तदपवादमाह—ज्ञात्वेति ।
नवार्णमन्त्रं स्वीकृत्य महावाक्यसंवादितं तदर्थं च गुरोर्बुद्ध्याधिकृतः
सन्नद्यावधि यावज्जीवं सप्तशतीस्तवपाठं प्रमादेन सकृदपि न त्यक्ष्ये इति
दृढं सङ्कल्प्य तथैवानुतिष्ठेत् अनेन कीलकपटले ददाति प्रतिगृह्णाती-
त्यस्य ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीतेत्यस्य च प्रागुक्तोऽर्थः स्पष्टः । अयं ज्ञाना-
रम्भोयागोद्वितीयः । तत्रछान्दोग्यवाक्यं प्रमाणयति—आश्विनशुद्धप्रति-
पदि चैत्रशुक्लप्रतिपदि वा सङ्कल्प्य नवम्यन्तं तत्तत्कल्पोक्तविधिना
पूजामहोत्सवो वा यथाशक्ति कर्तव्य इति द्वितीयः पक्षः । एवं चत्वारि
कर्माणि कुर्वतश्चण्डिकोपासकस्यैव सर्वाः सिद्धयः । अत्रैषदप्यनवधाने
हानिरेवेति शिवम् ।

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे पूर्वभागे सरयूप्रसादसंगृहीते

कीलकार्यसंग्रहोनाम चतुर्थो विश्रामः ॥ ४ ॥

अथातः क्रमप्राप्तरात्रिसूक्तस्यावश्यक-

त्वात्सभाष्यतत्संगृह्यते :

अथैतद्रात्रिसूक्तं रात्रिदेवताप्रतिपादकं सा रात्रिदेवता द्वेधा । जीव-
रात्रिरीश्वररात्रिश्च । तत्राद्या प्रसिद्धा यस्यामस्मदादीनांजीवानां प्रति-
दिनं व्यवहारोलुप्यते । द्वितीया तु यस्यामीश्वरव्यवहारलोपोभवति
महाप्रलयकालरूपा । तदानीमन्यवस्त्वभावात्केवलं ब्रह्म मायात्मकमेव
वस्तुसर्वकारणमव्यक्तपदवाच्यंतिष्ठति सा द्वितीया रात्रिः । यदुक्तं देवी-
पुराणे । ब्रह्मायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका । तदधिष्ठातृदेवीतु

भुवनेषो प्रकीर्तितेति । तदेवं सर्वोत्तमदेवताप्रतिपादकस्य रात्रिसूक्तस्य भाष्यकारादिकृतं व्याख्यानद्वयं संगृह्यते । तत्र प्रथमं सायनाचार्यभाष्यमपरं देवीभागवतटीकाकारनीलकण्ठस्वामिकृतं चेति । तत्र रात्रीत्यष्ट्रचं पञ्चदशसूक्तं सोभरिपुत्रस्य कुशिकस्याषम् । यद्वा । भारद्वाजमुता रात्र्याख्या अस्य सूक्तस्य ऋषिका गायत्रं रात्रिदेवताक रात्री । कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजी । रात्रिस्तवं गायत्रमिति दुःस्वप्नदर्शने । उपोषितेन कर्त्रा पायसेन कर्त्तव्यं तत्रैतत्सूक्तं कारणत्वेन विनियुक्तम् । तथा चारण्यके श्रूयते । सपद्येतेषां किञ्चित्पश्येदुपोष्य पायसं स्थालीपाकं श्रपयित्वा रात्रीसूक्तेन प्रत्यृचं हुवेति ।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः विश्वा अधि-
श्रियोधित ॥ १ ॥

आयती आगच्छन्ती । आङ्पूर्वादितेः शतरि अदादित्वाच्छपोलुक् इणोयणिति यणादेशः उगितश्चेतिङीप् शतुरनुमइति नद्याउदात्तत्वम् । अक्षभिः अक्षिस्थानीयैः प्रकाशमानैर्नक्षत्रैः छन्दस्यपि दृश्यत इति । अक्ष-
शब्दस्यानङ्गादेशः । यद्वा अक्षभिरञ्जकैः तेजोभिः पुरुत्रा बहुषु देशेषु देवी देवनशीला । देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्यभ्यइत्यादिना पुरुषाब्दात्सप्तम्यर्थं त्रा प्रत्ययः । रात्री इयं रात्रिदेवतां व्यख्यत् विचष्टे विशेषेण पश्यति रात्रेश्चाजसविति ङीप् । ख्यातेश्छान्दसे लुङि अस्यतिवक्तीत्यादिना च्लेरङादेशः । अपि चैषा विश्वाः सर्वाः श्रियः शोभाः अध्यधित अधिधारयति दधातेर्लुङिस्थाध्वोरिच्चेतीत्त्वम् । सिचः कित्त्वं स्वादङ्गादितिसिचोलोपः ॥ १ ॥ अथद्वितीयाव्याख्या । या देवी द्योतनशीला पुरुत्रा बहुषु देशेषु सर्वदेशेषु अक्षभिः प्रकाशमानैरिन्द्रियैरुपलक्षणविधया महदादिभिस्तत्त्वैः देवी सर्ववस्तुद्योतनशीला आयती आगच्छन्ती विद्यमाना रात्री ब्रह्मा-
मायात्मिका व्यख्यतस्वोत्पादितजगज्जालसदसत्कर्मादि प्रथमतो विशेषेण पश्यति । अनन्तरं तत्तत्कर्मानुरूपफलरूपाः विश्वाः सर्वाः श्रियः सा अध्यधितअधिधारयति । ददातीत्यर्थः । अयम्भावः सर्वकारणभूता चिच्छक्तिः पूर्वकल्पीयानन्तजीवानां सदसत्कर्मण्यपरिपक्वान्यवलोक्य तत्फलप्रदानसमयाभावात्सेश्वरं प्रपञ्चं स्वस्मिन्विलापयति यावत्फल-
प्रदानसमयम् । ततः सा रात्रिरूपा चिच्छक्तिः फलप्रदानसमये प्राप्ते महदादिद्वारा प्रपञ्चं निर्माय तत्तत्प्राणिनां तत्तत्कर्माण्यसङ्कुरमवलोक-
यति । पश्चात्तत्तत्कर्मफलं ददातीत्यहोसर्वज्ञता भगवत्या रात्रेः । परा-

याश्चितः कियद्वर्णनीयेति । अस्मिन्नर्थं सर्वोऽप्युपनिषद्भागः प्रमाणमिति स्पष्टमेव तद्विदाम् । इति प्रथमा ऋक् ॥ १ ॥

ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतोदेव्यु १ द्रुतःज्योतिषा बाधते तमः ॥ २ ॥

अमर्त्या मरणरहिता । देवी देवनशीला रात्रिः उरु विस्तीर्णं अन्तरिक्षं आप्राः प्रथमतः तमसा आपूरयति । आपूरणे अदादिकः लुङ् व्यत्ययेन मध्यमः । तथा निवतः नीचीनान् लतागुल्मादीन् उद्वतः उत्थितान् वृक्षादींश्च स्वकीयेन तेजसा आवृणोति । तदनन्तरं तत्तमोऽन्धकारं ज्योतिषाग्रहनक्षत्रादिरूपेण तेजसा बाधते पीडयतीति प्रथमोऽर्थः । स्पष्टार्थस्तु इत्थं प्रथमकृत्यं वर्णयित्वा द्वितीयं कृत्यं वर्णयति— ओर्वप्राइति । अमर्त्या मरणरहिता, सा देवी देवनशीला चिच्छक्तिः परा रात्रिः उरुविस्तीर्णमन्तरिक्षमुपलक्षणविधया सर्वप्रपञ्चमाप्राः स्वस्वरूपेणापूरयति । स्वाधिष्ठानरूपे स्वाभेदेन विद्यमानं कल्पयति । तथा प्रपञ्चगतान्निवतो नीचीनान् लतागुल्मादीन् उद्वत उच्छ्रितान् वृक्षादींश्च स्वकीयेन तेजसाधिष्ठानचैतन्येनाप्राः पूरयति या रात्रिश्चित्परा सा प्रपञ्चगतानां प्राणिनां वेदोक्तानुष्ठानपराणां चित्तशुद्धिमवलोक्य तेषां तमोमूलमज्ञानं ज्योतिषा स्वाकारवृत्तिप्रतिबिम्बितस्वरूपचैतन्यज्योतिषा बाधते नाशयति । अनेन पूर्वोक्ताध्यारोपस्यवाद उक्तः । इति द्वितीया ऋक् ॥ २ ॥

निरुस्वसारमस्कृतोषसन्देव्यायती अपेदुहासतेतमः ॥ ३ ॥

आयती आगच्छन्ती । देवी देवनशीलारात्रिः स्वसारं भगिनीं उषसं निरकृत निष्करोति । प्रकाशेन संस्करोति, निर्वर्तयतीत्यर्थः । तस्यामुषसि जातायां नैशं तमः अपेदुहासते अपैव गच्छति । ओहाङ्गती लेट्यडागमः सिब्वहुलमितिसिप् । इतिप्रथमः । तात्पर्यार्थस्तु । केन प्रकारेण नाशयति तत्राह—निरुस्वसारमिति । आयती आगच्छन्ती देवनशीला रात्रिश्चिच्छक्तिः परा स्वस्य स्वसारं भगिनीं उषसंप्रकाशां प्रकाशरूपां अविद्यायाभावरणशक्तिरूपां निरस्कृत निरस्करोति । दग्धबीजमापादयतीत्यर्थः । तस्यामुषसि तथा जातायां प्रारब्धकर्मक्षये विक्षेपशक्तेर्नाशान्मूलाज्ञानरूपं तमः अपेदुहासते अपैवगच्छति । शक्तिद्वयातिरिक्तस्वरूपावस्थानोपयोगाभावादर्थान्नष्टं भवतीत्यर्थः । इति तृतीया ऋक् ॥ ३ ॥

सानो अद्य यस्या वयं निते यामन्न विक्षमहि वृक्षेन वसति
वयः ॥ ४ ॥

अद्यास्मिन्काले नोऽस्माकं सा रात्रिदेवता प्रसीदतु । यस्या रात्रेः
यामन् यामनि प्राप्तौ सत्यां वयं न्यविक्षमहि निविशामहे सुखेन गृहे
आस्महे । विशेलिङ्गि नेर्विश इत्यात्मनेपदम् । छान्दसः शपो लुक् । तत्र
दृष्टान्तः वयः पक्षिणः वृक्षेण यथा वृक्षे नीडाश्रये वसति रात्रौ निवासं
कुर्वन्ति तथा निवसाम इति प्रथमः । तात्पर्यार्थस्तु । अथास्या रात्रेः
प्रार्थनामन्त्रमाह—सानो इति । अद्यास्मिन्काले नोऽस्माकं सा रात्रिदेवता
चिच्छक्तिः परा प्रसीदतु । यस्या यामन् यामनि प्राप्तौ सत्यां वयं न्यवि-
क्षमहि निविशामहे सुखेन स्वस्वरूपे आस्महे । तत्र दृष्टान्तः—वयः
पक्षिणो वृक्षेन यथा वृक्षे नीडाश्रये वसति रात्रिनिवासं कुर्वन्ति तथा
निवासामेति चतुर्थी ऋक् ॥ ४ ॥

निग्रामासो अविक्षत निपद्वन्तो निपक्षिणः निश्येनासश्चि-
दर्थिनः ॥ ५ ॥

ग्रामासः ग्रामाः । अत्र ग्रामशब्दो जनसमूहे वर्तते । यथा ग्रामः
आगत इति सर्वजना न्यविक्षत तस्यां रात्रावागतायां निविशन्ते शेरते ।
निपूर्वाद्विशतेः छान्दसे लुङि पूर्ववदात्मनेपदम् । णल इगुपधादनिटः क्सः
क्सस्याचीति अकारलोपः । तथा पद्वन्तः पादयुक्ता गवाश्चादयश्च निवि-
शन्ते तथा पक्षिणः पक्षोपेताश्च निविशन्ते अर्थिनः अर्त्तरथोगमनं क्षीघ्र-
गमनयुक्ताः श्येनासश्चित्श्येना अपि तस्यां रात्र्यां निविशन्ते । एषा रात्रिः
सर्वाणि भूतजातानि अहनि सञ्चारेण श्रान्तानि स्वयमागत्य सुखयती-
त्यर्थः । अथ द्वितीया व्याख्या—निग्रामासो इति । ग्रामासः ग्रामाः
तत्स्थाः सर्वे जनाः पामरा अपामरा आगोपाङ्गनं न्यविक्षत तस्यां
चिच्छक्तिरूपायां रात्र्यां विद्यमानायां निविशन्ते सुखेन शेरते, तथा
पद्वन्तेः पादयुक्ता गवाश्चादयश्च निविशन्ते । तथा पक्षिणः पक्षोपेताश्च
निविशन्ते । तथार्थिनः कामार्थिनः पान्थस्थाः । तथा श्येनासः श्येना
अपि निविशन्ते । अयं भावः ये प्राणिनः परमेश्वरीनामानभिज्ञा अपि
केवलं करुणासागरायाः परायाश्चिच्छक्तेः करुणया सर्वे जनाः सुखेन
शेरते स्वस्था भवन्ति यथा मूढा बाला मातुः करुणावशाच्छेरते । एता-
दृशीयमतिकरुणावती रात्रिरस्तीति पञ्चमी ऋक् ॥ ५ ॥

यावया वृक्यं वृकं यवयस्तेनमूर्त्ये अथानः सुतरा भव ॥६॥

हे ऊर्म्ये । रात्रिनामैतत् । रात्रे वृक्यं वृकस्य स्त्रियं वृकं चास्मान्
हिसन्तं यावय अस्मत्तः पृथक् कुरु । अस्मान्वाधितुं यथा न् प्राप्नोति तथा
स्तेनं तस्करं च यवय अस्मत्तो वियोजय अथा अनन्तरं नोऽस्माकं सुतरा
सुखेन तरणीया क्षेमकरी भवेति प्रथमोऽर्थः । द्वितीयस्तु । यावयेति । हे
ऊर्म्ये रात्रिनामैतत् । रात्रिरूपिणि चिच्छक्ते, यस्मात्त्वमतदयावतो
तस्मादस्माकं पामराणां किञ्चिदपि कृतमनवेक्ष्य वृक्यं वृकस्यस्त्रियं नाना-
वासनारूपां वृकं च वृकवन्मारकं पापं चास्मान् हिसन्तं यावय अस्मत्तः
पृथक् कुरु तथा स्तेनं तस्करं चित्तवित्तापहारकं कामादिकं च यवय
अस्मत्तो वियोजय । अथानन्तरं नोऽस्माकं सुतरा सुखेन तरणीया क्षेम-
करी मोक्षदात्री भवेति षष्ठी ऋक् ॥ ६ ॥

उपमापेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमास्थित उप ऋणेवयातय ॥ ७ ॥

पेपिशत् भृशं पिशत् सर्ववस्तुष्वश्लिष्टं तमोऽन्धकारं कृष्णं कृष्ण-
वर्णं व्यक्तं विशेषेण स्वभासा सर्वस्याञ्जकं स्पष्टरूपं वा ईदृशं नैशं तमः
मामुपास्थित उपागच्छत । सङ्गतकरणे आत्मनेपदम् । हे उषः उषो
देवते त्वं ऋणेव ऋणानीव तत्तमो यातय अपगम्य स्तोतृणामृणानि यथा
धनप्रदानेनापकरोषि तथा तमोपसारयेति प्रथमोऽर्थः । स्पष्टार्थस्तु उपमा-
पेपिशदिति । हे रात्रि चिच्छक्ते परे पेपिशत् भृशं पिशत् सर्ववस्तुषु
आश्लिष्टं तमोऽज्ञानं कृष्णं कृष्णवर्णं तमः प्राधान्येन व्यक्तं विशेषेण
स्वभासा सर्वस्याञ्जकं ईदृशमज्ञानं मामुपास्थित उपागच्छत । हे उषः
रात्रिदेवते त्वमृणेव ऋणानीव तत्त्वं यातयापगमय । यथा स्तोतृणा-
मृणानि धनप्रदानेन अपाकरोषि तथा ममाज्ञानमप्यपसारयेति सप्तमी
ऋक् ॥ ७ ॥

उपतेगा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः रात्रिस्तोमं न जिग्युषे । ८

हे रात्रिदेवते । ते त्वा गाह्व पयसो दाग्धीः धेनूरिव उपेत्य आकरं
स्तुतिभिरभिमुखीकरोमि करातेश्छन्दसि लुङि कृमृट् ह्रिभ्य इतिच्लेरङा-
देशः दिवो दुहितः द्योतमानस्य सूर्यस्य पुत्रि । यद्वा दिवसस्य तनये ।
परमपि छन्दसीति परस्य षष्ठ्यन्तस्य पूर्वामन्त्रिताङ्गवद्भावात् पदद्वय-
समुदायस्याष्टमिकं सर्वानुदात्तत्वम् । त्वत्प्रसादाज्जग्युषे शत्रून् जिग्युषो
मम स्तोमं न स्तोत्रमिव हविरपि वृणीष्वध्वम् जयतेतिटः क्वसुः सङ्घिटो-
र्जैरित्यभ्यासादुत्तरजकारस्य कुत्व षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्येति चतुर्थी ।

वसोः सम्प्रसारणमिति सम्प्रसारणम् इति सायनाचार्यकृतऋक्संहिता-
भाष्येऽष्टमस्य सप्तमे चतुर्दशवर्गे रात्रिसूक्तभाष्यम् । स्पष्टार्थस्तु । उपतेगा
इति । हे रात्रि चिच्छक्ते परे ते त्वां गा इव पयसो दोग्ध्रीर्धनूरिव उपे-
त्याकरं स्तुतिजपादिभिरभिमुखीकरोमि । हे दिवः परमाकाशरूपपरमा-
त्मनो दुहितः पुत्रि परमात्मप्रकाशेन चिच्छक्तेरभिव्यज्यमानत्वाद्युक्तं
परमात्मपुत्रीत्वं त्वत्प्रसादात्कामादीञ्जत्रस्त्रिगुणे ममस्तोत्रमिष हविरपि
यथाशक्तिदत्तं वृणीष्व भजेति एषा स्पष्टार्था नीलकण्ठस्वामिकृतेति
शिवम् ।

अथातोऽनन्तरमोनमश्चण्डिकायै इत्यपि सर्वे पठन्ति तदैच्छिकं न
क्रमारूढं, निर्मूलमपि प्राचीनपुस्तकारम्भे लिखितत्वाच्छिष्टादृतत्वाच्च
तद्व्याख्यानमपि युक्तमेवेति व्याख्यायते—ॐ नमश्चण्डिकायै इति ।
अवत्युपासकमित्योम् । अवरक्षणे । अवतेष्टिलोपश्चेति मन् प्रत्ययः । तस्य
प्रत्ययस्यैव टिलोपः न प्रकृतेः, अन्यथा डिदित्येव विदध्यात् ज्वरत्वरेत्या-
दिना वकारस्योपधायाश्च ऊठी द्वयोरूठोः सवर्णे दीर्घत्वे सार्वधातुकार्द्ध-
धातुकयोरिति गुणः कृन्मेजन्त इत्यव्ययत्वमोम् । ओमित्यनुमतौ प्रोक्तं
प्रथमे वाप्युपक्रमे । ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म सर्वमन्त्राधिदैवतमिति । प्रणव-
प्रतिपाद्यायै चण्डिकायै नम इति फलितोर्थः । देवतायाः स्वस्यापकर्ष-
ज्ञानं नमः पदवाच्यम् । गुर्वादिभजने दाने नमः स्यात्कवाप्यनादर इत्य-
भिधानात् । नमः स्वस्तीत्यादिना चतुर्थी । अथ चण्डिका शब्दव्युत्पत्तिः ।
तत्र चण्डिका नाम परब्रह्मणः पट्टमहिषी देवता । चण्डभानुश्चण्डवात
इत्यादावियत्तानवच्छिन्ना साधारणगुणशालिपरत्वेन चण्डपदस्य प्रयोग-
दर्शनात् । इयता यच्च देशकालवस्तुक्रान्तत्रैविध्येन तादृशपरिच्छेद-
त्रितयराहित्यस्यापरिच्छेद्यब्रह्मोक्तेर्लिङ्गत्वात् । यद्यपि चण्डिकोप इति
धातोर्निष्पत्तिः तथापि, कस्य बिभ्यति देवाश्च कृत्तरोषस्य संयुगे इत्या-
दिना प्रसादो निष्फलोयस्य कोपोऽपि च निरर्थकः । न तं भर्तारमिच्छन्ति
षण्डं पत्तिमिव स्त्रियः । इत्यादिना च महाभयजनकत्वेनैव कोपस्य साफ-
ल्योक्तेः तादृश एव कोपे चण्डिधातोर्मुख्यवृत्त्या प्रवृत्तेः तद्वशादेव नमस्ते
रुद्रमन्यव इत्यादिना प्रथमं मन्यव एव नमस्कारदर्शनात् भीषास्माद्वातः
पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्द्वावति पञ्चमः ।
इत्यादि श्रुत्या भयजनककोपस्यापि परब्रह्मलिङ्गत्वमेव । अत एव महद्भयं
वज्रमुद्यतमिति श्रुतौ वज्रपदेन ब्रह्मैवोच्यते नायुधविशेषोभयजनकत्व-
लिङ्गादित्युक्तमुत्तरमीमांसायां कल्पनादित्यधिकरणे तस्माच्छब्दात्पुंयोग-

लक्षणे ङीषि चण्डी चण्डी एव चण्डकेति शब्दनिष्पत्तिः । तत्स्वरूपं चोक्तं रत्नत्रयपरीक्षायां दीक्षितैः । नित्यं निर्दोषगन्धं निरतिशयसुखं ब्रह्म चैतन्यमेकं धर्मो धर्मीति भेदद्वितयमिति पृथग्भूय मायावशेन । धर्मस्तत्रानुभूतिः सकलविषयिणी सर्वकार्यानुकूला शक्तिश्चेच्छादिरूपा भवति गुणगणश्चाश्रयस्त्वेक एव । कर्तृत्वं तत्र धर्मो कलयति जगतां पञ्च सृष्ट्यादि कृत्ये धर्मः पुंरूपमद्धा सकलजगदुपादानभावं विभक्ति । स्त्रीरूपं प्राप्य दिव्या भवति च महिषी स्वाश्रयस्यादिकर्तुः प्रोक्तौ धर्म-प्रभेदावपि निगमविदां धर्मवद्ब्रह्मकोटी इति । एकमेव ब्रह्म अनादि-सिद्धया मायया धर्मी धर्मश्चेति द्विविधमभूत् । सृष्ट्यारम्भे यत्प्राथमिक-मीक्षणम् । तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति । सोऽकामयत तत्तपोऽकुरुत । इत्यादि त्रिविधश्रुतिसिद्धज्ञानेच्छा क्रिया समष्ट्यात्मकमेव ब्रह्मधर्मः । सच धर्म्यभिन्न एव स्वाभाविकीज्ञानबलक्रिया चेति श्रुतेः तस्यैव धर्म-त्वाच्छक्तिरिति संज्ञा । सैवेदृग्विशेषणाद्यात्मकरूपा चण्डी । चिदादि-नामकसमष्टिवृत्तिरूपधर्मात्मकशुद्धब्रह्माभिन्नानां ज्ञानेच्छाक्रियाणां तिसृणां व्यष्टीनां महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्य इति प्रवृत्तिनिमित्तवैलक्ष्येन नामरूपान्तराणि तादृशनामरूपविशिष्टदेवतात्रयसमष्टित्वं प्रवृत्तिनिमित्ती-कृत्यधर्मं चण्डिकेति व्यवहारः । तस्यै ॐ रूपायै चिच्छक्त्यै नम इत्या-रम्भे प्रतिपाद्यवस्तु नमस्कारात्मकं मङ्गलमिति । अयातः क्रमप्राप्तनवार्ण-मन्त्रस्यादावन्ते चाष्टोत्तरशतत्रयं सम्पुटत्वेन सप्तशत्याः पाठे प्रोक्तत्वान्न-वार्णमन्त्रो विविच्यते । तत्रादौ नवार्णमन्त्रोद्धारोदेव्ययर्वशीर्षोपनिषदि वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात्पष्ठं वक्त्रसमन्वितम् । सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दु-संयुक्तश्चात्तृतीयकः । नारायणेन संमिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः । विच्चे नवार्णकोऽणुः स्थान्महदानन्ददायक इति । अस्यार्थः । वाक् वाग्भवबीजं ऐमिति । माया मायाबीजं ह्रीमिति । ब्रह्मसूः कामः क्लोमिति । तस्मा-त्कामबीजात्तत्र प्रथमोपस्थितककारात्पष्ठमक्षरं चकारः तद्वक्त्रेण मुखवृत्तेन दीर्घाकारेण समन्वितं तेन चा इति । सूर्यो मकारः अवामश्रोत्रं पञ्चम-स्वर उकारः बिन्दुरनुस्वारः तेन संयुक्तः तेनमुमिति । टात् टकारात् तृतीयो वर्णो डकारः सच नारायणेन दीर्घाकारेण संमिश्रस्तेन डाइति । वायुर्यकारः सच अधरोष्ठेन द्वादशस्वरेण युक्तः तेन यै इति । विच्चे इति स्वरूपम् । अर्णश्चब्दो वर्णपरः । सच समुदायरूपः नवार्णकोऽणुर्मन्त्रः स्यात् । महतामुपासकानामानन्ददायकः । ब्रह्म सायुज्यप्रद इत्यर्थः । एतन्मन्त्रमहिमातिशयो मन्त्रार्थश्च डामरतन्त्रे उक्तः । यथा । निधूत-

निखिलध्वान्ते नित्यमुक्ते परात्परे । अखण्डब्रह्मविद्यायै चित्सदानन्द-
रूपिणि । अनुसन्दधमहे नित्यं वयं त्वां हृदयाम्बुजे । इत्थं विशदयत्येषा
कल्याणी या नवाक्षरी । अस्या महिमलेशोऽपि गदितुं नैव शक्यते ।
बहूनां जन्मनामन्ते प्राप्यते भाग्यगौरवात् । एतमर्थं गुरोर्लब्ध्वा तस्मै
दत्त्वा च दक्षिणाम् । आशिषं च परां लब्ध्वा मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयादि-
त्यादि । अत्र प्रथमश्लोके सम्बुद्धित्रयं ततश्चतुर्थ्यन्तं ततः पुनः सम्बुद्धि-
त्रयमिति सप्तभिः पदैः क्रमेण मन्त्रे सप्तधा पदच्छेदः । पदानां तत्तद्वि-
भक्त्यन्तता तत्तदर्थता चेति कथितम् । तदुत्तरमर्द्धनाकाक्षितपदानाम-
ध्याहार उक्तः । इतरत्स्पष्टम् । सच्चिदानन्दात्मकब्रह्मधर्मत्वादेव शक्ते-
रपि त्रिरूपत्वम् । तत्र चिद्रूपा सरस्वती वाग्भवबीजेन सम्बोध्यते ज्ञाने-
नैवाज्ञाननाशान्निर्धूतनिखिलध्वान्तपदेन तद्विवरणं युक्तमेव । नित्यत्वं
त्रिकालाबाध्यत्वम् । अत एव नित्यमुक्तत्वं कल्पितवियदादिप्रपञ्चनिरा-
साधिष्ठानत्वम् । एतेन सद्रूपात्मकमहालक्ष्मीरूपस्य मायाबीजेन सम्बो-
धनमिति व्याख्यातम् । पर उत्कृष्टः सर्वानुभवसंवेद्य आनन्दएव तस्यैव
पुरुषार्थत्वात् । आत्मनः कामाय सर्वं प्रियं भवतीति श्रुत्या तदितरेषा-
मपि तदर्थत्वेनानन्दस्यैव सर्वशेषितया परत्वात् । सच मानुषानन्द-
मारभ्योत्तरोत्तरं शतगुणाधिक्येन श्रुतौ बहुविधोर्वर्णितः । तेषु परमाति-
शायी सएको ब्रह्मण आनन्द इति परमावधित्वेनाम्नात एव परात्परः ।
तेनानन्दप्रधानमहाकालीस्वरूपस्य कामबीजेन सम्बोधनं युक्तम् ।
चामुण्डाशब्दो मोक्षकारणीभूतनिर्विकल्पकवृत्तिविशेषपरः । तादर्थ्यं
चतुर्थी । चमूं सेनां वियदादिसमूहरूपां ङाति डलयो रैक्याङ्गाति आदत्ते
स्वात्मकारेण नाशयतीति व्युत्पत्तेः । पृषोदरादित्वात्सर्वं सुस्थमित्याहुः ।
अन्ये तु अखण्डब्रह्मविद्यैव चामुण्डापदस्यार्थमाहुः । यच्च । मयातवात्रोप-
हृती चण्डमुण्डौ महापशू । इत्यत्र पशुपदद्विचनयोः स्वारस्येन मूलतूल-
भेदेनाज्ञानद्वयकथनेन । यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततोलोके ख्याता देवी भविष्यसि इत्यत्रापि मूलतूलविद्य-
योरादानमेवच । गृहीत्वेति पदे नानूद्यकथनादखण्डब्रह्मविद्येति सूक्ष्मदृशां
रहस्यम् । विच्चे इति तु वित् च । इ । इति पदत्रयात्मकं बीजत्रय-
क्रमेणोक्तानाच्चित्सदानन्दानां वाचकं सम्बुद्धयन्तरम् । अस्य स्त्री ई ।
इत्यस्य ह्रस्वे सति हे आनन्दब्रह्ममहिषि इत्यर्थः । वित्पदं ज्ञानपरं
प्रसिद्धमेव । चकारोऽपि नपुंसकः सन्सत्पर इति योज्यम् । अनुसन्दधमहे
त्वां नित्यं हृदयकमले चिन्तयामः धारयाम इति । एतस्यायं संग्रहः ।

महासरस्वति चित्ते महालक्ष्मि चिदात्मिके । महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्-
 त्वज्ञानसिद्धये । अनुसन्दधमहे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे इति । अयमर्थः
 प्राचीनैर्वर्णित एवात्र सम्यक् परिस्कृत्योक्त इति एवं नवार्णमनुं सार्थ-
 श्रीगुरोः कृपया सम्प्राप्य ऋष्यादिषडङ्गन्यासपूर्वकमादावष्टोत्तरशतं
 जपेत् । ऋष्यादयस्तु मेरुतन्त्रकात्यायनीतन्त्रडामरतन्त्रचिदम्बररहस्या-
 दिषु यथा । अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चामुण्डाया महामनुम् । नववर्णमकं
 यस्य सेवनाद्भुक्तिमुक्तयः । सुरथोयत्प्रसादेन राज्यं प्राप्याभवन्मनुः ।
 संसारबन्धनिर्नाशि ज्ञानमाप्तं समाधिना । मार्कण्डेयपुराणोक्तं चरित्र-
 त्रितयं तत्र । जपाद्यस्य फलं दद्यात्तं मनुं वच्मि साम्प्रतम् । वाक्काम-
 लब्धाबीजान्ते चामुण्डायै पदं वदेत् । विच्चे नवार्णमन्त्रोऽयं शक्तिमन्त्रोत्त-
 मोत्तमः । ब्रह्मविष्णुमहेशास्तु मुनयोऽस्य प्रकीर्तिताः । छन्दांस्युक्तानि
 मुनिभिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः । देव्यः प्रोक्ता महापूर्वा काली लक्ष्मी सर-
 स्वती । नन्दा शाकम्भरी भीमाः शक्तयोऽस्य मनोः स्मृताः । स्याद्रक्त-
 दन्तिका दुर्गा भ्रामर्यो बीजसञ्चयः । अग्निवायुभगस्तत्त्वं फलं वेद-
 त्रयोद्भवम् । सर्वाभीष्टप्रसिद्धयर्थे विनियोग उदाहृतः । ऋषिषष्ठन्दो
 दैवतानि शिरोमुखहृदि न्यसेत् । स्तनयोः शक्तिबीजानि तत्त्वानि हृदये
 पुनः । एकैकेन चैकेन चतुर्भिर्युगलेन च । समस्तेन च मन्त्रेण षडङ्गानि
 प्रकल्पयेत् । ब्रह्मरन्ध्रे नेत्रयुग्मे श्रुत्योर्नासिकयोर्मुखे । पायौ मूलमनोवर्णा-
 स्ताराद्यान्नमसायुतान् । विन्यस्य मूलमुच्चाये त्रिवारं व्यापकं चरेत् ।
 एवमावश्यकं न्यासं कृत्वा ध्यायेत्समाहितः । अथ चैकादशविधं न्यासं
 भूरिफलप्रदम् । कृत्वा ध्यायेन्महाकालीं महालक्ष्मीं सरस्वतीम् । ते
 न्यासा वक्ष्यमाणान्तिमभागस्थनवार्णोपासनप्रकरणे ज्ञेयाः । अथ
 ध्यानानि । खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं सन्द-
 धतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् । यामस्तौत्सविते हरो कमलजो
 हन्तुं मधुं कैटभं नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकाम् ।
 अक्षसक्परशूगदेषुकुलिशं पद्मं धनुःकुण्डिकां दण्डं शक्तिमसि च चर्मजलजं
 घण्टां सुराभाजनम् । शूलं पाशसुदर्शनं च दधतीं हस्तैः प्रवालप्रभां सेवे
 सैरिभर्मादिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् । घण्टाशूलहलानि शङ्ख-
 मुशले चक्रं धनुः सायकान् हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्य-
 प्रभाम् । गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महापूर्वामत्र सरस्वती-
 मनुभजे शुम्भादिदैत्यादिनीम् । इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य

मालामपि सम्पूज्य देवतां व्यायज्ञोत्तरशतं मूलमन्त्रं जपित्वा मार्कण्डेय
 उवाचेत्यारभ्य सार्वणिर्भविता मनुस्मृत्यन्तं सप्तशतमन्त्रमव्यवच्छिन्नमा-
 वर्त्यन्ते पुनरष्टोत्तरशतं मन्त्रं जपित्वा ऋष्यादिकरण्डङ्गन्यासपूर्वकं जपं
 गुह्यातिगुह्येति मन्त्रेण श्रीदेव्यै समर्प्य देवीसूक्तं रहस्यत्रयं चाप्यावर्त्य
 नवभिः पुष्पाञ्जलिमन्त्रैः देवी क्षमाप्य सम्प्रार्थ्य निजकृत्यं समाप्य
 विहरेदिति शिवम् ॥ ८ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे पूर्वभागे सरयूप्रसादसंगृहीते रात्रिसूक्त-
 नवार्णमन्त्रार्थविवेचनं नाम पञ्चमोविश्रामः ॥ ५ ॥ समाप्त-
 श्रायं पूर्वभागः । अतोऽग्रे मध्यमभागो भविष्यति ।

अथ मध्यमभाग आरभ्यते

तत्रादावष्टसप्तत्युत्तरपञ्चशतश्लोकात्मके त्रिशक्तिचरित्रे त्रयोदशाध्यायरूपे होमतर्पणमार्जनसम्पुटीकरणादिषु सप्तशतीत्वेन व्यवहारे च सप्तशतमन्त्रविभागोऽत्रावश्यमपेक्षितस्तद्विना पूर्वोक्तकर्म्मणो वैषम्यं सप्तशतीत्वस्यापि व्यभिचारः । अतोऽत्र सर्वांशेन मन्त्रविभाग एवोचितः । यच्चोक्तं कात्यायनीतन्त्रादिषु । अष्टसप्तत्युत्तराणां श्लोकानां शतपञ्चकम् । प्रोक्तं सप्तशतीस्तोत्रं तत्सप्तशतसंख्यया । विभज्य जुहुयान्मन्त्री सम्पुटं वा समाचरेदिति । तद्विभागस्तु कात्यायनीतन्त्रे चिदम्बररहस्यतन्त्रे च दृश्यते । भुवनेश्वरीसंहितातन्त्रेऽपि श्रूयते । अत्रैव विषये श्रीगौडपादानां कारिकापि दृश्यते । तदत्रास्माभिः सर्वांशपूरकत्वसुगमत्वादिगुणयुतं निःसन्देहकरं चिदम्बररहस्यस्यावश्यमेव संगृह्यते । अत्रैयं व्यवस्था । आदितस्त्रयोदशाध्यायानामादौ मन्त्रविभागोऽस्ति । नत्वेकत्र । प्रथमाध्यायादारभ्यान्तिमाध्यायपर्यन्तं यस्याध्यायस्य यो वा मन्त्रविभागः स च तदध्यायारम्भे एव भवतीति । अथ प्रथमाध्यायमन्त्रविभागो यथाचिदम्बररहस्ये त्रिशत्तमे पटले । मार्कण्डेयपुराणे तु त्रिदशाध्यायसञ्ज्ञकम् । अष्टसप्तत्युत्तरं तु श्लोकानां शतपञ्चकम् ॥ १ ॥ प्रोक्तं सप्तशतीस्तोत्रं तत्सप्तशतसंख्यया । विभज्य सम्पुटीकृत्य जपहोमादिकं चरेत् ॥ २ ॥ तद्विभागक्रमं देवि सावधानावधारय । आद्येऽष्टसप्ततिश्लोकयुक्तेऽध्याये मनुञ्शृणु ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाचैकः सावर्ण्याद्यास्ततः परम् । श्लोकमन्त्राः सप्तदश चार्द्धश्लोकात्मकस्ततः ॥ ४ ॥ एकोनविंशदेवन्तु वैश्योक्तिर्विशतिस्तथा । पुनरर्द्धं पुनःश्लोकत्रयमर्द्धं पुनर्भवेत् ॥ ५ ॥ पञ्चविंशतिरेवं स्याद्राजा षड्विंशतिस्तथा । अर्द्धश्लोकात्मकं मन्त्रद्वयं वैश्यः पुनर्भवेत् ॥ ६ ॥ पुनरर्द्धं पुनःश्लोकत्रयमर्द्धं पुनर्भवेत् । मार्कण्डेयः पुनश्चार्द्धश्लोकः श्लोकात्मकः पुनः ॥ ७ ॥ अर्द्धश्लोकात्मको मन्त्रो राजार्द्धश्लोकमन्त्रकः । मन्त्राश्चत्वारिंशदेवं श्लोकमन्त्रचतुष्टयम् ॥ ८ ॥ पुनरर्द्धमृषिश्चार्द्धं श्लोकमन्त्राः पुनर्दश । पुनरर्द्धं च राजोक्तिरेकोना षष्टिरुच्यते ॥ ९ ॥ पुनरर्द्धं पुनः श्लोकः पुनरर्द्धमृषिस्ततः । पुनरर्द्धं पुनः श्लोकाः षण्मन्त्राः पुनरर्द्धकः ॥ १० ॥ निद्रां भगवतीमर्द्धश्चैकसप्ततिरुच्यते ।

ब्रह्माद्वैश्लोकमन्त्रोऽथ श्लोकमन्त्रास्त्रयोदश ॥११॥ अद्वैश्लोककृषिश्राद्ध-
श्लोकः श्लोकास्तु पञ्च वै । पुनरद्वैश्लोकमन्त्राणां सप्तचनवतिः स्मृता ॥१२॥
भगवानद्वैश्लोकमन्त्रौद्रावृषिः श्लोकाद्वैश्लोकं पुनः । श्लोकमन्त्रकृषिः श्लोकद्वयं
मन्त्रद्वयं भवेत् ॥१३॥ श्लोकानामष्टसप्तत्या चतुर्भिरधिकं शतम् । अत्राद्य-
चरितं नाम प्रथमाध्यायसंज्ञकमिति ॥ १४ ॥ इति चिदम्बरे त्रिंशत्तम-
पटले प्रथमाध्यायमन्त्रविभागश्लोकाः ।

अथ सप्तशत्यारम्भः

इह खलु तत्र भवान्देवायनशिष्यो जैमिनिः व्यासमुखादखिलं धर्मजातं
श्रुत्वाप्यवसिष्ठान्कांश्चित्प्रश्नान्प्रष्टुकामो भगवन्तं मार्कण्डेयं पृष्ठवानपि
मार्कण्डेयेन श्रीभगवद्व्यानप्रवणचित्ततयावसराभावाद्विन्ध्याचलनिवासि-
चतुःपक्षिद्वारा बोधितः । तैश्च पक्षिभिर्मार्कण्डेयभागुरिसम्वादमुपक्रम्य
मन्वन्तरकथाप्रसङ्गेन सप्तमन्वन्तराणि निर्वर्ण्याष्टममन्वन्तरं प्रोच्यते
मार्कण्डेयेत्यादिना ।

ॐ मार्कण्डेय उवाच । मन्त्रः १

मार्कण्डेय इति । मृकण्डोरपत्यं मार्कण्डेयः । शुभ्रादित्वात् ढक् ढेलोप
इत्युकारलोपः । ढस्य एयादेशः । उवाच ऊचिवान् स्वांशेष्यायाष्टममनु-
त्पत्तिहेतुमुक्तवानिति ॥ १ ॥

किमुक्तवांस्तत्राह

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।

निशामयतदुत्पत्तिं विस्तराद्गदतोमम । मन्त्रः २ । श्लो० १

सावर्णिरिति । सवर्णा छाया, तस्या अपत्यं सावर्णिः । ब्रह्मादेरा-
कृतिगणत्वादिम् । यद्वा । अग्रजस्य वैवस्वतस्य मनोः समानो वर्णोऽस्येति
सवर्णः । सवर्ण एव सावर्णिः स्वार्थे तद्धिताभिधानादिम् । तथा च विष्णु-
पुराणे सावर्णिशब्दस्य निरुक्तिः । छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो
मनुः । पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन कथ्यत इति । सूर्यतनय इति ।
दक्षसावर्ण्यादीनां निराकरणार्थम् । यः सावर्णिर्ऽष्टमो मनुः सुरथः कथ्यते ।
तदुत्पत्तिं निशामय । पश्येत्यर्थः । शम आलोचने इति चौरादिकस्येदं
रूपम् । तेन शमोदर्शनं इति शाम्यतेदर्शने मित्वनिषेधस्य नायं विषयः ।
धातूनामनेकार्थत्वाच्छ्रवणे वृत्तिः निशामयति रूपं चक्षुषा पश्यतीतिवत् ।
हे शिष्य, दत्तावधानः सन्पश्येत्यर्थः । यथा । निःशर्करमिदं तीर्थं भारद्वाज

निशामयेति । चक्षुषा पश्येत्यर्थः । तदुत्पत्तिमिति वाच्यवाचकभेदाभि-
प्रायेण विस्तरात्प्रपञ्चात् । गदतः कथयतः ममेति अपवादविषये क्वचि-
दस्मदित्यस्यापि ममादेशविधानात् । पञ्चम्यर्थे षष्ठी । ममेत्यर्थे विभक्ति-
प्रतिरूपकमव्ययं वा । अन्ये तु मम गदतः ममवचनादित्याहुः । गदनं
गदः घञर्थे कः तदन्तात्तस् । यद्वा गदतो मम विस्तरात् शब्दप्रपञ्चात् ।
विस्तारो विग्रहो व्यासः सन्तु शब्दस्य विस्तर इत्यभिधानात् । इत्यादि-
कल्पना कल्पनैवेति ॥ १ ॥

सप्तममनुसमानैश्वर्यः सार्वर्णिरपीत्याह :

महामायानुभावेन यथामन्वन्तराधिपः ।

स बभूव महाभागः सार्वर्णिस्तनयो रवेः । मं० ३ । श्लो० २

महामायेति । यथा स मन्वन्तराधिपो बभूव तथा रवेस्तनयः
सार्वर्णिरपि मन्वन्तराधिपो बभूवेत्यध्याहृताभ्यां तथापि पदाभ्यां सम-
मन्वयोऽनन्तव्यः । स पूर्वप्रपञ्चितसम्भवः रवेस्तनयः वैवस्वतः मन्वन्तरा-
धिपः मनुनामन्तरमर्वाधिः किञ्चिदधिकैकसप्ततिचतुर्युगात्मकः कालः तस्य
अधिपः स्वामी यथा तथा, मात्यस्यां विश्वमिति माया अधटितघटना
पटीयसी । माछाससिभ्यो यः । टाप् । माकाभ्यामयजिति शन्तनुः ।
मालक्ष्मीः अयः शुभावहोत्रिधिर्यस्याः सेति माया । अथवा अः विष्णुः
अस्य विष्णोः माया अमाया महती चासावमाया चेति महामाया । वा
महैरुत्सवैरासमन्तादभिव्याप्तं मां लक्ष्मीमुपासकाय आपयति प्रापयतीति
महामाया । प्यन्तादपगतावित्यस्मात्पचादजन्तादृष्टिरूपम् । तस्याः अनु-
पश्चादध्यवसायादनन्तरं भावः परमात्मतयानुसन्धानं अनुभावः । स्वं
भावं भावयन्योगीतिस्मरणात् । पश्चात्सादृश्ययोरनु । भावः सत्तास्व-
भावेऽपि प्रायश्चेष्टात्मजन्मस्विति कोशात् । यद्वा । विषयविशदशप्रतीति-
साधनं माया तस्याश्च महत्त्वं सर्वविषयत्वमिति सर्वप्राणिमोहहेतुभूताया
महामायाया ईश्वरशक्तेरनुभावेनानुग्रहमहिम्ना सार्वर्णिर्बभूवेत्यर्थः । अनु-
भावः प्रभावे च सतां च मतिनिश्चये इत्यभिधानात् । अन्तरशब्दस्या-
वधिवाचित्वे प्रमाणं । अन्तरवकाशावधिपरिधानान्तर्द्विभेदतादर्थ्ये ।
छिद्रात्मीयविना बहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि चेत्यमरः । मन्वन्तरं मनोः-
काल इतिविष्णुपुराणे मार्कण्डेयस्य सप्तकल्पान्त जीवित्वेन प्रतिकल्पं
मनूनामुत्पत्तिविनाशदशानादतीतकल्पजसावर्ण्यपेक्षया वरदानकालापेक्षया
वा बभूवोत भूतनिर्देशः । व्यत्ययेन वा । कीदृशोऽसौ महाभागः । भज-

सेवायां भावे घञ् च जोः कुविण्यतोरिति कुत्वं । महान्भागो भक्तिर्यस्य ।
 यद्वा भगस्यैश्वर्यादेरिदं भागं भवितव्यतालक्षणं वस्तु भाग्यं, महद्भागं
 भाग्यं यस्य सः । महानसाधारणो भागः भगसमुदायो यस्य । ऐश्वर्यस्य
 समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः । ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इति
 स्मृतइति विष्णुपुराणोक्तेः । तनोति कुलमिति तनयः पुत्रः । ख्यते
 तपते इति रविः । भगं श्रीकाममाहात्म्यवीर्ययत्नाङ्गकीर्तिषु इत्यमरः ।
 रवेस्तनय इत्यादरे पुनरुक्तिः ॥ २ ॥

(कथं सावर्णेर्देव्यनुग्रहेण मन्त्रन्तराधिकार इति शङ्काया-
 मितिहासमवतारयति)

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।

सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले । मं० ४ । श्लो० ३

स्वारोचिषेऽन्तर इति । स्वाः रोचिषो यस्येति स्वारोचिरग्निः
 तस्यापत्यं स्वारोचिषो द्वितीयो मनुः । स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः
 सुतोऽभवदिति श्रीभागवतपुराणात् । एतेन तस्यापत्यमित्यण् व्यत्ययेन
 पष्ठ्यर्थे सप्तमी । तेन स्वारोचिषस्य मनोरन्तरे अवधौ पूर्वं कथा काला-
 पेक्षया अपेक्षणक्रियापेक्षया द्वितीया । चित्रायां भवश्चैत्रः । तत्र भव
 इत्यण् चित्रस्य अद्भुतस्य आश्रयो वा चैत्रः । चैत्रनामा स्वारोचिषमनोः
 पुत्रस्य वंशे समुद्भव उत्पत्तिर्यस्य एवंभूतः । सुष्ठु रथो यस्य स सुरथः
 सुरथसंज्ञः समस्ते क्षितिमण्डले अखिलभूवलये राजा अभूत् । नामेति
 प्रसिद्धौ । वंशोऽन्वयायः सन्तान इति त्रिकाण्डी । विद्यया जन्मना वा
 प्राणिनामन्यतरलक्षणः वंश इत्युच्यते ॥ ३ ॥

(नीतिमतोऽपि तस्य दैवाद्राज्यच्युतिहेतुभूतावैरिण
 आसन्नित्याह)

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।

बभूवुः शत्रवोभूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा । मं० ५ । श्लो० ४

तस्येति । प्रजाः प्रकृतीः । उरसा निर्मितानौरसान् उरसो णच्चेत्यण्
 पुत्रान्धर्मपत्नीजातानिव सम्यक् नीतिपूर्वकं यथास्यात्तथा पालयतः तस्य
 सुरथस्य कोलां कोलानाम्नीं दक्षिणदेशप्रसिद्धां पुरीं विध्वंसयितुं शीलं
 येषां ते कोलाविध्वंसित्वेन प्रसिद्धाः भूपाः राजानः तदा तस्मिन्काले

शत्रवः बभूवुः । कोलापुरे महालक्ष्मीरिति मात्स्ये । अगस्त्यस्य कोलापुरे महालक्ष्म्या दर्शनं काशीखण्डेऽपि वर्णितं । कोलां विध्वंसितवन्त इत्यन्वयार्थः । कोलाविध्वंसिनस्तथेति मैथिलाः । अत्र तस्य शत्रवस्तथा बभूवुः यथा कोलाविध्वंसिन इत्यर्थः । तथा तादृशा उद्रिक्ता इति वा । पुत इति अव्ययं नरकवाचि तस्मात्पितरं त्रायत इति पुत्रः । पुनातीति पुत्रो वा पुत्रो ह्रस्वश्चेति त्रन् ॥ ४ ॥

ततः किं प्रवृत्तमित्याह

तस्य तैरभवद्युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।

न्यूनैरपिसत्तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः । मं० ६ । श्लो० ५

तस्य तैरिति दण्डो हस्त्यश्वादिसमूहोऽस्यास्तीति दण्डी प्राशस्त्ये अत इतइनठनावितीन्प्रत्ययः । अतिप्रबलश्चासौ दण्डी च तस्य । दमधातोर्जमन्ताहुः । दण्डः सैन्ये दमे दमे । मानव्यूहप्रभेदेऽवश्वेऽर्कानुचरे पथि । प्रकाण्डे लगुडे कोणे चतुर्थोपायगर्वयोरिति विश्वः । यद्वा । अतिप्रबलान्दण्डयितुं शीलमस्येति ताच्छील्ये णिनिः । एवं भूतस्य सुरथस्य तैः कोलाविध्वंसिभिः सह युद्धं संप्रहारः अभवत् । न्यूनैरल्पसाधनैरपि तैः सुरथो जितः अभिभूतः । जयभङ्गयोर्देवाधीनत्वादिति भावः । न कर्मधारयान्मत्वर्थीय इति भाष्यविरोधात् अतिप्रबलः दण्डो यस्येति विग्रहो न साधीयानिति । जित इति । जि अभिभवे अस्मात् क्तः ॥ ५ ॥

(ततो मण्डलानां ग्रहणमाह)

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।

आक्रान्तः समहाभागस्तैस्तदा प्रबलैरिभिः । मं० ७ श्लो० ६

तत इति । ततः पराजयानन्तरं तदा प्रबलैरिभिः तैराक्रान्तोऽभिभूतः । छिन्नदेशो वा । सम्प्रति राज्यापायेऽपि भाव्यदेव्यनुग्रहसम्पत्त्यमानमन्वधिकारत्वात् महाभागः सुरथः स्वपुरं आत्मकृतनगरीं मूलराजधानीं वा आयातः निजदेशाधिपः मूलराष्ट्राध्यक्षोऽभवत् । वस्तुतस्तु देशविषये तूपवर्तनमित्यभिधानाद्देशशब्दोऽयं स्थानमात्रमाह न जनपदं, एवं च अपीति शेषः । निजदेशाधिपोऽपि स्वसम्बन्धिस्थानमात्राधिपोऽपि सुरथस्तैराक्रान्तः स्वपुरमायातोऽभवदित्यन्वयः । स्वपुरमित्यत्र, ऋक्पूरब्धुः पथामित्यकारप्रत्ययः । आक्रान्त इत्यत्र क्रमेः कर्तयात्मनेपदविषया-

त्कृत इग्निषेधोवाच्य इति वार्तिकेणेण निषेधः । अनुनासिकस्य वधीति-
दीर्घः ॥ ६ ॥

(तत्रापि दुःखस्थामाह)

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।

कोशो बलं चापहतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥ मं० ८ श्लो० ७

अमात्यैरिति । तत्र स्वपुरेऽपि ततस्तस्येत्यर्थः । सार्वविभक्ति-
कस्तसिः । दुर्बलस्य शत्रुक्षपितबलस्य अमात्यैः मन्त्रिभिः बलिभिः
सञ्जातबलैः सेनावद्भिर्वा दुष्टैः जातप्रकोपैः दुरात्मभिः लोभाद्यपहतान्तः-
करणैः कोशोऽर्थसञ्चयः अपहतः बलं सैन्यं चापहतं । अपहतः अपहतं चेति
विगृह्य, नपुंसकमनपुंसके नैकवच्चास्यान्यतरस्यामिति नपुंसकशेष एक-
वद्भावश्च । अमासहसमीपेभवा अमात्याः । अव्ययात्यप् इति त्यप् । मन्त्री
धी सचिवोमात्यइत्यमरः । कोशः स्यादर्थसञ्चय इति हैमः । अपिशब्दो-
गर्हयाम् । अपिः पदार्थकुत्सनवैवर्ण्यसम्पत्त्यलाभेऽप्यभिधानात् ॥ ७ ॥

(कोशादिहरणेऽपि विपत्तिमाह)

ततो मृगयाव्याजेन हतस्वाम्यः स भूपतिः ।

एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥ मं० ९ । श्लो० ८

तत इति । ततस्तस्मात्पुरात् हतं स्वामिन ईश्वरस्य भावः स्वाम्यं
यस्मात्सः । ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ् । स भुवो भूमेः पतिः सुरथः एकाकी
सहायरहितः हयं तुरगमारुह्य मृग्यन्तेऽप्यव्यन्ते मृगादयो यत्र सा मृगया ।
परिचर्या परिसर्या मृगयाटाट्यानामुपसंख्यानामिति साधुः मृगयायाः
आखेटस्य व्याजेन छलेन गहनं दुःखगम्यं वनं जगाम गाह्यत इति गाहू-
विलोडने । बहुलमन्यत्रापीतियुच् कृच्छ्रगहनयोरिति । निर्देशाद्भ्रुवः ।
गह्वरे कालले चापि गहनं वनदुःखयोरिति हैमः । हयं मार्गमिति यत्तदन-
भिधानान्नयुक्तं आच्छेदनं मृगव्यं स्यादाखेटो मृगयास्त्रियामित्यमरः ।
कपटोऽस्त्रीव्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतव इत्यमरः । एकाकीत्यत्र, एका-
दाकिनिच्चासहाय इत्याकिनिच् ॥ ८ ॥

(वनेऽपि सत्स्थानप्राप्तिमाह)

स तत्राश्रममद्राक्षीद्विजवर्यस्य मेधसः ।

प्रशान्तश्चापदाकीर्णं मुनिं शिष्योपशोभितम् ॥ मं० १० श्लो० ९

स तत्रेति । स सुरथः तत्र वने द्विजेषु वर्यस्य श्रेष्ठस्य मेधसः । मेध-

सङ्गमे मेधते सर्वं सङ्गच्छते अस्मिन्निति मेधाः । सर्वधातुभ्योऽमुनिमिति
अमुप्रत्ययः तस्य मेधो नाम्नो मुनेः आश्रमं मुनिनिवासोवितं स्थान-
मद्राक्षीत् । मुनेस्तपः प्रभावात् किंभूतमाश्रमं, आश्रम्यते अत्रेत्याश्रमः ।
श्रमु तपसि । घञ् । नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिर्न । प्रशान्तेः हिंसोपरतैः
श्वापदैः हिंसपशुभिराकीर्णं व्याप्तं । पुनः किंभूतमाश्रमं मुनेर्मधसः शिष्याः ।
मुनयो मननशीलाश्च ते शिष्याश्चेति वा । मुनयश्च शिष्याश्चेति वा ।
तेरुपशोभितम् । शिष्यस्त इति शिष्यः । शासु अनुशिष्टौ । एतिस्तुशासिति
क्यप् । शास इदं हलोः । शासिवसीतिपत्वम् । अलंकृतं । वृज्वरणे ऋह-
लोप्यंत् । सुष्ठुमेधा यस्येति बहुव्रीहो नित्यमसिचप्रजामेधयोरित्यक्षिच्
प्रत्ययान्तः अत्र सुमेधस्—शब्दो मुनिवाची । आकीर्णं इति कृविक्षेपे
आहपूर्वः । ततः क्तः । त्वादिभ्य इति निष्ठाणत्वम् । ऋतइडातोः ।
उपधायाश्चेति दीर्घः । शुनः इव पदानि येषां त इति विग्रहे शुनो दन्त-
दंष्ट्रेति दीर्घत्वं श्वापदप्रयोगनिष्पत्तिः । श्वापदा हिंसपशव इति हारा-
वली । मेधस इति वस्तुतो वसिष्ठस्य नामान्तरम् । यच्च लक्ष्मीतन्त्रे
अमुष्याः सावताराया महालक्ष्म्या मयानघ । जन्मानि चरितैः साद्वं
स्तोत्रवै वेदवादिना । कथितानि पुरा शक वसिष्ठेन महात्मना । स्वारो-
विषेः न्तरे प्राप्ते सुरथाय महात्मने । समाधये च वैश्याय प्रणताय च
सीदत इति । तन्त्रान्तरेऽपि । श्रीशस्तु रूपमास्थाय विप्रस्य च सुमेधसः ।
स्वमायां जापयामास सुरथाय समाधये इति ॥ ६ ॥

(आश्रमस्थस्य वृत्तमाह)

तस्यौ किञ्चित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।

इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ मं० ११ श्लो० १०

तस्याविति । हे मुनिवर कोष्ठुके । सः सुरथः तेन मुनिना मेधसा
सत्कृतः पूजितः इतश्चेतश्च अनियतदिग्देशं विचरन् भ्रममाणः तस्मिन्ना-
श्रमे कञ्चित्कालं तस्यौ । कञ्चित्कालमिति अत्यन्तसंयोगे द्वितीया ।
मुनिवरस्य मेधस आश्रमे इति वा तस्मिन्नाश्रमे तेन मुनिना इतः प्राप्तः
सत्कृतश्च सन् किञ्चित्कालं चेतश्च स्वान्तं विचरन् तपःक्षमं स्यान्न वेति
चिन्तयन् तस्याविति ॥ १० ॥

(तत्रस्थितस्य मानसं व्यापारमाह)

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।

मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मयाहोनं पुरं हि तत् ॥ मं० १२ श्लो० ११

मद्भृत्यैस्तैरसदृष्टैर्द्धर्मतः पाल्यते न वा ।

सोऽचिन्तयदिति सादृश्लोकेनान्वयः । ममेति षष्ठ्यन्तप्रतिरूप-
कमव्ययम् । ममभावो ममत्वं भावे त्वः । ममत्वेन ममेदमित्यभिमानेन
आकृष्टा चेतना बुद्धिर्यस्यसः सुरथः तदा आश्रमप्राप्त्यवसरे तत्र-स्थितः
सन् अचिन्तयत् वक्ष्यमाणपदार्थजातमस्मरत् । तदाह मत्पूर्वैरिति ।
यत्पुरं मत्पूर्वमदीयप्राचीनपुरुषैश्चैत्रादिभिः पूर्वं प्राक्काले पालितं रक्षितं
पूर्वमित्यत्यन्तसंयोगद्वितीया तत् मया हीनं त्यक्तं । ओहाक् त्यागे क्तः
घुमास्थेतीत्वं ओदितश्चेति निष्ठानत्वम् । तच्चिन्तायां हेतुः । यच्च
स्मृतौ । स्वान्ववायागतं यस्तु धर्माधर्मोपसाधनम् । स्वान्ववायोद्धवैः
सम्यक् पालनीयं हि धर्मत इति । तत्पुरं असत् असमीचीनं वृत्तं आचरणं
येषां तैरिति हेतुगर्भविशेषणं मद्भृत्यैः ममसेवकैः । भूतेः सञ्ज्ञायामिति
व्यप । धर्मतः नीत्या पाल्यते वा न पाल्यत इति अचिन्तयदित्यनेना-
न्वयः । यद्वा धर्मतः धर्ममाश्रित्य दुःखेभ्यः पाल्यते नवेति ल्यब् लोपे
पञ्चमीति । हिर्हेताववधारणे । वृत्तं पद्यं चरित्रे त्रिष्विति । धर्माः पुण्य-
यमन्यायस्वभावाचारसोमपाइत्यमरः ॥ ११ ॥

न जाने सप्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥ मं० १३ श्लो० १२

मम वैरिवशं यातः कान्भागानुपलप्स्यते ।

न जान इति । सप्रधानः महामात्रसहितः सः प्रसिद्धः दाम इति
वा छेदः । दामानि द्यतीति दामदः । यात इति कः । नपुंसि दाम-
सन्दानमित्यमरः । सः प्रधानः मुख्यो वा लिङ्गव्यत्यय आर्षः । ये प्रधानाः
पुरोगमाः इति लङ्काकाण्डेऽपि । सदा सर्वस्मिन्काले मदो दानधारा
यस्य सः महामात्राप्रधानानीत्यमरवचनेन । प्रधानं स्यान्महामात्रं प्रकृतौ
परमात्मनि । प्रज्ञायामपि च क्लीबमेकत्वे तूतमे सदेति कोषेण च यद्यपि
प्रधानशब्दस्य क्लीबत्वमुच्यते तथापि महामात्रः प्रधानः स्यादिति
पुंस्काण्डे एवोपात्तवचनात्पुंस्लिङ्गोऽपि । मे मम शूरहस्ती शूरनामा शूरो
वा हस्ती मम वैरिवशं मदीयशत्रुपारतन्त्र्ये यातः प्राप्तः कान्कियतः
क्रीटशान्वा भोगान् लप्स्यत इति अहं न जाने । न जानामीत्यर्थः । अत्र
कर्त्तरि लट् अनुपसर्गाच्च इत्यात्मनेपदं उत्तमपुरुषैकवचनं । पालनेभ्य-
वहारे च निर्वेशे च पणे स्त्रियाम् । भोगः सुखे भुजङ्गानां शरीरे कर्ण-
योरिति कोशान्तरम् । रिपो वैरिसपत्नारिद्विषद्वेषण दुर्द्वन्द्व इति
त्रिकाण्डी । उपलप्स्यत इति लभेर्लटिस्थे खरिचेति भस्य चत्वं रूपम् ॥ १२ ॥

ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥ मं० १४ श्लो० १३

अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।

ये ममेति । प्रसादस्तुष्टिदानं, धनं वर्षदेयं दानं, भोजनं प्रतिदिनं देयं । अथवा प्रसादोऽनुग्रहः, धनं प्रीतिदानं, भोजनं वेतनं, तैर्हेतुभूतैः ये मम अनुगताः मामन्वजीवन् तेऽद्य सम्प्रति अन्येषां महीभृतां राज्ञां प्रसाद-
धनभोजनैरेव हेतुभूतैरनुवृत्तिं सेवां कुर्वन्ति । ध्रुवमिति निश्चये वितर्कं
वा प्रसादेत्यादि साकांक्षो देहलीदोषकन्यायेनोभयत्र सम्बध्यते । ममेति
षष्ठी न कारकषष्ठी नलोकेति तस्यानिषेधात् । ध्रुवोभभेदे क्लीबन्तु
निश्चिते शाश्वतेऽत्रिष्वित्यमरः ॥ १३ ॥

असम्पन्नव्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥ मं० १५ श्लो० १४

सञ्चितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशोगमिष्यति ।

एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥ मं० १६ श्लो० १५

असम्पन्नगति । असम्पन्नव्ययशीलैः अनुचितव्ययपरैः सततं निरन्तरं
व्ययं नाशं कुर्वद्भिः तैः प्रतिपक्षैः हेतुभूतैः अतिदुःखेन महता कष्टेन
सञ्चितः कोशः क्षयं गमिष्यति । यच्च । आगमे च व्ययाभावे व्यये
चानागमे क्रमात् । कोशस्य वृद्धिनाशो स्तस्तत्साम्ये पूर्वरूपतेति नीतेः ।
दुःखतत्क्रियायामिति धातोरतिदुःखमिति रूपं दुर्गतं खमिन्द्रियं यस्मिन्नि-
तिवा । सर्वथापि नरणाभ्यामिति णत्वप्रसङ्गः । धातुना प्रयोगप्रसङ्गे
सिद्धिपक्षे तत्र विसर्गस्यैवोपलभ्यमानत्वेन रात्परत्वाभावात् । द्वितीयपक्षे
दुरित्यस्य पदत्वेन समानपदत्वाभावात् व्ययेति । व्ययनं व्ययः वित्तो-
त्सर्गः । व्ययवित्तसमुत्सर्ग इति चौरादिकाददन्ताद्धावे घञि रूपम् ।
व्यय गतावित्यस्माद्वा पुंसीति घः । शीलं स्वभावे सद्बृत्ते इत्यमरः ॥ १४ ॥
एतच्चेति । पृथिव्याविदितः पार्थिवः । तत्रविदित इत्यञ् । यद्वा पृथिव्या
ईश्वरः पार्थिवः । तस्येदमित्यण् । एतत् मद्भृत्यैरित्यादि अन्यच्च विष-
यान्तरं सततं निरन्तरं । सततं विस्तृतमिति वा । चिन्तयामास ॥ १५ ॥

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।

स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥ मं० १७ श्लो० १६

तत्रेति । सः तत्र तपोवने आश्रमस्य । अभ्यश्यते व्याप्यत इत्य-
भ्याशः अशूङ् व्याप्तौ तालव्यान्तः कर्मणि घञ् । अभ्याशे निकटे एकं
द्वितीयरहितं वैश्यं वणिजं ददर्श । वैश्यमिति विश प्रवेशने क्विप् स्वार्थे

प्यत्र । श्रामिवैश्ययोरिति निर्देशात् । विप्रेति क्रोष्टुकेः सम्बोधनम् ।
विप्राश्रमाभ्याश्रित्येकपदं वा । अभ्याशेनिकटाभ्यर्ण इत्यमरः । भो इत्या-
मन्त्रणेऽव्ययम् । कः किनामा किवर्णो वा त्वं च पुनरत्र तवागमने को
हेतुः किनिमित्तं । पृष्ठइति प्रच्छ ज्ञीप्सायां क्तः ग्रहिज्येति सम्प्रसारणं ।
व्रश्चेति षः । ण्टुनाण्टुः ॥ १६ ॥

सशोकइवकस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।

स शोकेति । तथा शोकेन इष्टवियोगचिन्तनेन सहित इव अपहत-
शरीरत्वात् दुःखनिबन्धनचिन्तावशाद् दुःस्थं विकृतं मनो यस्यैवंभूत इव
क्रियास्वस्थिरत्वात् इवेतिसाम्ये शारदाभ्रमिव पेलवमायुरितिवत् त्वं
मया कस्माद्धेतोर्लक्ष्यसे हेतुश्चागमनेत्रेत्यस्येव हेतुग्रहणस्य पञ्चमीकल्पनं
निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्राय दर्शनमित्यनेन कस्मादिति पञ्चमी ।
मन्युशोकौतु शुक् स्त्रियामित्यमरः । लक्ष्यस इत्यत्र कर्मणि यक् । स पृष्ठ
इति पूर्वान्वयि ।

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥ मं. १८ श्लो. १७

प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥ मं. १९.

वैश्य उवाच ॥ मं. २० ॥

इत्याकर्ण्येति । इति कस्त्वमित्यादिप्रणयेन प्रेम्णा विश्रम्भेण वा
उदितं उदीरितं भूपतेः वचः आकर्ण्य प्रश्रयेण विनयेन अवनतः नम्रः
सवैश्यः तं नृपं प्रत्युवाच प्रत्युत्तरमवदत् । विश्रम्भः प्रणयेऽपि चेत्यमरः ।
वैश्यउवाचेति यद्यप्ययमर्थः पूर्वश्लोक एवोपलभ्यते तथापि पुराण-
सम्प्रदायोऽयं स्पष्टार्थः ॥ १७ ॥

(किमुवाचेत्याह समाधिरिति चतुर्भिः श्लोकैः)

समाधिनाम वैश्योहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥ मं. २१ श्लो. १८

पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।

समाधिरिति । धनिनामाढ्यानां कुले उत्पन्नः । साधुवृत्ति पर-
कार्यमिति साधवः । साध संसिद्धौ । कृपापाजिमिस्त्रदिसाव्यसूभ्य उगेति
उण् । धनलोभादसाधुभिः धनेषु गाध्यादसाधुभिः अशिष्टाचरणैः पुत्रैः
दारैः नान्यदीयकार्यसाधनपरैर्वैतिहेतुगर्भं विशेषणम् । पुंनाम्नो नरका-
त्पितरं त्रायन्त इति पुत्राः आत्मजाः । दारयन्ति भेदयन्ति भातनिति
दाराः पत्नी । दृ विदारणे णिजन्तम् । दारजारौकर्तृणि लुक्चेति षञ् ।

अथ पुंभूमिदारा इत्यमरः एवंभूतैः पुत्रदारैः पुत्रैश्च दारैश्च चकाराद्-
भृत्यैः निरस्तः प्रत्याख्यातः समाधिनामावैश्योऽहमस्मीति शेषः । नामेति
प्रसिद्धौ । समाधिरिति समःसर्वपर्यायः, आधिर्जनोव्यथा यस्यासौ
समाधिः । आधिरित्यत्रोपसर्गे घोः किः । आतोलोपः । भार्याजायाय
पुंभूमिदाराइत्यमरः । निरस्तइति निरपूर्वादसुक्षेपणइतिधातोःक्तः ।
प्रत्यादिष्टो निरस्तः स्यात्प्रत्याख्यातो निराकृत इत्यमरः । अत्र पूर्वार्द्धेन
कस्त्वम्भो इत्यस्योत्तरमुक्तम् । उत्तरार्द्धेन तु सशोक इव कस्मादित्यस्यो-
त्तरम् ॥ १८ ॥

(शोकेहेतवन्तरं वदन्नत्रागमने निमित्तमाह)

विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥ मं. २२ श्लो. १९
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।

विहीनश्चेति । अत्रविहीनश्चधनैरितिगौडपाठः । स्वजनैरिति
दाक्षिणात्याः । चोऽप्यर्थः । हेआप्त आकस्मिकेष्ट । केवलं पुत्रदारैरे वन
निराकृतः । किन्तु बन्धवो ज्ञातयस्तैरपि निराकृतःप्रत्याख्यातः मे धनैः
धनवत्प्रीतिभाजनैः पुत्रैर्दारैश्च धनं आदाय विहीनस्त्यक्तोऽतएव दुःखी अहं
वनमभ्यागत इत्यन्वयः । आप्तैस्तैरनाप्तप्रायैः पुत्रबन्धुप्रभृतिभिरनाप्त-
वत्परित्यक्तस्य मम अहेतुको बन्धुस्त्वमित्याप्तेतिसम्बोधनाभिप्रायः । पुन-
रसौ स्वधनं यथाकथञ्चिन्मा गृह्णातिवति बुद्ध्या पुत्रदारैस्त्यक्तो बन्धु-
भिश्च । यः प्राणप्रियैः पुत्रदारैः परित्यक्तः सोऽस्माभिः सजातीयतामात्र-
परिचयस्नेहैविविधानार्थभाजनं किमिति सत्कर्तव्य इति हेतोर्निरस्त इति
भावः । त्यक्तं हीनं विधुतमित्यमरः । आप्ताः सुहृदो बन्धवो ज्ञात यस्तै-
रित्येकपदं वा । अनेनदुर्भना इव लक्ष्यसइत्यस्योत्तरम् । उत्तरार्द्धेन
हेतुश्चागमनेत्र क इत्यस्योत्तरम् ॥ १९ ॥

सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ मं. २३ श्लो. २०

प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।

सोऽहमिति । अत्राश्रमे संस्थितः सङ्गतोऽत्रत्यैः स्थितः संस्थित
इव संस्थितः । मृतप्राय इति वा । संस्थाधारे स्थितौ मृतावित्यभि-
धानात् । सोऽहं पुत्राणां दाराणां च दाराः पुंसि च भूमिन् वेत्यभिधानात्
पुंस्त्वबहुत्वे । चात्स्वजनानां सुहृदां ज्ञातीनां वा । कुशलं शुभं अकुशलम-
शुभं आत्मा स्वभावः शरीरं वा यस्याः सा कुशलाकुशलात्मिका तामि-

त्यत्र मन्त्रन्ताद्वहुग्रीहेडांबुभाभ्यामित्यजन्तात्स्वार्थं कः । प्रत्ययस्थादि-
तीत्वं । शेषाद्विभाषेति वा रूपम् । आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो
वर्त्मचेत्यमरः ॥ २० ॥

(तामेव विविच्य दर्शयति)

किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥ मं० २४ श्लो २१

कथं ते किं नु सद्वृत्ताः दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ।

किमिति । प्रथमं किमिति पदं जुगुप्सने । नु इति च वितर्कः । द्वितीयं
किन्नु इति पदद्वयं विकल्पे अग्रेऽप्येवं । येषां पुत्रादीनांगृहक्षेत्रापत्यादौ
क्षेमं कल्याणं अक्षेमं वा साम्प्रतमधुना । सम्प्रत्येव साम्प्रतं प्रज्ञाद्यन् । कथं
किंविधास्ते सत्साधु वृत्तं शीलं येषां दुर्वृत्ता दुःशीला वा मे सुता इति ।
सर्वोऽपि जुगुप्सितो वितर्क इत्यर्थः । सुतानां मुख्यत्वेन तच्चिन्तया
दारादिग्रहणसिद्धे सुता इत्युक्तम् । इतरोपलक्षणं च । विकल्पे किं किमूतं
च किं पृच्छायां जुगुप्सने । नुः पृच्छायां विकल्पे चेत्यमरः ॥ २१ ॥

राजोवाच ॥ मं० २६

राजेति कनिन् युवृषितक्षिराजिद्युप्रतिदिव इति कनिन् ।

यैर्निरस्तो भवान्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः । मं० २७ श्लो० २२

तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥ मं० २८

यैरिति । हे समाधेवैश्य, यैः लुब्धैः गृध्रनुभिः पुत्रदारादिभिः
भवान्त्वं धनैर्हनुभूतैर्निरस्तः । मानसं कर्तुं । तेषु भवतः मानसं स्नेहं
किमनुबध्नाति । किमर्थं करोतीत्यर्थः । तादृशेषु स्नेहनिबन्धनं गहितं
जुगुप्सितं त्याज्यमिति भावः । यदाह । सर्वदास्निह्यति स्निह्येदुद्बुद्ध्येच्च-
द्रुह्यते पुनः । सौजन्यं सृजने कुर्यादौर्जन्यमपि दुर्जनं इति ॥ २२ ॥

(राज्ञः बाङ्काया याथार्थ्यं मन्वानो वैश्य आह)

वैश्यउवाच ॥ मं० २९

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥ मं० ३० । श्लो० २३

किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।

एवमिति । चतुर्भिः अस्मद्गतमस्मद्विषयं अस्मद्विषयोद्देश्यकं वचः
यथा यादृशं यत्प्रकारकं प्राह ब्रवीति एवमेतत् यथार्थमिति । किं करोमि
कमुपायं करोमि मम मनः अन्तःकरणं निष्ठुरतां पादुष्यं न बध्नाति न
लभते इत्यन्वयः । कर्कशं कठिनं कूरं कठोरं निष्ठुरं दृढमित्यमरः ॥ २३ ॥

यैः सन्त्यज्यपितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥ मं. ३१ श्लो. २४

पतिस्वजनहार्दं च हार्दितेष्वेव मे मनः ॥

यैरिति । यैः पूर्वोक्तेः पुत्रैः पितृविषयकं स्नेहं दारैः पतिविषयकं हार्दं प्रेमबन्धुभिः स्वजनविषयकं हार्दं सन्त्यज्य अहं निराकृतस्त्यक्तः । स्नेहत्यागे हेतुगर्भं विशेषणमाह—किंभूतैः यैः धनेषु लुब्धैः तेषु तथा-विधेष्वपि मे मनः हार्दं च सप्रेमैव एवकारोभिन्नक्रमः । जानन्निति । ज्ञावबोधने इत्यस्य शान्तस्य लटः शत्रादेशे श्नाभ्यस्तयोरात् इत्यालोपे रूपम् । हृदयस्य कर्म हार्दं हार्दमस्यास्तीति हार्दि अतइनठनाविती-न्प्रत्ययः ॥ २४ ॥

किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥ मं. ३२ श्लो. २५

यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।

किमेतदिति । महती मतिर्यस्यसः तत्सम्बोधने हे महामते राजन् । जानन्नपि ज्ञानधानप्यहं विगुणेषु विरुद्धगुणेष्वपि बन्धुषु सामान्यज्ञाति-मात्रभावं प्राप्तेषु पुत्रादिषु यच्चित्तं प्रेमप्रवणं स्नेहानुबन्ध एतत्किमिति नाभिजानामीत्यन्वयः । ज्ञानफलकयमसहितचित्तत्वाभावात्तज्जानामी-त्यर्थः । प्रवणंक्रमनिम्नोर्व्यां प्रह्वेनातु चतुष्पथे इत्यभिधानात् ॥ २५ ॥

तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥ मं. ३३ श्लो. २६

करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ।

तेषामिति । निःश्वासाइति नव्यानां पाठः । निःश्वास इति प्राचीन-पाठः । निर्गच्छति श्वासो यस्मात्सं निःश्वासः शोकः कृते इति हेत्वर्थ-कमव्ययम् । वा नपुंसके भावे क्तः । तेषां कृते सप्तमी । यद्वाकरणंकृत् सम्पदादित्वाद्धावेक्विप् । ततश्चतुर्थी । तेषां सुतानां कृते हेतोः क्षेमला-भयोः संसिद्धिविषये वासंसिद्धिप्रयुक्त्यै वा मे मम नितरां श्वासःजायते दुस्थं मनोयस्य स दुर्मनाः दुर्मनसो भावो दौर्मनस्यं चित्तकालुष्यं च जायते तद्वृत्तानुपलब्धिचिन्तया श्वासाधिक्यं दौर्मनस्यं च मम जायत इत्यर्थः । जायत इति वचनविपरिणामेनोभयत्र सम्बध्यते । ननु यदि ते स्वतः उदासीनास्तर्ह्यनर्थं तद्वृत्तान्तानुपलब्धितोदौर्मनस्यादीत्याशङ्काया माह । करोमीति । अप्रीति युक्तेषु तेषु सुतादिषु यद्यस्मान्मनः पश्यं निष्ठुरं न भवति तर्हि करोमि । ईदृग्दुर्वचनानर्थकारिषु तेषु यन्मनो निष्ठुरं न भवति तत्र स्वानुरागप्रवर्तकं हेतुं न पश्यामि दौर्मनस्यमित्यत्र ब्राह्मणादिस्वात्प्यञ् ॥ २६ ॥

तत्रोभयोरपि तत्त्वमजानतोविद्वदुपसत्तिमाह क्रोष्टु
किं प्रति मार्कण्डेयः ।

मार्कण्डेय उवाच ॥ मं० ३५

तनस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥ मं. ३६ श्लो. २७
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ सच पार्थिवसत्तमः ।

ततस्ताविति । हे विप्र । ततः संवादानन्तरं असौ सन्निकृष्टो यथो-
दितस्वाचारोवैश्यः सच यैर्निरस्त इति स्नेहकारणप्रष्टा । पार्थिवेषु राजसु-
सत्तमः श्रेष्ठतमः सुरथः । तौ वैश्यपार्थिवौ सहितौ युगपदेव सहितौ हित-
संयुक्तौ मिलितौ वा तं प्रसिद्धं सुमेधसं नाममुनिं समुपस्थितौ उपसन्नौ
सम्यगुपजग्मतुर्वा ॥ २७ ॥

तत्र गतयोः कृत्यमाह :

कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥ मं. ३७ श्लो. २८
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ । मं० ३८

कृत्वेति । न्यायमनतिक्रम्य यथान्यायं अर्हणमर्हः । घञ् । तमनति-
क्रम्य यथार्हं । यथायोग्यमित्यर्थः । तेन मुनिना सह संविदं सम्भाषणं
कृत्वा उपविष्टौ तौ वैश्यपार्थिवौ वैश्यस्याल्पाच् तरत्वात्पूर्वनिपातः ।
काश्चित्कथाः वाक्यप्रबन्धान् चक्रतुः । तुः स्याद्भेदेऽवधारणे । संवि-
त्क्रियाप्रतिज्ञायामाचारे ज्ञानसङ्करे । सम्भाषायां क्रियाकाले सङ्कृते
नास्मि भाषणे इत्यभिधानात् सम्भाषणार्थः संविच्छब्द इति ॥ २८ ॥

राजोवाच ॥ मं० ३९

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥ मं. ४० श्लो. २९

दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।

भगवन्निति । हे स्व आत्मीय भगवन् षडैश्वर्यसम्पन्न मुने यत्
स्वचित्ते स्वहृदि आयत्ततां निरोधं विना मे मनसः दुःखाय दुःखसाधनं
भवतीति त्वां यदेकं मुख्यं केवलं वा वस्तु प्रष्टुमिच्छामि तद्वद कथयेति ।
प्रष्टुमिच्छामि नधाष्ट्यात्पृच्छामीति । मुनिसन्निधौ स्वस्यानौद्धत्यमभि-
व्यनक्ति । मनोनिरोधेन हि वासनाया अत्यन्त निवृत्तेः स्मृतिजन्मदुःखा-
दिनानुभूयते । मनोनिरोधश्चास्माकं विषयलम्पटानां नास्ति । अतः
सङ्कल्पविकल्पात्मकमनोवशंवदस्व स्मृत्यादिजन्यं दुःखं भवतु नाम परन्तु
दृष्टदोषेऽपि विषये मम प्रवर्त्तयित्री काचिदधिष्ठात्री देवतास्ति, उत मनस

एव कश्चिद्दुर्वचः स्वभाव इति सकलप्रश्नाभिप्रायः । वदस्वेत्येकं वा पदं आत्मनेपदं तु छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकत्वात्पुराणादेरपि मुनिप्रणीतस्य छन्दोवदभिधानात् । यद्वा । भासनोपसम्भाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वद इति सूत्रेण यत्नेन वदस्वेत्यर्थं वदेरात्मनेपदम् । एके मुख्यान्त्यकेवला इत्यमरः स्वो ज्ञातावात्मनिस्त्वं त्रिष्वात्मीये स्वोस्त्रियां धने इति त्रिकाण्डी । सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनः । निश्चयात्मकं चित्तं । आयत्ततामित्यत्र पृथग्विनानानाभिरित्यादिना द्वितीया ॥ २६ ॥

तदेव विवृणोति

ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥ मं. ४१ श्लो. ३०

जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम ।

ममत्वमिति । गतं राज्यं राज्यकर्म यस्य जानतोऽपि ज्ञानवतोऽपि अज्ञस्य यथा मूढस्येव ममअखिलेष्वपि समस्तेष्वपिराज्याङ्गेषु सप्तसु ममत्वं अस्वीये स्वीयबुद्धिः किमेतत्किं निबन्धनमित्यन्वयः । सप्ताङ्गं यथा कामन्दकीये स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशोबलं सुहृत् । परस्परपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यत इति । मुनिषु सत्तमार्तिश्रेष्ठेति सुमेधसः सम्बोधनम् । यथातथे वैवमित्यमरः ॥ ३० ॥

अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ मं. ४२ श्लो. ३१

अयमिति । चकारोऽप्यर्थः । अयमपि वैश्यः पुत्रैर्निकृतः विप्रकृतः खलीकृत इति यावत् । तथा दारैः कलत्रैः भृत्यैः सेवकैरपि उज्झितः उत्सृष्टः । स्वजनेन मित्रबान्धवेनापि सन्त्यक्तः । तेषु पूर्वोक्तेषु पुत्रादिषु अतिशयेन हार्दी स्नेहवान् । निक्रियते खलीक्रियत इति निकृतः । निकृतः स्याद्विप्रकृतः । वा, निकृतस्त्वनृजुः शठः । निकृणोति हिनस्तीति निकृतः । हिंसकोऽयमनृजुः शठ इत्युज्झितः निष्कृतइतित्वप्रस्तुतार्थत्वादपपाठः । तथाच । निष्कृतिः प्रायश्चित्तिः । जीवतो नास्ति निष्कृतिरिति प्रयोगात् । प्रायश्चित्तिस्तु निष्कृतिरिति कोशान्व ॥ ३१ ॥

उपसंहरति :

एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥ मं. ४३ श्लो. ३२

दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण एष वैश्यस्तथाहं चेति द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ । दुःखेहेतुमाह—दृष्टो दोषो यस्येति एवंविधे विषये देशे वा

पुत्रदारादिवस्तुनि विषयस्य दृष्टदोषत्वमध्रुवत्वम् । अन्ततो दुःखहेतुत्वं च ममभावो ममत्वं ममत्वेनाकष्टे मानसे ययोस्तौ । षिञ् बन्धने विवि-
नोति निबध्नातीन्द्रियाणीति पचाद्यच् । परिनिवि इति षत्वम् । विषयो
यत्रयोज्ञातस्तत्र गोचरदेशयोः । शब्दादौ जनपदे चेति हैमः । विषयः
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धलक्षणः ग्रामसमूहादिलक्षण इति वा ॥ ३२ ॥

तत्केनेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥ मं. ४४ श्लो. ३३

ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ।

तत्केनेति । मम अस्य च ज्ञानिनोरप्यावयोर्यन्मोहोऽन्यथा प्रतिभानं
तत्केन कारणेनेति । तत्किमेतदिति दाक्षिणात्यपाठः । नह्यस्मद्विधानां
मोहो भवितुमर्हतीत्याह—एषा मूढता विवेकान्धस्य । वस्तुतत्त्वपरि-
च्छेदो विवेकस्तत्रान्धस्य । तद्विहीनस्येत्यर्थः । वा अविवेकेन अन्ध इवा-
विवेकान्धः अविवेकी । सर्वं पश्यन्नप्यविवेकी अन्ध इव भवति । यथा
मदान्धः करीति प्रयोगः । अत्र हि करी नान्धः किन्तु स्वापराधानभि-
ज्ञानादनन्धोऽन्ध इव व्यपदिश्यते । एवं अविवेकान्धस्याविवेकिन इति
यावत् । अविवेकिनो हि एतादृशी मूढता भवति । तत्कथमावयोर्मोह
इति भावः । अचक्षुषि तमस्यन्धे जले तिमिरकृत्यपीति कोशान्तरम् ।
महाभागेति मुनेः सम्बोधनम् ॥ ३३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० ४६

ऋषिरिति । ऋषति जानाति सर्वमिति ऋषिः । ऋषीगताविति
धातोः सर्वधातुभ्य इतीन्द्रप्रत्ययाधिकारे इगुपधात्किदिति सूत्रेण इनः
कित्त्वविधानात्त गुणः । ऋषयः सत्यवचस इत्यमरः । ऋषिर्वदेवसिष्ठादौ
दीधितौ च पुमानिति कोशान्तरम् ।

सर्वैश्वर्यमात्मानं ज्ञानिनं मन्यमानस्य राज्ञो ज्ञानित्वाभिमानं तिरः
करिष्यन्सामान्यविशेषभावेन ज्ञानं प्रतिपादयन् ज्ञानविशेषस्यैव मोहवै-
यधिकरण्यस्य सिद्धान्तितत्वात्सर्वस्यैव निर्मोहत्वप्रसङ्गेन सामान्यतो
ज्ञानमात्रस्य मोहवैयधिकरण्यस्यासम्भवाद्भवतश्च विशेषज्ञानासम्भवात्
सम्प्रतिज्ञानित्वमित्यभिप्रायेण भगवान्मेधा मुनिरुत्तरमभिधित्सुरनपवर्ग्यं
ज्ञानसामान्यं तावदाह :

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥ मं. ४७ श्लो. ३४

विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ।

ज्ञानमस्तीति । समस्तस्य जन्तोः प्राणिमात्रस्यैव विषयाः रूप-
रसादयः तेषां गोचरे विषये ज्ञानमन्तः करणवृत्तिरस्ति । न च मोहाभाव
उपलभ्यते । तत्त्वमसि । अहं ब्रह्मास्मि । नेह नानास्ति किञ्चन । को
मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यत इत्यादि महावाक्यजात्याभेदज्ञानस्यैव
मोहव्यधिकरणताप्रतिपादनात् । अतोऽवैषयिकज्ञानस्य मोहवैयधिकरण्यं
मोक्षे धीर्ज्ञानं विवक्षितम् । किन्तु विषये शब्दादौ गोचरे इन्द्रियार्थे
तत्तदिन्द्रियजन्यज्ञानमात्रम् यद्यपि विषयगोचरशब्दाभ्यां रूपादिविष-
याणामेव प्रतिपादनात् पौनरुक्त्यमस्ति तथापि दुःखितं सुरथं प्रति
विषिणोति बध्नाति इति विषयो दुःखहेतुरिन्द्रियं वशीकरोति गोचर
इति प्रदर्शनपरत्वाच्च पौनरुक्त्यमिति शान्तनुः । विपक्षे बाधकमाह—
विषयश्चेति । विषयश्च पृथक्पृथक् भिन्नस्वभावः । एवं वक्ष्यमाणक्रमेण
यथा गोत्वब्राह्मत्वादिभेदेन जातिः सामान्यं पृथक्पृथक् भवति तथा रूप-
रसादिविषयश्च पृथक्पृथक् भव्युपतिष्ठते । न च भिन्नविषयज्ञानस्य मोह-
वैयधिकरण्यमुपपद्यते । औपनिषदाभेदज्ञानस्यैव मोहव्यधिकरणत्वात् ।
एवं विषयो रूपरसादिः पृथक्पृथक् भिन्नो नरादिकं याति प्राप्नोति तत्त-
द्विषयस्य तत्तद्विशेषाकारेणोपस्थितत्वादित्यर्थः । रूपं शब्दो गन्धरस-
स्पर्शाश्च विषया अमीत्यमरः । विषयो यत्र यो ज्ञातस्तत्र गोचरदेशयोः ।
शब्दादौ जनपदे चेति हैमः । गावं इन्द्रियाणि चरन्त्येवित्यधिकरणे
गोचरसञ्चरेत्यादिना गोचरशब्दो निपातः । गोचरा इन्द्रियार्थाश्चेत्य-
मरः ॥ ३४ ॥

जातिषु विशेषनानात्वमेव निरूपयति

दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥ मं. ४८ श्लो. ३५

केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।

दिवान्धा इति । केचित्प्राणिनः उलूकादयो दिवा दिनविषये
अन्धाः चाक्षुषज्ञानहीनाः अर्थाद्रात्रौ न । अपरे वायसादयो रात्रावन्धाः
अर्थाद्दिवा न केचिद्भूलता जलोकादयो दिवा रात्रौ तथान्धा एव । तथा
केचिदित्यावर्त्य रक्षोमार्जारतुरगादयो दिवारात्रौ तुल्यदृष्टयः तुल्यचाक्षुष-
ज्ञाना एवेति । एतेन ज्ञानमात्रस्य मोहवैयधिकरण्ये उलूकादीनां दिवा
मोहो न वायसादीनां रात्रौ मोहो न भूलताजलोकादीनां सर्वथैव नस्या-
द्राक्षसादीनां च दिवा रात्रौ तुल्यदृष्टां मोहस्य का कथेति सर्वापवर्गं
आपतेदिति ॥ ३५ ॥ ननु नास्माभिः प्राणिमात्रस्य ज्ञानित्वमभिप्रेतं किन्तु

मनुष्याणामेवेति चेत्तदाह । भवद्भिः मनुष्यमात्रस्य ज्ञानित्वमुच्यते मनुष्यविशेषस्य वेति तत्राद्यं खण्डयितुमुपक्रमते :

ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किन्तु ते नहि केवलम् ॥ मं. ४९ श्लो. ३६
यतोहि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।

ज्ञानिन इति । मनोः कथ्यपत्त्याः जाता मनुजाः मनुष्याज्ञानिन इति मतं सति साधु सत्यं, केवलं ज्ञानिन एव नहि किन्त्वज्ञानिनोपीत्यर्थः । केवलं मनुष्यपरं क्रियाविशेषणं एवं चाज्ञानसम्बलितज्ञानिनोऽपि ज्ञानित्वे वैपरीत्यमेव किं न स्यात् सर्वसत्त्वानां चाज्ञानित्वं तदवस्थमित्याह—
अप्यर्थे हेतावधारणे हिः । तुः स्याद्भेदेऽवधारणे । यत् इति । यतः मनुजेष्वोऽन्येष्वपिशुपक्षिमृगादयः ज्ञानिनः सन्त्येवहीत्यन्वयः । सर्वेष्वपि गौरविरजोऽश्वोऽश्वतरो गर्धभोमनुष्यश्चेति । एतेष्वपि अज्ञानसं बलितस्य ज्ञानस्य सद्भावात् तिर्यग्जातौ पशुः प्रोक्तः सर्वप्राणिनि पुंस्य-
यम् । पशुमृगादौ छागले प्रथमे च पुमानयमिति रभसः । पक्षिणः प्रसिद्धाः । मृगास्तु । महिषवानर्क्षसरीसृपवृक्षेष्वतमृगाश्चेति परिगणिताः सप्तरण्याः । पश्वादीनामपि विषय ज्ञानसम्भवात्केवलं मनुजाः ज्ञानिनो नहि । ज्ञानविशेषश्च मनुष्यमात्रेण सम्भवतीति ॥ ३६ ॥

इदानीं ज्ञानित्वाविशेषात्प्राणिनां प्रति नियतज्ञाननिबन्धनव्यव-
हारसिद्धिः कथं स्यादित्याशंक्य तामुपपादयितुमाह :

ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥ मं. ५० श्लो. ३७

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।

ज्ञानमिति । च एवार्थः । ज्ञानं वैषयिकं स्वभावजं यद्यादृशं मृग-
पक्षिणां तत्तादृशमेव तेषां तद्विधानां मनुष्याणामस्तीति शेषः । मनुष्याणां
यज्ज्ञानं तत्तेषां मृगपक्षिणामित्यन्वयः । रूपादिज्ञानस्य तुल्यत्वादिति
भावः । तथा प्रतिनियततत्त्वजातिप्रयुक्तोपयुक्तविषयज्ञानादन्यद्यज्ज्ञानं
देहमात्रोपयोगि अशास्त्रजमव्याहृतज्ञत्वादिनिद्राहारादितत्समानमि-
त्यर्थः । स्नेहादौ तुल्यज्ञानं नास्तीत्याशङ्क्यामाह—उभयोः मृगादि-
मनुष्ययोः अन्यत्स्नेहादिज्ञानं तथा पूर्वोक्तप्रकारेण तुल्यं साधारणमि-
त्यर्थः । तथा च श्रुतिः—तेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिज्ञानं वदन्ति
नाविज्ञातं पश्यन्ति न विदुः श्वस्तनं न लोकालोकाविति । तथाचोक्तम्-
आहारनिद्राभयमैशुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् । ज्ञानं नराणाम-

धिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समाना इति ॥ ३७ ॥ मनुष्यमात्रस्य पञ्चादिसाधारण्ये अर्थक्रियासाम्यमस्तीत्याह :

ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान्पतगाञ्छावचक्षुषु ॥ मं. ५१ श्लो. ३८

कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।

ज्ञानेपीति । स्नेहादिज्ञानं तुल्यमुक्तं तत्र कथं स्नेहादिकं तुल्यमित्यत्राह—ज्ञाने वैषयिके सत्यपि एतान्मदाश्रमपरिवर्तिनः क्षुधा बुभुक्षया पीड्यमानानपि मोहान्ममत्वलक्षणाद्धेतोः शावानां शिशूनां चक्षुषु तुण्डेषु आदृतः कणानां मोक्षो निक्षेपो यैः तान्कणमोक्षादृतान् । वाहिताग्न्यादिष्विति आदृतशब्दस्य परनिपातः । पतगानिति निरनुस्वारमिति गोडाः । सानुस्वारं केरलाः । पक्षिणः पश्य । वैषयिकज्ञानमोहयोः सामानाधिकरण्यं साक्षात्कुर्वित्यर्थः । चंचुस्त्रोटिरुभेस्त्रियामित्यमरः । पृथुकः शात्रकः शिशुरित्यमरः । कणेति सूक्ष्मे धान्यांशे इत्यमरः ॥ ३८ ॥

नराणामपि तत्साम्यत्वमाह :

मानुषा मनुजव्याघ्रसाभिलाषाः सुतान्प्रति ॥ मं. ५२ श्लो. ३९

लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेते किं न पश्यसि ।

मानुषा इति । हे मनुजव्याघ्र मनुष्यश्रेष्ठ एते मानुषाः प्रत्युपकाराय पोषणार्थं यो लोभः तस्माद्धेतोः सुतान्प्रति साभिलाषाः साकांक्षा इति किं न पश्यसीति साध्याहारोन्वयः । सप्तम्यर्थे प्रतियोगे सुतानिति द्वितीया । नन्विति प्रश्ने प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु इत्यमरः । एतेन ज्ञानविशेष एव मोहविरोधी स च मनुष्यविशेषनिष्ठ एवेति भवतो मोह उपपद्यत एवेति भावः । स्युस्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंह्यादूर्नगाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा इत्यमरः ॥ ३९ ॥

नन्वेवमपि सर्वेषां ज्ञानविशेषार्थं प्रवृत्तिः सुलभेत्याशङ्क्यामाह :

तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥ मं. ५३ श्लो. ४०

महामायाप्रभावेन संसारस्थितिकारिणः ।

तथापीति । तथा वैषयिकज्ञानमोहयोः सामानाधिकरण्यस्य साक्षात्कारेऽपि सति अस्वीये स्वीयज्ञानं ममता सैवावर्त्तोऽम्भसां भ्रम इव यस्मिन् तन् ममतादि विषयज्ञानं पुनः पुनरावर्त्तयति । मोहो गर्त इव पतनहेतुत्वात्तत्र महामायाप्रभावेन कर्त्रा ईश्वरशक्तिमहिम्ना निपातिताः प्रक्षिप्ता मानुषाः प्रवर्त्तन्ते । तेषां विशेषणं संसारस्थितिकारिण इति ।

अपूर्वं देहेन्द्रियविषयवासनासम्बन्धः संसारः । तस्य स्थितये कर्माण्या-
चरितुं शीलं येषां ते प्रवृत्तिमार्गस्था इत्यर्थः । संसारस्थितिकारिणो
विष्णोः महामायाप्रभावेनेति वा संसारस्थितिकारिणेति तृतीयांतदाक्षि-
णात्यपाठे तु महामायाप्रभावेनेत्यस्य विशेषणम् । स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रम
इत्यमरः ॥ ४० ॥

एतदुपसंहरति :

तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्राजगत्पतेः ॥ मं. ५४ श्लो. ४१

महामाया हरेश्चैतत्तया सम्मोह्यते जगत् ।

तन्नेति । जगत्पतेः जगतां पालकस्य विष्णोः या महामाया अनादि-
रूपा योगनिद्रा तया एतज्जगत्सम्मोह्यते । तस्मादत्र भवन्मोहे विस्मया-
सम्भावना न कार्या न करणीया । महामायाया योगनिद्रया परमानन्द-
मयेश्वरस्य शक्त्या यस्मादखिलं जगत्सम्मोह्यते । तस्मादत्र मायया कृत्रिम-
पुत्रिकप्रायया भवतो मोहितस्य न कोऽपि विस्मय इति भावः । हरेश्चै-
षेति दाक्षिणात्याः । विष्णोर्योगं प्रयुज्य शयानस्य लोकप्रसिद्धनिद्रा-
रूपेणाविर्भूता या सा योगनिद्रोच्यते । एतेन विष्णोरपि वशीकरणेन
महामाया यः प्रकृष्टता कथिता । शान्तनुस्तु योगनिद्रैवैषा योगनिद्रा ।
निष्प्रपञ्चावगमो योगोऽत्र ध्यानलक्षणो विषयेभ्यश्चित्तनिरोधो विव-
क्षितः । नतु साक्षान्निद्रादेवानामस्वप्नत्वादिति । योगः सन्नहनोपायध्यान-
सङ्गतियुक्तिषु । इत्यमरः । विस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यमिति च । जगत्पतेरिति
भगवतो मोहकोटिबहिर्भाविसूचकं विशेषणम् पृषन्महद्बहुजगच्छतृवच्चेति
गमेरतृप्रत्ययान्तो निपातः ॥ ४१ ॥

न केवलं प्रवृत्तिमार्गप्रवृत्तानामेव महामाया मोहं जनयति

अपि तु परमज्ञानिनामपीत्याह :

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥ मं. ५५ श्लो. ४२

बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।

ज्ञानिनामिति । प्राशस्त्ये मत्वर्थीयः । ज्ञानविशेषवतामुपनिष-
ज्ज्ञाननिष्ठानां वसिष्ठभरतविश्वामित्रादीनामपि पुंसां चेतांसि अन्तः-
करणानि । सा प्रसिद्धा महामाया भगवती विष्णुपुराणोक्तभगवद्वाच्य-
षडर्थवती । देवी द्योतनशीला । क्रीडाशीला वा । हि यतोबलात्स्व-
शक्तिः आकृष्य विवेकादघातवत्यमोहाय प्रयच्छति मोहानुगामिनं
करोति । यत्र विष्णुपुराणभागवतादिप्रसिद्धस्य प्रियव्रजवंशजस्य भरतस्य

राजर्षेः निर्विद्य राज्यं परित्यज्य पुलहाश्रमे निवसतः परमज्ञानिनोऽपि मृगपोतकेनासक्तस्यापि स्नेहमनुबध्नतो मोहाभिनिवेशाब्जमद्वयानर्थ-पतनम् । तथामहाभारतप्रसिद्धविश्वामित्रप्रयुक्तरक्षसाभक्षिते पुत्रशते परमज्ञानिमूर्द्धन्यस्यापि वसिष्ठस्य भगवतो मोहान्नद्युत्पतनादिप्राणवियोगानुकूलो मोहमूलको व्यापारः । तत्र भवतोः का कथेतिभावः । स्थौल्य-सामर्थ्यसैन्येषु बलं नाकाकसी रिणोरित्यमरः । प्रयच्छतीति । दाणूधा-तोर्यच्छादेशे रूपम् ॥ ४२ ॥

तस्याश्च सर्वजगत्साधनतामाचक्ष्णो मुक्तिप्रदत्वमप्याह :

तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ मं. ५६ श्लो. ४३

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।

तयेति । तया मूलप्रकृतिरूपया विश्वं जगच्चराचरमिति पर्यायैः अशेषावान्तरकार्यमभिप्रेति तद्विसृज्यते । यद्वा । जगदे इति पृथक्पदम् । तदिति च । तया तद्विश्वं विसृज्यते तत्किं यच्चराचरं जगदे लोकैरिति साध्याहारोऽन्वयः । चरमनित्यं अचरं नित्यं । वेदान्तिनो हि कृतकत्वाद्यनुमानगृहीततया विश्वमनित्यमिति वदन्ति । जैमिनीयाश्च प्रवाहन्यायेन न कदाचिदनीदृशं जगदित्यादिनाविश्वमनित्यमाहुः । तत्रकैश्चिदनित्यं कैश्चिन्नित्यमिति नाना विसम्बाददुर्तिरूप्यसत्त्वं तत्तया सृज्यत इत्यभि-प्रायः । यद्वा । विश्वमखिलेषु त्रिष्विति मेदिनीकोशाद्विश्वमखिलमित्यर्थः । चरतीति चराचरं जङ्गममित्यर्थः । अखिलं जङ्गमं जगद्विषयं तया विसृज्यते इत्यर्थः चरिचलिपतिवदीनां वाद्वित्वमभ्याक्चाभ्यासस्येति चरादीनां पचाद्यचिद्विर्भावोऽभ्यासस्यागमश्च । आग्निधानसामर्थ्याद्वि-दिशेषो न । अन्यथा अकारादेशेन वक्तव्यः स्यात् । नचेह चरं चाचरं चेति विगृह्यैकवद्भावेन विश्वविशेषणं चराचरमित्येतदिति शङ्कनीयम् विश्वजगच्छब्दयोरिह भिन्नवाक्यस्थतयाविवक्षितत्वादपौनरुक्त्यम् । चरि-ण्युजङ्गमचरं त्रसमिज्जं चराचरमित्यमरः । जगत्स्याद्विष्टे क्लीबं यौवने जङ्गमे त्रिष्विति रुद्रकोशः । सैषेति । सा बन्धनहेतुरप्येषा देवी प्रसन्ना उपासनप्रीता सती नृणां पुंसां मुक्तये मोक्षाय वरदा भवति । अनेन मोहाय प्रयच्छतीत्युक्त्या तस्या बन्धनहेतुत्वान्निःश्रेयसार्थिनां च तदा-राधनाप्रवृत्तिर्न स्यादिति शङ्कापरास्तेति भावः ॥ ४३ ॥

एकस्या एव बन्धमोक्षोभयकारणत्वं समर्थयति :

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥ मं. ५७ श्लो. ४४
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ।

सेति । सा विद्या विदं ज्ञानिनं याति प्राप्नोतीति विद्या । ब्रह्म-
ज्ञानलक्षणा परमपुरुषार्थसाधनत्वादुपनिषदुत्थज्ञानरूपा । तथा परमा
परमात्मगोचरत्वादुत्कृष्टा । तथा मुक्तेः मोक्षस्य हेतुभूता कारणरूपा ।
तथा सनातनी ब्रह्मरूपत्वान्नित्या । शाश्वतस्तु ध्रुवो नित्यः सदातन-
सनातनावित्यमरः । एवंभूता विद्यारूपा मुक्तिहेतुरिति प्रतिपाद्यते सेति
सा एवाविद्येति, कथ्यते सा प्रसिद्धा अविद्या विद्येतरा । वेत्तीतिवित्
ज्ञानी । ततोऽन्यः अविद् अज्ञानी । तं याति प्राप्नोतीत्यविद्या । किंभूता
अविद्या अपरमा परा उत्कृष्टा मा मोक्षलक्ष्मीः ततोऽन्या अपरमा । यद्वा
न परा मा मोक्षलक्ष्मीर्यस्याः सा । पुनः किंभूता । अमुक्तेः हेतुभूता । न
विद्यते मुक्तिर्यस्मात्त्रिवर्गसः अमुक्तिस्त्रिवर्गः धर्मार्थकामाः क्षयस्थान-
वृद्धिलक्षणोवा । तस्यहेतुभूता । असनातनी नसना सदाभवा अनादिरपि
ब्रह्मज्ञाननिवर्त्यत्वादध्रुवेत्यर्थः । सयच्चिरमित्यादिनासाधुः । दित्वाच्छीप् ।
सर्वेश्वर इति राज्ञः सम्बोधनं । किं भूता सा ईश्वरी कर्तुमकर्तुमन्यथा-
कर्तुं समर्थतया अव्याहतेच्छा । सर्वेश्वराणां ब्रह्मादीनामीश्वरीति वा । ४४।

राजोवाच ॥ मं० ५९

पूर्वं हरेर्योगनिद्रा महामायेति संक्षेपेण मुनिनोक्ताया अपि तस्याः
पुनर्विस्तराब्जिज्ञासया राजा पृच्छति :

भगवन् काहिसा देवी महामायेति यां भवान् ॥ मं. ६० श्लो. ४५
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।

यत्स्वभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥ मं. ६१ श्लो. ४६
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्ता ब्रह्मविदांवर । मं० ६२

भगवन्निति द्वाभ्याम् । भगं सम्यग्ज्ञानं विद्यतेऽस्मिन्निति भगवान्
तद्वी हे भगवन् । प्राद्यस्त्ये मत्वर्यीयः । मुने द्विज सुमेधः । यां भवान्महा-
मायेति ब्रवीति । दीव्यतीति देवी । व्यवहारवती वा सती का किं
शरीरा किमिति प्रश्ने ॥ ४५ ॥ यत्स्वभावेति । यः स्वभावो लक्षणं यस्याः
सा यत्स्वभावा यल्लक्षणा यत्स्वरूपा यदाकारा य उद्भवा यस्याः सा
यदुद्भवा यत्कारणिका सा देवी तत्पूर्वोक्तं सर्वं त्वत्तः श्रोतुमिच्छामि त्वत्त
इति आख्यातोपयोग इत्यपादानत्वा यत्प्रभावेति दाक्षिणात्याः यत्प्रभावः

सामर्थ्यं यस्या इत्यर्थः । कथं केनप्रकारेण सा उत्पन्ना कर्मचास्याः किमित्यन्वयः । इति हेतुप्रकरणप्रकाशादिसमाप्तिष्वित्यमरः । ब्रह्मविदां ब्रह्म-
ज्ञानिनां वरश्चेष्टेति मुनेः सम्बोधनं । ब्रह्मवेदो ब्रह्मतपो ब्रह्मज्ञानं च
शाश्वतमित्यभिधानात् ॥ ४६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० ६३

अत्रोत्तरं ऋषिरुवाचेति । तत्राद्यन्तो पक्षे समाधत्ते :

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तथा सर्वमिदं ततम् ॥ मं. ६४ श्लो. ४७

तथापि तत्समुत्पत्तिर्वहुधा श्रूयतां मम ।

नित्येति । प्रागभावप्रध्वंसाभावशून्या । उत्पत्तिविनाशशून्येति
यावत् । एवकारो भिन्नक्रमः । सेत्यस्यानन्तरं द्रष्टव्यः । तथा च सृष्ट्यादि-
कर्ममात्रे कर्तृत्वेन प्रसिद्धासैवेत्यर्थः । इदं च जातं तथा तत् व्याप्तं चित्स्व-
भावत्वादित्यर्थः । वक्ष्यति च चित्तरूपेण सर्वनाम्नां प्रसिद्धाभिधाय-
कत्वात् । बह्वीः प्रजाः सृजमानामिति श्रुतेः । इदं च द्वितीयप्रश्नोत्तरम् ।
तुरीयं-समाधत्ते जगदेवमूर्तिराकारो यस्याः सा जगन्मूर्तिः । सर्वत्रैव
सदर्थविहीनप्रत्यया कृत्स्नमेति उत्पत्त्याद्यभ्युपगमेनाह—तथापीति यद्यपि
नित्या सा वनादिः तथापि भक्तानुग्रहाय प्रसिद्धा तस्याः बहुधाबहुप्रकारी
यार्थागमादितिभावः । तृतीयप्रश्नेऽप्युत्तरमाह-इदं समुत्पत्तिराविर्भावः
मम मत्तः श्रूयताम् । कर्मणि यक्प्रत्ययः ॥ ४७ ॥

ननु नित्या समुत्पद्यत इत्यतिविरोद्धमेतदित्यत आह :

देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा ॥ मं. ६५ श्लो. ४८

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।

देवानामिति । देवानामिन्द्रादीनां कार्यस्य स्वाधिकारलाभस्य-
सिद्धयर्थं निष्पत्तिनिमित्तं लोके भुवने आविर्भवति प्रकटीभवति तदा
नित्यापि सा उत्पन्ना इत्यभिधीयते उच्यते । जनैरिति शेषः । कार्य-
सिद्धयर्थमिति क्रियाविशेषणम् । प्रकाश्ये प्रादुराविः स्यादित्यमरः ।
नियतं भवा नित्या ॥ ४८ ॥

अत्रेतिहासमवतारयति :

योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्त्रयेकार्णवीकृते ॥ मंत्र ६६ श्लो. ४९

आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान्प्रभुः ।

योगनिद्रामिति । कल्पस्य ब्रह्माणो दिवसस्यान्ते अवसाने एकश्चा-

सावर्णवश्च एकार्णवः, अर्णस्यत्रसन्तीति अर्णसो लोपश्च इति वः सलोपश्च ।
 अनेकार्णवः एकार्णवः कृतो यत्र एवं भूते जगति सति विष्णुनारायणः
 शेषं तन्नामकं नागं आस्तीर्य तल्पीकृत्य योगः कृतप्रपञ्चलयस्य विरामा-
 बस्थाने उपायः साधनं तद्भावापन्नां निद्रां स्वेच्छानिर्मितां स्वनेत्रावरण-
 रूपां योगनिद्रां यदा अभजत् अङ्गीचकार । नेत्रावरणे हेतुर्यथा हरिवंशे
 सखी सर्वसहस्यैषा माया विष्णोः शरीरजा । सैषा नारायणदृशि स्थिता
 कमललोचनेति । किं भूतो विष्णुः भगवान्समग्रावबोधः । यत्तु । उत्पत्ति
 प्रलयं चैव भूतानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो
 भगवानिति विष्णुपुराणे । पुनः किं भूतः प्रभुः । अप्रतिहतेच्छः । विप्र-
 संभ्यो ऽवसंज्ञायामिति भुवो ऽडु प्रत्ययः । योगः सन्नहनोपाय ध्यान-
 सङ्गतिर्युक्तिष्वित्यमरः ॥ ४९ ॥

पुराणान्तरप्रसिद्धमितिहासं संक्षिप्य वर्णयति :

तदा द्वावसुरौ घोरो विख्यातौ मधुकैटभौ ॥ मंत्र ६७ श्लो. ५०

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।

तदेति । तस्मिन्काले विष्णोर्यत्कर्णयोर्मलं तस्मादुद्भूतौ असुरौ
 घोरो भयानकौ विख्यातौ प्रसिद्धौ मधुकैटभौ तन्नामानौ ब्रह्माणं विरिञ्चि
 हन्तुं उद्यतौ । कृतोद्योगावित्यर्थः । असुराविति अस्यति क्षिपति देवा-
 नित्यसुरः । असुक्षेपणे असेरुरास्त्रस्युरन् । घोराविति घुर भीमार्थशब्दयोः
 ण्यन्तादच् । घोरे हरे दारुणे चेति हैमः । मधुकैटभशब्दनिश्चितस्तु
 कालिकापुराणे । योगनिद्रया विष्णुकर्णद्वयान्मलमाकृष्य करांगुल्या मलं
 संमृद्य असुरद्वयं निर्मितं । तत्र उत्पन्नः स च पानार्थं यस्मान्मृगितवान्मधु ।
 अतस्तस्मान्महादेवी मधुनामाकरोत्तदा । उत्पन्नः कीटवद्भाति महामाया
 करे यतः । अतस्तं कैटभाख्यं तु स्वयं देवी तथा करोदिति ॥ ५० ॥

ततो ब्रह्मणा किमाचरितं तदाह :

स नाभिकमलेविष्णोःस्थितोब्रह्माप्रजापतिः ॥ मंत्र ६८ श्लो. ५१

दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।

तुष्ट्वा योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥ मंत्र ६९ श्लो. ५२

विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।

स इति द्वाभ्याम् । प्रजानां पतिर्नियन्ता प्रसिद्धः । विष्णोर्नाभौ
 यत्कमलं तत्र स्थितः ब्रह्मा । तौ असुरौ हन्तुं कृतोद्योगत्वेन उग्रावुत्कटौ

मधुकैटभौ दृष्ट्वा । च पुनः जननं जनः भावे घञ् । जनिबध्योश्चेति न वृद्धिः । जनो जन्म तं अर्दयतीति जनार्दनः । अर्दं हिंसायाम् । नन्द्यादित्वाल्ह्युः । जनाः समुद्रस्थदैत्यविशेषाः तेषामर्दन इति वा । तं जनार्दनं पालनसमर्थं प्रकर्षेण सुप्तं दृष्ट्वेति ॥ ५१ ॥ तुष्टावेति । अत्र यद्यति स्तवन-क्रियाफलं स्वरक्षणलक्षणं ब्रह्मण एवेति अतः । स्तौतेरात्मनेपदं न्यायं तथापि स्तवनक्रियायाः फलपारंपर्यादेव रक्षणलक्षणं दैत्यवधद्वारापृथिवी-दृढीकरणलक्षणं चेति परगामित्वात्परस्मैपदं भगवता सम्पादितम् । अत्र केचित् साक्षात्प्रयोजनं प्रबोधनमपहाय देवानां कार्यसिद्धयर्थमित्युक्तत्वात् प्रयोजनं देवसंरक्षणमेव स्तवनक्रियाफलमिति परस्मैपदमेव न्यायमाहुः । अन्ये तु प्रबोधनार्थायेति अव्यवहितमेव स्तवनक्रियाफलं परगामीति परस्मैपदं कृतमित्याहुः । सः ब्रह्मा एकाग्रमनवच्छिन्नं हृदयं यस्य स तादृशः । स्थितः सन्नित्यर्थः । वा एकाग्रं एकतानगतं । एकतानोऽनन्य-वृत्तिरेकाग्रैकमना अपीत्यमरः । हृदयमन्तःकरणं यस्य । अनन्यनिष्ठान्तःकरण इति यावत् । हृदयस्थित इत्यत्र खर्परे शरि वा विसर्गलोपो वक्तव्य इति वार्तिकेन स्थित इत्यत्र थपरसकारे परतो हृदयशब्दस्य विसर्गलोपे रूपम् । स्थितः स्थिर इति वा । हरेः विबोधनमेवार्थः प्रयोजनं तस्मै । हरिनेत्रे एव कृत आलय आवासो यया ताम् । योगनिद्रां तुष्टाव । वाचा अपूजयत् । यद्यपि निद्रा सर्वाण्यङ्गानि व्याप्नोति तथापि निद्राभिव्यक्ति-स्थानं नेत्रयुगलमित्यभिप्रायेण हरिनेत्रकृतालयमित्युक्तम् ॥ ५२ ॥

विश्वेश्वरीमित्यादि पञ्चदशश्लोकाभिध्येयगुणकीर्तनप्रार्थनादियोग-निद्रां ब्रह्मा प्रार्थयमानउवाच :

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥ मंत्र ७० श्लो. ५३

निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥ मंत्र ७१

विश्वेश्वरीमिति । विश्वस्येश्वरी व्यापिकाम् । तथा जगतां धात्रीमिव धात्री । धात्री माता पृथ्वी च धः कर्मणि धृन् । षित्त्वात् ङीष् धात्री-जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृष्विति मेदिनी । धात्रीं सृष्टिकर्त्री । यद्वा । धातृशब्दः सृष्टिकर्तृवचनः धातावज्योनिर्बुहिण इति कोशात् । धाता यथापूर्वमकल्पयदिति श्रुतौ तथायविगमाच्च । स्त्रियान्ततश्च ऋन्नेभ्य इति ङीप् धात्री सृष्टिकर्त्री । तथा च जगत् इति द्वितीयान्तं पृथक्पदं नचात्र षष्ठी तृन्तन्त्योर्न लोकेति निषेधात् । धात्रीं सृष्टिकर्त्रीमित्यर्थः । एतेन योगनिद्रायाः सृष्टिकर्तृत्वमुक्तं । तथा स्थितिः पालनं संहारः प्रलयः

तीकर्तुं शीलमस्याः । सुप्यजाती णिनिस्ताच्छील्ये इति णिनिः तां ।
 अतुलामनुपमामसाधारणामिति यावत् विष्णोर्नारायणस्य तेजसः ज्योती-
 रूपस्य निद्रां भगवतीं । धर्म्यशोवतीं प्रभुर्जह्या तुष्टावेतिपूर्वेणान्वयः ।
 अत्र निद्रां भगवतीं विष्णोरिति पद्याद्धस्थाने क्वचित् स्तौमि निद्रां
 भगवतीं विष्णोरतुलतेजस इति पठन्ति केऽपि तत्र । अतुलमनुपमसाधा-
 रणं तेजोयस्य ईदृशस्य विष्णोर्नारायणस्य निद्रां भगवतीं धर्म्यशोवतीं
 स्तौमि वाचा पूजयामि । मद्रक्षणसाहाये हि तव धर्मो यद्यश्च स्यादिति
 भावः ॥ ५३ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ मंत्र ७२

त्वं स्वाहा त्वंस्वधा त्वंहि वषट्कारःस्वरात्मिका ॥ मंत्र ७३ श्लो. ५४

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता ।

त्वं स्वाहेति । स्वाहादेवहविर्दानमन्त्रः । तदभिमानिनी वह्निपत्नी
 वात्वं । स्वधेति स्वधापितृहविर्दानमन्त्रः । तदभिमानिनी पितृपत्नी
 वात्वं । हे देवि । हि यतः त्वं वषट्कारोऽसि । देवविशेषहविर्दानमन्त्र-
 विशेषः । वषडिन्द्रायेति मन्त्रलिङ्गात् । हे देवि त्वं स्वरात्मिका उदात्ता-
 दिस्वरूपा । सुधेति । सुष्ठुदधाति पुष्णाति शरीरमिति सुधा पचाद्य-
 जन्तादृष्टम् अमृतं सात्वं । पीयूषममृतं सुधेत्यमरः । अक्षरे इति । अक्षरं
 वर्णनिर्माणे वर्णमप्यक्षरं विदुः । अक्षरं नक्षरं विद्यादक्षरं श्रुतितोययोरिति
 कोशान्तरम् । अक्ष्णाति त्रीन् लोकान्भुङ्क्ते भूतरूपत्वादक्षरा । अक्षनुते
 व्याप्नोति विश्वात्मत्वादक्षरा । उपचयापचयविपरिणामहीना वा तदा-
 मन्त्रणे । हे नित्ये । उत्पत्तिविनाशरहिते । एतेन सन्मात्रत्वमभिप्रैति त्वं
 त्रिधा मात्रात्मिका स्थितासि । त्रिधा ह्रस्वदीर्घप्लुतरूपेणानुभवसोति
 भावः अकारोकारमकारात्मकतया प्रणवरूपा वा ॥ ५४ ॥

पूर्वत्र त्रिधामात्रात्मिका इति विशेषणेन अकारादिस्वरूपमात्रा-
 त्मकतोक्ता । अत्रार्द्धमात्रात्वमित्यनेनककारादिव्यञ्जनरूपतामुपव्यञ्जयति ।
 अथवा न केवलं प्रणवेमात्रा त्रयस्वरूपैव त्वमपि तु योगिगम्यार्द्धमात्रात्मा-
 सीत्याह :

अर्द्धमात्रास्थितानित्या यानुच्चार्याविशेषतः ॥ मंत्र ७५ श्लो. ५५

त्वमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवि जननी परा ।

अर्द्धमात्रेति । या नित्या अपरिणामिनी विशेषतो मात्रात्रयवै-

लक्षणेनानुच्चार्या वेदान्तवाक्यार्थलक्षणमुख्यभिमानिनीतुरीयाभिधा या स्थिता अर्द्धमात्रा सा त्वमेव । तथा च प्रणवमधिकृत्याह भगवान्दत्तात्रेयः । अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् । एता एव त्रयो मात्राः सत्त्वरजसतामसाः । निर्गुणा योगिगम्यान्या चार्थमात्रा च संस्थिताः । गान्धारीति च सा ज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया । पिपीलिका गतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते । मात्रा चाद्धं तथा श्रोत्राविज्ञेया परमार्थतः । व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीया व्यक्तसञ्ज्ञिता । मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परंपदम् । ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दीर्घसञ्ज्ञिता । तृतीया तु प्लुताद्धास्था वचसः सा नगोचरा इति । पूर्वश्लोकस्थत्रिधा मात्रात्मिका स्थितेति विशेषणेन अकारादिस्वरमातृकतेति अर्द्धमात्रेत्यनेन कादिव्यञ्जनानां मातृकतेत्युक्तम् । मात्रा या अर्द्धं अर्द्धमात्रा व्यञ्जनवर्णरूपमातृका त्वमेवेत्यर्थः । अर्द्धं नपुंसकमिति समासः । तदुक्तम् व्यञ्जनं चाद्धंमात्रकमिति । सा किं भूता । या अर्द्धमात्रतया स्थिता सती नित्या ध्रुवा मोक्षं सूचयतीतिशेषः । पुनः या विशेषतः अनुच्चार्यमिदमात्मरूपत्वात् । यतो वाचो निवर्तन्त इति श्रुतेर्विशेषतोलक्षणा याद्धंमात्रत्वादनुच्चार्याउच्चारयितुं वर्णयितुमशक्येत्यर्थः । त्वमेव सन्ध्येतिदाक्षिणात्याः । सन्ध्यायन्त्यस्यां, सन्धीयेते अहोरात्रौ वा । सन्ध्याकालविशेषः । वा सन्ध्या पितृप्रसूः । पितृणां मातासीति यावत् । सन्ध्यातः पितृणां जन्म इति कथा कालीपुराणे प्रसिद्धा । हे देवि त्वमेव सावित्री । एवेत्यवधारणे । सविता देवता अस्याः सा सावित्री व्याहृतित्रयरहिता ऋक् । सैव व्याहृतिसहिता गायत्रीत्युच्यते । हे देवि द्योतनशीले परा उत्कृष्टा जननी जनयित्री मूलप्रकृतित्वान्महदादीनामिति भावः । यथेतरा जननी क्वचित्कदाचित्कचिदेव जनयति न तथा त्वं किं तु प्रपञ्चजातजनयित्रीत्यर्थः । वेदजननीति दाक्षिणात्याः पठन्ति । तत्र सावित्र्याः विशेषणं । वेदं वेदाध्ययनं जनयतीति वेदजननी । यच्च गायत्र्युपदेशंविना वेदाध्ययनानधिकारात् । गायत्र्युपदिष्टैवसती वेदाध्ययनं जनयतीतिभावः ॥ ५५ ॥

त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥ मंत्र ७५ श्लो. ५६

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।

त्वयेति । एतद्वक्ष्यमाणसर्जनादिविशिष्टं विश्वं नाम अखिलं जगत् त्वया धार्यते । विश्वेतिअशूप्रषिलटिकणिलटिवांशभ्यःक्वन् । विश्वात्वति-

सर्वविषया सच्चिदानन्दलक्षणे आत्मनि अनात्मता बुद्धिः अनात्मनि देहादावात्मबुद्धिरूपा । अन्यत्रान्याकारावभासिनीत्यर्थः । महामेधा सकलावधारणक्षमा धीर्महामेधा । भगवतः सर्वज्ञत्वशक्तिरित्यर्थः । महा-स्मृतिः संस्कारजन्यं ज्ञानं स्मृतिः तस्या महत्त्वं सर्वप्रपञ्चविषयत्वेन यथा ममविधेः सृष्ट्यनुकूलातीतकल्पगतसकलवस्तुस्मृतिरूपेति । महामोहः भोगेच्छारूपमविद्यापर्वास्ति अस्यामित्यर्थं आद्य जन्तान्महामोहशब्दादृष्टाप् । महामोहा संसारमूलकारणरागरूपमोहस्वरूपा । तदुक्तम् । तमोऽविवेको-मोहः स्यादन्तःकरणविभ्रमः । महामोहस्तु विज्ञेयो ग्राम्यभोगमुखैषणेति । अविद्या पर्व तु । मरणं ह्यन्धतामिश्रं तामिश्रं क्रोध उच्यते । अविद्या पञ्चपर्वेषा प्रादुर्भूता महात्मन इति । महादेवी सकलदेवशक्तिरूपा । महती चासौ देवी चेति पञ्चादिगणे देवदशब्दपाठाद्वृत्त्वान्डीप् । इन्द्रादि-लोकपालशक्तिरित्यर्थः । महासुरी महान्तश्च ते असुराश्च महामुरा हिर-ण्याक्षप्रभृतयः तेषां शक्तिरूपेति । भवती इति पदं सर्वत्र सम्बध्यते ॥५८॥

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥ मंत्र ७८ श्लो. ५९

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।

प्रकृतिरिति । हे देवि त्वं चकारएवार्थकः । त्वमेव सर्वस्य मह-दादिकार्यकलापस्य प्रकृतिः मूलकारणम् । त्वं कीदृशी गुणत्रयं सत्त्वरज-स्तमोलक्षणे विभावयितुं महदादिष्वनुवर्त्तयितुं शीलं यस्याः सा । त्रिपु-र्वाद्भवतेर्ण्यन्तात्ताच्छील्ये णिनिः । हे देवि । त्वं कालरात्रिः कलयत इति कालः । कलसंख्याने शब्दे च । कर्मणि घञ् । कलयति सर्वमिति वा ण्यन्तात्पचाद्यच् । कालो मरणं तदुपलक्षिता रात्रिः कालरात्रिः । यद्वा कालो महाकालः शिवः तस्य रात्रिः शिवरात्रिस्त्वमित्यर्थः । कालो मृत्यो महाकाले समयेयमकृष्णयोरित्यभिधानात् । कालरात्री नाम्नी तन्त्र-प्रसिद्धा देवतेति वा । महारात्रिः महतः ईश्वरस्य रात्रिः । ब्रह्ममरणोप-लक्षिता । ब्रह्ममुक्त्युपलक्षिता रात्रिरिति यावत् । असामानाधिकरण्येऽपि महत आत्वमार्षम् । महारात्रिर्ब्रह्मावसानरात्रिः । वा महः उत्सवस्तेजो वास्त्यस्यामिति महाउत्सववती तेजोवती वा । महउत्सवतेजसोरित्य-भिधानात् । अशंआद्यच् । तादृशी रात्रिर्दीपोत्सवरात्रिः कौमुदीरात्रि-स्त्वमित्यर्थः । मोहरात्रिः अकर्तव्ये कर्तव्यग्रहो मोहः । अस्मिता लक्षणः स एव रात्रिरिव रात्रिः बुद्धेर्मोहकत्वात् । यद्वा । नन्दगृहे कृतावतारया देव्या कंसादेर्मोहजननात् । कृष्णजन्माष्टमी रात्रिर्मोहरात्रिः । ममतावर्त्त-

मोहगर्तपातिनी । संसृतिकर्त्री वा । सा त्वमित्यर्थः । यदुक्तम् । दंष्ट्रा-
करालकालाग्निरुद्रकल्पातिदारुणा । मोहरात्रिर्मोहतनुः जगत्सूते जग-
त्करोति । दारुणा दारुणत्वं चास्याः दुःपरिहरत्वेन भीषणा । अस्यास्तनुः
तमोद्वारा निशादिवसनाशिनीति । हरिवंशे । ब्रह्मज्ञातिरिक्तेत्यर्थः ॥ ५६ ॥

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिबोधलक्षणा ॥ मंत्र ७९ श्लो. ६०

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।

त्वमिति । अयति हरिमिति श्रीः । श्रीयते सर्वैरिति श्रीलक्ष्मी ।
सम्पद्वा । श्रित्र् सेनायाम् । किवद्दीर्घौ । श्रीवर्षरचना शोभा भारती-
सरलदुमे । लक्ष्म्यां त्रिवर्गसम्पत्तौ वेषोपकरणे मताविति विश्वमेदिन्यौ ।
ईश्वरी अव्याहतेच्छा ऐश्वर्यशक्तिः । कामबीजं च । ह्रीः अकरणीयवैमुख्यं
लज्जेत्यर्थः । लम्बाबीजमिति वा । सम्पदादित्वात्किप् । त्वं बोधलक्षणा
बुद्धिः । बुध्यते अनयेति, बोधनं वा बुद्धिः बुधेः क्तिन् । बुद्धिरन्तःकरणम् ।
बोधलक्षणा अध्यवसायव्यापारा । लम्बा लज्जनं लम्बा । अकरणीये कृते
परजानशङ्कया दुःखम् । ओलब्धी व्रीडे । अप्रत्ययः । झलांजशृङ्गि ।
लम्बा बीजं वा । पुष्टिः उपचयरूपा । तथा त्वं एव तुष्टिः अनधिगतार्था-
दन्यत्र तुच्छत्वबुद्धिः । त्वं शान्तिः विषयव्यावृत्तिलक्षणोपशमः । क्षान्तिः
क्षपणं अपकारिण्यनपकारिणि च अनपकारता । अपराधसहिष्णुतेत्यर्थः ।
एवकारस्त्वमित्यनेन सम्बध्यते । एतत्सर्वं पूर्वोक्तरूपं त्वमेवेति ॥ ६० ॥
इदानीं मन्त्रनुपराजयोपस्कराण्यपि ते सहजसिद्धानीत्याह :

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणीतथा ॥ मंत्र ८० श्लो. ६१

शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिधायुधा ।

खड्गिनीति । खण्डति पर खण्डयते अनेनेति खड्गोर्गसः । खडि-
भेदने । छापूखडिभ्यः किदिति गन् आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्न नुम् ।
खड्गो गण्डकशृङ्गासिबुद्धिभेदे च गण्डके इति विश्वमेदिन्यौ । खड्गो
स्या अस्तीति खड्गिनी । अतश्नठनावितीघ्नन्तात् शृङ्गेभ्य इति डीप् ।
शूलिनी शूलं त्रिशूलमस्त्यस्या इति शूलिनी । घोरा एकहस्तस्थशिरसा
भयङ्करी दारुणेत्यर्थः । गदिनी गदतीति गदा आयुधविशेषः । गदेः
पचाद्यचिटाप् । गदा अस्त्यस्या इति गदिनी । ब्रीह्यादिपाठादिघ्नन्ता-
न्डीप् । चक्रिणी क्रियते गतिरनेनेति चक्रमायुधविशेषः । कृत्रो घञर्थं कः ।
कृत्रादीनां केद्वे इति द्वित्वम् । तदस्त्यस्या इति चक्रिणी । चक्रः कोके

पुमान् क्लीबं व्रजे सौम्यरथाङ्गयोः । राष्ट्रे दम्भान्तरे कुम्भकारोपकरणा-
स्त्रयोरिति कोशान्तरम् । तथा त्वं शङ्खिनी शङ्खनति जनयति । खन-
अवदारणे । अन्येभ्योऽपीतिङः । शङ्खोऽस्यास्तीति शङ्खिनी । यद्वा । शम
उपशमे । शाम्यत्यलक्ष्मीमिति शङ्खः । अन्तर्भावित्यर्थः । शमेः खः ।
शङ्खो निधौ ललाटास्थिन् कम्बौ न स्त्रीन्द्रियेऽपि खमित्यमरः चापिनी
चपस्य वंशभेदस्य विकारश्चापो धनुः । अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य
इत्यण्प्रत्ययः । प्रशस्तश्चापोऽस्यास्तीति चापिनी । बाणश्च भुशुण्डी च
परिघश्च आयुधानि यस्याः सा । बणनं बाणः । बणशब्दे । घञ् । बाणः
शब्दोऽस्त्यस्य अर्श आद्यच् । पृषक्तबाणविशिखा अजिह्मगखगाशुगा इत्य-
मरः । भुवः शुण्डे च दीर्घत्वादिति भुशुण्डीशब्दः पृषोदरादित्वात्साधुः ।
आयुधविशेषवाची स च लोकप्रसिद्धं बन्दूखाख्यम् । भुशुण्डी लोहनलिका
नलिका च भुशुण्डिकेति पञ्चतत्त्वप्रकाशः । अत्र भुशुण्डी नलिकेति नाम-
द्वयम् । भुशुण्डी सर्वतो लोह कण्टकानुक्रमोन्नतेति कोशान्तरमिति
कतकटीका शिरोमणिकारप्रभृतयः । गोलको यष्टिर्वा भुशुण्डीति चतुर्भुजः ।
गुर्जरभाषयाप्रसिद्धा भुशुण्डीत्यपरे । परितो हन्यतेअनेनेति परिघ आयुध-
विशेषः । परौघ इति साधुः । परिघोऽस्त्रे योगभेदे परिघातेर्गलेऽपि चेति
हैमः । आयुध्यन्ते अनेनेत्यायुधम् । घञर्थे कविधानम् स्थास्नायाहनि
युध्यर्थम् । एतान्यायुधानि युद्धसाधनानि यस्याः सा । शस्त्रमस्त्रं प्रहरणं
हननं हेतिरायुधमिति पञ्चतत्त्वप्रकाशः ॥ ६१ ॥

एवं देव्या घोररूपमुपवर्ण्य रमणीयतामप्याह :

सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ मंत्र ८१ श्लो. ६२

परा पराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।

सौम्येति । हे देवि त्वं सौम्यासि प्रशान्तासि । अमृतं सूते इति
सोमश्चन्द्रः । अतिस्तुसुहृदृक्षिषुभायावापदिवक्षिनीभ्योमन् इति मन् ।
सोम इव सौम्यः । शाखादिभ्यो यः । ततः प्रज्ञाद्यण् । सौम्यः सोमात्मजे-
ऽनुये मनोज्ञे सोमदैवत इति हैमः । त्वमेवेति सर्वत्र सम्बध्यते । त्वं
सौम्याह्लादकरी स्वर्गप्रदत्वेन । सौम्यतरा सौम्या न कापि यस्याः सा
अतिशयेन सौम्या । यद्वा । सौम्या अक्रूरा भक्तेषु । दैत्येषु असौम्यतरा ।
क्रूरतरेति यावत् । चार्थं तुः । न केवलं स्वर्गप्रदत्वेनैवाह्लादहेतुः किन्तु
अशेषसौम्येभ्यः सकलाह्लादहेतुभ्यः सौम्यतरा च त्वमेव । अतिशयिता-
ह्लादहेतुः निर्वाणप्रदत्वात् । सौम्यशब्दात्, द्विवचनविभज्जोपपदेतर-

वीयसुनाविति सूत्रेण अशेषसौम्येषु विभक्तव्येषूपपदेषु तरप् । तदन्ता-
ट्टाप्—तसिलादिष्वाकृत्वसुचः पुंवद्भावः । सौन्दर्यमपि देव्या लोकोत्तर-
मित्याह—सुन्दरी वराङ्गना सुष्ठु नन्दयतीति सुन्दरी मनोज्ञा, तां
अतिक्रान्ता अतिसुन्दरी । तदुक्तं कालिकापुराणे । जगत्त्रयेऽपि यस्यास्तु
सदृशी कापि सुन्दरी । नान्यास्ति ललिता तेन देवी ललितकान्तिकेति ।
वा सुष्ठु अतीव उन्नति । उन्दी क्लेदने सुपूर्वः बाहुलकादरः शकन्ध्वा-
दित्वात्पररूपम् । गौरादित्वान्डीष् । सुन्दरी तरभिन्नारीभिदोः स्त्री
रुचिरेऽन्यवदिति रभसमेदिन्यौ । ननु स्वर्गप्रदत्तं रुद्रब्रह्मादीनामप्य-
स्तीति को विशेषोऽस्या इत्यत आह—परेति । पिपत्तीति परः । पृपालन-
पूरणयोः । अच् । पराः उत्कृष्टाः ब्रह्मादयः । निर्धारणे षष्ठी । तेषां मध्ये
परा उत्कृष्टा ब्रह्मत्वाद्यधिकारस्य तथैव वितरणात् । तथा च श्रुतिः ।
यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधामिति । ननु
रुद्राद्यधिकारप्रदत्तेऽपि भगवत्या इन्द्रादिपालनं तु ब्रह्मादीनामेव कृत्य-
मित्याशङ्क्याह परमा उत्कृष्टतमा पराणामुत्कृष्टानामिन्द्रादीनां ईश्वरी
पालनादिसमर्था त्वमेव पराणामित्यस्य देहलीदीपकन्यायेनोभयत्र सम्ब-
न्धात् । तत्र श्रुतिः । अहमिन्नावरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्वि-
नोभा अहं सोममाहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगमिति । त्वमेवे-
त्येवकारेणान्यव्युदासः । त्वहेतुर्जन्यस्यासम्भवादिति भावः । यद्वा परे च
अपरे च परापरा । द्वन्द्वे चेति सर्वनामसञ्ज्ञानिषेधात्सुडभावः । तेषां त्वं
परमा । यद्वा परेत्युपलक्षणं पश्यन्ती मध्यमावैखरीणां परा बीजरूपा त्वं ।
पराणामुत्कृष्टानां परमा प्रधानं त्वमेव यतस्त्वं परमेश्वरीति ॥ ६२ ॥

सम्प्राति देव्याः सर्वमयत्वमाह :

यच्च किञ्चित्त्वच्चिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥ मंत्र ८२ श्लो. ६३

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ।

यच्चेति । हे अखिलात्मिके समस्तप्रपञ्चस्वरूपे सत् नित्यमाका-
शादि । असत् अनित्यं पृथिव्यादि । यद्वा सच्चेतनवर्गः । असदचेतनं
जडवर्गः । यद्वा सद्विद्यमानमसदतीतानागतं । क्वचिद्देशे काले च यत्कि-
ञ्चिद्वस्तु नामबाध्यत्वं यदि तस्य सर्वस्य वस्तुनः या शक्तिः । अस्मा-
च्छब्दादयमर्थो बोद्धव्य इति ईश्वरेच्छारूपः संकेतोऽभिधापर्यायः सामर्थ्यं
वा । सा च त्वं यदि तदा किं स्तूयसे स्तुतेर्भेदसाध्यत्वाद्भगवत्याश्च पद-
पदार्थस्तुतिस्तोतृस्तुत्यतत्तदुचितशक्तिस्वरूपत्वेन सर्वमयत्वात् स्तुति-

रसमञ्जसेति भावः ॥ ६३ ॥

स्तुत्यत्वाभावमेव पुनराह :

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पातान्तियोजगत् ॥ मंत्र ८३ श्लो. ६४

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।

यमेति । यया प्रसिद्धया कर्त्र्या सर्वजगत्कर्तृत्वादि गुणाधारः विष्णुरपि निद्रावशं नीतः प्रापितः इह तन्निर्माणे त्वां स्तोतुं कः ईश्वरः समर्थः । अपि तु नकोऽपीत्यर्थः । सः कः यः जगत् प्रपञ्चं स्रष्टा उत्पादयिता मद्रूपेण । तृन्ततोऽयम् । भविष्यदद्यतने लुडन्तो वा । तथा जगत्पाता लुडन्तः पात्यतीति दाक्षिणात्यपाठे पाति रक्षको विष्णुरूपेण । तथा जगत् यः अन्ति भक्षयति रुद्ररूपेण । तथा च सकलप्रपञ्चस्रष्टृत्वादि गुणवात्स्वतन्त्रो विष्णुर्यदि त्यया वशं नीतः वशीकृतः तर्हि विष्णुना क्रीडनार्थं कृत्रिमपुत्रिकवद्रचितैरस्माभिस्तव का वा स्तुतिः कार्येति भावः ॥ ६४ ॥

पुनरपि स्तुतौ स्वस्यासामर्थ्यमाह :

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एवच ॥ मं. ८४ श्लो. ६५

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान्भवेत् ।

विष्णुरिति । एवकारो भिन्नक्रमः । विष्णुः पालनव्यापारः । अहं ब्रह्मा । ईशानश्च । ते त्वया शरीरग्रहणं कारिताः ममतावृताः कृताः । अतः त्वां स्तोतुं कः शक्तिमान्समर्थो भवेत् । यः कोऽपि शरीरो स स्तोतुमसमर्थ एव । तदन्यस्तु मुक्त एव स कथं त्वामेव स्तोष्यति । अतस्त्वद्विषया स्तुतिः कथं साकल्येन घटेतेति । स्तुतिरूपसंहृतेति भावः ॥ ६५ ॥

इत्थं श्रीभगवतीं संस्तूय कर्तव्यमर्थं प्रार्थयति :

सात्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥ मं. ८५ श्लो. ६६

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥ मं. ८६ श्लो. ६७

बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ । मंत्र ८७

सात्वमिति द्वाभ्याम् । हे देवि विजिगीषाशोले । इत्थमेवंविधैः स्वैः स्वकीयैः उदारैरसाधारणैः प्रभावैः । सामर्थ्यविशेषैः संस्तुता सविशेषं च स्तुता सा प्रसिद्धा त्वं एतौ इमौ आगतौ आधर्षणमाधर्षः आक्रमणं । दुःदुःसाध्य आधर्षो जयो ययोस्तौ मधुकैटभावसुरौ मोहय

अविवेकं प्रापय । आक्रमणानुकूलक्रियाकारिणी कुरु इति यावत् । उदारो दातृमहतोः । दक्षिणे सरलोदारावित्यमरः ६६ प्रबोधमिति । जगतां स्वामी ईश्वरः । नास्ति च्युतं स्वलनं स्वपदाद्यस्य सः अच्युतः विष्णुः । लघ्विति क्रियाविशेषणं । लङ्घ्यते इति लघु क्षिप्रं । लङ्घिगती । लङ्घिवह्योनं-लोपश्चेति कुर्नलोपश्च । लघुक्षिप्रमरं द्रुतमित्यभिधानात् । प्रबोधं निद्रा-क्षयं उन्निद्रत्वं त्वया शीघ्रं नीयतामिति प्रार्थनायां लोट् । प्रबोधमिति प्रधाने कर्मणि द्वितीया । अप्रधाने कर्मणि तु नीयतामिति तिङ्माभिहितत्वादच्युत इति प्रथमा । स्वामीति । स्वामिन्नेश्वर्यं इति स्वशब्दान्म-त्वर्थीय आमिनच् । नीयतामिति नयतेः कर्मणि यङन्ताल्लोट् । एतौ सन्निकृष्टौकायतो बलतश्च महान्तावसुरौ हन्तुं अस्य विष्णोर्वोधोऽध्यव-सायो निश्चयापरपर्यायः उत्थानानुकुलबुद्ध्युन्मेषः क्रियतामिति तृतीया प्रार्थना । अत्र करोतेरन्तर्भावितण्यर्थः ॥ ६७ ॥

ऋषिः सुमेधाः स्तुतिं निर्वर्ण्य तत्साफल्यं सूचयन्नवाच :

ऋषिरुवाच ॥ मंत्र ८८

तया देव्या द्वितीयप्रार्थना तदैव सफलीकृतेत्याह द्वाभ्याम् :

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥ मं. ८९ श्लो. ६८

विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।

नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ मं. ९० श्लो. ६९

निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।

एवमिति । तदा तस्मिन्प्रलयकाले तत्र विष्णुनाभिकमले वेधसा ब्रह्मणा एवं पूर्वोक्तरूपेण मधुकैटभौ निहन्तुं विष्णोः प्रबोधनं जागरणमर्थः प्रयोजनं तस्मै । तमोऽस्त्यस्यामिति तामसी तमोगुणयुता निद्राकार-परिणतत्वादविद्याशक्तिः । ज्योत्स्नादिभ्य उपसंख्यानमित्यणन्तात्तमः शब्दान्डीप् । तामसी निशिदुर्गायामिति रभसः । अस्तीयं तामसीशक्ति-रविद्या पश्यतोहरा । ययान्छादितलोकोयं पश्यन्नपि न पश्यतीति । देवी द्योतनशीला । विष्णोरिति पूर्वादध्याहारः । न व्यक्तं स्पष्टं जन्म यस्य तस्य विष्णोः नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यः तथा उरसः निर्गम्य निःसृत्य ब्रह्मणः दर्शने चक्षुर्विषये तस्थौ । आविर्बभूवेत्यर्थः । नेत्रे च आस्यं च नासिका च बाहुवश्च हृदयं चेति द्वन्द्वः । प्राण्यङ्गत्वात्प्राप्तस्यैकवद्भाव-स्यापि बहुवचनं छान्दसत्वात् । प्राण्यङ्गैकवद्भावस्यानित्यत्वाद्वा । तथा

च । ग्रीवाकुक्षिललाटेषु नित्यं स्वेदः प्रयुज्यते । राजहंसास्तु ते चक्षु-
चरणलोहितैः सिता इति च । यद्वा । अयन्ते इत्ययाः प्राणाः । नेत्रास्य-
नासिकाबाहुहृत् । अयाः प्राणाः उच्छ्वासनिःश्वासलक्षणाः तेभ्यः सका-
शेभ्य इति ॥ ६६ ॥

यदर्थं ब्रह्मणा प्रार्थिता योगनिद्रा विष्णुविग्रहान्निर्ययो

तन्निष्पत्तिमाह :

उत्तस्थौ च जगत्ताथस्तथा मुक्तो जनार्दनः ॥ मं० ९१ श्लो० ७०

एकार्णवेऽहिंशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।

मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ मं० ९२ श्लो० ७१

क्रोधरक्तक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।

उत्तस्थाविति द्वाभ्याम् । चो भिन्नक्रमः । तथा योगनिद्रया मुक्त-
स्त्यक्तः । जगतां नाथः स्वामी जनार्दनः विष्णुः । अहिः शेषः शयनमिव
शय्येवेत्यहिंशयनमुपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । शय्यतेऽत्रेति शयनं ।
शीङ् स्वप्ने । अस्मादधिकरणे ल्युट् । शयनं सुरते निद्राशययोश्च नपुं-
सकमिति मेदिनी । तस्मादुत्तस्थौ उत्थितो बभूव । ऊर्ध्वकर्मकादुदोऽनूध्वं-
कर्मणि इति तिष्ठतेरात्मनेपदम् । ततश्च उत्थानानन्तरं स जनार्दनः तौ
कर्माभूतौ ददृशे अपश्यत् । चकारात्तौ कर्तृभूतौ तं ददृशात् इति फलितो-
ऽन्वयः दृशेः, कर्तरि कर्मव्यतिहारे इत्यात्मनेपदम् ॥ ७० ॥ तौ कावित्यत-
आह । मधुकैटभाविति । नवाक्षरेणापि छन्दोग्रन्थे क्वचित्पादाङ्गीकारा-
दत्र प्रथमः पादो नवाक्षरोऽपि न दुष्यति । यदुक्तं न्यूनाधिकसमत्वेन यत्र
पाठः क्वचिद्भवेत् । तद्वदिकं निवृच्छन्दो मृत्युञ्जयमनुयंथेति । तौ
कीदृशौ । दुर्दृष्ट आत्मा स्वभावः कायो वा ययोः तौ । मलोद्भवत्वादिति
भावः आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्मवर्ष्म चेत्यमरः । दुष्टात्मत्वं
बहूनामपि सम्भवति किमनयोरधिकमित्यत आह । अति अत्यन्तं वीर्यं
पराक्रममुद्योगं चातिक्रान्ताविति । अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीययेति
समासः । तथा क्रोधेन रक्तानि अरुणानि ईक्षणानि नेत्राणि ययोस्तौ ।
ईक्ष्यते अनेनेतीक्षणम् । ईक्षणं दर्शने दृशीतिहैमः । ईक्ष दर्शने अस्मा-
ल्ल्युट् । क्रोधेबीजमाह ब्रह्माणं अत्तुं भोक्तुं जनितः आविष्कृतः उद्यमः
यत्नो याभ्यां तौ ॥ ७१ ॥

भगवत्कृत्यमाह :

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान्हरिः ॥ मं० ९३ श्लो० ७२

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।

समुत्थायेति । ततः अहिंशयनात्समुत्थाय भगवान् तत्तत्संग्रामेषु तत्तद्द्वैत्यवधाद्यशस्वी विभुः प्रभुः, बाहुवएव प्रहरणानि युद्धसाधनानि यस्य सः बाहुप्रहरणः हरिः । कर्त्ता । ताभ्यां मधुकैटभाभ्यां कर्णमल-भूताभ्यां सह विनापि तद्योगे तृतीया वृद्धो यूनेति ज्ञापकात् पञ्चानां पञ्चसंख्यानां वर्षाणां सहस्राणि । अत्यन्तसंयोगे कालाध्वनोरिति द्वितीया । युयुधे कर्त्तरि लिट् । पञ्चसहस्रवर्षावधि मधुकैटभयोर्हरेश्च परस्परं बाहुयुद्धमासीदिति भावः । ताभ्यामिति सहयोगमन्तरा, विनापि तद्योगमिति तृतीया ॥ ७२ ॥

ब्रह्मणस्तयोर्मोहकर्तृकप्रार्थनां देव्या सफलीकृतेत्याह :

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥ मं० ९४ श्लो० ७३

उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तौ त्रियतामिति केशवम् । मंत्र ९५

ताविति । अतिबलेन उन्मत्तौ असावधानमानसौ । महामायाया विशेषेण मोहितौ । मधुकैटभौ । वरः प्रार्थितोऽर्थः । देवाद्भूते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवं मनाक् प्रिये इत्यमरः । अस्मत्तः आवाभ्यां वाञ्छितमर्थंस्त्वया गृह्यतामिति तमुक्तवन्तौ केशवमूचतुः ॥ ७३ ॥

भगवानवसरानुरूपं स्वाभिमतं वरं प्रार्थयितुमाह :

भगवानुवाच ॥ मंत्र ९६

अत्रोत्तरवाक्यार्थं कर्म पूर्वश्लोकोपात्तं द्वितीयं कर्म

भगवदुक्तिमेवाह :

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्या बुभावपि ॥ मंत्र ९७ श्लो. ७४

किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम । मंत्र ९८

भवेतामिति । अद्यदानीं भवन्ती मे मह्यं मदर्थं । तादर्थ्यचतुर्थ्यन्तं । तुष्टौ उभावपि प्रीतौ । सद्योऽर्थे इदमोऽद्य निपातः । अस्मिन्नहनि मम वध्यौ हन्तुं शक्यौ घात्यौ भवेतां स्याताम् । भवेतामिति प्रार्थनायां लिङ् । नन्वन्यत्कुतो न प्रार्थयत इत्याशङ्क्याह हि यतः मया अत्र देशे एतत्परिमाणस्य एतावदिष्टं वृतं प्रार्थितं अतोऽन्येन वरेण प्रार्थ्यमानेन किं इयतैव मदभीष्टसिद्धेरिति भावः । तद्यदेतेभ्यः परिमाणेवतुबिति सूत्रेणैत-दोक्तुपि एतावदपि सिद्धम् ॥ ७४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मंत्र ९९

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयंजगत् ॥ मं. १०० श्लो. ७५
विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान्कमलेक्षणः ।

आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥ मं. १०१ श्लो. ७६

वञ्चिताभ्यामिति । इत्युक्तप्रकारेण वरप्रार्थनया वञ्चिताभ्यां
ताभ्यां कर्तृभूताभ्यां सर्वं जगत् । आप्रोतीत्यापो जलम् । आप्रोतेः सर्व-
धातुभ्यइत्यसुन् । आपः कर्माख्यायाम् इति आपस् शब्दः शान्तोऽप्यस्ति ।
अपोभिर्मार्जनं कुर्वीतेति प्रयोगात् । यद्वा आप्नुवन्तीत्यापः जलानि ।
आपः प्रचुरमापोमयं । जलमयमित्यर्थः । प्राचुर्ये मयट् । भगवतीकृतमोह-
वशात्सर्वं जगत्आपोमयं जलमयं विलोक्य दृष्ट्वा । कमले इव आह्लाद-
कत्वात् ईक्षणे नेत्रे यस्य स भगवान् । अनयोर्वञ्चनेऽपि ब्रह्मणो रक्षणेन
धर्मवान् इति ताभ्यां । गदितः उक्तः । गदधातोः कर्मणि क्तः ॥ ७५ ॥
ताभ्यामुक्तमर्थमाह—आवामिति । यत्र यस्मिन्देहे उर्वी मही । ऊर्णोति
ऊर्णयते वा इत्युर्वी । ऊर्णुञ् आच्छादने । महति ह्रस्वश्चेत्युप्रत्यये नुलोपे
ह्रस्वे च निष्पन्नादुरुशब्दाद्वोतो गुणवचनादिति ङीप् । सलतिगच्छतीति
सलिलं जलं । अस्मात्सलिकलीतीलच् । रलयोरेकत्वम् । सरिलं सलिलं
सलिलमिति वाचस्पतिः । तेन सलिलेन परितः प्लुता व्याप्ता न भवति
तत्र आवां कर्मणी जहि घातयेत्यर्थः । हन्तेः प्रार्थनायां लोट् होपरे
हन्तेर्जः ॥ ७६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० १०२

पूर्वं वर्त्तमानकथाभिप्रायेण ऋषिरुवाचेत्युक्तिः ।

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।

कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसीतपोः ॥ मं. १०३ श्लो ७७

तथेति । वै इत्यव्ययम् चार्थः । तेन तथेत्यावर्त्य तन्त्रेण चोभयत्र
क्लान्तेन सम्बध्यते । तथा इत्युक्त्वा यथा भवद्भ्यां सम्प्रार्थितं तत्तथैव
सम्पादयामीति तावुक्त्वा भगं कामाक्षायोनि अस्य सन्निधिवर्तीति
भगवान् । जलस्यागाधत्वाद्विष्णोरसुरयोश्चाधारार्थं ब्रह्मणा कल्पितोऽर्द्ध-
योजनविस्तीर्णः योजनायतः कामाक्षायोनिमण्डलसन्निहितो ब्रह्मशिला-
परपर्यायः पाषाणविशेषः । तेन भगवता ब्रह्मशिलापरपर्यायेण पाषाणेन

करणेन पर्वतरूपिब्रह्मरुद्रवराहधृतेन तथा कृत्वा च सलिलपरिप्लुतत्व-
रहितां ब्रह्मशिलामयीमुर्वीं तदुक्तप्रकारेण सम्पाद्य जघने लक्षणया काय-
मध्यभागे स्वकटि पुरोवर्तिन्यवयवे आधारभूते चक्रेण सुदर्शनास्त्रेण
शङ्खश्च चक्रं च शङ्खचक्रं ताभ्यां सहिता गदा शङ्खचक्रगदा तां बिभर्तीति
शङ्खचक्रगदाभृत् तेन शङ्खचक्रगदाभृता केशवेन तदुपरिस्थितेन तयोर-
सुरयोः शिरसी छिन्नेत्यन्वयः । एषा कथा कालिकापुराणे वितता तत्रैव
द्रष्टव्येति । एवं चराचरगुरौ भगवति जनार्दने कथञ्चिदपि मधुकैटभौ
जेतुमशक्ते भगवत्या तयोर्मोहनेन प्रभुं मन्यमानाभ्यां ताभ्यां भगवतोवरे
प्रतिज्ञाते भगवति च तादृशि सकलशूरनिन्दितं याचितरिपुवधमनुचित-
तममपि समस्तलोकहितार्थं याचमाने छलिताभ्यामपि ताभ्यां सत्य-
भाषितया शक्यक्रियया स्वप्राणपरीप्सुभ्यां सलिलरहितोर्व्याः प्रलये-
ऽशक्यक्रियतया छलेन तथा तादृगधिष्ठाने स्ववधमभिदधद्भूयां वञ्चितं
मन्यमानः पद्मनाभर्द्धदृडमहीलाभाय कांदिशी क इव शिथिलोद्यम इव
यदा तूष्णीमतिष्ठत्तदा भगवती सती योन्यधिष्ठानब्रह्मशिलां धारयन्ती
तयोर्वधसाधनमभूदिति महादेव्या योगनिद्राया माहात्म्यमवधेयमेतद्विष-
यककालिकापुराणीयमूलवाक्यानि तत्रैव द्रष्टव्यानीति । तथा च यामले ।
मधुकैटभनाशस्य हेतुर्देवहितेऽपिणी । शैशिवे नवरात्रेषु प्रादुर्भूता
ममाम्बिकेति विष्णुं प्रति शिवोक्तिः । लक्ष्मीतन्त्रे च । योगनिद्रा हरेरुक्ता
या सा देवी दुरत्यया । महाकाल्यास्तनुं विद्धि तां मां देवीं सनातनीम् ॥
मधुकैटभनाशार्थं मोहितौ च तदा तया । जघ्नाते वरलाभेन देवदेवेन
विष्णुना ॥ एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया । स्तुत्या वशी-
कृता कुर्याद्वशे स्तोतुश्चराचरम् ॥ स्तुत्या विश्वेश्वरीमित्यादिरूपया ।
तदुक्तं तत्रैव—विश्वेश्वर्यात्मकं सूक्तं दृष्टं तद्ब्रह्मणा तदा । स्तुतये योगनि-
द्राया मम देव्याः पुरन्दर ॥ अस्या देव्याः समुत्पत्तिश्चरितं स्तोत्रमित्यपि ।
हिताय सर्वभूतानां धार्यते ब्रह्मवादिभिरिति ॥ ७७ ॥

प्रकरणमुपसंहरति—

एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ॥

प्रभावमस्यादेव्यास्तु भूयः शृणुवदामिते ॥ मं. १०४ श्लो. ७८

एवमिति । ब्रह्मणा सम्यक्स्तुता वाचा पूजिता एषा योगनिद्रा एव-
मुक्तप्रकारेण स्वयं आत्मना समुत्पन्ना आविर्भूता अस्या देव्याः क्रीडाशी-
लायाः भूयः अतिशयेन बहु प्रभावं पराक्रमं ते तुभ्यं वदामि ब्रवीमि ।

प्रभवत्यनेन प्रभावः । वा प्रभवनं प्रभावः । भावे षञ् । सप्रतापः प्रभावश्च
यत्तेजः कोशदण्डजमित्यमरः । भूय इति बहुशब्दादीयसुनिबहोर्लोपो
भूचबहोरिति सूत्रेण ईयसुनादेशः परस्योकारनकारलोपे प्रकृतेभ्वादेशे च
सिद्धम् । वदामीति वर्तमानसामीप्येवर्तमानवद्वेति भविष्यति लट् ॥७८॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे
श्रीमहाकालीचरिते मधुकैटभवधाध्यायार्थसंग्रहोनाम
प्रथमोविश्रामः आदितः षष्ठो विश्रामः ॥ ६ ॥

अथ मध्यमचरित्रारम्भः

चिदंबररहस्ये । त्रिमर्मध्यं चरित्रं स्यादध्यायैः पापनाशनमिति ।

द्वितीयाध्यायमंत्रविभागश्च तत्रैव ॥

द्वितीयाध्यायके देवि ऋषिराद्यो मनुर्मतः ॥ अष्टषष्टिमिताः श्लो-
कास्तावन्तो मनवः स्मृताः ॥ एकोनसप्ततिः सर्वे द्वितीये परिकीर्त्तिता
इति ॥

अथ द्वितीयाध्यायारम्भः ।

ऋषिरुवाच ॥ मंत्र १ ॥

ऋषिः सुमेधा भूयः शृण्वति पूर्वाध्यायान्ते भूयस्त्वं देव्याः प्रभावं
संस्मृत्य तेषु महिषासुरवधरूपं महालक्ष्मीप्रभावं प्रकटयन् सुरथं प्रति
पुनरुवाच—

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमन्दशतं पुरा ।

महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे ॥ मं. २ श्लो. १

देवासुरमिति । पुरा पूर्वं महिषे रम्भासुरात्मजे असुराणामधिपे
प्रभो । चकार आनन्तर्ये । चपुनः देवानां पुरन्दरे पुरन्दरनाम्यधिपे
सति । देवाश्च असुराश्च देवासुरम् । येषां च विरोधः शाश्वतिक इति
समाहारद्वन्द्वे एकवद्भावः । अर्थात्प्रहर्तृभावः । तत् अस्मिन्निति देवासुरम्
अशं आदित्वान्मत्वर्थीयोऽन्प्रत्ययः । वा देवासुरस्येदं देवासुरम् । तस्येद-
मित्यण् । संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद्वृद्धरभावः । युद्धं पूर्णमन्दानां बतं
अभूत् । युद्धमित्यत्यंतसंयोगे द्वितीया । महिष इति महपूजायाम् । महति
मह्यते वा महिषः अत्रापिमह्योष्टिषजितिटिषन्प्रत्ययः । लुलायो महिषो
बाहद्विषत्कासरसैरिभा इत्यमरः । अधिपातीत्यधिप । आतश्चोपसर्गे
कः । अरेः पुरं दारयतीति पुरन्दरः वाचंयमपुरन्दरौ चेति निपातितः ।
महिषेऽसुराणामधिपे इति नवाक्षरपादः । मधुकैटभौ दुरात्मानाविति-
द्वैदिको निवृच्छन्द इति । अत्र महिषात्पत्तेरपेक्षा कथाभागेऽस्ति स च
कालिकापुराणे विततोऽस्त्यत्र दिङ्मात्रं लिखामः । अत्रैवं श्रूयते—पुरा

खलु हरिं सिंहरूपेण वोढुं चिराय प्रवृत्तं दृष्ट्वा सद्यहृदयो नीललोहितो
 देव्या वाहनान्तरं मृगयितुं दत्तचित्तो यावदास्ते तावद्ब्रुमुद्दिश्य
 चिरायतपस्यतो रम्भासुरस्य तपसा पीडितं जगदवलोक्य रम्भासुराय
 वरं दातुं तत्र गतोनुतश्चरम्भेण वरं ब्रूहीत्युवाच । ततश्च रम्भोऽपि
 अपुत्रोऽहं महादेव यदि ते मय्यनुग्रहः । मम जन्मत्रये पुत्रो भवान्भवतु
 शङ्कर ॥ अवध्यः सर्वभूतानां जेता च त्रिदिवौकसाम् । चिरायुश्च
 यशस्वी च लक्ष्मीवान्सत्यसङ्गरः ॥ इतिदृशं मे पुत्रं देहीत्युक्ते रुद्रस्तथेति
 प्रतिज्ञायान्तर्हितः । ततश्च सम्पूर्णमनोरथो रम्भः कृतपारणोगूहानुद्दिश्य
 गच्छन्कान्तारेऽभिनववयस्कां कामोन्मत्तां महिषीं दृष्ट्वा आसुरं भावमापन्नो
 मन्मथमयितचेता बलात्कारेण मैथुनधर्मेणैतां समगमत् । ततश्च
 रुद्रस्तस्याः स्वांशेन गर्भमविशत् । अथ च कालेन परिणतगर्भा सा महिषी
 कामरूपमपि महिषाकृतित्वान्माहिषाख्यं पुत्रं प्रासोष्ट । सचादिसृष्टौ
 तत्सामयिकमिन्द्रं पराजित्यैन्द्रं पदं स्वयमुपभुञ्जानोलोकत्रयेऽप्युपद्रवं
 महदाविष्कुर्वन्कदाचिद्भुगवतः कात्यायनस्याश्रमे तच्छिष्यान्पीडयन्भ-
 गवता कात्यायनेन स्त्री ते मृत्युर्भविष्यतीति शप्तोऽप्यवगणय्यैव तच्छापं
 देवान्पुनरपि पीडियामास । ततश्च देवैस्तद्वधाय प्रार्थिता भगवती
 योगमायोगचण्डाख्ययाविर्भूय तं महिषासुरं निजघान । ततश्चरम्भोऽपि
 समये कालधर्ममुपेयिवान् । एवमादिसृष्टावतीतायां द्वितीयसृष्टौ च
 प्रवृत्तायामसुरजन्मप्रदेन परिणतकर्मविशेषेण तस्मिन्नेवासुरकुले स एव
 रम्भाख्यो जीवो रम्भाख्यया पुनरवततार । पूर्ववदेव शिवाराधनं कृत्वा
 महिष्या सङ्गतः तमेव महिषाख्यं जीवं रुद्रांशाप्यायितं स्वर्गभंगतं काले
 महिषी महिषनामानमेव प्रासूत । सोऽपि पूर्ववदेव लब्धत्रैलोक्यराज्यश्च
 लब्धकात्यायनशापो महेन्द्रपदं लब्ध्वापि लोकान्पीडयन्देवैः प्रार्थितया
 तथैव योगमायया धृतभद्रकालीवपुषा द्वितीयजन्मन्यपि निपातितः ।
 रम्भोऽपि कालेन ममार । अथ च प्रवृत्तकालेन पुनरपि कस्याचित्सृष्टौ
 तथैव तत्कुलोत्पन्नः तथैव लब्धजन्मा स एव महिषाख्योऽसुरो महेन्द्रं
 निराकृत्य तत्पदमधिष्ठितः कालेन महीं विचरस्तथैव कात्यायनाल्लब्ध-
 शापः कदाचित्स्वप्नं ददृशे । स्वप्नं स ददृशे वीरो दारुणं घोरदशनम् ।
 महामाया भद्रकाली छित्त्वा खड्गं तद्वपुः । पपौ तस्य च रक्तान व्यादि-
 तास्या विभीषणेति । एवं स्वप्नं दृष्ट्वा जातसाध्वसो मन्त्रिषु राज्यं विष्यस्य
 महता तपसा भद्रकालीं भगवतीमाराध्य तां प्रत्यक्षीकृत्योवाच महिषः ।
 देवि खड्गेन सखिद्य शाणतानि शिरो मम । त्वया भक्तानि दृष्टानि

मया स्वप्ने तु निश्चितम् । अवश्यं तु त्वया कार्यमवश्यं शिरकृन्तनम् ।
 पतद्बुधिरपानं मे त्वमेवं देहि मे वरम् । मयापि तत्र नोदुःखं नियतिः केन
 कङ्क्यते । मुनेः कात्यायनाख्यस्य शिष्यं हि भवदन्तिके । पुरा मुनि
 तपस्यन्तं रौद्राश्वं नाम तापसम् । दिव्यस्त्रीरूपमतुलं कृत्वा तु वीतुका-
 त्तदा । मया सम्मोहितो विप्रोऽत्यजन्मूढस्तदा तपः । नदूरात्संस्थितेनाहं
 मुनिना कात्यसूनुना । ज्ञात्वा मायां तदा शप्तः शिष्यार्थं क्रोधसंगिना ।
 यस्मात्त्वया मे शिष्योऽयं मोहितस्तपसश्च्युतः । कृतस्त्वया स्त्रीरूपेण
 तत्त्वां स्त्री निहनिष्यति । इति मां शप्तवान्पूर्वं मुनिः कात्यायनस्तदा ।
 तस्य शापस्य कालोयमागत्य समुपस्थित इति । एवं महिषेणोक्ते देव्यु-
 वाच । आदिसृष्टावुग्रचण्डी मूर्त्या त्वं निहतः पुरा । द्वितीयसृष्टौ तु
 भवान्भद्रकाल्या मया हतः । दुर्गरूपेणाधुना त्वां हनिष्यामि सहानुग-
 मिति । तत एतच्छ्रुत्वा व्यथितचित्तो भीतभीतश्चतत्स्वीयं विग्रहद्वयं
 तन्निहतमदीयपूर्वविग्रहद्वयसहितं मह्यं दर्शयेति प्रार्थयामास । प्राथितया
 च देव्युग्रचण्डा भद्रकालीस्वरूपं क्रमेण षोडशभुजमष्टादशभुजं विशिरस्कं
 निर्यद्रक्तत्रिशूलप्रोतोरस्कं महिषद्वयं च दर्शयामास । एतद् दृष्ट्वा शोचन्न-
 श्रुविप्लुतनयनः कान्दिशीको मुमूच्छं । अथ च किञ्चित्प्रेमपल्लवितचेतसा
 भगवत्या वरं ब्रूहीत्युक्तः प्रोवाच । मन्मरणस्य त्वद्धस्तादेव भवितव्य-
 त्वादवश्यं भवत्यस्मिन्भवेप्यहं हन्तव्यः । अतः परमेवं मन्मरणं मास्तु ।
 संप्रति त्वया हतो यथा यज्ञभागमाप्नुयां तथा श्रीमत्या विधेयं आसुरं च
 राज्यं मन्वंतरत्रयपर्यन्तं मयोपभुक्तमित्यतो नात्र ममाग्रह इति । अथ तं
 देवी प्रत्युवाच । त्वं रुद्रांशसंभवो मद्वाहनार्थं धात्रा सृष्टः कात्यायनशा-
 पादवश्यं च मया हतोऽप्यशिरस्कोऽपि ममानुभावात्पंचतामनवाप्य मद्वा-
 हनं भविष्यसि यत्राहं स्थास्यामि तत्र मत्पदाक्रान्तशरीर आसनीभूय
 मत्सन्निधौ तिष्ठन् यागेषु त्वदंशकल्पनाभावेऽपि मदर्थबलिरुधिरादावव-
 श्यं मद्गतं गृह्णानस्तदाप्यायितशरीरो जीवद्विग्रहएव स्थास्यसीति भगव-
 त्या प्रोक्तवान्तर्हितायां च तस्यां स्वभवनं गत्वा पुनरप्यासुरं भावमापन्नो
 देवान्विद्रावयन् देवप्रार्थितया दुर्गरूपेणाविर्भूतया देव्या ससैन्योहत इति
 पुरोद्भवां कथामकथयत्सुमेधां सुरथायेति ॥ २ ॥

तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम् ॥

जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः । मं. ३ श्लो. २
 तत्रेति । तत्र तस्मिन्पुद्धे महद्वलं वीर्यं येषां तैः । बलं वीर्यं प्रभावे

च वीरकर्मणि कीर्तितमिति कोशान्तरम् । तैः असुरैः देवानां । सिनोतीति सेना । षिञ्ज बन्धने । सह इनेन स्वामिना वर्तते वा सेना । सेनैव सैन्यं चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । पराजितमभिभूतम् । जयतेः कर्मणि क्तः । सकलान्देवान् जित्वा अभिभूय महिषश्चासावसुरश्च महिषासुरः । इन्द्र-तीदि इन्द्रः इति परमैश्वर्ये । ऋज्जेन्द्रेत्यादिना रक् । इन्द्रः शक्रादित्यभेदे यागभेदेऽन्तरात्मसु इति कोशान्तरम् । इन्द्रस्थानभाक्त्वादिन्द्रश्चाभूत्किम-न्वयः ॥ २ ॥

ततो देवैः किंकृत इत्याह—

ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ॥

पुरस्कृत्य गतास्तत्र यन्नेशगरुडध्वजौ ॥ मं. ४ श्लो. ३

तत इति ततस्तस्मान्महिषात्पराजिताः प्राप्तपराभवाः । पराजेरसोढ इति सूत्रेण तत इति पंचमी । देवा इन्द्रादयः पद्मत इति पद्मं कमलं । पदगतावित्यस्मादतिस्तुमुहुसृधुक्षिभूभाया वापदियक्षिनीभ्यो मनिनि सूत्रेण मन् । पद्मोऽस्त्री पद्मके व्यूहनिधिसंख्यानन्तरेऽम्बुजे इति कोशान्तरम् । यौतीति योनिराकारो यस्य । युमिश्रण इत्यस्माद्वह्निश्रुयुगला-हात्वरिभ्यो निदिति निः । योनिः स्त्री पुंसयोश्च स्यादाकारे स्मरमन्दिरे इति विश्वः । योनिः कारणे भगतोययोरिति हैमः । पद्मयानि पद्मभवं प्रजानां पतिं ब्रह्माणं पुरः अग्रे कृत्वेति । पुरस्कृत्यस्यात्पुरः पुरतोऽग्रत इत्यमरः । पुरोधाय, तत्र कात्यायनस्थाने गताः । क्वेति यत्र ईशः क्वः गरुडं, ध्वजति इति ध्वजः चिह्नमस्य सः । गरुडध्वजो विष्णुः । तौ वर्तते । पद्मयोनेर्ग्रहणं दक्षकदमादीनां निरासार्थं । कात्यायनस्थाने सर्वा-मरतेजोभिर्देव्युत्पत्तिः कालिकापुराणे स्पष्टा । ईशश्च गरुडध्वजश्च ईशगरुडध्वजौ ॥ ३ ॥

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ॥

त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ मं. ५ श्लो. ४

यथेति । त्रिदशाः देवाः तयोः ईशकेशवयोरग्रे यथा येन प्रकारेण वृत्तं निष्पन्नं महिषासुरचेष्टितमोद्धृत्य तद्वत्तथैव प्रकारेण वृत्तं देवाना-मभिभवविस्तरं शब्दप्रपञ्चनं कथयामासुः । वृत्तं चरित्रमनातक्रम्येति यथावृत्तं । अव्ययं विभक्तीत्यादिना समासः । वृत्तं पद्मे चरित्रे त्रिध्वतीते दृढनिस्तले इत्यमरः । तेन तुल्यं तद्वत् । तेन तुल्यं क्रियाचेति वतिः । देवानामभिभवस्य तिरस्कारस्य विस्तरः यत्र तत् । अभिभावस्तिर-

स्क्रियेति कोशः । महिषासुरस्य चेष्टितं चरितम् । त्रिदशाः त्रिःतृतीया
योवनाख्या दशा येषां ते । वा जन्मसत्ता विनाशाख्यास्तिस्रो दशा
एषामिति त्रिदशाः देवाः ॥ ४ ॥

सर्वेषामधिकारहरणवृत्तमाह—

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ॥

अन्येषां चाधिकारान्स स्वयमेवाधितिष्ठति ॥ मं. ६ श्लो. ५

सूर्येति चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेनान्ये ग्रहा दिक्पतयश्चापि
ग्राह्याः । सूर्यश्च इन्द्राग्नी च अनिलेन्दू चेति विग्रहस्तेषां वा । सूर्येति
सरतीति सूर्यः । वा सुवति प्रेरयति कर्मणि लोकानिति सूर्यः । राज-
सूर्यसूर्येति निपातः । सृगतावित्यस्मात्कर्तरि क्यप् निपातनादूत्वं ।
पूंप्रेरणे इत्यस्मात्क्यपोरुट् निपात्यते । सूर्योऽर्कपणे तपने स्त्री तद्भार्यो-
षधीभिदोरिति कोशान्तरम् । अङ्गतीत्यग्निः । अगिगतौ अस्मादङ्गेन-
लोपश्चेति । अनन्ति श्वसन्ति अनेनेत्यनिलः । सलिकत्यनीति इलच् ।
उनत्तीति इन्दुः । उन्दीक्लेदने । अस्मादुन्देरिच्चादेरित्युप्रत्ययः । अत्र
यद्यप्यजाद्यदन्तमितीन्द्रस्य पूर्वनिपातो द्वन्द्वे प्राप्तस्तथापि । बहुष्वनियम
इत्युक्तेः परनिपातोऽत्र वेदितव्यः । एवमग्नीन्दुशब्दयोरपि द्वन्द्वे धीति
पूर्वनिपाते प्राप्ते अनेकप्राप्तावेकस्य नियमोऽनियमः । शेष इति वचने
एकस्यध्यन्तस्य पूर्वनिपातनियमाददोषः । तथा चेन्द्रस्य बहुष्वनियमा-
त्पूर्वनिपातनियमादग्नेः ध्यन्तास्यजाद्यन्तविप्रतिषेधेनेति वार्त्तिकादिन्द्र-
शब्दात्परत्वे इन्दोरप्यनिलात्परत्वे सिद्धे न कश्चिद्दोष इत्यवधेयम् ।
यमतीतियमः । पचाद्यच् । यमो दण्डधरे ध्वाङ्क्षे संयमेयमजेऽपि चेति
विश्वः । व्रियते वृणोति वेति वरुणः । वृञ् वरणे अस्मात्कृवृदारिभ्य
इत्युनन् । वरुणस्तरुभेदेऽप्यु प्रतीचीपतिसूर्ययोरिति । कोशान्तरम् ।
चोऽप्यर्थः । अन्येषामपि विश्वेदेवादिऋष्यन्तप्रभृतीनामिति स महिषः ।
स्वयमात्मना अधि आधिक्यस्य करणमधिकारो नियोगः । भावेवञ् ।
अधितिष्ठति । अधिकारेष्वित्यर्थः । प्रक्रियात्वधिकारः स्यादित्यमरः ।
अधिशीङ्स्थासां कर्मेत्याधारस्य कर्मत्वात्कर्मणि द्वितीया । अधिकरणं
कर्माख्यं । उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्बलीयसीति ॥ ५ ॥

ततः किमित्यत आह—

स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ॥

विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥ मं. ७ श्लो. ६

स्वर्गादिति । दुरात्मना दुष्टचित्तेन तेन महिषेण सुष्ठु ऋज्यते इति स्वर्गः । कर्मणि घञ् । ऋज्यतेऽस्मिन्निति वा । ऋजगतिस्थानार्जनोपार्जनेषु । हलश्चेति घञ् । न्यंक्वादित्वात्कुत्वम् । स्वर्गः स्वर्लोकः तस्मान्निराकृताः प्रत्याख्याताः । निःसारिता इति यावत् । प्रत्यादिष्टो निरस्तः स्यात्प्रत्याख्यातो निराकृत इत्यमरः । सर्वे देवानां गणाः समूहाः । गण्यत इति गणः । गणसंख्याने । अस्माद्घञ् । अल्लोपस्य स्थानिवत्त्वान्न वृद्धिः । गणः प्रथमसंख्यौघे चण्डीसैन्यप्रभेदयोरिति कोशान्तरम् । भुवि तथा विचरन्ति पादक्षेपं कुर्वन्ति यथा । म्रियन्त इति मर्त्याः । मरणधर्माणो मनुष्याः । मृङ् प्राणत्यागे । हसि मृगिणिति तन् । स्वार्थेयत् । पृथिव्यस्पर्शरूपं देवस्वभावमपनीय नरवद्विचरन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥

स्वदैर्न्यं विशदयन्तस्तद्वधोपायं पृच्छन्ति—

एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम् ॥

शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्यविचिन्त्यताम् ॥ मं. ८ श्लो. ७

एतद्व इति । अत्र वा इति ब्रह्मविष्णुमहेशापेक्षं बहुवचनम् । न म्रियन्ते इत्यमरा देवाः । मृङ् प्राणत्यागे । अस्मात्पञ्चाच । अमरस्त्रिदशेऽप्यस्ति संहारे कुलिशदुम इति कोशान्तरम् । तेषां इयति विरोधमित्यरिः । क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन इति चतुर्थी । शरणं रक्षितृ वः युष्मान्प्रपन्नाः प्राप्ताः स्मो भवामः । शरणमिति बहुवचनेकवचनम् । वेदाः प्रमाणमिति वत् । विभक्तिभेदेन द्विधोक्तमपि व इत्येतन्न पुनरुक्तिदोषमावहति । एवं पुनरुक्तिदोषाप्रसंगे सिद्धेऽवैयाकरणत्वेन वृथा पुनरुक्तिदोषं मन्यमानाः शरणमित्यस्याग्रे व इत्यपहाय चकारं पठन्ति केचित्तत्यागे निमित्तं किमिति प्रष्टव्याः । व इति गुह्यत्वादेकशो बहुवचनमिति रघुनाथाश्रमः । व इति बहुवचनं द्वयोरपि कार्यसाधकत्वेन बहुत्वापेक्षयेति दंशोद्धारकृत् । व इति द्वयोर्बहुवचनं गौरवादिति नागेशः । स्म इति अस्तेर्लुप्तम पुरुषबहुवचनान्तम् । तस्य महिषस्य । वधहिंसायाम् । वधनं वधः । भावे घञ् । जनिवध्योश्चेति वृद्ध्यभावः । हननं वधः हनश्चवध इति अप्रत्ययः । तस्य महिषस्य विशेषेण चिन्त्यतां चित्तिस्मृत्यां अस्मात्कर्मणि लोट् ॥ ७ ॥

देवकार्यसिद्धिप्रकारभूमिकामाह—

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ॥

चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ मं. ९ श्लो. ८

इत्थमिति अनेन एतेन वा प्रकारेण । इदमस्थमुः एतदो वाच्य
 इति वचनाभ्यामिदमएतदोवास्थमु प्रत्यये एतेतोरथोरित्यनेनेदमइत् इत्थं
 एतद इति योगविभागादेतद इदादेशे रूपम् । देवानां वचांसि वचनानि
 वचैरसुन्नन्तस्य बहुवचने रूपम् । निशम्य श्रुत्वा । मधोर्देत्यस्य सूदनः ।
 पूदक्षरणे । नन्द्यादित्वादस्माल्ल्युः । विष्णुः । कोपनं कोपः । भावे घञ् ।
 तं चकार । शम्भवतीति शंभुः । रुद्रः । अन्तर्भावितव्यर्थान्द्रुवतेमितद्वा-
 दित्वाङ्ङुः । चाद्ब्रह्मापि । चकारस्यानुक्तसमुच्चयार्थत्वात् । किम्भूती
 भ्रुकुटीकुटिलाननौ । भ्रमतीति भ्रूः । नेत्रोपरिभागस्थरोमराजिः ।
 भ्रमुचलने । अस्माद्भ्रमेश्चरतिह्रप्रत्ययः । भ्राम्यतीति वा भ्रः । भ्रमेः
 क्विप् । गमः क्वावित्यत्र ऊङ् व गमादीनामिति वार्तिकेन मलोप ऊङ्-
 देशः भ्रुवोः कुटिः वक्रिमा । कुटिकौटिल्ये । अस्मादिगुपधात्किदित्त्वात् ।
 इकोह्रस्वोच्चोगालवस्येति ह्रस्वः नचेयङ् उवङ् भाविनां च नेति
 तत्सूत्रस्थवार्तिकेन ह्रस्वनिषेधः शङ्क्यः अभ्रुकुंसादीनामिति तदुत्तर-
 वार्तिकेन तन्निषेधस्यनिवर्तितत्वात् । भ्रुकुट्यादीनामकारोनेन विधीयत
 इति पक्षेऽपि भ्रुकुटिशब्दोऽपि साधुः । पृषोदरादित्वाट्टकारे भ्रुकुटिशब्दो-
 ऽपि । भ्रुकुटिर्भ्रुकुटिर्भ्रुकुटिः स्त्रियामित्यमरः । अत्र शब्दत्रयेऽपि
 भ्रुकुटी एव प्राचीनः पाठः । भ्रुकुटीभिः क्रोधजललाटसङ्कोचनैः कुटि-
 लानि वक्राणि । आनन्ति श्वसन्त्येभिरित्याननानि मुखानि ययोस्तौ ।
 जाताविति शेषः । भ्रुकुटीशब्देनैव क्रोधाभिव्यक्तेः न कोपकमंकात्कोतेव-
 चनव्यत्ययः कल्प्यः । अपरे मधुसूदनः शम्भुः कोपं चकार । तौ कीदृशौ
 भ्रुकुटीकुटिलाननौ । चकाराद्ब्रह्मापि भ्रुकुटीकुटिलाननः । कोपं
 चकारेति व्याचक्षते । चकाराद्ब्रह्मणस्त्ववश्यं ग्रहणं न्याय्यं किन्त्वग्रिम-
 श्लोकेऽतिकोपाध्मातहरिब्रह्मरुद्रवदनेभ्यस्तेजोनिर्गमस्य वक्ष्यमाणत्वात् ।
 न चान्येषामपि देवानां तेजसां निर्गमात्संग्रहोऽपि स्यादिति वाच्यम्
 त्रयाणां देवानां तेजसो निर्गमसत्त्वेन देवानां च शरीरतस्तेजोनिर्गमस्य
 वर्णितत्वादत्यन्तं भेदाद्देवादीनां संग्रहस्यान्याय्यत्वात् । कुपितदेव-
 त्रयोद्भूततेजासि दृष्ट्वा अकुपितैरेव देवैः । स्वतेजसामाविर्भावात् । तथाहि
 कालिकापुराणे—देवेभ्यो महिषोपद्रवं श्रुत्वा द्वितीयसृष्टौ भद्रकाल्या-
 स्मासु पश्यत्स्वेव महिषोव्यापादित एवं सम्प्रति कोऽयं महिषोऽस्तीति
 प्रोत्तापितमनसस्त्रयोऽपि कुपिता इति त्रयाणां कोपहेतुरुक्तो देवानान्तु
 महिषपीडितानां न तदुत्पत्तौ सन्देहलेशोपीति । अकुपितदेवविग्रहेभ्य एव
 तेजास्याविर्भूतानीति ज्ञेयम् ॥ ८ ॥

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ॥

निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥ मं. १० श्लो. ९

तत इति । ततः कोपाविर्भावानन्तरं अतिकोपेन पूर्णस्य चक्रिणः विष्णोः ब्रह्मणः । शङ्करोतीति शङ्करः । शमिधातोः संज्ञायामितिसोप-पदात्कृत्रेऽच् तस्य वदनात् महत्तेजः दीप्तिविशेषो निश्चक्राम निर्जंगम । तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले शुक्लेऽपि कीर्तितमिति कोशान्तरम् । तत इति सार्वविभक्तिकस्तसिः सप्तम्यर्थे तत्र कात्यायनाश्रम इत्यर्थः ॥ ६ ॥

अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ॥

निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छतः ॥ मं. ११ श्लो. १०

अन्येषामिति । चोऽप्यर्थः । एवकारो भिन्नक्रमः । तथा च अन्येषा-मपि शक्नोतीति शक्र इन्द्रः । शकलशक्तौ । स्फायितश्चीत्यादिनारक् । शक्रः पुमान्देवराजे कुटजार्जुनभूषहोरीति कोशान्तरम् । स आदिर्येषां तेषां देवानां । शृणाति शीर्यते वेति शरीरं । शृङ्गसायामस्मात् कृशृपू-कटीतीरन् । पञ्चम्यास्तसिल् । शरीरेभ्य इत्यर्थः । तेजयतीति तेजो दीप्तिः यत्तेजः एषां शरीरेभ्यः निर्गतं तत्सुमहत्तेजः । ऐक्यं चतुर्वर्णादित्वा-त्स्वार्थे ष्यञ् । एकमित्यर्थः । समगच्छत । अभवदिति यावत् । समोगम्य-च्छिभ्यामित्यात्मनेपदम् । यदि तु तेजः कर्तुं, ऐक्यं एकवद्भावं कर्म । ब्राह्मणादित्वाद्वा ष्यञ् । समगच्छत । प्रापेत्यर्थः । तदा समगच्छतेत्या-त्मनेपदमार्षम् अकर्मकाभ्यामेव समो गम्यच्छिभ्यामात्मनेपदविधानात् । तेजनिशाने । अस्मात्सर्वधातुभ्य इत्यसुन् ॥ १० ॥

अतीवतेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ॥

ददशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ मं. १२ श्लो. ११

अतीवेति । तत्र देवसदसि । दैवतेजसि वा । अतीवेत्यव्ययं निर्भर-मित्यर्थः । अतिगाढमिति वा । बलवत्सुष्ठु किमुत स्वत्यतीव च निर्भर इत्यमरः । ज्वलन्तं दीप्तं । पर्वाण्यस्मिन्सन्तीति पर्वतोऽद्रिः । तत्पर्वम-रुद्धमिति तत् । पर्वन्तमिव उच्चत्वापर्वन्तसदृशं । ज्वलतीति ज्वाला दीप्तिः । ज्वलन्तकसन्तेभ्योणः । अदन्तत्वाद्वाप् । वल्लेर्द्वयोर्ज्वालकीला-वित्यमरः । वल्लेरिति प्रायोवादः । हेतिः स्यादायुधज्वाला सूर्यतेजः सुयोषितीति कोशे तथा च दर्शनात् । तथा व्याप्तं दिशामन्तरं मध्यं येन तं तेजसः कूटं राशिः । चौरादिकात्कूटदाहे इत्यस्मात्पचाद्यच् ।

कूट्यते वा कूटः । घञ् । मायादम्भाद्रिशृङ्गेषु सीराङ्गेऽनृतलुब्धयोः ।
निश्चलेऽयोधने रात्रौ इति हैमः । ते सुरंतीति सुराः । पुप्रसवैश्वर्ययोः ।
इगुपधेति कः । यद्वा सु शोभनं राजन्ते इति सुराः । राजृदीप्तौ अस्मा-
दन्योऽपीति डः । दृष्टुः । चाक्षुषजानविषयं चक्रुः । दृशेः परोक्षे
लिट् ॥ ११ ॥

ततः किमभूदित्याद्यङ्कायामाह—

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ॥

एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥ मं. १३ श्लो. १२

अतुलमिति । तदित्यव्ययमानन्तर्ये । तत्र कालीपुराणप्रसिद्धे
कात्यायनाश्रमे । देवसदसि वा । तोलयतीति तुला उपमा तलउपमाने
चुरादिः । अस्मात्पचाद्यच् । अतुलोपमाभ्यामिति निर्देशाद्गुणाभावः ।
णिजभावे तु इगुपधेति कः । तुलासादृश्यमानयोरिति कोशः । न तुलाय-
स्येत्यतुलं । निरुपममित्यर्थः । सर्वेषां देवानां शरीरेभ्यो जातमाविर्भूतं
सर्वदेवशरीरजं । पंचम्या जनेर्डी । एकेन लक्षणया एकाकारेण तिष्ठती-
त्येकस्थं । एकस्मिन्समवायिनि वा तिष्ठतीत्येकस्थं । सुपिस्थ इति सूत्रे
सुपीतियोगविभागात्समासः । त्वेषतीति त्विट् कान्तिः । त्विष् कान्तौ ।
अस्मात्त्विवप् । स्युः प्रभारुचिर्त्विङ्भाभाश्चविर्द्युतिदीप्तय इत्यमरः ।
व्याप्तं लोकानां त्रयं त्रितयं येनेति व्याप्तलोकत्रयं । त्रयमिति त्रिशब्दात्सं-
ख्यायाअवयवे तयप् तस्य द्वित्रिभ्यां तयस्याऽनद्वैत्यजदेशे रूपम् ।
यत्तेजस्तन्नारी । नृतरयोर्वृद्धिश्चेति शार्ङ्गरवादिपाठात् ङीन् । तत्सन्नि-
योगे न वृद्धिश्च । नारी स्त्री अभवत् । नार्याकारेण परिणतमभूदिति
भावः । अत्र कालिकापुराणे आश्विनकृष्णचतुर्दश्यामयमवतारः । तच्छु-
क्लाष्टम्यां तद्वधः । नवम्यां पूजा । दशम्यां विसर्जनं च । देवैरिति च
तत्रोक्तमिति ॥ १२ ॥

उत्पन्नायादेव्या अंगविभागमाह—

यदभूच्छाम्भवन्तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ॥

याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥ मं. १४ श्लो. १३

यदभूदिति पञ्चभिः । यत् शाम्भोरिदं शाम्भवं । तस्येदमित्यण ।
तेजः आविरभूत् । तेन तेजसा । तदित्यव्ययम् । तस्या इत्यर्थः । तस्याः
मुखं तन्मुखमिति वा । अजायत । प्रादुर्भूतम् । जनेः कर्मणि लट् ।

ज्ञाजनों र्जा । यमस्येदं याम्यं यमाच्चेति ण्यः । याम्येन तेजसा । क्लिश्यन्ते क्लिश्यन्ति वा केशाः चिकुराः । क्लिशविबाधायां क्लिशबंधने वा । अस्मात्क्लिशोरन् लोलोपश्चेतिसिद्धम् । अभवन् । विष्णोस्तेजसा बाहवो भुजाः अभवन् प्रादुर्भूताः । भवतेः कर्तरि लङ् ॥ १३ ॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यमैन्द्रेण चाभवत् ॥

वारुणेन च जङ्घोरु नितम्बस्तेजसा भुवः ॥ मं. १५ श्लो. १४

सौम्येति । सोमस्येदं सौम्यं । तस्येदमित्यण् तदन्तात्स्वार्थे ष्यञ् । तेजसेति सर्वत्र संबध्यते । सोमसंबन्धि तेजसा स्तनति कथयति यौवनोदयं । स्तन्यते शब्दयते कामुकैरिति वा स्तनः । स्तनशब्देऽस्मात्पचाद्यच् । पुंसीति घोवा । तयोः युज्यत इति युग्मं युगलं अभवत् । युजिर् योगे अस्माद्युजिरुचितिजां कुश्चेति मक् । युग्मं यमलयामले इतिरभसः । इन्द्रस्येदमैन्द्रं तेन तेजसा मध्ये शरीरस्य भवं मध्यं देहमध्यभागः । असाप्रतिके इत्यकारप्रत्ययः । मध्यं विलग्ने न स्त्री स्यान्मध्येऽन्तरेऽधमे त्रिषु इति कोशान्तरम् । वरुणस्येदं वारुणं । तेन तेजसा । चोभिन्नक्रमः । जायत इति जङ्घा जानुः अभवत् । अवतस्य जङ्घ च । वाजङ्घन्यते कुटिलं गच्छतीति जङ्घा । हन्तेर्यङ्लुगन्तादन्येभ्योऽपीति ङः । ऊर्णयते इत्यूरु । जङ्घयोरुपरिभागः । तौ च अभवतामिति विभक्तिविपरिणामेनान्वयः । ऊर्णुञ् आच्छादने । अस्मादूर्णोतेर्नुलोपश्चेति कुः । सक्रिय क्लीबे पुमानूचित्यमरः । यद्वा जङ्घासहिताऊरु जङ्घोरु । शाकपार्थिवादिः । दधिपयमादित्वेन समाहारनिषेधात् प्राण्यङ्गसमाहारस्य पूर्वोक्तरीत्या अनित्यत्वाद्वा इतरेतरद्वन्द्वः । ऊरुनितंबौ भुवस्तेजसेति कल्पनं तु सम्यक् । तादृशकल्पने यत्नाभावात् । अत्र चकाररूपस्य यत्नस्य सत्वात् । भवति उत्पद्यते इति भूः । कर्तरि क्विप् । अद्भ्यः पृथ्वीति श्रुतेः । भुवः भूमेस्तेजसा । नितंबति नितंब्यते वा नितंबः । तंबगती अस्मादच् । निभृतं तम्यते कामुकैरिति वा । तमुकांशायाम् । नितंबः स्त्रीकट्या. पश्चाद्भागः । अभवदित्यन्वयः ॥ १४ ॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदंगुल्योऽर्कस्तेजसा ॥

वसूनां च करांगुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥ मं. १६ श्लो. १५

ब्रह्मण इति । ब्रह्मणस्तेजसा । पद्यते इति पादः । पदरुजविशस्पृशो घञिति घञ् । पादे बुध्ने तुरीयांशे शैलप्रत्यन्तपर्वते । चरणे च मयूखे चेति कोशान्तरम् । पादौ अभवतामिति शेषः । अर्कस्य तेजसा तयोः

पादयोः अङ्गुलीत्यङ्गुल्यः बाहुलकाङ्गुः । अंबांबगो इति सूत्रे अङ्गुलशब्दो-
 ऽङ्गवाचीतिस्पष्टमाकरे यद्यप्यङ्गुल्यः करशाखाः स्युः । अङ्गुलिः
 करशाखायां कर्णिकायाङ्गजस्य च इत्यमरहैमकोशाभ्यां करशाखास्वे-
 वाङ्गुलिशब्दोभाक्तः तथाप्युक्तरीत्या योगमाश्रित्य लक्षणया वा
 पादावयवेषु प्रयुज्यते इति बोध्यम् । वसन्तीति वसवः । आपोऽध्रुवश्च
 सोमश्चेत्यादिना परिगणिता अष्टौ । तेजसेति चकारेणानुकुष्यते । वसूनां
 तेजसा कराः भुजाः । दोर्दोषौ च भुजो बाहुः पाणिर्हस्तः करस्तथेति
 धनञ्जयः करमहिता अङ्गुल्यः करशाखाः कराङ्गुल्यः । शाकपार्थिवादिः ।
 प्राण्यङ्गसमाहारस्यानित्यत्वाश्रयणे तु कराश्चाङ्गुलयश्चेति बोध्यम् ।
 कुत्सितं बेरं शरीरमस्येति पिङ्गनेत्रत्वात् । कुत्सायां क्वचित्शब्दोऽयं
 शरीरं बेरमुच्यते । कुबेरः कुशरीरत्वाभ्याम्ना तेनैव सोऽङ्कित इति
 वायुपुराणे । वा कुंभेति धनमिति । कुम्बि आच्छादने । कुबेरंलोपश्चेरक् ।
 कुबेरोधनाध्यक्षस्तस्येदं कोबेरं तेन तेजसा नासिका अभवदिति शेषः
 ॥ १५ ॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।

नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥ मं. १७ श्लो. १६

तस्या इति । तस्या देव्याः प्रजापतीनां दक्षकर्ममादीनां दशानामिदं
 प्राजापत्यं । दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्य इति ण्यः । तेन तेजसा
 वामनपुराणे तथा दर्शनात् । दाम्यन्तीति दन्ता रदनाः । दमुपशमे ।
 अस्मादन्तर्भावितप्यथाद्वाहुलकात्तन् । सम्भूता उत्पन्नास्तस्या इत्यनुवर्तते ।
 नीयते अनेनेति नयनं लोचनम् । नीयतेत्युट् । तेषां त्रितयं । पुनातीति
 पावकोऽग्निः । पूजः कर्त्तरिण्वुल् । तस्य तेजसा तथा तेन प्रकारेण । जज्ञे
 जनेः कर्त्तरि लिट् ॥ १६ ॥

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।

अन्येषां चैव देवानां संभवस्तेजसां शिवा ॥ मं. १८ श्लो. १७

भ्रुवाविति । सम्यग्ध्यायन्त्यस्यामिति सन्ध्या । ध्यैविन्तायामित्य-
 स्मादातश्चोपसर्ग इत्यङ् । तयोः पूर्वापरयोस्तेजः । भ्रुवावभूतामिति
 शेषः । करणतेजसः कर्तृत्वं साध्वसिद्धिन्ततीति वत् । अनिलस्य वायो-
 स्तेजश्चश्रवणौ कर्णौ । पुंस्त्वमार्षं । अभूतामिति शेषः सम्भवतीति सम्भवः
 कार्यः । अन्येषां देवानां नासत्यविश्वकर्मादीनां सम्बन्धिनां तेजसां ।
 शिवमस्त्यस्याः शिवो वास्ति भर्तृत्वेनास्या इति शिवा । अशं आद्यजन्ता-

दृष्ट्वा । शिवयतीति शिवा तत्करोतीति ण्यन्तात्पचाद्यन्ताद्दृष्ट्वा शिवं भद्रं
शिवः सम्भुः शिवा गौरी शिवाभयेति शाश्वतः । सम्भवः कार्यं ।
अनादिष्टलिङ्गत्वात्पुंस्त्वम् ॥ १७ ॥

एवं देवीविग्रहे सिद्धे देवाः किमकुर्वन्नित्याशङ्क्यामाह—

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।

तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरामहिषादिताः ॥ मं. १९ श्लो. १८

तत इति । ततोदेवीविग्रहसिद्ध्यनन्तरं समस्तानां देवानां तेजसां ।
अश्नुते इति राशिः समूहः । अशिषणाययोरुडायलुकौ चैतीण् प्रत्ययो
धातो रुडागमश्च । राशिर्मेघादिपुञ्जयोरिति कोशान्तरम् । ततः समुद्भव
आविर्भावो यस्यास्ताम् । तेजसो नित्यसापेक्षत्वात्समासः । तां विलोक्य
दृष्ट्वा महिषेण अदिताः पीडिताः । अर्दहिंसायां कर्त्तरि क्तः अमरा देवा
मोदनं मुत्प्रीतिः । सम्पदादिः । मुत्प्रीतिरित्यमरः । तां प्रापुर्ललम्भुः ।
कर्त्तरिलिट् ॥ १८ ॥

आयुधदानमाह—

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।

चक्रं च दत्तवान्कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥ मं. २० श्लो. १९

शूलमिति । पातीति पिनाकः शिवधनुः । पिनाकादयश्चेति
निपातेराकः इत्वं नुम् च । पिनाकः शिवकोदण्डे पांशुवृष्टिशूलयोरिति
कोशान्तरम् । पिनाकं धारयतीति पिनाकधृक् । क्विप् चेति कर्त्तरि
क्विप् । धातूनामनेकार्थत्वाद्गत्यर्थो धृतिर्द्धारणार्थः । सशिवः । शूलं
त्रिशिखमायुधं शूलान्निजायुधाद्विनिष्कृष्याकृष्य उत्पाद्येति यावत् । सत्य-
सङ्कल्पत्वादिति भावः । तस्यै देव्यै ददौ । अत्रायम्भावः । यथा देवतेजो-
भिस्तेजोमयो देव्यभवत्तथा देवायुधान्यपि देवायुधसमुद्भवानीत्यवधार्यम् ।
यच्च देवायुधानि मन्त्रध्यानवशंवददेवाकृतीन्यनन्ताद्भुतशक्तीनि शूलात्
शूलाधिदेवादिति व्याख्येयम् । कृष्णोवर्णोऽस्यास्तीति कृष्णो विष्णुः ।
स्वस्यचक्रतः सुदर्शनात् चक्रं समुत्पाद्य जनयित्वा तस्यै दत्तवान् ।
जनिकर्तुः प्रकृतिरित्यपादाने पञ्चमी ॥ १९ ॥

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।

मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥ मं. २१ श्लो. २०

शङ्खमिति । चोभिन्नक्रमे । शङ्खं तस्यै वरुणः ददौ । हुताशनो-

ग्निः तस्यै । शक्यतेऽनयेति शक्तिः शक्ति कासं ददौ । कासुसामर्थ्ययोः
शक्तिरित्यमरः । म्रियन्तेऽनेनेति मरुत् मरुदेव मारुतो वायुः । प्रज्ञाद्यण् ।
चापं धनुः बाणैः पूर्णं अक्षयबाणे । इषवो धीयन्ते आभ्यामिषुधी शराधारे ।
कर्मणी । कर्मण्यधिकरणे चेति धाधातोः किः । इषुधी इति द्विवचनं ।
सव्यापसव्यबाहुभ्यां आकर्षणसूचनार्थं दत्तवान् । कर्त्तरि क्तवतुः ।
दोदद्योः ॥ २० ॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।

ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद्गजात् ॥ मं. २२ श्लो. २१

वज्रमिति । कुलिहस्तः । कुलिहस्तो भुजादल इति त्रिकाण्डशेषः ।
कुलो हस्ते शेते इति कुलिशं । अन्यत्रापीति डः । कुलिनः पर्वतान्
श्यतीति वा कुलिशम् । शोतनूकरणे । अस्मादातोऽनुपसर्गे कः । कुलिशो
न स्त्रियां प्रोक्तो दम्भोलो ना झषान्तरे इति कोशान्तरम् । तस्मात्
व्रजतीति वज्रं ऋज्जेति रन् । समुत्पाद्य । इन्द्रः सहस्रमक्षीण्यस्येति
सहस्राक्षः । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्षणोरिति षच् । सर्वहृक् अमराणामधिपः
पुरन्दराख्यः । इरा जलं अस्त्यस्मिन्निति इरावान् समुद्रः । इराकोशे च
वारिणीति कोशः । ऋज्जेत्यादिना निपातितः । प्राशस्त्ये मतुप् ।
इरावत्यब्धौ भवः ऐरावतः । तत्र भवइत्यण् ऐरावतात् । गजतीति
गजो हस्ती । तस्मात् गजमदने । पचाद्यच् । समुत्पाद्येति ल्यबन्तमिहापि
सम्बध्यते । घण्टां प्रसिद्धां वादित्रं ददौ । सम्भवव्यभिचाराभ्यां स्याद्वि-
शेषणमर्थवदिति न्यायेन सहस्रेक्षणो नागः शेषोऽपि वक्तुं शक्यतेति
तद्व्यावृत्तये अमराधिपः सोऽपि लोकपालः स्यादत उक्तं सहस्राक्ष इति ।
सविशेषोऽपि स्यादतः सहस्रमेवेत्यविधूतविग्रहविक्षणाददोषः । रुढि-
योगमपहरतीति न्यायस्तु नेहाश्रितम् ॥ २१ ॥

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।

प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥ मं. २३ श्लो. २२

कालदण्डादिति । कालदण्डाख्यादत्र विशेषात्समुत्पाद्येति शेषः ।
यमः दण्डं नामैकदेशे नामग्रहणात्कालदण्डमित्यर्थः । अम्बुनां जलानां
पातीति पतिः वरुणः पाशं निजास्त्रं ददौ । आश्वखाशालिघ्रायं पाशो
बन्धनशस्त्रयोः । प्रजापतिरिति ब्रह्मणो विशेषणम् । कमण्डल्वक्षमाला
दानृत्वेन ब्रह्मण एव वामनपुराणे उक्तत्वात् । अक्षतीत्यक्षो रुद्राक्षः ।
अक्षव्याप्तावस्मात्पचाद्यच् । अक्षो ज्ञानात्मशट्कावयवेषु सुपाशके । रुद्रा-

क्षेत्राक्षयोः सर्पे विभीतकतरावपीति कोशान्तरम् । तेषामक्षाणां मालां कस्य प्रजापतेर्जलस्य वा मण्डलस्तं लाति इति कमण्डलुः । मडि भूषायां घञ् । कस्य मण्डनं भूषां लाति वा । अस्त्री कमण्डलुः कुण्डीत्यमरः । तं ददौ ॥ २२ ॥

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन्दिवाकरः ॥

कालश्चदत्तवान्खड्गं तस्यैवचर्मचनिर्मलम् ॥ मं. २४ श्लो. २३

समस्तेति । समस्तेषु अखिलेषु । रोहन्तीति रोमाणि । नामन्शी-
मन्नित्यादिना साधुः । तेषां कुर्वन्ति इति कूपाः गर्ताः । कुशब्दे क्युभ्यां
चेति पोदीर्घश्चेति । कूपः कूपकमृन्माने गर्ताधुगुणवृक्षके इति कोशान्त-
रम् । तेषु निजानात्मीयात्रश्मीन्किरणान्ददौ । किरणप्रग्रहोरश्मीत्यमरः ।
दिवा दिनं करोतीति दिवाकरः सूर्यः कत्यत इति कालः । निमेषाद्य-
भिमानी देवता । कलसंख्यानेऽस्मात्कर्मणि घञ् । कालयति सर्वमिति
वा ण्यन्तात्पचाद्यच् । कालो मृत्यो महाकाले समये यमकृष्णयोरिति
कोशान्तरम् । खण्डयति परं, खण्डयते अनेनेति वा खड्गोऽसिः । खडि-
भेदने । अस्मान्छापूर्वखडिभ्यः किदिति गन् । तस्या देव्याः दत्तवान् ।
तस्या इति षष्ठीनिर्देशः । कार्यनिवृत्ते पुनर्ग्रहणार्थः । रजकस्य वस्त्रं
ददातीति वत् । स्वस्वत्वपरित्यागपूर्वकपरस्वत्वापादनरूपे । दाने हि
चतुर्थी । विप्राय गां ददातीतिवदयमर्थश्च षष्ठीनिर्देशाभिव्यंग्यएवेत्येके ।
तस्या इति सापेक्षदानत्वान्न संप्रदानत्वमिति पुष्पाञ्जलिः । तस्या इति
संबन्धविवक्षायां षष्ठीति नागेशः । अथवा अथातो ब्रह्माजिज्ञासा । अथातो
धर्मजिज्ञासा इत्यत्र समासान्तगता षष्ठी यथा चतुर्थ्यर्थे फलति । तथा
चाश्रूयमाणा षष्ठी । एकशतं षष्ठ्यर्था इति न्यायेन चतुर्थ्यर्थेफल्यति ।
छांदसी वा । चतुर्थ्यर्थे षष्ठीति रामाश्रमः । सम्बन्धसामान्ये षष्ठीत्यन्ये ।
अत्र केचिदेवं व्याचक्षते । आः इति सातिशयेऽनुरूपे चाव्ययम् । तस्य
खड्गस्य आः योग्यं चर्म चेत्यर्थः । वा तस्य अः इति छेदः । अः इति
साम्प्रतम् । असुदीप्तौ अस्मात् क्विपि । आः दीप्तमित्यर्थः । किंभूतं निर्मलं
मलरहितं । वा तस्येत्यनादरे षष्ठी । कालः खड्गं दत्तवान् । तं खड्गमना-
दृत्य चर्मफलकं दत्तवान् । वज्रकालदण्डाद्यायुधेषु सत्सु । अत्र तस्यैति ।
चतुर्थ्यन्तपाठे तु न कश्चिद्दोषः ॥ २३ ॥

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।

क्षीरोद इति । क्षीरमुदकं दुग्धं वा यस्येति क्षीरोदः क्षीरसमुद्रः ।
अमलं मलरहितं । हारयति मन इति हारः हारो मुक्तावलीत्यमरः ।
स्वार्थण्यन्ताद्धरतेः पचाद्यच् । तं हारं । जरणं जरानूतनत्वहानिः । न
जरा ययोस्ते । अवनमम्बः । अविशब्दे घञ् । अम्बं रातीत्यम्बरं वस्त्रं ।
आत इतिकः । अंबरे वाससी ददौ इतिपूर्वेणान्वयः । अम्बरं व्योम्नि-
वाससीति कोशः ॥

इतः प्रभृति श्लोकत्रयमेककर्तृकमेकक्रियं च द्रष्टव्यम्—

चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डलेकटकानि च ॥ मं. २५ श्लो. २४

अर्द्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान्सर्वबाहुषु ।

नूपुरौ विमलौ तद्वग्रेवैयकमनुत्तमम् ॥ मं. २६ श्लो. २५

अंगुलीयकरत्नानि समस्तास्वंगुलीषु च ॥

विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुचातिनिर्मलम् ॥ मं. २७ श्लो. २६

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।

चूडामणिमिति । सादृष्ट्वेनान्वयः । चूडयन्ते इति चूडा । शिखा
चूडाकेशपाशीत्यमरः । तस्याः । मणत इति मणिः रत्नं । मणशब्दे
अस्मादिन् । मणिः स्त्रीपुंसयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि चेति विश्वः ।
चूडामणिः काकबिम्बकलं मूढमणावपीतं हैमः । किभूतं दिवि स्वर्गं भवं
दिव्यं । युप्रागपागुदकप्रतीचोयत् । कुण्डते कुण्डयते वा कुण्डलं कर्ण-
भूषणम् । कुडिदाहे । कुडिरक्षायां वा वृषादिस्त्वात्कलच् । कुण्डलं कर्ण-
भूषायां पाशेऽपि बलषेऽपि चेति कोशान्तरम् । कुण्डलेद्वे । कटति कटयते
वा कटकानि वलयानि कटे वर्षावरणयोः । अस्मात्त्वबुन् । कटको वलयो
स्त्रियामित्यमरः । अत्र कटकानीति बहुवचनमष्टादशभुजाभिप्रायेणेति
॥ २४ ॥ अर्द्धचन्द्रमिति शोभते इति शुभ्रं । शुम्भदीप्तो शोभायां वा ।
स्फायीतिरक् । शुभ्रं दीप्तेऽभ्रके सित इति हैमः । अर्द्धचन्द्रं अर्द्धचन्द्राकारं
हिरण्यघटितं हीरकादिमणिसम्बद्धं भूषणं लोके प्रसिद्धं । अर्द्धचन्द्रस्य
समविभागः अर्द्धचन्द्रः । अर्द्धं नपुंसकमिति समासः । परवल्लिङ्गमिति
पुंस्त्वम् । तथा स एव विश्वकर्मा तस्यै देव्यै सर्वबाहुषु सर्वेषु बाहुषु । के
बाहुशिरसि युवन्तीति केयूरान्यङ्गदानि । युविश्रणे । खर्जादित्वात् ऊरुः ।
हृलदन्तादिति सप्तस्या अलुक् । ददाविति । केयूरमङ्गदं तुल्येत्यमरः ।
पुंस्त्वमाषम् । विगतं मलं ययोस्तौ । नवनं, नूयते, वा नूः । ग्लुस्तुतौ ।

सम्पदादिः । नुवि पुरतः अग्रे गच्छत इति नूपुरौ मञ्जीरौ । पुर अग्र-
गमने । इगुपधेति कः । मञ्जीरोऽस्त्री सनूपुर इति विश्वः । तद्वदिति
वत्त्वन्तमव्ययम् । तेन तुल्यः दिव्यत्वादिगुणयुक्तादिति भावः । न विद्यते
उत्तमं श्रेष्ठं यस्मात्तत् । ग्रीवायां भवं ग्रेवेयकं । कुलकुक्षिग्रीवाभ्यः
श्वास्यलङ्कारेष्विति । ढकञ् ॥ २५ ॥ अंगुलीयकेति । अंगुलिषु भवानि
अंगुलीयानि । जिह्वामूलांगुलेष्ठः । ततः स्वार्थे कन् । तेषु । रमन्ते एष्विति
रत्नानि । स्वजातिश्रेष्ठानि । अंगुलिभूषणमुख्यानीत्यर्थः । रमेर्बाहुलकात्
कनप् । तुक् । रत्नं स्वजातिश्रेष्ठे स्यान्मणाविति हैमः । देव्याः समस्तासु
सकलासु अंगुलीषु ददौ । च पुनः । अतिनिर्मलमति स्वच्छं । परं शृणातीति
परशुः शृङ्गिषायां । आङ् पूर्वोदस्मात् खनिशृभ्यां ङिच्चेति कुः । तं परशुं
विश्वकर्मा तस्यै ददावित्यर्थः ॥ २६ ॥ अस्यन्ते असन्ति वा अस्त्राणि ।
असु क्षेपणे घृन् । अनेकरूपाणि बहुप्रकाराणि । अभेद्यं अविदायं । दृश्यते
अनेनेति दंशनं वर्म । दृशिदंशनस्पर्शनयोः । करणे ल्युट् । दंशनं वर्मदं-
शयोः । चूडा । मण्यादिकवचान्तं, विश्वं कर्म यस्यासौ विश्वकर्मा देव-
शिल्पी । विश्वकर्माकंसुरशिल्पिनोः । तस्यै ददाविति सर्वत्र सम्बन्धः
॥ २६ ॥

अम्लानपङ्कजांमालां शिरस्युरसि चापराम् ॥ मं. २८ श्लो. २७

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ॥

अम्लानेति । न म्लानानि क्षीणहर्षाणि सदाद्राणीत्यर्थः । पङ्कजानि
यस्यां सा तां मालां स्रजं शिरसि । अपरां अन्यां मालां उरसि । चः
भिन्नक्रमे । शिरस्याधारे विषये वा सप्तमी । श्रयति किरीटादिनेति
शिरोमूर्द्धा श्रयते । स्वाङ्गे शिरः किञ्चेत्यसुन् । शिरः प्रधाने सेनाग्रे
शिखरे मस्तकेऽपि च । शिरोवाची शिरोऽदन्तो, रजोवाची रजस्तथेति
कोशान्तरम् ॥ २७ ॥ अदददिति । जलानि धीयन्तेऽस्मिन्निति जलधिः
क्षारसमुद्रः । दधातेः कर्मण्यधिकरणे चेति कः । तस्यै देव्यै अददत् ।
ददेः कर्त्तरि लङ् । अत्र यद्यप्यनुदात्तेतत्त्वाद्देर्लङ् आत्मनेपदं न्याय्यं
तथापि चक्षिडो ङित्करणज्ज्ञापकादनुदात्ते तत्त्वलक्षणमात्मनेपदम-
नित्यमिति ज्ञायते । तेन क्वचित्परस्मैपदं साध्वेव । अददादिति पाठेन
कश्चिद्दोष इत्यपि केषांविन्मतम् ॥

हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च ॥ मं. २९ श्लो. २८

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ॥

हिमवानिति । हन्तीति हिमं तुषारः । हन्तेहिचेति मक् । हिमं तुषारमलयोद्भवयोः स्यान्नपुंसकम् । शीतले वाच्यलिङ्गश्चेति नपुंसकम् । हिममस्मिन्नस्तीति हिमवान् गौरीजनकः शैलः । भूमिन् मतुप् । वाहयति प्रापयतीति वाहनं सिचतीति सिंहो मृगेन्द्रः षिचक्षरणे । षिचैः संज्ञायां हनुमौ कश्च । यद्वा हिनस्तीति सिंहः । हिसि हिंसायामच् । पृषोदरादित्वाद्गणविपर्ययः । सिंहः कण्ठीखे राशौ सत्तमे चोत्तरे स्थित इति कोशान्तरम् । विशिष्टं विविधं येषां तानि विविधानि बहुप्रकाराणि रत्नानि हीरकादीनि ददौ । सुष्ठुराति यामिति सुरा कादम्बरी । रा दाने । सु अतीव रायन्त्यनया वा । रै शब्दे । आतश्चोपसर्गे इत्यङ् । ततश्चाप । सुरा हलिप्रिया हाlet्यमरः । तया अशून्यं पानस्य पात्रं चषकं धनाधिपः कुबेरः ददौ । चषकं पानपात्रं स्यादित्यमरः ॥ २८ ॥

शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषतम् ॥ मं. ३० श्लो. २९

नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ॥

शेषइति । प्रथते इति पृथिवी । प्रथ विस्तारे । प्रथेः षिचन् सम्प्रसारणं च । षित्त्वान्डीष् । इमां सन्निकृष्टां पृथिवीं धत्ते धारयति धात्रः कर्तरिलटस्तादेशेऽटित आत्मनेपदानां टेरे इत्येत्वे श्लाविति प्रकृते-द्वित्वे स्नाभ्यस्तयोरित्यालोपे दधस्तयोश्चेति भष् भावे रूपम् । सः । सर्वे समस्ताः, ये नगे भवा नागाः सर्पाः । तत्र भव इत्यण् । अनन्तो नागराजः स्यात्सर्पराजस्तु वासुकिरित्यभिधानात् सुप्सुपेति समासः । तेषामीष्टः । शिष्यत इति शेषोऽनन्तः । शिष्ल विशेषणे । घञ् । शेषोऽनन्ते वधे शीरिण्युपयुक्तेतरेऽपि चेतिहैमः । तेजसा मूल्येन वा महान्तो ये मणयो हीरकाद्यास्तैर्विशेषेण भूषितं नागहारं नागहारसंज्ञया प्रसिद्धं पवित्रकं तस्यै ददौ । तच्च पवित्रारोपणप्रकरणे कालीपुराणे । एतत्तु नागहाराख्यं शङ्करस्य पवित्रकम् । अष्टोत्तरसहस्रेण तन्तूनां सुमनोहरम् । यः प्रयच्छति मह्यं तत्स यावत्तन्तुसञ्चयः । तावत्कल्प-सहस्राणि मम लोके महीयत इति । वा नागलोकभवो हारो नागहारः । शाकपार्थिवादिः ॥ २९ ॥

अन्यैरपिसुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥ मं. ३१ श्लो. ३०

सम्मानिता नानदोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ॥

अन्यैरपीति । अन्यैः पूर्वोक्तातिरिक्तैः सुरैः देवैरपि भूष्यते अलं क्रियते एभिरिति तैः भूषणैरनुक्तालङ्कारैः उक्तालङ्कारैस्तथा पूर्ववत्

सम्यक् मानिता पूजिता । मानपूजायां । कर्तरि क्तः । यद्वा । सम्मानं
सम्यक् पूजनं सञ्जातमस्याइति तारकादित्वादितजजन्तादृप् अट्बत
इति अट् । अतिक्रान्त इत्यर्थः । अट् अतिक्रमे । कर्मणि घञ् । अट् यतीति
वा अट् । पचाद्यच् । अट् नमट् । भावे घञ् । वा । हसनं हासः ।
हसहसने । भावे घञ् । अट्श्चासौ हासश्चाट्हासः महाहासः । तेन सह
वर्त्तमानेति क्रियाविशेषणम् । तेन सहेति समासे वोपसर्जनस्येति सहस्य
सः । उच्चैरिति महदर्थकमव्ययम् । क्रियाविशेषणं च । मुहुर्मुहुर्वारं वारं
आदरे वीप्सा । ननाद । अव्यक्तं शब्दं चकार । सिंहनादं चकारेत्यर्थः ।
अल्पे नीचैर्महत्युच्चैः प्रायो भूम्नीत्यमरः ॥ लक्ष्मीतन्त्रे शक्रं प्रति लक्ष्मी-
वाक्यं । महालक्ष्मीरहं शक्र पुनः स्वायंभुवेऽन्तरे । हिताय सर्वदेवानां
जाता महिषमर्दिनी ॥ मदीयाः शक्तिलेशाये तत्र देवशरीरगाः । धृतं
मया तैः सम्भूतैः रूपं परमशोभनम् ॥ आयुधानि च देवानां यानि यानि
सुरेश्वर । तच्छक्त्यस्तदाकाराण्यायुधानि तदाभवन् ॥ वर्षान्ते नवरात्रे-
तुत्पन्ना महिषमर्दिनीति ॥ ३० ॥

तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं ननः ॥ मं. ३२ श्लो. ३१
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ॥

तस्या इति । तस्याः देव्याः । नदनं नादः शब्दः । नदतेभावे घञ् ।
तेन घोरेण भीमेन । कृतीवेष्टने कृत्यते इति कृत्स्नं समस्तं कृत्यशुभ्यां
कृत्स्नः इति क्स्नः । नह्यत इति नभ आकाशम् । णह्वन्धने । अस्मान्नहेदिवि
भश्चेत्यसुन् भश्चांतादेशः । नभते वा नभः णभ हिंसायां असुन् । सान्तं
नभोव्योन्निनभो मेधे श्रावणे च पतद्ग्रहे । घ्राणे मृणालसूत्रे च वर्षासु
च नभः स्मृत इति विश्वः । नभोभुवर्लोक इत्यर्थः । आपूरितमाप्यायितं
अभिव्याप्तमित्यर्थः । पूरी आप्यायने णिजन्तः ईदितत्वादस्य श्रीदितो
निष्ठायामितीप्तिनषेधे प्राप्ते वा दांतशांतपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञा इति णिचि
विकल्पेन निष्ठान्तनिपातनात्पाक्षिके इटि कृते आपूरितमिति रूपसिद्धम् ।
न मायाकरयध्वसो यत्रासौ अमायः अमायस्य भावः अमायता अमायतया
अतिमहता नादेन प्रतिध्वनिं लक्ष्मीकृत्य । शब्दयते, शब्दनं वा प्रतिशब्दः
प्रतिध्वनिः । शब्दकरणे एरच् । घञ् वा । महान्परिमाणरहितः । अभूत
अजनिष्ट परप्रोत्साहनाय सकपटं क्रियमाणो नादो न प्रतिध्वनि । जन-
यति नतर्थात् भावः । यद्वा । माङ्गमाने दिवादिः । कर्तरि लङ् तन नादेन
कृत्स्नं नभ आपूरितं सत् अमायत परिमितमजायत । अहो महत्पारणा-

ममपि नभो नादेन पूरणादमायत परिमितमजायतेत्याश्चर्यम् ॥३१॥

चुक्षुभुः सकलालोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥ मं. ३३ श्लो. ३२

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ॥

चुक्षुभुरिति । तेन प्रतिशब्देन सकलाः समस्ता लोकाः भुवनानि
चुक्षुभुः क्षुब्धाः वभूवुः । समुन्दन्तीति समुद्राः उन्दीकलेदने स्फापीति
रक् । चकम्पिरे कम्पिताः । वसुदधातीति वसुधा पृथ्वी । आत इति कः ।
चचाल कम्पिता । धरन्तीति धराः पचाद्यच् । मह्यत इति महिः । मह-
पूजायाम् चुरादावदन्तः प्यन्तादेव इः । कृदिकारादिति डीष् । वीचिः
पंक्तिर्महिः केलिरित्याद्या ह्रस्वदीर्घयोरिति वाचस्पतिः । यद्वा । महीयत
इति । महीङ् पूजायामिति काङ्वादियगन्तः । क्विप् च इति क्विप्पलो-
पयलोपौ । कृदिकारादिति डीष् । मह्याधराः महीधराः चेलुः । चलेः
कर्तरि लिट् महीनद्यन्तरे भूमाविति हैमः ॥ ३२ ॥

जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥ मं. ३४ श्लो. ३३

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥

जयेति । च आनन्तर्ये । देवाः सर्वे मुदा हर्षेण सिंहं वाहयितुं
शीलं यस्यास्ताम् । वा सिंहं वाहयति युद्धौचित्यं प्रापयतीति ताच्छील्ये
णिनिः । डीप् । तां देवीं, जय सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्वेति शब्दस्वरूपं ऊचुः
जगदुः । इतिशब्दोपलक्षितं शब्दस्वरूपं द्वितीयं कर्म । असंयोगाल्लिटः
क्त्वाद्वचिस्वपियजादीनां कितीतिप्रकृतेः सम्प्रसारणम् । लिट्यभ्यासस्यो-
भयेषामित्यभ्यासस्य सम्प्रसारणम् । मन्यन्त इति मुनयः । कात्यायन-
प्रभृतयः । मनज्ञाने मनेरुच्चेति निः । मुनिः पुंसि वसिष्ठादो वङ्गसेनतरो
जिने इति कोशान्तरम् । भजनं भक्तिः श्रद्धाविशेषः । तया नम्रा प्रह्वीभू-
ताः आत्मामनांस्येषां मूर्त्तयः कायाः येषां ते । एनां सन्निकृष्टवर्त्तिनीं
तुष्टुवुः । वाचा अपूजयन् । मूच्छंतीति मूर्त्तिः मूर्छा मोहसमुच्छ्राययोः ।
संज्ञायान्तिच् राज्ञोप इति लापे दीर्घः । मूर्त्तिः पुनः प्रतिमायां कायका-
ठिन्ययोरपीति हैमः । एनां । इदमो द्वितीयादौस्त्वेनः ॥ ३३ ॥

दैत्योद्योगमाह—

दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥ मं. ३५ श्लो. ३४

सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।

दृष्ट्वेति । समस्तमखिलं । त्रयाणां लोकानां समाहारस्त्रिलोकी

द्विगोरितिङीप् । त्रिलोक्येव त्रिलोक्यं । सङ्क्षुब्धमाकुलीभूतं । क्षुब्धस्वा-
न्तेति निपातितः । दृष्ट्वा । सन्नह्यन्ति, सन्नह्यते वा सन्नह्यानि सज्जानि
नहेरकर्मकात्कर्त्तरि कर्मणि वा क्तः । सन्नद्धो वर्मिणे व्यूढे इति कोशान्त-
रम् । अखिलानि इनेन स्वामिना सहवर्त्तमानाः सेनास्ताः एव सैन्यानि ।
स्वार्थेऽप्यञ् । येषान्ते सन्नह्याखिलसैन्याः सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैन-
काश्च ते इत्यभिधानात् । उदायुधाः उद्यतास्त्राः । अमराणामरयः अम-
राअरयो येषामिति वा । समुत्तस्थुरुत्थिता बभूवुः । उद्योगं चक्रुरित्यर्थ-
स्तु न साधयानूष्वकर्मकत्वेनात्मनेपदप्रसङ्गात् ॥ ३४ ॥

आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः॥ मं. ३६ श्लो. ३५

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।

आ इति । आः इत्यव्ययम् कोपाविष्कारे । आस्तु स्यात्कोपपीडयो-
रित्यमरः । किमेतदिति शब्दस्वरूपमाभाष्य उक्त्वा अशेषैः समस्तैर-
सुरैर्वृतः आच्छन्नः महिषासुरः तं शब्दं देव्या नादमभि लक्ष्यकृत्य
क्रोधात् अधावत् वेगेनागच्छत् । अभिरभागे इति सूत्रेण अमेः कर्मप्रवच-
नीयत्वात्तद्योगे नागमिति द्वितीया । धावगतिशुद्धयोः । अस्मात्कर्त्तरि
लङ् ॥ ३५ ॥

अथ देवीदर्शनमाह —

स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा॥ मं. ३७ श्लो. ३६

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ॥

क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्॥ मं. ३८ श्लो. ३७

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्वाप्य संस्थिताम् ॥

स ददर्शति द्वाभ्याम् । ततः नादोपलक्षितदेशप्राप्त्यनन्तरं ।
त्वेषतीति त्विद् प्रभा । त्विषदीप्तो । अस्मात्कर्त्तरि क्विप् । त्विषा व्याप्तं
लोकत्रयं यया तां तथा । पदेते इति पादौ चरणौ । पदगती । अस्मा-
त्पदरुजेति घञ् । ताभ्यामाक्रान्त्या आक्रमेण । हेतौ तृतीया । आनता
भूर्यया तां । तथा किरति कीर्यते अनेनेति किरीटं मुकुटं । कृषिक्षेपे ।
अस्मात् कृतृकृपेः कीटन् इति कीटन् । मुकुटं किरीटं पुन्नपुंसकमित्यमरः ।
किरीटेन उल्लिखितं लक्षणया स्पष्टं अम्बरं भुवर्लोकोपरिमाणो यया तां
देवीं क्रीडाशीलां । विजिगीषाशीला वा । स महिषो ददर्श । चाक्षुषज्ञान-
विशेषविषयां चकारेति यावत् । दृशेः कर्त्तरि लिट् ॥ ३६ ॥ क्षोभतेति ।

किंभूतां देवीं । धनतीति धनुः कार्मुकं धनुशब्दे । अतिपूवपीत्युस् । धनुः
 पियाले ना नस्त्री राशिभेदे शरासने इति मेदिनी । धनुषः । जिनातीति
 ज्या । शिञ्जिनी । ज्या वयोहानावस्मादन्येभ्योपीति डः । टाप् । मौर्वी
 ज्या शिञ्जिनी गुण इत्यमरः । यद्यपि ज्याधनुर्गुण एव तथापि धनुःपदं
 तत्संयोगोपलक्षणार्थम् । ज्यायाः । निःस्वनतीति निःस्वनं । वा निस्वनः
 शब्दः । स्वन शब्दे । अस्मान्निपूर्वात्रौगदनदपठस्वन इत्यप् विकल्पः । तेन
 क्षोभितानि अपकृतिस्थभावं प्रापितानि अशेषाणि । पतंत्यत्र पापादिति
 पातालान्यधोभुवनानि पतत्पतने । पतिचण्डिभ्यामालञ् । पातालं
 वडवानले रसातले चेति हैमः । तां स्वहन्तृत्वेन प्रसिद्धां । तथा संलग्नो-
 ऽन्तः रमीपदेशोऽस्येति समन्ततः सर्वपर्यायः । प्रादिभ्यो धातुजस्येति
 समासः । समन्तात्सर्वत इत्यर्थः । समन्तात्समंतत इत्यव्ययम् । भुज्यते
 एभिरिति भुजा बाहवः । भुजपालनाभ्यवहारयोः भुज्युब्जाविति
 साधुः । भुजकोटिल्ये । इगुपधेति कः । तेषां सहस्रेण । दिशन्तीति दिशः
 ककुभः । ऋत्विग्दधृगित्यादिना निपातः । दिशः व्याप्य संस्थिताम्
 निवृत्तगतिवत्या सम्यगवस्थिताम् । संस्थाधारे स्थितौ सम्पूर्वातिष्ठतेः
 कर्त्तरि गत्यर्थकर्मकेत्यादिना निष्ठायां द्यतिस्यतीतीत्वम् ॥ ३७ ॥

ततः प्रववृते युद्धं तथा देव्या सुरद्विषाम् ॥ मं. ३९ श्लो. ३८

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्

तत इति । देवी दर्शनानन्तरं । बहुप्रकारैर्बहुधा । संख्याया
 विधायै धा । अथाद्भूटैर्मुक्तैः शस्यन्ते एभिरिति । शसुहिंसायां दाम्नी
 शसइतिष्टन् । शस्त्राणि तैः शस्त्रैः प्रहरणैः अस्यन्ते । असुक्षेपणेष्टन् अस्त्रैः
 आक्षेप्यैः । आयुधन्तु प्रहरणं शस्त्रमस्त्रमित्यमरः । शस्त्रमायुधलोहयो-
 रित्यमरः । अत्र सेनाङ्गत्वप्राप्तसमाहारशङ्कापि न । तैः आदीपितं प्रकाशितं
 दिगन्तरं दिङ्मध्यं यस्मिस्तत् । सुरान् द्विषन्तीति सुरद्विषो दैत्याः ।
 सत्सूद्विषदुहेत्यादिना विवप् । तेषां युद्धं योधनं । भावे क्तः । कर्तृकर्मणोः
 कृतीति षष्ठी । तथा दृष्ट्या देव्या विनापि सहयोगमत्र तृतीया । प्रववृत्ते
 प्रवृत्तमित्यर्थः । वृत्तैः कर्त्तरि लिट् ॥ ३८ ॥

महिषासुरसेनानीश्चिशुराख्यो महासुरः ॥ मं. ४० श्लो. ३९

युयुधे चामरश्चान्यैचतुरङ्गबलान्वितः ॥

महिषेति । सेनां नयतीति सेनानिः सेनापतिः । सत्सूद्विषदुहेति-
 विवप् । सेनानिः स्यात्पुमान् कार्तिकेये सेनापतौ पुमानिति कोशान्तरम् ।

महिषासुरस्य सेनानिः सेनापतिः । चेतनं चित्तज्ञप्तिः । तस्याः क्षुर इव
नाशकत्वाच्चिक्षुरः । उपमितिसमासः । पृषोदरादित्वात्तलोपः चिक्षुरइति
आख्या नाम यस्य सः । स महासुरः युयुधे युद्धं चक्रे कर्त्तरि लिट् । चः
पुनरर्थे । अन्यैः सहितइति शेषः । चत्वारि हस्त्यश्वरथपादातानि अङ्गानि
यस्य । हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयमित्यमरः । बलति बलते
वेति बलं सैन्यं । बल प्राणने । बल संवरणे सञ्चलने वा । अस्मात्पचा-
द्यच् । बरुथिनी बलं सैन्यमित्यमरः । तेनान्वितो युक्तः । चमति वा
चम्यते अनेनेति चामरो दैत्यविशेषः । चमु अदने । अस्मादतिभ्रमिक-
मिचमीत्यनेन अरः । चमरश्चामरे दैत्ये चमरी तु मृगान्तरे इति हैमः ।
चमरस्यायं चामरः । अपत्यस्य धारणवस्तुविवक्षायां तस्येदमित्यण् ।
एतस्योत्पत्तिस्तु रक्तबीजोत्पत्तौ टीकायां स्फुटीभविष्यति । चमरस्यायं
चामरः । वृद्धाच्छइतिछोन क्वचिदपवादविषयेऽप्युत्सर्गस्यापि । निवेशात् ।
चामरश्च युयुधे इत्यन्वयः ॥ ३६ ॥

रथानामयुतैः षड्भिरुद्रग्राह्यो महासुरः ॥ मं. ४१ श्लो. ४०

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ॥

रथानामिति । रमन्तेऽत्रैभिरिति रथाः स्यन्दनाः । रमेः हनि-
कुषिनीरमिकाशिभ्यः कथन् । अनुदात्तोपदेशवनतीतिमलोपः । रथः
पुमानवयवे स्यन्दने वेतसेऽपि चेति मेदिनी । तेषां षड्भिरयुतैः षष्टि-
सहस्रेः सहितइति शेषः । एकाद्याः संख्याः अष्टादशपर्यन्ताः संख्येये
वर्तमानास्त्रिलिङ्गा विशेष्यनिघ्ना भवन्ति । इह षड्भिरित्येतदयुतै-
रित्यस्य विशेषणं द्रष्टव्यम् । किञ्च विंशत्याद्याः संख्या संख्येये वर्तमानाः
सत्य एकवचनान्ता एव भवन्ति । किञ्च संख्यामात्रार्थे वर्तमानायाः
विंशत्यादेः संख्यायाः द्विवचनबहुवचनेऽपि भवतः । सख्याणामेकशेषार-
म्भात् । द्वेविंशती तिस्रो विंशतय इत्यादि । इह षडयुतानि षडयुतै-
रित्येकशेषतोबहुवचनम् । उत्कृष्टान्यग्राणि प्रधानानि अवयवा वा यस्य
सः । प्रादिभ्यो धातुजस्येति समासः । उदग्रइति आख्या यस्य सः
महानुत्कृष्टोऽसुरः महासुरः । आन्महत इत्यात्वम् । चः पुनरर्थे । अयुतानां
सहस्रेण कोट्या इत्यर्थः । हन्तीति हनुः कपोलाधोभागः । हन्तेः
शस्वृस्निहीत्युः । हनुर्हृद्विलासिन्यां नृत्यावस्त्रे गदे स्त्रियाम् । द्वयोः
कपोलावयवे इति मेदिनी । महान् हनुर्यस्य सस्तन्नामा । अयुध्यत
संप्रहारमकरोत् ॥ ४० ॥

पञ्चाशद्विंश नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥ मं. ४२ श्लो. ४१
अयुतानां शतैः षड्भिर्वाष्कलो युयुधे रणे ॥

पञ्चाशद्विरिति । अत्र रथानामित्यनुवर्तते । पञ्चवन्तः दशभिर्
चेति पञ्चाशद्विंश नियुतैः । पञ्चकोटिभिरित्यर्थः । पंक्तिविंशतीत्यादिना
निपातः । विंशत्याद्याः सदैकत्वं यद्यपि स्युस्तथापि संख्यामात्रेऽर्थं वर्त्तमा-
नानां द्विवचनबहुवचनेऽपि भवतः एकशेषात्ततश्च पञ्चाशद्विरिति बहु-
वचनं युक्तं नियुतैरित्यस्य बहुत्वात् । अस्य इव लोमानि यस्यासावसिलोमा ।
उपमानाच्चेतिसमासः तन्नामा महासुरो युयुधे । चोभिन्नक्रमः । अयु-
तानां षड्भिः शतैः । षष्टिलक्षैरित्यर्थः । वारयतीति वाः जलं । ण्यन्ता-
द्वृणोतेः क्विप् । वाः कलयतीति वाष्कलः । कर्मण्यण् । वाष्कलनामा
च रणे युयुधे कर्तरि लिट् ॥ ४१ ॥

गजवाजिसहस्रोर्धैरनेकैः परिवारितः ॥ मं. ४३ श्लो. ४२
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नुद्धयत ॥

गजेति । गजन्तीति गजाः । गजं मदने पचाद्यच् । अवश्यं वज-
न्तीति वाजिनः अश्वाः वज गतौ । आवश्यके णिनिः । तेषां समाहारः
गजवाजि । तस्य सहस्राणि अपरिमितानि तेषां । आउह्यन्ते एभिरित्योच्चैः
समूहैः । हलश्चेति घञ् । न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वं । ओघोवेगे जलस्य च
वृन्दे परंपरायां च द्रुतनित्योपदेशयोरिति विश्वः । अनेकैः बहुभिवृत्तः
रथानां । कोटिलक्षशतं । कुट प्रतापने । चुरादिः । अतइः । कोटिः स्त्री
धनुषोऽग्रे श्री संख्याभेदे प्रकर्षयोरिति कोशान्तरम् । कोट्या च वृतः ।
परितो वारयति शत्रून् इति परिवारितः । तन्नामा दैत्यः । तस्मिन्प्रसिद्धे
युद्धे संग्रामे अयुध्यत । कर्तरि लङ् । अत्र परिवारित इत्यपहाय उग्रदर्श-
नेति क्वचित्पाठस्तदसत् ४२ ॥

विडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्विरथायुतैः ॥ मं. ४४ श्लो. ४३
युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ॥

विडालेति । अथ परिवारितयुद्धानन्तरं । वेडति विडयते वेति
विडालो मार्जारः । विड आक्रोशे । तमिविशिविडीति कालन् । विडाल
इति आख्यानाम यस्येति । रथामायुतानां पञ्चाशद्विरयुतैः । पञ्चाश-
त्कोटिभिरित्यर्थः । परिवारितो वेष्टितः । तत्र प्रसिद्धे संयोजनं संयुगः

संग्रामः । युजिर् योगे । संपूर्वाद्धञ् । रथयुगेति निर्देशाद्गुणाभावः ।
कलिसंस्फोटसंयुगा इत्यमरः ॥ ४३ ॥

अन्ये च तत्रायुतशोरथनागहयैर्वृता ॥ मं. ४५ श्लो. ४४

युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ॥

अन्ये चेति । अयुतशः बह्वयुतसंख्याकाः । बह्वल्पार्थादिति शस-
न्तत्वेनाव्ययम् । रथनागसहितैः हयैरिति शाकपार्थिवादिः । तत्रेति
निर्द्धारणे सप्तमी । बह्वयुतसंख्याकैः रथनागहयैः वृता इति संबन्धः ।
अन्ये महासुराः अनुक्तनामानः संयुगे देव्या सहयुयुधुः सम्प्रहारं चक्रुः ।
सह युक्तेऽप्रधान इत्यप्रधाने देव्येति तृतीयाविभक्त्यास्वपराभिमानेन
देवीमगणय्यैव युयुधुरिति व्यज्यते । अनुदात्तेत्त्वलक्षणात्मनेपदस्या-
नित्यत्वात्परस्मैपदम् । द्वितीयं तत्रेति संयुगे इत्यर्थः । अयुतश इत्यत्र
संख्यैकवचनाच्च वीप्सायामिति शस् ॥ ४४ ॥

कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ मं. ४६ श्लो. ४५

हयानां च वृतोयुद्धे तत्राभून्महिषासुरः ॥

सनापतीनां सैन्ययुक्तानां मूलबलसंख्या वदन्महिषसन्निध्यमाह-
कोटीति । रथानां दन्तिनां हस्तिनां तथा हयानामश्वानां चात्पत्तीनां ।
चकारोऽनुक्तसमुच्चायार्थः । एषां प्रत्येकं कोट्यः कोटिसहस्रैः पराद्धेनेति
यावत् । वृतस्तत्र युद्धे महिषासुरोऽभूत् ॥ ४५ ॥

तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ मं. ४७ श्लो. ४६

युयुधुःसंयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ॥

तोमरैरिति । तोतीति तु गतौ सौत्रो धातुः । तस्माद्विचिगुणे
ओदन्तात्सौ गोतोणिदिति स्थाने ओतोणिदिति वार्त्तिकाद्विभक्ते णित्वा-
दचो ङिणतीति वृद्धौ रूपम् । म्रियत इति मृङ् प्राणत्यागे । अन्तर्भावित-
प्यर्थादस्मादच् । तौश्चासौ मरश्च तौर्गन्ता म्रियते एभिरिति तोमराः ।
पुंसीति घः । शर्वलातोमरोऽस्त्रयामित्यमरः । भिन्दन्तीति भिन्दिरवयवः ।
भिदिरवयवे । अस्मादिन् । भिन्दिर्द्वादशतालं तु दश कुन्तोऽभिधीयते
इति भरतः । तदवच्छिन्नः कालोऽपिभिन्दिः । भिन्दिपालयन्तीति भिन्दि-
पालाः । कर्मण्यण् । सृगाः गोफन इति लोके प्रसिद्धाः । कृष्टिः कृपाणिका
प्रोक्ता भिन्दिपालस्तु गोफणिरित्यभिधानात् । भिन्दिपालः सृगस्तुल्या-
वित्यमरः । हस्तक्षेप्योलगुडो भिन्दिपाल इति शन्तनुः । भिन्दिपाला

नाराचइति रामायणटीकाकारः । भिन्दिपालैः हस्तप्रमाणकाण्डैरिति रघुनाथाश्रमः । भिन्दिपालैः क्षेपणीभिरिति दंशोद्धारकृत् । भिन्दिपालो हस्तिवेधकशरइत्यन्ये । शक्यतेऽनया जेतुमिति शक्तिः । कासूः सांग इति लोके प्रसिद्धा । शकल शक्ती । स्त्रिया क्तिन् । शक्तिरायुधभेदे स्यादुत्साहादौ बले स्त्रियामिति हैमः । कासूसामर्थ्ययोः शक्तिरित्यमरः । मुस्यन्ति, मुस्यन्ते एभिरिति मुसलाः प्रसिद्धाः । मुस खण्डने । वृषादिभ्यचेति कलच् । मुसलं स्यादयोध्रे च पुनर्पुंसकयोः स्त्रियामिति विश्वमेदिन्यौ । खड्गैः परशुभिः प्रसिद्धैः । पटेः क्तिन् । पट्टिः कुम्भिकादुमः ललाटं वा । पट्टिः स्त्री पटभेदे स्याल्ललाटे कुम्भिकादुमः इति कोशात् । पट्टि ललाटं व्यति तनूकरोतीति पट्टिशः खड्गविशेषः पट्टिशो गदाविशेषोवा । क्षुरधारा गदेति रामायणटीकाकृत् । आतइति कः । एतैरायुधैः । देव्या संयुगे युयुधुस्ते इति शेषः । परशुसहितैः पट्टिशैरिति शाकपाथिवादिः ॥ ४६ ॥

केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ मं. ४८ श्लो. ४७

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ॥

केचिदिति । चकारो भिन्नक्रमे । केचिदसुराः शक्तीः कासूः चिक्षिपुः । प्रेरितवन्तः । क्षिपेः कर्तरि लिट् । केचित्पाशान् लोहपाशान् चिक्षिपुः । तना अपरे दैत्याः खड्गानां प्रहारैः निक्षेपैः तां प्रसिद्धां देवीं विजिगीषावतीं हन्तुं प्रचक्रमुः । प्रक्रान्ताः । तुमुन् । प्रचक्रमुरिति । अत्र यद्यपि प्रोपाभ्यां समार्थाभ्यामिति सूत्रेण प्रयोगे क्रमेरात्मनेपदं न्याय्यं तथापि पूर्वं धातुः साधनेन युज्यते पश्चादुपसर्गेणेति नियममाश्रित्येदं प्रयुक्तम् । छान्दसत्वादात्मनेपदनिषेधइति नागेशः ॥ ४७ ॥

सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ मं. ४९ श्लो. ४८

लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥

देव्याविक्रममाह—सापीति ततः असुरास्त्रक्षेपानन्तरं विविधायुधक्षेपाणि तैर्मुक्तानि शस्त्राणि खड्गादीनि, अस्त्राणि बाणादीनि, निजानि स्वीयानि शस्त्रास्त्राणि वर्षितुं वृष्टिसाधर्म्यादनाशात्पातयितुं शीलमस्याः सा वृषेस्ताच्छीत्येणिनीः । चण्डयतीति चण्डिका कोपशीला । चण्डि कोपे ण्वल् । टाप् । प्रत्ययस्थादित्तीत्वम् । पचाद्यचि बह्नादिभ्यश्चेति ङीषि चण्डी । ह्रस्वा वा चण्डी चण्डिका सूक्ष्मा दुरधिगमत्वात् । मृडानी चण्डिकाम्बिकेत्यमरः । लयनं लीः । लीङ्

श्लेषणे । सम्पदादिः । लियं लातीति लीला प्रियस्यानुकृतिर्लीला म्लिष्टा
वाग्देषचेष्टितैः । लीलयैव । ननु प्रयासेनेत्यर्थः प्रकर्षेण चिच्छेद । कर्तरि
लिट् । छिद्स् द्वैधीकरणे । हलादिशेषे पुनः प्रसंगविज्ञानात्सिद्धमिति
प्रसक्तोपि ननु किं हलादिशेषः नावयवावयवः समुदायावयवो भवतीति
वचनात् ॥ ४८ ॥

अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ मं. ५० श्लो. ४९

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ॥

अनायस्तेति । न आयस्तं कोपसूचकविकारवत् आननन्ति अनेनेत्या-
ननं मुखं यस्याः सा । अविकृतमुखीत्यर्थः । आयस्ते जिते क्षिप्ते क्लेशिते
कुपिते तथेत्यभिधानात् । सुराश्च ते ऋषयश्च सुरर्षयस्तैः । स्तूयते इति
स्तूयमाना । स्तौतेः कर्मणि यगन्तात्कर्तरि शानच् । यद्यप्यत्र देवीति
प्रथमा सामानाधिकरण्ये शानच् न प्राप्नोति तथापि वर्तमाने लट् इत्यतो
लट्ग्रहणानुवर्जनादेव लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरण इति सूत्रे
पुनर्लङ्ग्रहणात्प्रथमा समानाधिकरण्येऽपि शत्राद्यादेशविधानाददोषः ।
देवी विजिगीषाशीला । ईश्वरी कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्था । असुराणां ।
दिह्यन्त इति देहाः शरीराणि । दिह उपचये । हलश्चेति घञ् । तेषु
शस्त्राण्यस्त्राणि मुमोचेत्यन्वयः । शस्त्राण्यस्त्राणीत्यर्थेऽत्र चार्थोवगन्तव्यः
॥ ४९ ॥

विष्णोरंशभूतस्य सिंहस्य पराक्रममाह—

सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी ॥ मं. ५१ श्लो. ५०

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ॥

सोऽपीति । वनेषु हुताशनोऽग्निरिव प्रसिद्धः स देव्या वाहनः
केशरी सिंहः । केन वायुना शीर्यन्त इति केशराः स्कन्धबालाः । शृधातोः
ऋदोरप् । दन्त्यमध्यस्तालव्यमध्यश्च । केसरः केशरोपीति द्विरूपकोशात् ।
ते संत्यस्येति प्राशस्त्ये मत्वर्थीयः । केसरी तुरगे सिंहे पुत्रागे नागकेसरे
इति मेदिनो । धृताः कम्पिताः । धूञ् कम्पने कर्तरिक्तः । सटन्तीति
सटा । केसराः येन । षट् अवयवे । पचाद्यच् । टाप् । यद्यपि व्रतिनस्तु
जटा सटेत्यमरकोशाद् व्रतिन एव शिखा जटेत्याद्यास्ततोऽवगम्यते
तथापि सटा जटाकेसरयोरिति रभसकोषस्वरसान्नासौ नियमः । क्रुद्धः

सन्नसुरसैन्येषु चचार परिबभ्राम । क्रोधेनज्वलद्रूपत्वात्सिंहस्य बह्विंसाह-
स्यम् ॥ ५० ॥

देव्या अनायाससाधितं सैन्यमाह—

निश्वासान्मुमुचेयाँश्चयुद्धमानारणेऽम्बिका ॥ मं. ५२ श्लो. ५१

त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ॥

निश्वासानिति । अम्ब्यत इति अम्बा । अत्रि शब्दे । गुरोश्चहल-
इत्यकारप्रत्ययः । टाप् । अम्बैवाम्बिका । मृडानी चण्डिकांम्बिकेत्यमरः ।
रणे संग्रामे युध्यमाना सती यान् यावतः श्वासान् मुमुचे तत्याज सद्य-
स्तत्क्षणे त एव निश्वासाः शतगुणितानि सहस्राणि शतं वा सहस्राणि
शतसहस्राणि । लक्षमित्यर्थः । संख्यैकवचनाद्वीप्सायामिति शस् । लक्षाणां
गणा सम्भूताः । उत्पन्ना इत्यर्थः सद्यः पद्यदिति निपातः ॥ ५१ ॥

युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालाशिपट्टिशैः ॥ मं. ५३ श्लो. ५२

नाशयन्तोऽसुरगणान्देवीशक्त्युपवृंहिताः ॥

युयुधुरिति । देव्याः शक्तिः सामर्थ्यं । तया उपवृंहिताः वृद्धि
उत्कर्षं प्रापिताः । ते गणाः । असुरगणान् दैत्यसमूहान् नाशयन्तः सन्तः
परशुभिर्भिन्दिपालासियुत्पट्टिशैः भिन्दिपालासिपट्टिशैः । शकपाथिवादिः ।
युयुधुः संप्रजह्नुः । अनुदात्तेत्वनिवन्धनात्मनेपदानित्यत्वात्परस्मैपदम् ॥ ५२ ॥

अवाद्यन्त पटहान्गणाः शंखाँस्तथापरे ॥ मं. ५४ श्लो. ५३

मृदंगाँश्च तथैवान्ये तस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥

अवाद्यन्तेति । तस्मिन्प्रसिद्धे । उत्सुवतीति उत्सवोमहः षू प्रेरणे ।
उत्सुवते सुखमित्युत्सवो वा । षू प्रसवे । अच् । उत्सवो मह उत्सके
इच्छाप्रसरकोपयोरिति कोशान्तरम् । महानुत्सवोमहोत्सवः युद्धं ।
महोत्सव इव शूराणामुत्साहसाधनत्वात् । गणाः । पटेन हन्यन्त इति
पटहाः आनकाः । ढोलइतिप्रसिद्धाः । हन्तेर्ङः । पटहो ना समारम्भे
आनके पुंनपुंसकमितिकोशः । तानवाद्यन्त वादितवन्तः । वदेर्ण्यन्ताह्लङि
णिचश्चेत्यात्मनेपदम् । अपरे शंखान् । अन्ये । मृदन्त इति मृदङ्गाः
मुरजाः । मृदक्षादे । विडादिभ्यः क्दित्यङ्गच् । मृदङ्गोघोषवाद्ययोरिति
हैमः । तानवाद्यन्तेत्यन्वयः ॥ ५३ ॥

ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥ मं. ५५ श्लो. ५४

खड्गादिभिश्चशतशो निजघान महासुरान् ॥

ततइति । पटहादिवादनानन्तरं । देवी विजिगीषाशीला । त्रीणि शूलानि तीक्ष्णाकाराः शिखा यत्र तेन । गदया प्रसिद्धया । हस्तीनां वृष्टिभिर्वर्षैः इति दाक्षिणात्याः । शरवृष्टिभिरितिगौडाः । तत्र शृङ्गिषा-
याम् । शृणुत्येभिरितिशराः । पचाद्यच् । ऋदोरप् वा 'दन्त्यादिरपि ।
चित्रपुंलः शरः सर इति त्रिकाण्डशेषः । शरस्तुतेजने बाणे दध्यग्रे नासि-
काजल इति विश्वः 'तेषां वृष्टिभिः वर्षणैः । खड्गआदिर्येषां तैः । आदि-
शब्दात्कुन्तादयः । शतशः महामुरान् नितरां जघानेत्यन्वयः ॥ ५४ ॥

पातयामासचैवान्यानघण्टास्वनविमोहितान् ॥ मं. ५६ श्लो. ५५

असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत् ॥

पातयामासेति । चात् देवी घण्टास्वनेन निर्घोषेण विशिष्य मोहि-
तान् विचेतसः अन्यानसुरान् भुवि भूम्यां पातयामास । पतेर्ण्यन्तात्मर्तरि
लिटि कास्यनेकाच इत्यामि आम इति लिटौ लोपे - कृञ्चानुप्रयुज्यत
इति लिट्परास्तैरनुप्रयोगे हलादिशेषेरूपं । चपुनरन्यानसुरान्पाशेना-
कर्षयत् । कृषेश्चौरादिकात्स्वार्थे णिचि लङ्ङि रूपमिति प्राञ्चः । वस्तुतस्तु
चुरादौ कृषेरपठितत्वात् भ्वादिकर्षतेः कर्षणं कर्षः कर्षमकरोत् ।
अकर्षयत् । तत्करोतीति णिजंताल्लङ्ङि रूपमिति पुष्पाञ्जलिः । अकर्षयदा-
कृष्टवाती कृषेश्चौरादिकस्य लङ्ङिरूपमिति रामाश्रमनागेश्वौ । अकर्षय-
दित्यात्मनेपदमार्षमिति दंशोद्धारकृत् । एव मेव शान्तनुः ॥ ५५ ॥

केचिद्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ॥ मं. ५७ श्लो. ५६

विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ॥

केचिदिति । देव्या तीक्ष्णैः असह्यैः खड्गपातैः खड्गानां प्रहारैः
व्यापारविशेषैः । केचित् द्विधा द्विः प्रकारं कृताः द्विधा खण्डिताः ।
तथा अपरे अन्ये देव्या गदया कृतेनेति शेषः । अर्थात् क्षिप्रया निपातेन
व्यापारविशेषेण विपोथिताः संजातविघाताः सन्तः भुवि पृथिव्यां शेरते ।
शयितवन्त इत्यर्थः । विपोथिता इति पुथ हिसाया दिवादिः । विशेषेण
पोथनं हिसनं विपोथः । विपोथनं संजातमेषामिति विपोथिताः । तारका-
दित्वादितच् । शेरत इति शीङो भूम्यात्मनेपदेष्वन्यत इत्यनेन झस्याति
शीङोरुडिति रुडागमे शीङः सार्वधातुके गुण इति गुणे रूपम् ॥ ५६ ॥

वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥ मं. ५८ श्लो. ५७

केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ॥

वेमुरिति । केचिदसुराः देव्या मुसलेन । करणेन । भृशमत्यर्थं
हतास्ताडिताः रुधिरं वेमुः । ववमुः । न च शसददवादिगुणानामिति
निषेधस्य जागरूकत्वादत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटीति कथमत्रैत्वा-
भ्यासलोपाविति वाच्यं अतएकहल्मध्येऽनादेशादेः शसददवादिगुणानां
लिटीत्येकयोगेनैव निर्वाहे सिद्धे पृथग्योगविभागेन क्वचिन्नक्ष्यानुरोधेनास्य
निषेधशास्त्रस्यानित्यत्वज्ञापनात् । केचित्तु सामान्यापेक्षं ज्ञापकमा-
श्रित्यनग्राश्रितं कार्यमसार्वत्रिकम् । तेन ववर्षुर्द्धतामर्षा इत्यत्र-
असंयोगास्मिद् किदिति कित्त्वस्याभावाद्गुणः सिद्धयतीत्याहुः । छन्द-
सिसर्वं विधीनां वैकल्पिकत्वाच्च । देव्या शूलेन वक्षसि उरसिभिन्नाः
विदारिताः केचिद्भूमौ निपतिताः । न्यपतन्नित्यर्थः । उरो वत्संच
वक्षश्चेत्यमरः ॥ ५७ ॥

निरन्तराशरौघेण कृताः केचिद्वर्णाजिरे ॥ मं. ५९ श्लो. ५८

श्येनानुकारिणः प्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥

निरन्तरा इति शराणामोघेन समूहेन कुमतिचेति णत्वं । निरन्तरा
निरवकाशाः कृताः रचिताः केचिदसुराः । अजतीत्यजिरमङ्गनम् । अज
गती । अजिरशिशिरेति किरच् । रणः अजिर मित्ररणाजिरम् । तस्मिन् ।
श्यायत इति श्येनः वाज इति प्रसिद्धः पक्षी । श्यैङ् गती । श्यास्त्याहुर्-
विभ्यइनच् । श्येनः पक्षिणि पाण्डुरे इति हैमः । श्येनानां पक्षिविशेषाणा-
मनुकारिणः । सदृशा इत्यर्थः । यथा श्येनाः स्वपक्षान्वितस्य भूमौ
निपतन्ति तथेति । त्रिदशानां अर्दनाः पीडयितारः प्राणान्मुमुचुस्त-
त्यजुः । कर्त्तरिलिट् ॥ ५८ ॥

केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ मं. ६० श्लो. ५९

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ॥

केषामिति । केषांचिदसुराणां बाहवश्छिन्नाः खड्गादिभिः छिन्नाः
पेतुः । रणाजिरे इति शेषः । गीर्यन्ते अनयेति ग्रीवा शिरोधिः । शेषयद्व-
जिह्वाग्रीवेतिसाधुः । तथा अपरे असुराः छिन्ना ग्रीवा येषां ते तथा
पेतुः । अन्येषां शिरांसि पेतुः । नतु कायः । कबन्धत्वादित्यर्थः अन्ये मध्ये
वपुषो मध्यदेशे विदारिताः खण्डिताः पेतुः । दारिते भिन्नभेदिता-
वित्यमरः ॥ ५९ ॥

विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरन्या महासुराः ॥ मं. ६१ श्लो. ६०

एकबाहुक्षिचरणाः केचिद्देव्या दिवा कृताः ॥

विच्छिन्नेन । अपरे महासुराः देव्या विशेषेण छिन्ना जङ्घा येषां ते तथा भूताः उर्व्यां पेतुः । केचिन्महासुराः देव्या द्विधा द्विः प्रकाराः कृताः खण्डिता इति यावत् बाहवश्च अक्षीणि च चरणानि च बाह्वक्षिचरणं । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । युगपत्पतन्तो महासुराः प्रतिदेहं सम्पन्नमेकैक-बाह्वक्षिचरणं येषां ते एकबाहुकाः, एकाक्षाः, एकचरणाः सन्तः उर्व्यां पेतुरित्यन्वयः । द्वन्द्वादौ द्वन्द्वान्ते च श्रूयमाणं पदं प्रत्येकमभिसम्बध्यते । यथा सम्पन्नब्रीहियवो ग्रामः । यथा च ब्रीहियवधनाः प्रजाइति ॥ ६० ॥

छिन्नेऽपिचान्येशिरसिपतिताः पुनरुत्थिताः ॥ मं. ६२ श्लो. ६१

कबन्धा युयुधुदेव्या गृहीतपरमायुधाः ॥

छिन्नेऽपीति । छिन्ने शिरसि भुवि पतिता अपि पुनस्तदनु उत्थिताः अन्ये कबन्धाः कंशिरांसि बध्यन्ते छिद्यन्ते येभ्य इति कबन्धीभूताः अपगतमस्तकानि कलेवराणि बन्ध बन्धने । अस्मादधश्च । गृहीतानि परमाणुत्कृष्टान्यायुधानि यैः तादृशाः देव्या समं पुनर्युयुधुः । अनुदात्तत्व-निबन्धनात्मनेपदस्यानित्यत्वात्परस्मैपदम् । यत्तु मनुष्याणां सहस्रेषु हतेषु पतितेषु च उदतिष्ठत्कबन्धानि निहत्योत्थाय चापतन्निति भारते शान्ति-पर्वणि । मनुष्याणामेकस्मिन्सहस्रे निहते एकः कबन्ध उदतिष्ठदिति ज्ञेयम् । कबन्धलक्षणमन्यत्रापि । युद्धे योद्धृषु शूरेषु सहस्रं कृतमूर्द्धसु । तदावेशा-त्कबन्धः स्यादेकोमूर्द्धा क्रियान्वित इति ॥ ६१ ॥

ननृतुश्चापरे तत्र युद्धेतूर्यलयाश्रिताः ॥ मं. ६३ श्लो. ६२

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यष्टिपाणयः ॥

तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्येमहासुराः ॥ मं. ६४ श्लो. ६५

ननृतुरिति सार्द्धश्लोकेनान्वयः । चोऽप्यर्थः । अपरे कबन्धाः पूर्वोक्त-लक्षणाः । रामायणप्रसिद्ध कबन्धाः सुरजातीया वा । छिन्नानि अन्येषां गणानां शिरांसि यैः । एवंभूता अपि तूर्याणां सुरजादिचतुर्विध-वाद्यानां लयः साम्यं आश्रिताः ननृतुः । नृत्यं चक्रुः । तूर्येति गीत-पादन्यासयोरुपलक्षणं । तेन गीतवाद्यक्षणे गीतवाद्यपादन्यासानां क्रिया-कालयोः लयः । साम्यमित्यर्थः । तुरीत्वरायां । अस्मादहलोर्ण्यत् । गुणं बाधित्वा बाहुलकादल्लिखेति दीर्घे तूर्यमिति रूपम् । लयनल्लयः । लीड्-श्लेषणे । एरच् । लयस्तूर्यत्रयीसाम्ये संश्लेषणविनाशयोरिति हैमः । अत्र

यद्यपि लयस्तूर्यत्रयीसाम्य इत्यभिधानान्नृत्यगीतवाद्यत्रयीवचनो लय-
शब्दएवेति तूर्यग्रहणमनर्थकं तथाऽपि संश्लेषणविनाशरूपार्थोऽपि लय-
शब्द इति सन्देहनिवृत्त्यर्थं तूर्यपदमित्यवधेयम् । की दृशाः कबन्धाः ।
खड्गाश्च शक्तयश्च ऋष्टयश्चेति एषांसमाहारः खड्गशक्त्यष्टि तत्
पाणिषु येषां ते । ऋषन्ति शत्रून्प्रति गच्छन्तीति ऋष्टयः सूक्ष्मखड्गाः
इतिकतककारः । एकधार खड्गा इति चतुर्भुजः । ऋषी गतौ अस्मात्-
क्तिच् संज्ञायामिति क्तिच् । ऋष्टिः खड्गस्तरवारीति त्रिकाण्डशेषः ।
तिष्ठेति । अन्ये महासुराः देवीं तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो भाषमाणाः ननृतु-
रिति पूर्वपदेनान्वयः । भाषन्त इति छान्दस इति नागेशः । रामाश्रम-
स्तु भाषते इति भाषः पचाद्यच् । भाष इव आचरन्ति भाषन्ति ।
आचारार्थं क्विप् । तत्तःशतृ प्रत्ययः । दंशोद्धारेपीत्यमेव । पुष्पाञ्जलि-
कारास्तु । 'भाषन्तो' इत्यत्र उ इति च्छेदः । उ इवार्थे । तेन अन्ये
कबन्धा एव तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्त उ अभाषन्त इव हस्तक्षेपादेवसंज्ञा-
भूताद्भाषमाणा इवेत्यर्थः 'अन्यथा छिन्नशिरस्त्वात्कथं तिष्ठेति
वदन्तीत्याहुः ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

संग्रामभुवोऽसेव्यतामाह—

पातितै रथनागान्धैरसुरैश्च वसुन्धरा ॥

अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्समहारणः ॥ मं. ६५ श्लो. ६४

पातितैरिति । रथसहिता नागा रथनागाः । रथनागसहिताः
अश्वनुवन्ति व्याप्नुवन्तीत्यश्वा ह्या । अश्वपुष्पोत्पादिना ववन् । अश्वः
पुंभेदवाजिनोरिति विश्वः । तैः रथनागाश्चैः । अत्र शाकपार्थिवादित्वा-
न्मध्यमपदलोपः । असुरैर्देवैश्च देव्या निपातितैः । वसूनि धारयतीति
वसुन्धरा पृथ्वी । संज्ञायां भृतृवृजीति खच् । अरुद्विषदिति नुम् । खचि
ह्रस्वः । अदन्ताट्टाप् । वसुधोर्वी वसुंधरेत्यमरः । नगन्तुं शक्या अगम्या ।
असेव्येति यावत् । तत्र प्रदेशे अभवत् यत्र स प्रसिद्धो महारणः महा-
संग्रामः अभूदित्यन्वयः । पातितैरित्यत्र रोरीति रलोपः ॥ ६४ ॥

शोणितौषा महानद्यः सद्यस्तत्रप्रसुप्तुवुः ॥

मध्येचासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥ मं. ६६ श्लो. ६५

शोणितौषेति । तत्रयुद्धे असुरसैन्यस्य मां शोभां धत्ते इति मध्यं
अन्तरं तस्मिन् । अघ्न्यादयश्चेति साधुः मध्यं विलग्ने न स्त्रीस्यान्न्याय्येऽ-
न्तरेऽधमे त्रिषु इति मेदनी । सद्यः संग्राम क्षणःतत्क्षणे एव । वार-

यन्ति शत्रुबलमिति वारणा हस्तिनः । नन्द्यादित्वात्त्युः । वारणं प्रतिषेधे स्याद्वारणस्तु मतङ्गजे इति विश्वः । वारणसहिता असुराः वारणासुराः । तत्सहिताः, अवश्यं वजन्तीतिवाजिनोऽश्वास्तेषां । वज्रगती । आवश्यकेणिनिः । शोणतिस्मेति शोणितं रुधिरम् । शोणू वर्ण-
गत्योः । गत्यर्था-इतिक्तः । रुधिरेऽसृग्लोहितास्तरक्तक्षतजशोणितमित्य-
मरः । शोणितमेव आरुह्यते अनेनेति ओघोजलवेगो यासुताः रक्तप्रवाहावा-
हलश्चेतिघञ् न्यङ्क्वादित्वात्कुत्वम् । ओघो वेगे जलस्यच । वृन्दे पर-
म्परायां च द्रुतनृत्योपदेशयोरिति मेदिनी । नदन्तीतिनद्यः । नद अव्यक्ते-
शब्दे । पचादिषु नदडिति टित्वनिपातनाट्टिङ्ठेति ङीप् । तासां महत्त्वं
प्रवाहवत्तया समुद्रगामित्वाद्वा । प्रसुस्रुवुः जग्मुः । कर्त्तरि लिट् । हला-
दिशेषः ६५ ॥

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ॥

निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ मं. ६७ श्लो. ६६

क्षणेनेति । अम्बयते शब्दयते इति अम्बा माता । अम्बि शब्दे । गुरोश्च
हल इत्यप्रत्ययष्टाप् । अम्बैवाम्बिका । जगन्मातृत्वात् । अम्बिका पार्वती-
मात्रोर्धृतराष्ट्रस्य मातरीति विश्वः । क्षणोतीति क्षणः । क्षणु हिंसायां ।
पचाद्यच् । अष्टादश निमेषास्तु काष्ठास्त्रिंशत् ताः कलाः । तास्तु
त्रिंशत्क्षण इत्यमरः । क्षणेन असुराणां तन्महासैन्यं क्षयं नाशं निन्ये ।
यथा वहति हव्यमिति वह्निरग्निः । वहिश्चिश्च्युदुग्गलाहात्वरिभ्यो निदिति
निः । तृण्यत इति तृणं । तृण अदने । घञ् । संज्ञापूर्वकत्वाद्गुणो न ।
दीर्यन्त इति दारु काष्ठं । दृ विदारणे । दसनजनीति जुण् । दारुस्या-
त्पित्तले काष्ठे देवदारी नपुंसकमित्यभिधानात् । तयोस्तृणदार्वोः । चीयत
इति चयं समूहं क्षयं, नयतिद्विकर्मकः । नयतिस्मेत्यर्थः । चिञ्चयने ।
एरच् । चयः समूहे प्राकारमूलबन्धे समाहृताविति रभसः ॥ ६६ ॥

न केवलं भगवत्येवासुरसैन्यं क्षयं निन्येऽपि तुसिंहोऽपीत्याह—

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ॥

शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति ॥ मं. ६८ श्लो. ६७

स चेति । प्रसिद्धः सिंहः धुताः कम्पिताः केसराः येन सः महान्तं
नादं गर्जनं उत्सृजन् रचयन् असुरसैन्यं क्षयं निन्ये । इति पूर्वश्लोकेना-
न्वयः । किन्तु उक्त विशेषणविशिष्टः अमरारीणां दैत्यानां शरीरेभ्यः
सकाशात् असून्प्राणान्विचिन्वतीव गवेष यदिव । विचिन्वतीति चिञ्-

चयने विद्यादो लिङ्गर्थलेट्कर्त्तरि । स्वादिभ्यः झुः लेटस्तिप् । लेटोऽडा-
टावित्यडागमः छान्दसोगुणाभावः दध्नुवोरिति यण् । इतश्चलोपः
परस्मैपदेष्वित्यस्य वैकल्पिकत्वादिकारश्चरणम् । इवेत्युत्प्रेक्षायाम् ।
आदाने साधर्म्यम् । अमरारीणां शरीरेभ्योऽसून्विचिन्वतीत्युत्प्रेक्षा । भूते-
लट् तिप् । अडागमश्छान्दस इति नागेशः ॥ ६७ ॥

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ॥

यथैषां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ मं. ६९ श्लो. ६८

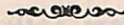
देव्या इति । अम्बिका असुरसैन्यं क्षयं निन्ये सिद्ध्यति प्रागुक्तं
ततश्च तस्मिन् सिंहे अमरारीणां शरीरेभ्यः असून् विचिन्वतीवसति,
राशिभिवकुर्वति सति, गवेषयतीव वा सति तैर्देव्या गणैः । कर्तृभूतैः ।
असुरैः साद्धं तथा युद्धं कृतं यथा एषां गणानां युद्धमिति शब्दाधिकारा-
श्रयणादनुवृत्तं कर्मत्वेनाभिसंबध्यते । युद्धं संप्रहारं दिव्यतीति द्यौरन्तरिक्षं
तस्यां दिवि । पुष्पाणां वृष्टि मुञ्चन्तीति पुष्पवृष्टिमुचः सन्तो देवाः
तुष्टुवुः । वाचा अपूजयन्नित्यर्थः । भृत्यादिकृतपराक्रमे परिवृढा एव जया-
दिव्यपदेशस्य लोके दर्शनादिति भावः । तुष्टुप्रुरिति नागेशः । तुष्टा बभू-
वुरित्यर्थः । अत्र रामाश्रमस्तु दिविपुष्पवृष्टिमुचो देवाः एषां तुष्टुवुः
गणानामुपरि तुष्टा बभूवुः । एषां युद्धं प्रशशंसुः । कर्मणि चात्र
षष्ठीति ॥ ६८ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे

महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयो विश्रामः ॥ २ ॥

आदितः सप्तमो विश्रामः ॥ ७ ॥

अथ तृतीयाध्यायारम्भः ॥



तत्र तृतीयाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बरसंहितायाम्—आद्य ऋषिरुवाचेति पञ्चत्रिंशत्ततः परम् । श्लोकमन्त्राश्च देव्युक्तिः श्लोक-
मन्त्र ऋषिस्ततः ॥ पञ्चश्लोकात्मकामन्त्राः स्मरणात्सर्वसौख्यदाः ।
चतुश्चत्वारिंशदेवं सर्वे मन्त्रास्तृतीयके ॥ श्लोकास्तृतीये त्वध्याये चन्द्र-
वारिधिसंख्यका इति ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० १ ॥

ऋषिः सुमेधाः सुरथं प्रकृतमुवाच—

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ॥

सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौयोद्धुमथाम्बिकाम् ॥ मं० २ श्लो० १

निहन्यमानमिति । अथ महिषासुरसैन्यवधानन्तरं सेनानीः महिषा-
सुरसेनापतिः चिक्षुरसंज्ञः महासुरः तत्तस्य महिषासुरस्य सैन्यं देव्या
नितरां हन्यमानं निहतमवलोक्य दृष्ट्वा कोपात् अम्बिकां देवीं योद्धुं युद्धं
कर्तुं ययौ जगामेत्यन्वयः । निहन्यमानमिति वर्तमानसामीप्ये वर्तमान-
वद्वेति कर्मणि यगन्ताद्धन्ते भूतेलट् निहतमित्यर्थः ॥ १ ॥

सदेवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ॥

यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥ मं० ३ श्लो० २

सदेवीमिति । सचिक्षुरः तन्नामासुरः सम्यक् अरणं समरः
संग्रामस्तस्मिन् ऋग्तौभ्वादिषुपठितः । ऋदोरप् । अस्त्रिया समरानी-
करणा इत्यमरः । शरणां बाणानां वर्षणं वषः वृष्टिः । अस्मादचविधौ
भयादीनामुपसंख्यानमित्यच् । वर्षस्तु समाद्वीपांशुवृष्टिषु इति हैमः ।
बाणवृष्ट्या देवीं तथा ववर्ष आच्छादयामास । धातूनामनेकार्थत्वात्से-
चनार्थस्यापि वृषेराच्छादनेवृत्तिः । यथा उच्चत्वाज्ज्योतीषां मिनोतीति
मेरुः । डुमिञ् प्रक्षेपणे । मियीभ्यांरुः । गिरतीति गिरः । गृ निगरणे
बाहुलकात्किः । ऋतइद्धातोः । मेरुश्चासौ गिरिश्च मेरुगिरिस्तस्य
मेरुगिरेः । अत्र रत्नपदेनैव रत्नसानुवाचिना गिरेर्यथावगमादिगिरि-

शब्दोऽत्र पूज्यार्थः । गिरिः पूज्येऽक्षि रुजि कन्दुके । शैले गैरेयके
 गोर्वाणावपीति हैमः । शृणातीति शृङ्गं शिखरं । शृ हिंसायां । शृणाते
 ह्रस्वश्चेति गशृट् ह्रस्वाः । शृङ्गं प्रभुत्वे शिखरे चित्ते कीडाम्बुयन्त्रके
 इति विश्वः । तौतीति तोयं सौत्रो धातुरावणार्थः औणादिको यः । वा,
 तोयवर्षेण जलवृष्ट्या तोयं ददातीति तोयदो मेघः छादयति स्म
 तथेत्यर्थः । यद्यपि देवीमेरुशृङ्गशब्दयोर्भिन्नलिङ्गत्वादुपमायामुपादा-
 नमसमञ्जसं तथापि, न भिन्नवचने लिङ्गेन हीनाधिकतापि वा ॥ उपमा
 दूषणायालं तत्रोद्वेगो न धीमतामित्याद्यभियुक्तोक्तेर्न दोषः ॥ २ ॥

तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ॥

जघान तुरगान्वाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥ मं. ४ श्लो. ३

तस्येति । ततः अनन्तरं देवी लीलयैव अनायासेनैव तस्य विक्षुर-
 संज्ञस्य शरणां, उत्कीर्यन्त इत्युत्कराः समूहाः । उत्पूर्वात्कृत्विक्षेपे धातोः
 ऋदोरपि रूपम् । स्यान्निकायः पुञ्जराशी तूत्करः कूटमस्त्रियामित्यमरः ।
 तान् छित्त्वा द्विधा कृत्वा तोरणं तुरो वेगः । तुर त्वरणे । घञर्थे को
 बाहुलकात् । घञ् वा । संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वान्न गुणः । तुरेण त्वरया
 वा गच्छन्तीति तुरगा अश्वाः अन्यत्रापि दृश्यत इति गमेडः । तान्बाण-
 जघान जिहिस । च पुनः । वाजिनां यच्छतीति यन्ता सारथिः । तं
 बाणैर्जघानेत्यन्वयः । हेला लीलेत्मयी हावाः क्रियाशृङ्गारभावजाः ।
 घोटके वीतितुरगतुरंगश्वतुरंगमा इत्यमरः । यन्तेत्यत्र अन्तर्भावितण्य
 र्थादुपरमार्थाद्धातोः ष्वल्तृचाविति तृच् । यन्ता मूतः क्षत्ता च सारथि-
 रित्यमरः ॥ ३ ॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ॥

विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ मं. ५ श्लो. ४

चिच्छेदेति । चकारात् देवी तस्येति चानुवर्तते । सा सद्यः तत्क्षण
 एव आशु शीघ्रं गच्छन्तीत्याशुगाः बाणाः । अन्येभ्योऽपीति डः । आशु-
 गोऽर्के शरे वायाविति हेमचन्द्रः । तैः तस्य, धनतीति धनुश्चापं । कर्म ।
 धनुः प्रियाले वा न स्त्री राशिभेदे शरासने इत्यभिधानात् । च पुनः
 ध्वजतीति ध्वजं केतनं । ध्वजगतौ । अन्तर्भावितण्यर्थः । पचाद्यच् ।
 चिच्छेद द्विधा चकार । कीदृशं धनुःध्वजं च अतिसमुच्छ्रितं । अत्युच्च-
 मित्यर्थः । उदादिपूर्वाद्गत्यर्थात् श्रयतेः गत्यर्थकर्मकेतिक्तः । च पुनः
 धन्वतीति धन्वा कार्मुकम् । धविगतौ अन्तर्भावितण्यर्थः कनिन् ।

युतृषीत्यादिना कनिन् । धन्वा तु मरुदेशे ना क्लीवं चापे स्थलेऽपि चेति मेदिनी । छिन्नं धन्वा कार्मुकं यस्य तं चिक्षुरं गात्रेषु गच्छन्तीति गात्राण्यवयवाः । गाङ्गती । औणादिकं हृन् । गात्रं गजाग्रजङ्घादिभागेऽप्यङ्गे कले वरे इति विश्वमेदिन्यौ । तेषु आशुगैर्विव्याध ताडयामास । व्यधताडने । कर्तरि लिट् । लिट्यभ्यासस्योभयेषामिति सम्प्रसारणम् । आशुगैरिति करणे तृतीया ॥ ४ ॥

स छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥

अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥ मं. ६ श्लो. ५

स छिन्नधन्वेति । छिन्नं धन्व धनु यस्य सः । विगतः रथो यस्यसः । हताः अश्वाः यस्य सः । सरत्यश्वानिति सारथिर्यन्ता । हतः सारथिर्यस्य सः तथाविधः असुरः । धरतीति धरः । धृञ् धारणे । पचाद्यच् । खड्गश्च चर्मफलकं च तयोः समाहारः खड्गचर्म । सेनाङ्गत्वात्समाहारः । खड्गचर्मणो धरः सन् तां देवीं अभ्यधावत उपाद्रवत । धावु गतिशुध्योः स्वरितेत् । कर्तरि लङ् । सृगती अस्माद्धातोर्लङि पाप्माष्मेति धावादेशे तु नेदं रूपं परस्मैपदत्वात् । न च कर्तरि कर्मव्यतिहारे इत्यात्मनेपदम् । न गतिर्हि सार्थेभ्यस्तन्निषेधात् ॥ ५ ॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्द्धनि ॥

आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥ मं. ७ श्लो. ६

सिंहमिति । वेजनं वेगः जवः । ओविजी भयचलनयोः । घञ् वेगः प्रवाहजवयोरपीत्यमरः । वेगोऽस्यास्तीति वेगवान् । तदस्यास्तीति मतुप् । मदुपधायाइति मस्य वः । अतितरां वेगवानतिवेगवान् । चिक्षुरः । तेजयतीति तीक्ष्णं खरं तिजनिशाने । त्यजेर्दीर्घश्चेतिस्मक् । तिग्मं तीक्ष्णं खरमित्यमरः । तीक्ष्णमस्त्यस्यामिति तीक्ष्णः । तीक्ष्णं सामुद्रलवणे विषलोहाजिमुष्कके इति कोशः । विषाभिमरलोहेषु तीक्ष्णं क्लीवं खरे त्रिषु इत्यमरः । गुणवचनेभ्यो मतुपोलुगिष्ठः । टाप् । तीक्ष्णाधारा प्रान्तभागे यस्य सस्तीक्ष्णधारः । गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः । धाराऽम्बुपाते चोत्कर्षे स्त्री कटाक्षेऽपि कपटइति कोशः । तीक्ष्णधारेण खड्गेन मुह्यत्यस्मिन्नाहतइति मूर्द्धा मस्तकः । मुहवैचित्ये । अस्मात् श्वन्नुक्षन्त्रित्यादिना कनिप्रत्यये उपधादीर्घादेशरगागमानिपात्यन्ते । मूर्द्धाना मस्तको स्त्रियामित्यमरः । तस्मिन्नाहत्य प्रहत्य सव्ये वामे भुजे देवोमपि आजघान

जिहिंस । वामं शरीरं सव्यं स्यादपसव्यं तु दक्षिणमित्यमरः । सकर्मकत्वा-
त्पराङ्मकर्मकत्वाच्चाडो यमहनइति नात्मनेपदप्राप्तिः ॥ ६ ॥

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफालं नृपन्दन ॥

ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥ मं. ८ श्लो. ७

तस्या इति । नृपस्य पितुः, नन्दयतीति तत्सम्बोधने । तस्या
देव्याः भुजं प्राप्य खड्गः चिक्षुरप्रयुक्तः पफालं विधीर्णो बभूव । त्रिफला
विशरणे परस्मैपदी कर्तरि लिट् । यद्वा नृपं नन्दयतीति नृपनन्दः ।
कर्मण्यण् । नृपनन्देयेतावत्सम्बोधनं । नेति पृथक्वादं । तथा च खड्गः न
पफाल । स्वीयासु क्रियासु निष्पत्तिं नाकरोदित्यर्थः । एवं च फल
निष्पत्तौ परस्मैपदी । ततः पूर्वतरि लिटि रूपम् । ततः खड्गभङ्गानन्तरं ।
कोपात् कृच्छ्रत इति अरुणे अव्यक्तरागे अर्त्तेरुन् । ते लोचने यस्य सः ।
चिक्षुरः । शूलयतीति शूलं त्रिशूलं । जग्राह उपाददे । अरुणोऽव्यक्तरागे-
र्ज्जं संघ्यारागेर्ज्जं सारथाविति कोणः । अस्त्री शूलं रगायुधमिति द्विलिङ्ग-
विधानाच्छूलामिति पाठे न दोषः ॥ ७ ॥

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ॥

जाज्वल्यमानं तेजोभीरविविबमिवांवरात् ॥ मं. ९ श्लो. ८

चिक्षेपेति । ततः शूलग्रहणानन्तरं । महासुरस्तु चिक्षुरः तत्प्रा-
गृहीतं शूलं त्रिशूलं । भंदते इति भद्रं मंगलं । ऋज्जेन्द्रेति रन् निपात्यते ।
भद्रः शिवे खंजरीटे क्लीबं मङ्गलमुस्तयोरित्यभिधानात् । भद्रं कल्याणं
कलयतीति भद्रकाली । भद्रमस्या अस्तीति भद्रा, सा चासौ काली चेति
वा । तस्यां चिक्षेप । तत्कीदृशं अंवरात् । ल्यबलोपे पञ्चमी । अम्बर-
माकाशमाक्रम्येत्यर्थः । तेजोभिर्दीप्तिभिः रवेः बिबं मण्डलमिव पुनः
पुनरतिशयेन जाज्वल्यमानं । अतितरां ज्वलद्रूपमित्यर्थः । बिबं तु प्रति-
बिबे स्यान्मण्डले बिबिकाफले इति हैमः ॥ ८ ॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवीशूलममुञ्चत ॥

तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥ मं. १० श्लो. ९

दृष्ट्वेति । तत् चिक्षुरप्रेरितं आपतत् आगच्छत् शूलं । कर्म । दृष्ट्वा
देवी शूलं स्वीयं अमुञ्चत । तेन भगवत्युज्झितशूले तत् चिक्षुरप्रेरितं शूलं
शतधा शतप्रकारैः चूर्णं यथा भवति तथा, अर्थाच्चूर्णतां नीतं प्रापितं ।
स च महासुरः शतधा नीतः चूर्णणां नीत इत्यर्थः । न च नेद्विकर्मका-

त्कर्मणि क्तः । नीतं च नीतश्चेति नीते इति द्विवचनं शक्यं । नपुंसकमन-
पुंसकेनैकवचन्यतरस्यामिति नपुंसकशेषताविधानात् । अस्त्री शूलं
रुगायुधमित्यमरः ॥ ६ ॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ॥

आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ मं. ११ श्लो. १०

हते इति । महद्वीर्यं बलं प्रभावश्च यस्य तस्मिन् । महिषस्य चमिति
शत्रूनिति चमूः सेना । चमू अदने । कृषिचमितनीत्युप्रत्ययः । चमूः
सेनाविशेषे च सेनामात्रे च योषिति इति कोशान्तरम् । चमूनां पतिः
चमूपतिः तस्मिन् चमूपतौ । पतिः समासएवेति घिसंज्ञानियमादच्चवेः ।
देव्या हते सति । त्रिदशानां देवानां अर्दनः पीडयिता गजमारूढश्चाम-
राख्यः । आजगामाययौ । आरूढइत्यत्र गत्यर्थेति कर्तरि क्तः । द्वितीयेति
योगविभागात्समासः ॥ १० ॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिकां द्रुतम् ॥

हूङ्काराभिहतांभूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥ मं. १२ श्लो. ११

सोपीति । अथ स्वागमनान्तरं । चामरोऽपि देव्या इत्यनादरे
षष्ठी । देवीमनादृत्य इत्यर्थः । शक्तिं कासं विक्षेप मुमोच । अम्बिका
जगन्माता द्रुतं शीघ्रं हूमिति हूङ्कारः । घञ् । हूमेव हूङ्कारो वा ।
उच्चैस्तरां वा वषट्कार इति ज्ञापकात्कारप्रत्ययः । तेन अभिहतां
हतसामर्थ्या अत एव निष्प्रभां कान्तिरहितां भूमौ पातयामास । पातय-
तेर्ण्यन्तादनेकाच्त्वादाम् ॥ ११ ॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ॥

चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥ मं. १३ श्लो. १२

भग्नामिति । भग्नां चूर्णितां निपतितां भ्रष्टा शक्तिं कासं दृष्ट्वा
क्रोधेन समन्वितः सन् चामराख्यः सेनानीः शूलं चिक्षेप । सा देवी तत्
शूलमपि बाणैः । करणैः । अच्छिनत् । चिच्छेदेत्यर्थः । छिदेर्भूतानद्यतने
लङ् लिङ्विषयेऽपि क्वचिदस्ति । पुराकल्पे एतदासीति भाष्यकारप्रयोगा-
दित्याहुः । भग्नामित्यत्र भञ्जोऽभामर्दने अस्मात्कर्तरि क्तः । ओदितश्चेति
निष्ठानत्वम् ॥ १२ ॥

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरस्थितः ॥

बाहुयुद्धे युयुद्धे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥ मं. १४ श्लो. १३

इति । दैत्यशूलभङ्गानन्तरं । सिंहः उच्चैः समुत्पत्य सम्यगुत्प्लुत्य गजस्य कुं भुवं उम्भतः इति कुम्भौ शिरसःपिण्डौ । कुपूर्वं उम्भपूरणे कर्मण्यण् । शकम्भ्वादिः । तयोरन्तरे मध्ये विदुनाग्नि स्थितः सन् त्रिदशानां देवानामरिणा शत्रुणा तेन चामराख्येन सह बाहुभ्यां प्रवर्त्ति-
तेन युद्धेन सम्प्रहारेण युयुधे । उच्चैरिति बाहुयुद्धविशेषणं वा । कुम्भो राश्यन्तरे हस्ति मूढांश्च शक्षसान्तरे इत्यभिधानात् । कुम्भौ तु पिण्डौ शिरसस्तयोर्मध्ये विदुः पुमानित्यमरः । युध्यतेरनुदात्तत्वादात्मनेपदम् ।

युध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।

युयुधातेतिरन्बधौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ मं. १५ श्लो. १४

युध्यमानाविति । ततः नियुद्धात् युध्यमानौ सिंहचामरौ तस्मान्नागा-
दगजान्महीं गतौ, तु पश्चादित्यर्थे भिन्नक्रमः । तु पश्चात् दारयन्ति चित्त-
मिति दारुणा भीषणाः । दृभये । कृवृदारिभ्यउजन् । युज्वा । दारुणो
रभसे नादे त्रिषु तु स्याद्भूयावहे इति विश्वमेदिन्यौ । अति अत्यन्तं दारुणैः
प्रहारैः चपेटामुष्ट्यादिभिः तिपर्वते संरब्धौ युयुधाते । त् शब्दः पर्वत-
वाची । तकारः स्याच्छिलोच्चये इत्येकाक्षरकोशात् । ति इति सप्तम्यन्तम् ।
इदं युद्धं पर्वते जातमिति । उदग्रश्चरणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हृत इति
वक्ष्यमाणत्वात् । कात्यायनाश्रमस्य पर्वतासन्नभूमिष्ठत्वाच्च । न च अकार-
विशिष्टतकारः शिलोच्चयवाची । ककारवकाराद्येकाक्षरवत् । एवं च
'ते' इति सप्तम्यन्तमेवावश्यकमिति वाच्यम् । कोशे अकारस्योच्चारणार्थ-
त्वेन हलामेव तत्तदर्थभिधायित्वात् । हल्समुदायस्य तत्तदर्थभिधायित्वे
कारप्रत्ययसङ्गतिश्च । वर्णमात्रात्कारप्रत्ययविधानादिति पुष्पाञ्जलि-
काराः । युयुधाते इत्यत्र प्रगृह्यत्वाभावश्छान्दस इति नागेशः । नागो-
गजस्तस्मान्महीं पृथिवीं युयुधाते अतिसंरब्धावित्यत्र प्रगृह्यसंज्ञायां
सत्यामपि छन्दोभङ्गभयेन नाकारस्य पृथक् श्रवणं मणीवादित्वात्प्रगृह्य-
संज्ञाभावाद्वातिसंरब्धौ क्रोधातिशययुक्ताविति रामाश्रमः । नागात्
गजात् युयुधातेऽतिसंरब्धावित्यत्र सन्धिरार्षः । अवयवानां समुदायार्थमत्र
बीजम् । अत एव भागुरिरवाप्योरलोपमाह । अवाप्योरुदाहरणपरिगणने
तु क्षिपणेति न सिद्धद्यदित्याशयः । मणीवादित्वं वा कल्प्यमिति दंशो-
द्धारकृत् ॥ १४ ॥

ततो वेगात्समुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ॥

करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ मं. १६ श्लो. १५

तत इति । युद्धरसावेशेन वेगात् जवात् खमन्तरिक्षं उत्पत्य
उत्प्लुत्य पुनर्वेगान्निपत्य च मृगाणामरिणा सिंहेन चामराख्यस्य महिष-
सेनापतेः शिरः करस्य प्रहारेण चपेटया कायात् पृथक् भिन्नं कृतम्
छिन्नमित्यर्थः । अत्र यद्यपि मृगारिपदं सिंहस्य न तादृङ्महत्त्वसूचकं
तथापि चामरस्येति चमरीप्रयुक्तकाभासपरस्य हनने चमत्कारावहं
भवत्येवेति ज्ञेयम् । खमिति खन्यते इति खं । खनु अवदारणे ङः । खर्व-
त्यस्मिन्वा खं । खर्वगती ङः । खं खः संविदि व्योम्नि चेन्द्रिये । शून्ये
बिन्दौ मुखे खस्तु सूर्ये इति हैमः । प्रवाहजवयोर्वेगो विष्मूत्रातिप्रवर्तने
इति कोशान्तरम् ॥ १५ ॥

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ॥

दन्तमुष्टितश्चैव करालश्च निपातितः ॥ मं. १७ श्लो. १६

उदग्र इति । रणे देव्या कर्त्र्या । शिलन्तीति शिलाः । शिल उञ्छे
तालव्यादिः । इगुपधेति कः । टाप् । वृक्षन्तीति वृक्षाः । वृक्ष वरणे ।
पचाद्यच् । आदिशब्दादायुधानि तेर्हतः हिंसितः । चकारात्सैन्यः । कराल-
नामा । दन्ता रदनाः । मुष्यन्ते आभिरिति मुष्टय । मुषस्तेये । स्त्रियां
क्तिन् । तलन्तीति तलाश्चपेटाः । तलप्रतिष्ठायां । अच् । पूर्ववत् शाक-
पाथिवादिः । प्राण्यङ्गसमाहारस्यानित्यत्वाद्धेतोरितरेतरयोगो वा ।
एवावधारणे । च पुनरर्थे । तैः नितरां पातितः ॥ १६ ॥

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ॥

बाष्कलं भिन्दिपालेनबाणैस्ताम्रतथान्धकम् ॥ मं. १८ श्लो. १७

देवीति । क्रुद्धा कुपिता देवी । गदाया आपातैराघातैः उद्धत-
नामानं चूर्णयामास संपिपेष । च पुनः बाष्कलनामानमसुरं भिन्दिपालेन
सृगेण । पूर्वं व्याख्यातेन । चूर्णयामासेत्यत्रैवान्वयः । तथा, ताम्यति
तम्यते वा ताम्रं शुक्लं तमु काङ्क्षायाम् । अमितम्प्योर्दीर्घश्चेति रक्
ताम्रमस्त्यस्मिन्निति ताम्रो दैत्यः । अर्शआद्यच् । ताम्रासुरदेहात्ताम्रधातो-
हृत्पत्तिर्वाराहपुराणे वितता । अन्धयतीत्यन्धकः । अन्धदृष्ट्युपघाते
चुरादिः । ण्वुल् । तन्नामानं तथा बाणैरेव चूर्णयामासेत्यन्वयः ॥ १७ ॥

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ॥

त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ मं. १९ श्लो. १८

उग्रास्यमिति । उग्रास्यं मुखं यस्य तमुग्रास्यं नामासुरं । च पुनः

उग्रं वीर्यं बलं प्रभावो वा यस्य तं उग्रवीर्यं नामासुरं । तथैव च पुनः
महान्तौ हनू कपोलाधोभागौ यस्यं तं महाहनू नामासुरं । त्रीणि नेत्राणि
यस्याः सा त्रिनेत्रा । परमा उत्कृष्टा ईश्वरी समर्था । व्यवयं शूलं त्रिशूलं
शाकपाथिवादिः । तेन जघान जिहिंस ॥ १८ ॥

विडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ॥

दुर्द्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ मं. २० श्लो. १९

विडालस्येति । संज्ञकदेशग्रहणे संज्ञाग्रहणाद्विडालाक्षस्येत्यर्थः ।
विडालनाम्नोऽसुरस्य शिरो मूर्ध्नि । चीयतेऽन्नादिभिरिति कायो देहः ।
चित्रं चयने । निवासचित्तिशरीरोपसमाधानेष्वादेशश्च क इति घञ् । चस्य
कः । कायः क दैवते मूर्त्तौ सङ्घे लक्षस्वभावयोः इति कोद्यान्तरं । काया-
देहात् असिना पातयामास । वै इति प्रसिद्धौ । च पुनः । देवी दुष्टानां
धरो धारणकर्त्ता सः दुर्धरनामा दुर्दुष्टं मुखं यस्य सः दुर्मुखः । दुर्द्धरदुर्मुख-
नामानावुभौ कर्मभूतौ शरैः करणभूतैः यमस्य क्षयं गृहं द्वितीयं कर्म निन्ये
प्रापयामास । नयतिद्विकर्मकः । क्षि निवासगत्योरचि । क्षयो गेहे कल्पा-
न्तोपचये रुजीति हैमः ॥ १९ ॥

एवं सैन्यसेनापतिवधमवमृष्यमाणस्य महिषस्य

पराक्रमं वक्तुमुपक्रमते—

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ॥

माहिषेणस्वरूपेण त्रासयामास तान्गणान् ॥ मं. २१ श्लो. २०

एवमिति । प्रागुक्तप्रकारेण स्वस्य आत्मतः सेनेव सैन्यं । स्वार्थं
ष्यञ् । तस्मिन् सम्यक् निःशेषं क्षीयमाणे क्षीणे सति महासुरः महिषस्येदं
माहिषं । तस्येदमित्यञ् । तेन स्वरूपेण निजाकारेण तान् देवी निःश्वास-
सम्भूतान् गणान् पार्षदान् त्रासयामास उद्वेजयामास । यद्यपि क्षि क्षिये
अकर्मकरतथापि अन्तर्भावित्यर्थस्य सकर्मकत्वान्नाभुक्तं क्षीयते कर्म
कल्पकोटिशतैरपि । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्हृष्टे परावर इत्या-
द्यनुरोधेन सकर्मकत्वाभिधानात् । कर्मणः कर्तृत्वविवक्षायां कर्तरि लट्
शानचि कर्मवत्कर्मणा तुल्य इति सूत्रेण कार्यातिदेशात्कर्मणि यक्यात्मने-
पदे अकृत्सार्वधातुकयोरिति दीर्घे रूपम् । वर्त्तमानसामीप्ये भूते लट् ।
व्रसेण्यन्तस्यानेकाच्चास्त्रिष्ट्याम् ॥ २० ॥

तत्रादौ गणसेनाघातमाह—

काञ्चित्पुण्ड्रप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ॥

लांगूलताडिताश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यांच विदारितान् मं. २२ श्लो. २१
वेगेनकांश्चिदपराक्षादेन भ्रमणेन च ॥

निःश्वासपवनेनान्यान्पातयामास भूतले ॥ मं. २३ श्लो. २२
कांश्चिदिति द्वाभ्याम् । तुण्डति चूर्णयत्यन्नमिति तुण्डं मुखं । तुडि
तोडने । अच् । वदत्रास्ये वदनं तुण्डमित्यमरः । तस्य प्रहारणे आघातेन
भूतले भुवि कांश्चित्कानपि गणान्पातयामास । तलशब्दः स्वरूपवाची ।
तलं स्वरूपाधारयोरित्यभिधानात् । तथा खुरन्ति छेदनं प्राप्नुवन्तीति
खुराः खुर छेदने । इगुपधेति कः । खुरः कोलदले शके इति कोशान्तरम् ।
तेषां क्षेपैः प्रहारैः अपरान् गणान् पातयामासेत्युत्तरेणान्वयः । च पुनः ।
लंगति सह गच्छतीति लांगूलं पुच्छे । लगि गती । खजिपिञ्जादिभ्य
ऊरोलचौ । प्रज्ञाद्यण् । लांगूलं पुच्छशेफयोरिति हैमः । तेन ताडिता-
नाहतान् । शृणातीति शृङ्गं । शृ हिंसायां । शृणातेर्ह्रस्वेति गघुद्ह्रस्वाः ।
शृङ्गं प्रभूते शिखरे चित्ते क्रीडांबुयंत्रके । पाषाणोत्कर्षयोश्चाथ शृङ्गः
स्यात्कूर्चशीर्षके इति विश्वः । ताभ्यां विदारितान्भेदितानन्यान् ।
पातयामासेति सम्बन्धः । दारिते भिन्नभेदितावित्यमरः ॥२१॥ वेगेनेति ।
तारतम्येन कांश्चिन्नादेन कण्ठगर्जनेन भ्रमणेन मण्डलाकारगत्या च
पुनरर्थे । अपरानन्यान् निःश्वास एव पुनातीति पवनो वायुः । पूत्र पवने ।
बाहुलकमन्यत्रापीति युच् । तेन भूतले पातयामासेत्यन्वयः । सर्वत्र करणे
तृतीया ॥ २२ ॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ॥

सिंहं हन्तुं महादेव्याः क्रोपंचक्रे तथाम्बिका ॥ मं. २४ श्लो. २३
निपात्येति । सः प्रसिद्धोऽसुरो महिषनामा दुष्टान्प्रमथंतीति प्रमथाः
पारिषदा । मथ विलोडने । प्रपूर्वः पचाद्यच् । प्रमथाः स्युः पारिषदा इत्य-
मरः । तेषां अनित्यनेनेत्यनीकं सैन्यं । कर्म । अनप्राणने । अनिहृषिभ्यां
किञ्चेतीकन् । अनीकोऽस्त्री रणे सैन्ये इति कोशान्तरम् । निपात्य विनाश्य
महादेव्याः सिंहं हन्तुं अभिमुखमधावत अद्रवत् । धावु गतिशुध्योः
स्वरितेत्कर्त्तरि लङ् । तत इत्यत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः । तस्मिन्महिषे
इत्यर्थः । अम्बिका क्रोपं क्रोधं चक्रे । ततस्तदनन्तरमिति वार्थः ॥२३॥

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ॥

शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥ मं. २५ श्लो. २४

सोऽपीति । महत्संपन्नं वीर्यं प्राणसामर्थ्यं यस्य सोऽपि महिषासुराः
कोपात् । क्रोधेन खुरेण एकशफेन क्षुण्णं संपिष्टं महीतलं भूस्वरूपं येन
तथाविधः सन् शृङ्गाभ्यां करणभूताभ्यां । उच्चिन्वतीत्युच्चाः । अन्येभ्योऽ-
पीति डः । उच्चप्रांशोनतोदगोच्छितः इत्यमरः । तादृशान् पर्वतानुच्चान्
देव्यां चिक्षेप । च पुनः हतेतीत्यानंदेन ननाद जगर्जेत्यन्वयः । उच्चानित्य-
स्य स्थाने उच्चैरिति दाक्षिणात्याः । तत् शृङ्गाभ्यामित्यस्य पर्वतानि-
त्यस्य वा विशेषणम् ॥ २४ ॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ॥

लांगूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामाससर्वतः ॥ मं. २६ श्लो. २५

वेगेति । तस्य महिषस्य वेगसहितभ्रमणेन विक्षुण्णा पिष्टा मही
व्यशीर्यत स्वयमेव विशीर्णा अभवत् । शृ हिंसायां क्रधादिः परस्मैपदी
सकर्मकः । सच विपूर्वोऽकर्मकः । इह तु अंतर्भावितण्यर्थं विवक्षायां
विशीर्यते मेघः स्वयमेव । विशीर्यते सेतुः स्वयमेवेतिवत् कर्मकर्त्तरि
लङ्ङि रूपम् । तस्येत्यनुवर्तते । च पुनः तस्य लांगूलेन पुच्छेन आह-
तस्ताडितः अब्धिः समुद्रः सर्वत इत्यत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः । तेन
सर्वं प्रपञ्चमात्रं प्लावयामास । जले मग्नचकार । वा कर्मणि ल्यब्लोपे
पञ्चमी । तेन सर्वतः सर्वा पृथ्वी प्लावयामासेत्यर्थः ॥ २५ ॥

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डखण्डं ययुर्धनाः ॥

आसानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ मं. २७ श्लो. २६

धुतेति । हन्यन्ते वायुनेति घनाः मेघाः । मूर्तौ घन इत्यप् कृत्वं
च । घनजीमूतमुदिरजलमुग्धमयोनयइत्यमरः । तेनधुताभ्यां कंपिताभ्यां
शृंगाभ्यां विशेषेण भिन्नाः विदारिताः सन्तः खण्डखण्डं रूपं ययुः प्रापुः ।
खण्डखण्डं ईषत्खण्डं शकलं प्रापुरित्यर्थः । अत्र कर्मधारयवदुत्तरेष्वित्य-
धिकारे प्रकारे गुणवचनस्येति द्विवचनं कर्मधारयवद्भावश्च । सूत्रार्थस्तु
सादृश्ये द्योत्ये द्वेस्तस्तच्च कर्मधारयवत् । तं च कर्मधारयं मत्वा
समासत्वात्खण्डखण्डमित्यत्र कृत्तद्धितेति समासस्य प्रातिपदिकत्वे सुपो
धातुप्रातिपदिकयोरिति पूर्वविभक्तेर्लुकि खण्डखण्डमिति निष्पन्नम् ।
खण्डं खण्डमित्यपपाठः । अत्ररामाश्रमस्तु क्रियाविशेषणमाचक्षते ।
तदीयश्चासा एवानिलाः तैः आस्ताः आक्षिप्ताः न चलन्तीत्यचलाः
शैलाः । चल कंपने । अच् । अचलोगिरिकीलयोरिति हैमः । शतं

शतमिति शतशः । संख्यैकवचनाच्चेति वीप्सायां शस् । नह्यते मेवैरिति नभ आकाशं । नह बंधने । नहेदिवि भश्चेत्यमुन् भश्चान्तादेशः । नभः क्लीबं व्योम्नि पुमान्मेवे इति कोशः । तस्मादाकाशानिपेतुः । श्वासा-
निलास्ता विस्तीर्णा इति वा ॥ २६ ॥

इति क्रोधसमाध्मातमापतंतं महासुरम् ॥

दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥ मं. २८ श्लो. २७

इतीति । प्रागुक्तरीत्या क्रोधेन समाध्मातं शब्दसहितं क्रोधेना-
त्युद्दीप्तमिति वा आपतंतमभ्यायान्तं महान्तमसुरं दृष्ट्वा सा प्रसिद्धा
चण्डिका कोपशीला भगवती तस्य महिषस्य वधाय वधं हिंसनं कर्तुं
तदा तस्मिन्काले कोपं क्रोधमकरोत् । तद्वधायैतिहननं वधः हनश्चवध
इत्यप् । क्रियार्थोपपदस्य कर्मणि स्थानिन इति सूत्रेण चतुर्थी ॥ २७ ॥

मायया नानारूपधारणसमर्थस्य तस्यासुरस्य सम्प्रत्युपद्रावकस्य
माहिषरूपस्य वधोपायमाह—

साक्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ॥

तत्याज माहिषरूपंसोऽपि बद्धो महामृधे ॥ मं. २९ श्लो. २८

सा क्षिप्त्वेति सा प्रसिद्धा देवी विजिगीषाशीला तस्य महिषस्य
उपरिभागे पाशं क्षिप्त्वा प्रेरयित्वा तं प्रसिद्धं अत्याखण्डलविक्रमत्वादिति
भावः । यद्वा तं पर्वतं अत्युन्नतकायत्वादिति भावः । व्यक्तरूपकमेतत्
ताराः शराः पुष्पशरेण शङ्के इतिवत् । महांश्चासावसुरश्च महासुरः तं
महासुरं बबन्ध बध्नातिस्म वैतिश्रयेण इति सर्वसम्मतम् । वै अप्यर्थं
अव्ययम् । क्षिप्त्वा आतस्पेति च्छेदः । सा देवी पूर्वोक्तप्रथमगणनाशेन
आ तस्य, क्षयं प्राप्यापि महामृधे महारणे पाशं वरुणदत्तं क्षिप्त्वा
प्रेरयित्वा तं महासुरं महिषं बबन्धेत्यन्वयः । वै इत्यत्र वा ए इति
च्छेदः । व वा यथा तथैवेत्यभिधानात् । इवार्थे ववाशब्दौ । ए इति
राज्ञः सम्बोधनसूचकमव्ययम् । तमिति पर्वतवाचकं । तकारः स्याच्छि
लोच्चये इत्येकाक्षरात् । तथा च आ तस्या स्वगणनाशतः क्षीणा भूत्वापि
पाशं क्षिप्त्वा तमिव अत्युच्चत्वसाधर्म्यात्पर्वतमिव महासुरं महिषं सा
बबन्धेति पुष्पाञ्जलिः । सा तस्योपरि पाशं क्षिप्त्वा तं बबन्धेति नागेशः ।
तस्येति सम्बन्धलक्षणा षष्ठी तस्य बन्धनायेत्यर्थ इति रामाश्रमः । तस्य
पाशं बन्धनायेति शेष इति दंशोद्धारः सा । देवी तस्य महिषासुरस्य

वधाय वै प्रसिद्धं वारुणं पाशं क्षित्वा प्रवर्त्य महासुरं बबन्धेति शंतनुः ।
सः अमुरः बद्धः अपि, म्रियन्ते वीराः अस्मिन्निति मृधं युद्धं तस्मिन्महति
मृधे देव्याः पाशबंधमसहिन्नुः । माहिषं रूपं तत्याजेति ॥ २८ ॥

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ॥

छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥ मं. ३० श्लो. २९

तत इति । महिषस्वरूपत्यागानन्तरं । सद्यः तदव्यवहितकाले ।
मायया सिंहः अभवत् । अम्बिका दुर्गा यावत् यावता कालेन तस्य
सिंहस्य शिरः छिनत्ति छेत्स्यति तावत्तावता कालेन । खड्गः पाणौ
यस्य सः । एवं भूतः पुरतीति पुरुषः नराकारः देव्या अदृश्यत ऐक्ष्यत ।
छिनत्तीति भविष्यदर्थे यावत्पुरेति लट् । छिदेरुधादित्वात् इनम् । याव-
त्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे इत्यमरः । खड्गपाणिरित्यत्र प्रह-
रणार्थेभ्यः परेः निष्ठासप्तम्याविति वार्तिकेण पाणिशब्दस्य परनिपातः ।
पुरुष इति । पुरअग्रगमने । पुरः कुषन् छषोदरादित्वात्पुरुषोऽपि ।
पुरुषापुरुषा नरादित्यमरः ॥ २९ ॥

तत एवाशुपुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ॥

तंखड्गचर्मणासाद्धंततःसोऽभून्महागजः ॥ मं. ३१ श्लो. ३०

तत इति । मायिकपुरुषदर्शनानन्तरमेव देवी विजिगीषा शीला
आशु शीघ्रं सायकैर्वर्णैः । खड्गश्च चर्मं च तयोः समाहारः खड्गचर्मं च ।
सेनाङ्गत्वादेकवद्भावः । तेन साद्धं तं पुरुषं चिच्छेद । खड्गचर्मफलकं
पुरुषं च द्विधा चक्रे इत्यर्थः । फलकोऽस्त्री फलं चर्म इत्यमरः । ततः पुरुष-
च्छेदानन्तरं स महिषः महान् गजः हस्ती मायया बभूवेत्यन्वयः ॥ ३० ॥

करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च ॥

कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥ मं. ३२ श्लो. ३१

करेणेति । चः पुनरर्थे । कीर्यते अनेनेति करो हस्तः शुण्डा दण्डः ।
कृ विक्षेपे । ऋदोरप् । बलिहस्तांशवः करादित्यमरः । तेन तं महान्तं
सिंहं चकर्ष आकृष्टवान् । जगर्ज वृंहितं चकारेत्यर्थः । गर्जशब्दे भ्वादिः
परस्मैपदी कर्तरि लिट् । निरकृन्तत् अ इति च्छेदः । वृद्धिरादैच् इत्यत्र
भत्वात्कुत्वाभाव इवप्रकृतेऽपि भत्वाज्जस्त्वाभावः । छांदसत्वात् । अका-
रश्चनिषेधार्थः । अमानोनाः प्रतिषेध इत्यभिधानात् । तथा च सिंहं
कर्षंतो मायागजस्य करं शुण्डादण्डन्तु देवी खड्गेन अ न निरकृन्तत् ।

निःशेषेण करं न चिच्छेद अपि तु स्वल्पमेवेत्यर्थः । कृती छेदने तीदादिकः परमैस्पदी इति पुष्पाञ्जलिः । अत्र नागेशस्तु महासिंहं देवीवाहनं चकर्ष तं सिंहमिति निरकृन्ततेति छान्दसमाह । करेण शुण्डादण्डेन देवी तं वाहनत्वेन प्रसिद्धं सिंहं कर्षतो गजस्य करं निरकृन्तत चिच्छेद कर्मव्यतिहारे आत्मनेपदमिति रामाश्रमः । दंष्ट्रोद्धारकृत्तु अकृतत कृतीछेदने परस्मैपदत्वेनापि तद्ध आर्ष इत्याह ॥ ३१ ॥

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ॥

तथैवक्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ मं. ३३ श्लो. ३२

तत इति । तत इति ल्पब्लोपे पञ्चमी । असाधकं गजरूपमपहृत्येत्यर्थः । महासुरः । माहिषस्येदं माहिषं वपुः शरीरं । वपुः क्लीबं तनो गस्ताकृतावपीति कोणात् । आस्थितः अंगीकृतवान् सन् तथैव पूर्ववदेव । अवयवो लोकस्त्रिलोकः । शाकपार्थिवादिः । त्रिलोकएव त्रैलोक्यम् । चातुर्वर्ण्यादित्वात्स्वार्थे व्यञ्ज । चरैर्जङ्गमैरचरैः स्यावरैः सह वर्तमानम् । चरिष्णु जंगमचरं त्रसमिगं चराचरमित्यभिधानात् । आस्थित इत्यत्र आङ्पूर्वस्तिष्ठतिः प्रतिज्ञानार्थः सकर्मकः । गत्यर्थकर्मकश्चिष्य शीङ्स्थासेत्यादिना कर्तरि क्तः ॥ ३२ ॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ॥

पपौ पुनःपुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥ मं. ३४ श्लो. ३३

ततः क्रुद्धेति । ततस्त्रैलोक्यक्षोभणतः जगतां माता उत्पत्तिकारणं मातृवद्विता वा । अतएव अरुणानि लोचनानि यस्याः सा उत्तमं श्रेष्ठं पीयते यत्तत्पानं मधु । पुनः पुनः अभीक्षणं पपौ । पानमिति पिबतेः कर्मणि ल्युटिरूपम् । पपावित्यत्र पिबतेः कर्तरि लिट् । आत औणलः । अरुणलोचनेत्यत्र विग्रहे बहुवचनं देव्यास्त्रिनेत्रत्वात् । च पुनः पुनः पुनरेव जहास । यद्वामधुपानानन्तरमरुणलोचना सती जहासेव । न च युद्धं गणयामासेत्यर्थः एतेन वीरपाणं भगवत्या उक्तं वीराणांरणे यत्कर्त्तव्यं मद्यपानं तद्वीरपाणमिति । वीरपाणं तु हृत्पानं वृत्ते भाविनि वा रणे इत्यमरः । पुनः पुनः शस्त्रदभीक्षणमसकृत्समा इत्यमरः ॥ ३३ ॥

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ॥

विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रतिभूधरान् ॥ मं. ३५ श्लो. ३४

ननर्दति । बलेन सामर्थ्येन वीर्येण प्रभावेण तेजसा वा मदेन गर्वेण हर्षेण वा उद्धतः अविनीतः । बलवीर्याभ्यां यो मदो गर्वस्ते नोद्धत उद्धिक्त इति वा । सः महिषोऽपि ननर्द स्वजात्यनुकारिनादं चकार । स्थौल्यसामर्थ्यसैष्येषु बलं ना काकसीरिणोः । वीर्यं बले प्रभावे च हर्षेऽप्यामोदवन्मदः । अविनीतः समुद्धत इत्यमरः । च पुनः चण्डिकां प्रति भूधरान्पर्वतान् विषाणाभ्यां शृङ्गाभ्यां चिक्षेप । अतस्त्रिषुविषाणां स्यात्पशुशृङ्गेभदन्तयोरित्यमरः ॥ ३४ ॥

सा च तान्प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ॥

उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ मं. ३६ श्लो. ३५

साचेति । च पुनः सा चण्डिका तेन महिषेण प्रहितान् क्षिप्तान् तान्पर्वतान् क्षरणामुत्करैः समूहैः चूर्णयन्ती चूर्णं कुर्वती मदेन मधुपान-
जेन हर्षेण उद्धूतो मुखरागो मुखारुणिमा यस्याः सा । आकुलानि व्यामि-
श्रितानि अस्पृष्टान्यक्षराणि यस्मिन्कर्मणि यथा स्यात्तथा उवाच ।
आकुलाक्षरमिति क्रियाविशेषणम् । क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकत्वं
वाभिहितं वार्तिककृता । चूर्णं संपेषणे चुरादिः । ततोप्यन्तान्छतरिचूर्ण-
यन्तीति रूपम् ॥ ३५ ॥

किमाकुलाक्षरमुवाचेत्यत आह—

देव्युवाच ॥ मं. ३७ ॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ॥

मयात्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशुदेवताः ॥ मं. ३८ श्लो. ३६

गर्जेति । गर्ज गर्जेत्येवं प्रतिशब्दं व्यत्यस्तवर्णं भगवत्या प्रोक्तं
मुनिना तु संस्कृत्य तदर्थसंगत्या निबद्धं संभ्रमेण प्रयुक्तोऽसौ
यथेष्टमन्यथा प्रयोगो न्यायसिद्धः । हे मूढ, स्ववधमुपस्थितं पशुत्वाद-
जानानस्त्वं तावद्गर्ज गर्ज यावत् यावता क्षणेन अहं मधु सुरां
पिबामि पास्यामि । भविष्यति यावत्पुरानिपातयोलट् । तावदेव
तवायुरिति भावः । आशु शीघ्रं मया त्वयि हते हिंसिते अत्रैव
संग्रामे एव देवा एव देवताः स्वार्थं देवात्तल । इन्द्रादयो देवाः गर्जिष्य-
न्ति । त्वद्धजनिनानन्देन कण्ठगर्जनं करिष्यन्तीत्यर्थः । अन्ने मूढयथा-
जातमूर्खवैर्धयबालिशा इत्यमरः ॥ ३६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ३६ ॥

ऋषिः प्रस्तुतसंग्रामकथामुपसंहरन्सुरथमुवाच—

एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महासुरम् ॥

पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥ मं. ४० श्लो. ३७

एवमिति । सा भगवती एवममुमुक्त्वा समुत्पत्य उत्प्लुत्यतं प्रसिद्धं महासुरं महिषमारूढा सती एनं महिषं कण्ठे च कण्ठप्रदेश एव आक्रम्य पादक्षेपं कृत्वा शूलेन त्रिशूलेन अताडयत् । पशोः कण्ठदेशस्य पृष्ठ एव प्रसिद्धत्वात्पृष्ठे इति नोक्तम् । रुहेर्गन्तव्यत्वादिना कर्त्तरि क्तः । एन-मित्यत्र द्वितीयाटीस्त्वेन इत्येनादेशः ॥ ३७ ॥

ततः सोऽपि पदाक्रान्तस्तथा निजमुखात्ततः ॥

अर्द्धनिष्क्रान्त एवाति देव्या वीर्येण संवृतः ॥ मं. ४१ श्लो. ३८

तत इति । शूलघातानन्तरं । सः महिषः तथा भगवत्या पदा एकपादेनाक्रान्तः अपि शब्दात् शूलेनाप्याक्रान्तः निजस्यात्मनः मुखात् अर्द्धं निष्क्रान्त एव अर्द्धेण शरीरेण निर्गत एव देव्याः अत्यतिशयेन वीर्येण संवृतः प्रतिबद्धः स्तम्भितः । अभूदतिशेषः । अर्द्धं निष्क्रान्त एव तथैवास्ते न संपूर्णो निष्क्रान्तः । देव्या वीर्येण सामर्थ्येन स्तम्भितत्वेन निष्क्रमणाभावादिति भावः । अर्द्धो निष्क्रान्तो यस्येति बहुव्रीहिः ॥ ३८ ॥

अर्द्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ॥

तथा महासिनादेव्या शिरश्छित्त्वानिपातितः ॥ मं. ४२ श्लो. ३९

अर्द्धंति । असौ महासुरः महिषवक्त्रादर्द्धनिष्क्रान्तो युध्यमान एव तथा देव्या कर्तृभूतया महासिना खड्गेन करणेन शिरः छित्त्वा निपातितः । भूमाविति शेषः ॥ ३९ ॥

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ॥

प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥ मं. ४३ श्लो. ४०

तत इति । महिषनिपातानन्तरं दितेः कश्यपपत्न्याः अपत्यानि दैत्याः । दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्यः । तेषां सैनैव सैन्यं । चतुर्वर्णादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । यदवशिष्टं तदपि हाहाकृतं । कृतः हाहा इत्येवमाकारः शब्दो येन तादृशं सत् ननाश । अदर्शनं प्राप । पलायितभूदित्यर्थः । हाविषादशुर्गतिष्वित्यमरः । हाहेति संभ्रमेण प्रवृत्तो द्विवचनम् ।

बह्वीत्रीहो वाहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः । सकलाः समस्ताः देवताः
इन्द्रादयः गणाः प्रमथाश्च । देवानां गणाः समूहा वा । परमुत्कृष्टं हर्षणं
हर्षः प्रमोदः । हृषतुष्टौ । घञ् । प्रकृष्टो हर्षः तं जग्मुः प्रापुः ॥ ४० ॥

सकलसुरारातिमहामहिषमर्दनतुष्टदेवानांस्वस्वोचि-

तव्यापारेण देव्यास्तुष्ट्युत्पादनं संक्षेपेणाह—

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ॥

अगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ मं. ४४ श्लो. ४१

तुष्टुवुरिति । सुरन्तीति सुराः पुरप्रसवैश्वर्ययोः । इगुपधेतिकः ।
वा सुरा समुद्रोत्था अस्त्येषामिति । अर्श आद्यच् । एतद्यथा वाल्मीकीय-
बालकाण्डे पञ्चचत्वारिंशे सर्गे श्रीरामं प्रति विश्वामित्र आह—वरुणस्य
ततः कन्या वारुणी रघुनन्दन । उत्पपात महाभागा मार्गमाणा परिग्र-
हम् । दितेः पुत्रा न तां राम जगृह्वरुणात्मजाम् । अदितेस्तु सुता वीर
जगृह्वस्तामनिन्दिताम् ॥ असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः ।
हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन्वारुणीग्रहणात्सुरा इति । सुष्ठु राजन्ते वा सुराः ।
राजूदीप्तौ । अन्येभ्योऽपीति डः । त्रिदद्या विबुधाः सुरा इत्यमरः ।
दिवि स्वर्गे भवैः दिव्यैः । दिगादित्वाद्यत् । ऋषन्ति जानन्ति सर्वमिति
ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः सत्यवचना वा । ऋषी गतौ । सर्वधातुभ्य इन् इती-
न्प्रत्ययः । तस्येगुपधात्किदिति कित्त्वान्न गुणः । ऋषयः सत्यवचस
इत्यमरः । महान्तश्च ते ऋषयश्च महर्षयः । नारदाद्याः तैः सह वतं-
मानाः । तां महिषघ्नीं देवीं तुष्टुवुः । वाचा पूजयां चक्रुः । गन्धं सौर-
भमवन्तीति गन्धर्वाः दिव्यगायनाः । अर्वागती । कर्मण्यण् । शकन्वादिः ।
नभश्चरे तु गन्धर्वो मृगभेदे तुरंगमे । पुंस्कोकिले गायने च, अन्तरा-
भवदेहके इति कोशः । तेषां पतयः प्रभवः हाहाहूहूचित्ररथप्रभृतयः ।
तां देवीं जगुः । गौशब्दे सकर्मकः । कर्त्तरि लिट् । च पुनः अद्भुतः सर-
न्तीत्यप्सरसः स्वर्वस्या मेनकाद्याः । सरतेरमुन् । बहुष्विति प्रायोवादः ।
अनचि चेति सूत्रे अप्सरा इति भाष्यप्रयोगात् । स्त्रियां बहुष्वप्सरसः
स्यादेकत्वेऽप्सरा अपीति शब्दार्णवाच्च । अप्सरसां गणाः महादेवीविजय-
महोत्सवे ननृतुः नृत्यचक्रुः । नृतीगात्रविक्षेपे कर्त्तरि लिट् ॥ ४१ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूपसादसगृहीते मध्यभागे

महिषासुरवधो नाम तृतीया विश्रामः ।

आदितश्चाष्टमो विश्रामः ८ ॥

अथ चतुर्थाध्यायारम्भः--

तत्र चतुर्थाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदंबरहस्ये—

आद्य ऋषिरुवाचेति षड्विंशश्लोकमन्त्रकाः । ऋषिः श्लोकौ च
देव्युक्तिरर्द्धश्लोकात्मकस्ततः ॥ १ ॥ देवाऊचुः पुनश्चार्द्धश्लोकः श्लोक-
त्रयं ततः । ऋष्युक्तिः श्लोकमन्त्राश्च चत्वारस्ते प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥
षट्त्रिंशश्लोककेऽध्याये चत्वारिंशद्वयाधिकाः इति ३ ऋषिः सुमेधाः
सुरथं प्रति देवकृतदेव्याः स्तुतिं वक्तुमुपक्रमते—

ऋषिरुवाच ॥ मं० १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये

तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा

वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारु देहाः ॥ मं० २ श्लो. १

शक्रादय इति । देव्या दुर्दृष्टः आत्मा मनः स्वभावो यस्य तथा अति
अत्यन्तं वीर्यं बलं प्रभावश्च यस्य । तस्मिन्महिषे निहते सति च पुनः
सुराणामरेः शत्रोः बले सैन्ये च निहते सति शिरो धारयन्तीति शिरो-
धराः ग्रीवाः । संज्ञायां भृतृभृजिधारीति खच् । खचि ह्रस्वः । अस्यन्ते
समाहन्यन्ते भारादिना इत्यंसाः स्कंधाः । अंससमाघाते । घञ् । अंसः
स्कंधे विभागे स्यादिति हैमः । शिरोधराश्च अंसाश्च तेषां समाहारः
शिरोधरासं । प्राण्यङ्गत्वात्समाहारः । प्रणतिभिः प्रणामैः । प्रणतिषु वा
नम्रं शिरोधरासं येषां ते । तथा प्रहर्षेण प्रमोदेन ये पुलका रौमांचाः
तेषामुद्गमः प्रादुर्भावः तेन चारवः मनोहराः देहाः येषां ते तथोक्ताः ।
शक्रः इन्द्रः आदिर्येषां ते सुरगणाः वाग्भिर्वाणीभिस्तुष्टुवुः । अत्र यद्यपि
वाचा पूजनमेवस्तौतेरर्थस्तथापि वाग्भिरिति पृथक्कथनं जात्यादिभेद-
चतुष्टयपरिज्ञानार्थं । तथा च चतुष्टयीशब्दानां प्रवृत्तिः । जाति, गुण,
क्रिया यदृच्छाभेदात् ॥ अन्ये । द्रव्यं, गुणं, क्रिया, जातिमाहुः शब्दाश्चतु-
विधाः । यदृच्छया प्रयुक्ताः स्युः संज्ञाशब्दाश्च पञ्चमाः ॥ अपरे । परा,
पश्यन्ती मध्यमा, वैखरीभेदेन चतुर्द्धात्वमाहुः । तत्र परादिचतुर्णां
लक्षणम् । पेयं विपशंरूपैव परमार्थचमत्कृतिः । सैव सारं पदाथानां

परावागभिधीयते । अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा । स्वरूप-
ज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनी । अन्तःसङ्कल्परूपा या क्रमरूपानु-
पातिनी । प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमावाक्प्रवर्तते । स्थानेषु विवृते वायो
कृतवर्णपरिग्रहा । वैखरीवाक्प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना इति । वैखरी-
शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा स्मृतिगोचरा । द्योतितार्था च पश्यन्ती सूक्ष्माचाप्य-
नपायिनीति । अथ च शब्दानां निष्पत्तिर्यस्याः सा घटाद्यर्थरूपा
वाग्वैखरीत्युच्यते । स्मृतिगोचरा स्मरणग्राह्या वाङ्मध्यमोच्यते ।
द्योतितोऽर्थो यया सा ज्ञानरूपा पश्यन्तीत्युच्यते । अनपायिनी सूक्ष्मा
वाग्विष्णुरूपा परेत्युच्यते । एतदभिप्रायेण वाग्भिरिति बहुवचनम् । जन्म-
त्वार्थका तृतीया । तस्य गर्जगर्जेत्यादि देवीवचनपरस्य वाग्भिरिति
स्वस्य हर्षपदेनैव सम्भूय एकार्थप्रतिपादकत्वलक्षणं साकांक्षत्वनम् । तादृश-
देवीवचनजन्यसन्तोषोऽमराणां नाद्यापि निवृत्त इति ॥ १ ॥

सम्प्रति भगवत्या विग्रहवत्त्वेऽपि सर्वात्मकत्वमाशंसमाना
देवाः स्वेष्टसिद्धिं प्रार्थयन्ते—

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या

निःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।

तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां

भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ मं. ३ श्लो. २

देव्येति । स्मेति वयमित्यर्थे तिङ्तप्रतिरूपकमव्ययम् । अतीतार्थ-
तायाः पादपूरणार्थकतया अभियुक्तैरुक्तत्वेऽपि अव्ययानामनेकार्थत्वात् ।
लङ्घ्यलोड्वा आर्षः । स्मेतिवयमित्यर्थः । भक्त्या सेव्यसेवकभावपुर-
स्कारेण तां प्रसिद्धां अम्बिकां रक्षणकारिणीं जगन्मातरं नताः स्म । नता
भवाम इति शेषः । किंभूतामम्बिकां अखिलाः समस्ता देवाः ब्रह्मादयः,
महर्षयः नारदवसिष्ठाद्याः, तैः पूज्यामर्चनीयां । पूजपूजायां । ऋहलोर्ण्यत् ।
तामिति कां यया देव्या क्रीडाशीलया इदं जगदित्यंगुल्यैव निर्देशः इदं
जगद्ब्रह्माण्डं कर्म आत्मशक्त्या । अनौपम्यस्वभावेनेत्यर्थः । आततं
व्याप्तं समवायिकारणतया तन्तुभिरिव पट इत्यर्थः । अहमेव वात इव
प्रवाभ्यारभमाणा भुवनानि विश्वा इति श्रुतेः । यथा लूतया तंतव
आरभ्यन्ते । कर्पासादिसूत्रैर्वपट आरभ्यन्ते । एवं विश्वा भुवनानि अहं
भगवती आरभमाणेति श्रुतेरर्थः । कथं तस्या मूर्तिमत्वमित्याद्यङ्गाया-

माह—निःशेषदेवगणस्य शक्तिसमूहाय सामर्थ्योपचयाय मूर्तिर्देहपरिग्रहो
यस्याः सा तथा । प्रसिद्धं चैतत् । सतीदेहोत्सर्गेण भगवति नीललोहिते
मोहाभिभूते, देवेषु हतप्रभेषु, कालान्तरेण हिमाद्रेशविभूतायां च जग-
न्मातरि गौर्या, पुनर्हरस्य मोहनाशो देवानां च पूर्ववच्छक्तिसद्भाव-
कथनं तत्तत्पुराणेषु । अन्यच्चापि । दुर्वाससः शापेनान्तहितायामिन्दिरायां
हतप्रभेष्विन्द्रादिदेवेषु, दारिद्र्याभिभूते जगति, समयान्तरेण सागरे
सर्वमथितुमारब्धे समाविभूतायां च जगन्मातरि सानन्दं सशक्तिकं
सर्वमासीदित्यापि भारतादिषु प्रसिद्धमिति । यद्वा । तथा देव्या इदं
जगत् आततं । सृष्टमित्यर्थः । बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्रूपामित्यादि
श्रुतेः । किंभूतया तथा आत्मशक्त्या निजस्वभावेन निःशेषदेवगणस्य
शक्तिसमूहस्तेजोऽप्रपञ्च एव मूर्तिकायो यस्याः । प्रार्थ्यमाहुः । सा
नोऽस्माकं शुभानि कुशलानि विदधातु करोत्वित्यर्थः ॥ २ ॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो

ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च ।

सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय

नाशाय चाशुभभयस्य मतिङ्करोतु ॥ मं. ४ श्लो. ३

यस्या इति । भवनं भावः । भावे चञ् । प्रकृष्टो भावः प्रभावः ।
धनदण्डसेनाभ्यो जातं तेजः । यदाह भरतः—अधिक्षेपापमानादेः
प्रयुक्तस्य परेण यत् । प्राणात्ययेऽप्रसहनं तत्तेजः समुदाहृतमिति । सप्रतापः
प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजमित्यमरः । यस्या देव्याः उक्तलक्षणं प्रभावं
अतुलं निरूपमं अनन्यसाधारणं बलं सामर्थ्यं च वक्तुं वर्णयितुं भगवान्
षडैश्वर्यवान्, न अन्तोऽस्येत्यनन्तः विष्णुः । ब्रह्मा । हरश्च नहि अलं,
पर्याप्ता इत्यर्थः । अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकमित्यभिधानात् ।
अलं शब्दगम्या पर्याप्तिक्रिया, तद्योगे तुमुन्प्बुलाविति वचेस्तुमुन् । सा
चण्डिका देवी अखिलस्य समस्तस्य जगतः परिपालनाय परिपालनं
विधातुं अशुभमकल्याणं भयं भाविदुःखप्रतिसन्धानजमसुखं तयोः समा-
हारः अशुभभयं तस्य नाशाय । मननं मतिः बुद्धिः । तां करोतु । अनन्तः
केशवे शेषे पुमान्निरवधौ त्रिविधं कोशान्तरं । परिपालनाय नाशाय
इत्यत्र क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी ॥ ३ ॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः

पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा

तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥ मं. ५ श्लो. ४

या इति । सुष्ठुकृतं सुकृतं धर्मः । प्रादिसमासः पुण्यश्रेयसी सुकृत-
मित्यमरः । तदेषामस्तीति सुकृतिनस्तेषाम् । भवन्त्यत्रेति भवनानि
गृहाणि । भवतेरधिजरणे ल्युट् । तेषु स्वयं आत्मा पूर्वरूपापरिहारेणेत्यर्थः ।
या श्रीयते सर्वरिति श्रीः सम्पत् । श्रयतेः क्विब्वचीत्यादिना क्विप् ।
सम्पत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्चेत्यमरः । तथा पान्त्यस्मादात्मानमिति पापं
क्विल्वषं । पापमात्मनि मनसि येषां ते पापात्मानः । तेषां पापात्मनां
भवनेषु । लक्षयति पश्यति नीतिज्ञमिति लक्ष्मीः सम्पत् । लक्ष्मीः सम्पत्ति-
शोभयोरिति कोशभेदः । न लक्ष्मीरलक्ष्मीविपद्रूपेत्यर्थः । तथा कृतं कर्म
ध्यायन्ति ये ते कृतधियः । कृतेः क्तः । ध्यायतेः सम्प्रसारणं चेति क्विप् ।
तेषां हृदयेषु अन्तःकरणेषु । बोधनं बुद्धिरध्यवसायः तथा सन्तीति सन्तः
साधवः । आस्तिका इति यावत् । अस्तेः शतरि रूपम् । सन्साधो धीर-
शस्तयोरिति कोशान्तरम् । हृदयेष्वित्यनुवर्तते । तेन सतां हृदयेषु
श्रद्धा । आगमेषु यदुक्तं तत्तथेत्यध्यवसायः । श्रद्धा स्वयं या देवीत्यर्थः ।
श्रद्धासम्प्रत्ययः स्पृहेत्यमरः । तथा कूयते इति कुलं वंशः । कूङ् शब्दे
बाहुलकात् । कोलति वा । कुलसंस्त्याने । इगुपधेति कः । कुलं जन-
पदे गोत्रे सजातीयगणेश्चि चेति कोशान्तरम् । कुलसम्बन्धिनो ये जना
मानवास्तेभ्य उत्पत्तिः प्रभवो यस्य सः कुलजनप्रभवः । तस्य हृदये लज्जा
अकरणोया प्रवृत्तिलक्षणाऽन्तःकरणगुणोपाया । तां त्वां भगवतीं वयं
नताः स्म । हे देवि तथाविधं विश्वं परिपालयेत्यन्वयः ॥ ४ ॥

तदेतत्तव स्तुतिमात्रं वस्तुतस्त्वनिर्वचनीयैव त्वमित्याह—

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्

किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि

किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि

सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ मं. ६ श्लो. ५

किमिति । हे देवि । देवाश्च असुराश्च असुरदेवं येषां च विरोधः
शाश्वतिक इति समाहारः अजाद्यदन्तत्वादसुरशब्दस्य पूर्वनिपातः ।
असुरदेवगणाः प्रमथाश्च आदयो तेषां ते असुरदेवगणादयस्तेषु ।

अचिन्त्यमनिरूपणीयं सर्वोत्कृष्टत्वात्तत्र रूपं स्वरूपं । एतदित्यंगुल्या निर्देशः । वयं किं वर्णयामेति प्रार्थनायां लोट् । अचिन्त्यमिति हेतुगर्भं विशेषणं । यन्मनसापि चिन्तयितुमशक्यं तद्वाचा वर्णयितुमशक्यमेवेति-
भावः । हे देवि अतिअनन्यसाधारणं भूरि प्रचुरं असुराणां क्षयं नाशं च कर्तुं शीलमस्य एवंभूतं तव वीर्यं सामर्थ्यं च किं वर्णयाम । अचिन्त्य-
मित्युक्तमेवात्रापि हेतुः । हे देवि असुरदेवगणादिकेषु सर्वेषु आहवेषु युद्धेषु अतिअनन्य साधारणानि तव अद्भुतानि आश्चर्याणि चरितानि तानि च किं वर्णयामेत्यनेनैवान्यः । अत्रापि विभक्तिविपरिणामे नाचिन्त्य-
त्वमेव हेतुः । आहवेष्विति । आह्वानमाहवः संग्रामः । ह्वेत् स्पष्टायां शब्दे च । आङ्गि युद्धइत्यपसम्प्रसारणं च । आहवः समरे यज्ञइति हैमः । अद्भुतानीति अदित्याश्चर्यार्थकमव्ययं तस्य भवन्मद्भुतं । अदिभुवो इतच् । अद्भुतमाश्चर्यं विद्यते येषु तानि अद्भुतानि । गुणवचनेभ्यो मतुपो लुगिष्ठः
॥ ५ ॥

मूलप्रकृतिस्त्वमेवेत्याह—

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषैर्न

ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।

सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-

मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ मं. ७ श्लो. ६

हेतुरिति । समस्तजगतामखिलभुवनानां त्वं । हिनोति व्याप्नोति कार्यमिति हेतुः । मूलकारणमित्यर्थः । हि गतौ । कमिमनीति तुन् । हेतुनां कारणं बीजमित्यमरः । किं भूता त्वं त्रिगुणा । त्रयः गुणा सत्त्वरजस्तमांसि यस्यां सा । नन्वेवमपि त्रिगुणसम्बन्धा रागादिदोषसम्बन्धस्यापि सम्भावितत्वेन सर्वकारणत्वव्याघात इत्याशङ्कायामुत्तरमाह-
अपीति । त्रैगुण्येऽपि सति दोषैः रागादिभिः न ज्ञायसे । न विषयीक्रियसे इत्यर्थः । एवमपि परिच्छिन्नतया सर्वकारणत्वं नोपपद्यत इत्याशङ्क्याह-
हरिर्विष्णुः हरः शिवः, तौ आदी येषां तैरपि अपरिच्छिन्नत्वादपारा । अनधिगतपर्यन्तभूमिष्ठादेवाह-सर्वाश्रयेति । सर्वस्य प्रपञ्चमात्रस्याश्रया आधारभूता । क्वचित्तत्पुरुषेऽपि वाच्यलिङ्गता । हेत्वन्तरमप्याह-इदं अखिलं ब्रह्माण्डं अंशभूतं एकदेशाश्रितं अनन्तब्रह्माण्डादिकारणत्वात् । नन्वेवं विकारापत्तिः सांशत्वेन मूर्तत्वापत्तेरित्याशङ्क्याह-अव्याकृतेति ।

षड्विधभावविकारहीनेत्यर्थः । हि यस्मात्त्वं आद्या प्रकृतिः यस्या विशेषणं परमेति । परः परमात्मा मीयते जीवभावेन विच्छिद्यते अनयेति परमा । परो हि प्राकृतधर्माध्यासाज्जीवभावेनाध्यवसीयत इत्यर्थः ॥ ६ ॥

देवाः पितरश्च येन मन्त्रेण यज्ञे श्राद्धे च भागमृच्छन्ति
तन्मन्त्ररूपा त्वमेवेति प्रार्थयन्ते—

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन

तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवी ॥

स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-

रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥ मं. ८ श्लो. ७

यस्या इति । हे देवि द्योतनशीले वै इति प्रसिद्धौ । त्वमेव सा प्रसिद्धा स्वाहासि स्वाहाख्यो मन्त्रो भवसि । स्वाहा च हुतभुविप्रयेत्यमरः । सेत्यनुक्तमपि यत्तदोः साहचर्यादवसीयते । सा का यस्याः स्वाहाविद्यायाः सम्यक्ताल्बोष्ठपुटव्यापारस्वरादिना उदीरणेन उच्चारणेन मखेषु अग्निष्टोमाद्यश्वमेधान्तेषु समस्ताः निःशेषाः सुरता सुराणां समूहः तृप्तिं प्रयाति प्राप्नोति । सुरतेत्यत्र सुरशब्दात्समूहे तत् आर्षः । सुष्ठु आहूयन्ते देवा अनयेति स्वाहा अशंआद्यच् । सा प्रसिद्धा स्वधा च त्वमेवासि । अत एव हेतोः मखेषु पितृयज्ञेषु जनैः पितृश्राद्धकृद्भिः पुरुषैः पितृगणस्य च सूर्तामूर्तभेदेन द्विधावस्थितस्य पितृसमूहस्य तृप्तिहेतुः स्वधाख्यो मन्त्रस्त्वमेवोच्चार्यसे कथ्यसे । पितृगणस्य तृप्तिहेतुरिति देहलीदीपकन्यायेन स्वाहासीत्यत्रापि सम्बध्यते । नान्दीमुखपितृणां तृप्तिहेतुस्वाहाशब्दस्याभ्युदयिकश्राद्धे प्रयुज्यमानत्वात् । दैवे श्राद्धे भवेत्स्वाहा पेत्र्ये श्राद्धे स्वधोच्यत इति परिभाषणात् । स्वाहा देवहविदनि श्रौषट् वौषट् स्वधेत्यभिधानात्पितृणामपि देवविशेषत्वासाधारणं देवत्वमाश्रित्य प्रवृत्तेन देवशब्देनैव पितृसंग्रहमभिप्रेत्य विभागो नाश्रित इत्यवधेयम् ॥ ७ ॥

सम्प्रत्युपनिषद्रूपतां देव्याः प्रतिपादयन्ति—

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्य महाव्रता च

अभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ॥

मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-

र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥ मं. ९ श्लो. ८

येति । हे देवि आनन्दमये । हि निश्चयेन भगवती ज्ञानवैराग्य-
प्रतिपादिका भगवद्विषया वा ब्रह्मविषयेति यावत् । परमा प्रकृष्टतमा
सा प्रसिद्धा । वेदनं विद्या । वेदविद्या च त्वमसि । विदज्ञाने । संज्ञायां
भृञ्जेति क्यप् । अत्रोपपत्तिमाह-येति सा का या मोचनं मुक्तिः कैवल्यं ।
मुचेः स्त्रियां क्तिन् । मुक्तिर्मोचनमोक्षयोरिति हैमः । तस्याः हेतुनिमित्तं ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽजनायेति श्रुतेः । सा विद्या
या मुक्तये । ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति स्मृतेऽत्र । अविचित्त्यानि चिन्त-
यितुमशक्यानि दुश्चरणाणि महान्ति व्रतानि अहिंसादीनि पातञ्जलोक्तानि
यस्यां सा । सुष्ठुनियतानि विषयेभ्यो व्यावर्तितानि वशीकृतानि इन्द्र-
स्यात्मनो लिङ्गानीन्द्रियाणि चक्षुरादीनि यैः, तत्त्वं ब्रह्मेव सारो न्याय्यं
येषां ते, सुनियतेन्द्रियाश्च ते तत्त्वसाराश्च सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारास्तैः ।
तथा मोक्षणं मोक्षः अपवर्गः । मोक्ष असने चुरादिः । असनं क्षेपः । एरच्
घञ्वा । मोक्षं निःश्रेयसे वृक्षविशेषे मोचने मृते इति हैमः । मोक्षमवश्य-
मर्थयन्ते इति मोक्षार्थिनो मुमुक्षवस्तैः तथा । अस्ताः ध्वस्ताः समस्ताः
दोषाः गुणादयो येषां तैर्मुनिभिर्मननपरैः सनकाद्यैः अभ्यस्यसे शिक्ष्यसे ।
शश्वद्गुरुभ्य इत्यन्वया । पुनः पुनरावर्त्यसे इत्यर्थः । अभिपूर्वादस्यतेः
कर्मणि लट् । महाव्रतमाह भगवान्पतञ्जलिः जातिदेशकालसमयान-
वच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतमिति योगसूत्रे अहिंसासत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यो-
परिग्रहः । एते जाताद्यवच्छिन्नास्ते चेमे वै महाव्रतमिति । जातिदेश-
कालावच्छिन्ना इत्यर्थः ॥ ८ ॥

अखिलधर्ममूलं वेदान्ता अपि त्वमेवेत्याह—

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां विधान-

मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।

देवी त्रयी भगवती भवभावनाय

वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥ मं. १० श्लो. ९

शब्देति । पदवाक्यप्रमाणारूपा वाणी शब्दः आत्मा स्वरूपं यस्याः
सा शब्दात्मिका, तथा । ऋच्यन्ते स्तूयन्ते वा अभिरिति ऋचः । ऋच
स्तुती । क्विबन्तः । इज्यते एभिरिति यजूंषि । ऋचश्च यजूंषि च
ऋग्यजुषानि । अचतुरेत्यादिना अजन्तो निपातः । सुष्ठुविगतानि
मलानि येभ्यस्तानि सुविमलानि च ऋग्यजुषानि च तेषां सुविमलर्ग्यजुषां

निधानमाश्रयः । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वाद्बुद्धभावः च पुनः स्यन्ति
 मायामिति सामानि । स्यतेर्मनिन् । तेषां निधानं । कीदृशानां सामानाम् ।
 उद्गीयत इत्युद्गीथः सामध्वनिविशेषः । उद्गीथः प्रणवः सामवेद-
 ध्वनिः इत्यरुणः । सामउद्गीथरस इति श्रुतेः । गातेर्गश्चोदीति थकि
 घुमास्येतीत्वं । उद्गीथेन रम्यैः रमणीयार्थप्रतिपादकैः, मेषवृषण,
 अहल्यायै जार, कौशिकब्राह्मण, मधवन्देवेत्येवमादिभिः कथाप्रस्ताव-
 द्योतकैः पदैश्च । प्रशस्तः पाठोऽध्ययनमेवामिति पाठवतां । प्राशस्त्ये
 मत्वर्थीयः । यदि तु, उद्गीथः प्रणवो मन्त्रः सर्वव्यापी निरञ्जुन इति
 नैगमाभिधानादुद्गीथशब्दः प्रणवमभिधत्ते तदा उद्गीथेन प्रणवेन
 रम्यानि यानि पदानि । पाठवतामित्येतदर्थकं । उद्गीथरम्यपदपाठवता-
 मितिपदं सुविमलग्यं जुषामित्यस्यापि विशेषणं । ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादा-
 दावन्ते च सर्वदा । श्रवत्य नोक्तं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यते । इति मनु-
 षचनात् । बहुवचनं शाखानां बहुत्वात् । भवति, भवते वा सर्वमिति
 भवो रुद्रः संसारश्च । भूस्तयां भूप्राप्तावित्यस्मात्पचाद्यच् । भावनं ध्यानं
 स्थितिश्च । रुद्रध्यानाय संसारस्थितये च । देवयतिसर्वान्प्रवृत्तिनिवृत्त्युप-
 देशेन व्यवहारयतीति देवी । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो
 निदध्यासितव्यश्चेति श्रुतिर्हि परमात्मसाक्षात्कारे प्रवर्तयति । कः शोको
 को मोहो नेह नानास्ति किञ्चनेत्यादिश्च । अविद्यां वा निवर्तयति ।
 संसारस्थितिपक्षे तु । वसन्ते वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत । वायव्यं
 श्वेतमालभेत भूतिकाम इत्यादिश्रुतिर्यागादौ प्रेरयति । न ब्राह्मणं हन्यात् ।
 न सुरां पिबेत् । न कञ्चलं भक्षयेदित्यादिश्च निवर्तयतीति । यद्वा । अग्नौ
 प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते । आदित्याज्जायते । वृष्टिवृष्टेरन्नं ततः
 प्रजा इत्युक्तप्रकारेण दीव्यतीति व्यवहारयतीति भावः । तथा भगवती
 वीर्यातिशयशालिनी । राजादिवत्परां नरपेक्षतयापि लोकप्रवर्तनाद्यथा-
 अहरहः सन्ध्यामुपासीतेति । असी हि फलनिरपेक्षतया राजादिनियोग
 इव सन्ध्यापासने लोकं प्रवर्तयति । तथा वार्ता प्रवृत्तिलोकवृत्तं तदस्त्य-
 स्यामिति वार्ता वृत्तान्तरूपा । वृत्तेश्चेति वार्तिकेन णः । वार्ताप्रवृत्ति-
 वृत्तान्त इत्यमरः । तदेतदस्मादाकाशश्च सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायो-
 रग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी । हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः
 पतिरेक आसीत् । इत्यादिश्रुतिः । राक्षससत्रसर्पसत्रश्रुतिरन्याश्चोपनिष-
 दोहि वृत्तान्तरूपेणैव प्रवर्तन्ते इति भावः । तथा परमा उत्कृष्टा चतुर्वेद-
 प्रतिपादनात् । तथा सर्वजगतामखिलभुवनानां आ अरणं आत्तिः पीडा

तस्याः हन्त्री नाशयित्री जनिकर्तुरिति निर्देशेन तृजकाभ्यामिति षष्ठी-
समासस्यानित्यत्वात्समासः । एवं सर्वविशेषणविशिष्टात्रयोऽवयवा यस्याः
सात्रयी । त्रयो वेदास्तत्त्वमसीति शेषः । त्रिशब्दात्संख्याया अवयवे
तयप् । द्वित्रिभ्यां तयस्येत्ययच् । टिड्ढेतिङीप् । त्रयीति वेदत्रितये
पुरन्ध्र्यां सुमनावीति हैमः । अथर्वणस्तु शान्तिकपोटिकाद्यात्मतयैवैते-
ष्वन्तर्भावात्पृथङ्नाभिधानम् । यद्वा । पृथक्पदानि देव्याविशेषणानि ।
शब्दात्मिका नादरूपा । वर्णपदवाक्यरूपा वा । गद्यपद्यात्मिका त्वमसि
सुविमलग्र्युजुषां उद्गीथरम्यपदपाठवतां साम्नां त्रयी च त्वमसि । देवी
द्योतनशीला त्वमसि । भगवती ऐश्वर्यादिसम्पन्ना त्वमसि । अथवा ।
भगवती त्वं सर्वजगतां भवभावनाय संसृत्युत्पादनाय परं तिरोधान-
माश्रयः वसतिस्त्वमसीति । आर्तिहन्त्री त्वमसीति । वार्ता गोरक्षादि-
वृद्धिस्त्वमसि । कृषिर्वाणिज्यातद्वच्च तृतीयं पशुपालनं । विद्या ह्येता
महाभाग वार्ता वृतिर्यदाश्रयेति विष्णुपुराणे । वार्ता तु वर्तने वातिङ्गमे
कृष्याद्युदन्तयोरित्यभिधानात् । स्त्रियामृक्सामयजुषी इति । लोका-
वेदास्त्रयस्त्रय इति । अर्तिः पीडाधनुष्कोट्योरित्यमरः रुद्रे जन्मनि
कल्याणे प्राप्नो संसृतिसत्तयोः भव इति कोशान्तम् ॥ ६ ॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा

दुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसङ्गा ॥

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा

गौरीत्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ मं. ११ श्लो. १०

मेधासीति । हे देवि विदितः अखिलः शास्त्रसारः समस्तशास्त्र-
स्थिरांशो यया एवं भूता मेधा धारणावती बुद्धिस्त्वमसि । धीधारणा-
वती मेधेति । सारो बले स्थिरांशे चेत्यमरः । प्रवृत्तिर्वानिवृत्तिर्वा नित्येन
कृतकेन वा । पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते । हे देवि, दुःखेन
गम्यतेऽत्रेति दुर्गः दुस्तरः सुदुरोरधिकरण इति गमेर्ङः । तथाविधो भवः
संसारः सागर इव समुद्र इव दुस्तरत्वसाधर्म्यात् । दुर्गभवसागरे नौरिव
नौः पारंगतिसाधनं त्वमसि । तद्वासिनः दुर्गा दुर्गंतमा । तथा असङ्गा
अप्रतिहततरा त्यक्ताखिलप्रतिबन्धहेतुः । यद्वा असङ्गा अद्वितीया । अन्या
नौः कर्णधारवाहकयुक्ता सती तारयति त्वं तु तद्रहितापि तारयसीत्यर्थः ।
यद्वा । हे देवि । दुर्गे दुष्प्रापे भवे शम्भौ परब्रह्मतत्त्वे सागरे सागरवद-
क्षोभ्ये विषये असङ्गा रागादिरहिता दुर्गा दुष्प्रापा नौनौका त्वमसि ।

ब्रह्मप्राप्तिसाधनभूतविद्यारूपेत्यर्थः । तथा कैटभस्य दैत्यस्य अरिः शत्रुः
 विष्णुः तस्य विष्णोर्हृदये वक्षसि एको मुख्यः कृतः अधिवासः स्थितिर्यया
 तथाविधा श्रीलक्ष्मीस्त्वमेवासि । हृदयं चित्तवक्षसोरितिकोशान्तरम् ।
 तथा हे देवि, गौरी पार्वती त्वमेवासि । गुरते उद्युक्ते मनोऽस्मिन्निति
 गौरः । गुरी उद्यमने । ऋज्जेन्द्र इति निपातः । गौरः श्वेतेऽरुणे पीते
 विशुद्धे चन्द्रमस्यपीतिहैमः । गौरोवर्णोऽस्त्यस्या इति । गौरादित्वान् डीप् ।
 गौरी त्वसञ्जातरजः कन्याशङ्करभार्ययोरिति कोशान्तरं । किम्भूता
 गौरी । शश प्लुतगती । अच् । शशतीति शशो मृगभेदः । शशोऽस्मिन्न-
 स्तीति शशी चन्द्रः मौली किरीटे यस्य सः चन्द्रमोलिः शिवः तेन कृता
 प्रतिष्ठा अवस्थितिर्यस्याः सा तथोक्ता । शिखानूढाकेशपाशीत्यमरः ।
 शशिमौली कृता प्रतिष्ठा आस्पदं ययेति वा ॥ १० ॥

देव्याः सौम्यं रूपामह—

ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-

विम्बानुकारिकनकोत्तमकान्तिकान्तम् ॥

अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि

वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥ मं. १२ श्लो. ११

ईषदिति । हसनं हासः । तेन सह वर्तमानं सहासं । न विद्यते
 मलं दूषिकारूषिकादि यत्र तदमलं । रुचिरमित्यर्थः । परिपूर्णं मनूनं
 यच्चन्द्रस्य, वेति शोभते इतिविम्बं मण्डलं वीगतौ उल्बादयश्चेतिवन्तु-
 मागमहस्वत्वानि । विम्बोऽस्त्रीमण्डलं त्रिष्वित्यमरः । तदनुकर्तुं शीलमस्य
 तत् । कनतीति कनकं । हिरण्यं कनीदीप्तौ । कृत्रादिभ्यो वुन् । कनकं
 हेमिन् पुंसि स्यात्किंशुके नागकेशरे इत्यभिधानात् । कनकस्येवोत्तमा
 कान्तिः प्रभा यस्य तत् । उपमानाच्चेति समासः । कनकोत्तममत्यु-
 त्कृष्टकाञ्चनं तस्येव कान्तिरस्येति वा । अतएवकान्तं मनोहरं तथा
 तादृशमपि । उच्यते अनेनेति वक्त्रं मुखं । गृध्रवीपचिवचीतित्रः । तच्च
 कस्येत्याकांक्षायां प्रकरणान्तवेत्यध्याहार्यते । तेन तव वक्त्रं ईषद्विलोक्य
 सहसा अतर्कितं बलेनवा आत्तरुषा गृहीतकोपेन महिषासुरेण यत्प्रहृतं ।
 त्वयीति शेषः । तत् अत्यद्भुतं । अत्याश्चर्यमित्यर्थः । अत्र यत्तच्छब्दावपि
 अर्थसङ्गत्यार्थमध्यादध्नियते । सहसेत्यव्ययं यदाश्रियते तदा अतर्कित-
 मित्यर्थः । यदि सहसेति तृतीयान्तस्तदा सहसा बलेनेत्यर्थः । सहोबलं

सहो मार्ग इत्यनेकार्थाभिधानात् । आप्नरूपेति गौडाः तत्र आप्नकोपेनेति व्याख्या । ईदृक् सुखमं भगवत्या भाग्यवशात्स्वमुखमवलोक्याखिलो-
ऽलोकोमुह्येत । क्रोधादीन्वा दोषान् जह्यात् । महिषेण त्वमर्षादिप्रेरितेन
अखिललावण्यराशौ त्वयि कथं प्रहृतमित्याश्चर्यमिति भावः ॥ ११ ॥

देव्या असौम्यमपि रूपमाह—

दृष्ट्वा तु देवी कुपितं भ्रुकुटोकराल-

मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यत्न सद्यः ॥

प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं

कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥ मं. १३ श्लो. १२

दृष्ट्वेति । वक्त्रमित्यनुवर्तते । तुरेवार्थः । हे देवि कुपितं सक्रोधं
भ्रुकुट्या भालकौटिल्येन । कृणोति हिनस्तीति करालं भीषणं । करालो
दन्तुरे तुरङ्गे इत्यमरः । उद्यन् उदयं कुर्वन् शशो मृगभेदोऽङ्क्यते
अनेनेत्यङ्को लाञ्छनं यस्य सः शशाङ्कश्चन्द्रः । अकि लक्षणे । हलश्चेति
वञ् । कलङ्काङ्कौलाञ्छनं चेत्यमरः । तस्यैव सदृशी तुल्या छद्यति छिन-
त्यसारमिति छविः कान्तिर्यस्य तत् । छो छेदने । छिदिर् द्वेधीकरणे ।
कृविघृष्विच्छवीतिक्विवन्तो निपातः छविस्तु रुचिशोभयोरित्यभिधा-
नात् । उदयसमये हि चन्द्रोऽरुणो भवतीति तद्रुचिसाधर्म्यात्क्रोधारुणं ते
वक्त्रं दृष्ट्वा आलोक्यैव महिषो दानवः सद्यः तत्क्षणैव प्राणान्सून् न
मुमोच नतत्याज इति यत् तत् अतीव निर्भरं चित्रयतीति चित्रमद्भुतं ।
चित्रचित्रकरणे । हलन्तात्पचाद्यच् । त्रिस्मयोऽद्भुतमाश्चर्यचित्रमपीत्य-
मरः । हि हेतौ । कुपितः क्रुद्धः अन्तंकरोति अन्तयति तत्करोतीतिण्य-
न्तात् ण्वुल् अन्तको यमः । तस्य दर्शनेन कैर्जीव्यते प्राणधारणं क्रियते
अर्थात्तु कैश्चिदपीत्यर्थः । जीवप्राणधारणे इत्यस्मादकर्मकत्वाद्भावे लटि
यगात्मनेपदप्रथमपुरुषस्यैकवचनमेव जीवभावस्यैकत्वात् । जीवेरकर्मक-
त्वं च धात्वर्थेनोपसंग्रहात् । प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिकाक्रियेति ।
अत्र तिङ्वाच्यक्रियाया अद्रव्यरूपत्वेन द्वित्वाद्यप्रतीतेर्नद्विवचनादि ।
किन्त्वेकवचनमेव । एकवचनमुत्सर्गतः करिष्यत इति भाष्यसिद्धान्तात् ।
बलवत्सुष्ठुकिमुतस्वत्यतीवचनिर्भर इत्यमरः ॥ १२ ॥

देव्याः कोपेन महिषं नष्टं दृष्ट्वा जगत्प्रलयं शङ्कमाना

गीर्वाणा भगवत्याः प्रसादं प्रार्थयन्ते—

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय

सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ॥

विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-

न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ मं. १४ श्लो. १३ ॥

देवीति । हे देवि विजिगीषाणीले आभानां समूहो आभं । तस्य समूह इत्यण् । आभं द्युतिसमूहोऽस्त्यस्या इत्याभवती कान्तिसमूहवती त्वं परं केवलं भवाय कल्याणाय भवं कल्याणं कर्तुं प्रसीद प्रसादं कुरु । भवो जन्मनि कल्याणे इत्यभिधानात् । क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी । ननुकोपावसरे अलं प्रसादचर्चया अस्मत्कोपेन किमपकृतमित्याशङ्क्याहुः । सद्य इति । कोपवती सकोपा त्वं सद्यः सपदि कुलानि सजातीयगणान् विनाशयसि । एतदधुनैव विशेषेण ज्ञातमस्माभिः । कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि चेति कोशान्तरं । एतदिति किं यद्यस्मात् आ इतं एतं योद्धुमागतं सुष्ठु विपुलं बहुतरं महिषासुरस्य बलं सैन्यं अस्तं नाशं नीतं प्रापितं भवत्यैवेत्यन्वयः । अस्तमिति मान्तमव्ययमनुपलब्धौ वर्तते । अस्तं चेति सूत्रस्वरसात् । अस्यतेर्भावे क्तेतु अस्तशब्दस्य क्षेपार्थत्वलाभेपि नाशरूपाय न लभ्येतेति भावः । यद्वा परमा प्रकृष्टा सानुग्रहा भवती भवाय उद्धवाय । भवेति शेषः । विनाशयतीति दाक्षिणात्यपाठे भवतीत्यस्य कर्तृत्वात्तस्य च युष्मदस्मदन्यत्वात्तद्योगे शेषे प्रथम इति लङेवेति भावः । गौडपाठे तु आभवतीति छित्त्वार्थान्तराश्रयणाद्धवायेत्यत्राध्याहृतं भवति । दैत्यानां सजातीयगणत्वं देवयोनित्वात् । पूर्वदेवत्वाद्देति ॥ १३ ॥

पूर्वश्लोके कोपकार्यमेव बहुधोक्त्वा प्रसादकार्यं तत्फलं
लोके चोदाहरन्ति —

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां

तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।

धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा

येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥ मं. १५ श्लो. १४

ते सम्मता इति । येषां पुंसां भवती सदा सर्वं अभ्युदयमैश्वर्यं ददातीत्यभ्युदयदा सती प्रसन्ना प्रसादयुक्ता । अस्तीति शेषः । तएव पुमांसः । जनः पदं वस्तु येषु ते जनपदाः जननिवासस्थानानि तेषु सम्ममताः लब्धप्रतिष्ठाः सम्मानभाजः पूजिता वा स्युः । तेषामेव

धनानि स्युः । तेषामेव यशांसि स्युः । तेषामेव धर्मवर्गः पुरुषार्थवर्गः न सीदति अवसादं न लभते । धर्मशब्दः पुरुषार्थोपलक्षकः । अत्र बन्धुवर्ग इति दाक्षिणात्यपाठः । चकाराच्चतुः प्रभृतिर्नसीदतीति ज्ञेयं । त एष धन्याः पुण्यवन्तः स्युः । सुकृती पुण्यवान्धन्य इत्यमरः । त एव निभृताः विनीताः आत्मजाः सुताः भृत्याः अनुचराः दाराः कुलस्त्रियो येषां ते निभृतात्मजभृत्यदाराः धनाश्च स्युः । येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्नेति सर्वत्र सम्बध्यते । नीवृज्जनपदो देशविषयावित्यमरः ॥ १४ ॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-

ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।

स्वर्गं प्रयाति च ततो भवती प्रसादा-

ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥ मं. १६ श्लो. १५

धर्म्याणीति । हे देवि भवत्याः तव प्रसादात् । प्रसादं प्राप्येत्यर्थः । ल्यब् लोपे पञ्चमी । सुकृतं पुण्यमस्यास्तीति सुकृती पुण्यवान् । प्रतिदिनं दिनं दिनं प्रति सदैव सर्वकालमेव अत्यादृतः अतितरां सादरः सन् सकलानि, कलाभिरङ्गैः सहितानि स्वस्वशास्त्रोक्तानि, वा धर्म्याणि धर्मेण प्राप्याणि वा, धर्मादनपेतानि कर्माणि श्रौतानि स्मार्तानि ब्रह्म-यज्ञादीनि करोति ततः तेभ्यः कर्मभ्यो हेतुभूतेभ्यः स्वर्गं इन्द्रलोकं प्रयान्ति तथा च तेन हेतुना हे देवि भवती लोकानां भूभुवः स्वरिति प्रसिद्धानां त्रयेऽपि फलदा । असीतिशेषः । भवतीप्रसादादित्यत्र सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव इति पुंवद्भावाभाव आर्षः । लोकद्वयेऽपि फलदेति दाक्षिणात्याः । तत्र इह लोके परलोके चेत्यर्थः । ननु इदमित्यमेवेत्यर्थः । अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राग्ये यजमानाय सुन्वते इति श्रुतेः । प्रश्नावधारणानुज्ञानुनयामन्त्रणे ननु । आदृतस्सादराचित इत्यमरः । धर्म्याणीति धर्मेण प्राप्याणीत्यर्थे नौवयोधर्मत्यादिनायत् । धर्मादनपेतानीत्यर्थे पथ्यर्थन्यायादनपेते इति सूत्रेण यत् ॥ १५ ॥

सर्वेषामपि सर्वास्ववस्थासुपकारकर्त्रीत्वमेवेत्याहुः—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषनन्तोः

स्वस्थैः स्मृता मतिमतीवशुभां ददासि ॥

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या

सर्वोपकारकरणाय सदाद्र्चिता ॥॥ मं. १७ श्लो. १६

दुर्गति । दुर्गं सङ्कटे स्मृता स्मृतिमात्रेण त्वं अशेषस्याखिलजन्तोः प्राणिनः भीतिं भयं हरसि अपनयसि । दुर्गं कोटे दुर्गमे स्यादिति हैमः । दुर्गाशब्दाद्यौ यथा मुण्डमालातन्त्रे यामले च । दुर्गो दैत्ये महाविघ्ने भवबन्धे कुकर्मणि । शोके दुःखे च नरके यमदण्डे च जन्मनि । महाभये च रोगे चाप्याशब्दो हन्तृवाचकः । एतान्हन्त्येव या देवो सा दुर्गा परिकीर्तिता । अन्यच्च यामले । दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशस्य वाचको वेदसम्मतः । रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः । भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः । स्मृत्युक्तिश्रवणाद्यस्या एते नश्यन्ति सत्वरम् । ततो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तितेति । दुर्गास्मरणं तत्रैव । दुर्गा जगदिदं सर्वं दुर्गा सर्वस्यकारणम् । अहं च दुर्गैवेवं यत्तद्दुर्गास्मरणं स्मृतमिति । प्राणी तु चेतनो जन्मी जन्तु-जन्तुशरीरिण इत्यमरः । स्वस्थैरनाकुलैः । अतीव निर्भरं शुभां निष्कलुषां मतिं बुद्धिं ददासि स्मृता सतीत्वमित्यर्थः । दरिद्रादकिञ्चनो भवतीति दरिद्रो निःस्वः । दरिद्रा दुर्गती । पचाद्यच् । दरिद्रस्य भावः कर्म वा दारिद्र्यम् । भावे ण्यञ् । निर्द्वन्नाद्दारिद्र्यादुःखं प्रतिकूलवेदनीयं दारिद्र्यदुःखं दारिद्र्यदुःखाद्भयं अनागतप्रतिकूलप्रतिसंधानजं दारिद्र्यदुःखभयं हर्तुं शीलमस्याः तत्सम्बोधने हे दारिद्र्यदुःखभयहारिणि । यद्वा । दारिद्र्यं निर्द्वनता । दुःखं प्रतिकूलवेदनीयं । भयं रिपुवर्गात् । तानि हरति तच्छीला । सर्वेषु शत्रुभिर्नोदासीनेषूपकारः । तन्निष्ठानुकूलो व्यापारः तस्यकरणाय विधानाय तदर्थमिति यावत् । सदा सर्वकालं आर्द्रचित्तास्निग्धचित्ता त्वत्तः अन्या का स्यान्नकापीत्यर्थः । शत्रोरुपकारो यथा । महिषाय वरदानं कालिकापुराणे प्रसिद्धं । मित्रस्योपकारो यथा । मित्रभूताया बाणसुताया उषाया भर्त्रभिलाषपूरणं भारतादिषु प्रसिद्धं । उदासीनस्योपकारो यथा । गृध्रजम्बुकसम्वादे मृतबालकोत्थापनं शान्तिपर्वण्यापद्धर्मं प्रसिद्धम् । अर्ह्यतोऽर्थाद्र्द्रं । अर्देर्दीर्घश्चेतिरक् । आर्द्रं सार्द्रं क्लिन्नं तिमितं स्तिमितं समुन्नमुत्तं चेत्यभिधानात् । आर्द्रशब्दः क्लिन्नवचनोऽपि चित्तस्यारूपत्वेन क्लेदासम्भवादितरजन्य-क्लेदस्य तत्रासम्भवेन स्निग्धत्वं च लक्षयति स्निग्धेऽप्यार्द्रशब्दप्रयोगात् । दयार्द्रचित्तेति दाक्षिणात्यपाठः ॥ १६ ॥

नन्वेवमपि सर्वोपकारपरत्वाद्भगवत्या महिषादिदैत्यवधो

विरुद्धइत्याशङ्कायामुत्तरमाह—

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते

कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ॥

संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु

मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि ॥ मं. १८ श्लो. १७

एभिरिति । एभिस्त्रियंगुल्या निर्देशः । महिषादिभिरसुरैर्हतैः सद्भिः । प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमिति तृतीया । जगत् भुवनं । कर्तुं । मुखं उपैति । उपैष्यति । वर्तमानसामीप्ये भविष्यति लट् । तथा एते असुराः नरति नृणाति वा नरकं तामिस्रादि । नूनये, कृत्रादिभ्यः संज्ञायां वुन् । तस्मै तादर्थ्यं चतुर्थी । पान्त्यस्मादात्मानमिति पापं । पारक्षणे । पानीविषिभ्य इतिपः । भीमादित्वादापादाने । यद्वा पिबति भक्षयति कर्तरिमिति पापं प्रतिकूलं किल्बिषं । चिराय बहुकालं । कुर्वन्तु नाम । नामेत्ययमुपगमे । यद्यपि नरकप्रापकं पापं कुर्वन्तु । कुर्वन्तु नामेति भावः । नामप्राकाश्यसम्भाव्यक्रोधोपगमकुत्सने इत्यमरः । तथापि । संग्रामे मृत्युं अधिगम्य प्राप्य दिवं स्वर्गं प्रयान्तु इतिमत्वा निश्चित्य नास्ति हितमेभ्य इति अहितान् शत्रून्विनिहंसि अवधीः । इहापि वर्तमानसामीप्ये भूते लट् । नूनमित्युत्प्रेक्षायाम् । द्विविपक्षा- हितामित्रदस्युशात्रवशत्रव इत्यमरः । अतस्त्वंसर्वोपकारकरणात् सदाद्रं- चित्तेतियदुक्तं तत्तथैवेति भावः ॥ १७ ॥

दृष्ट्वैव किञ्च भवती प्रकरोति भस्म

सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ॥

लोकान्प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता

इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥ मं. १९ श्लो. १८

दृष्ट्वेवेति । भवती त्वं दृष्ट्वा विलोक्य सर्वेषामसवः प्राणाः तान् रान्ति गृह्णन्तीति सर्वासुरास्तान् । सर्वानसुरान्वा । भस्म भस्मीभूतान्किञ्च प्रकरोति न शक्नोति । धातोरनेकार्थत्वादुपसर्गवशाद्वा । प्रकृतार्थ- सिद्धिरिति चतुर्भुजः । अन्ये तु किं भस्मप्रकरोति अपि तु सामर्थ्यात्करो- त्येव । तथापि अरिषु शत्रुषु शस्त्रं प्रहिणोषि प्रयुञ्क्षे इति यावत् । अत्र

तवाभिप्रायोऽन्यएवेतिभावः । तत्किमित्यभिप्रायमेवेत्याह—हि निश्चयेन रिपवोऽपि शस्त्रैः पूता शातिताः कृतप्रायश्चित्ता इव शमितपापफलाः क्षीणपापाः सन्तः लोकान्वाञ्छितान्स्वर्गादीन् प्रकर्षेण यान्तु प्राप्नुवन्तु । इत्थं तेष्वपि शत्रुष्वपि ते अतिसाध्वी अत्यतिशयेन साध्वी परकार्य-साधिका ते मतिरनुग्रहबुद्धिर्भवति । अनेनाभिप्रायेण न भस्मी कुरुषे इत्यर्थः । वस्तुतस्त्वन्नायमभिप्रायः । यथा सगरपुत्रा भगवतः कपिलस्य सक्रोधदृशा दग्धाः नरकवासं प्राप्ताः । एवं दृशा भस्मीभूतानां नर-कार्हता स्यात् । शस्त्रहतानां तु तेषां स्वर्गप्राप्तिः सर्वतो निर्बाधेत्यभि-प्रायेण किं भस्म न करोषीति स्वोत्प्रेक्षितमर्थं देवीं पृच्छतीत्यर्थः । प्रहिणोषीति । हिगती । स्वादिभ्यः षनुः । हिनुमीनेति णत्वं । लोभयन्त इतिलोकाः । अस्माद्वज्र । लोकस्तु भुवने जने इति विश्वः पूता इति । पवन्ते इति पूताः पूङ्गपवने । गत्यर्थः इतिक्तः । पूतं त्रिषु पवित्रे चेति कोशः । साध्वीत्यत्र वोतो गुणवचनादितिङीप् ॥ १८ ॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः

शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ॥

यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-

योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ मं. २० श्लो. १९

खड्गेति । उग्रैः भयानकैः खड्गस्य प्रभानिकरः किरणसमूहः तस्य विस्फुरणैः सर्वतः प्रसरणैः, तथा शूलाग्रं शूलमुख्यं । अग्रशब्दस्य श्रेष्ठ-वाचित्वात् । शूलाग्रं अग्रभागो वा त्रितयात्मा तस्य कान्तिनिवहः द्युति-समहस्तेन असुराणां दृशः दृश्यः विलयं नाशं न आगताः न अगमन् यत् अंशुमान् किरणयुक्तः इन्दुखण्डः चन्द्रश्चकलः तद्योगि तद्युक्तं तद्योग्यं वा तद्धारणोचित्यविशिष्टं तव आननं विलोकयतां पश्यतां तत् । इति हेतु-गर्भं विशेषणं । खड्गशूलादिचाकचक्यदर्शनादसुराबन्धा एव भवेयुः । यदि अमृतकिरणसम्पर्कं भगवत्या मुखं न पश्येयुरिति भावः । संदोह-निवहव्रजा इत्यमरः ॥ १९ ॥

दुर्वृत्तशमनं तव देवि शीलं

रूपं तथैतद्विचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ॥

वीर्यं च हन्तुं हतदेवपराक्रमाणां

वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्यम् ॥ मं. २१ श्लो. २०

दुर्वृत्तेति । तदेति सर्वत्र सम्बध्यते । हे देवि दुर्दृष्टं वृत्तं चरितं येषां ते दुर्वृत्ताः दुष्टकर्माणि । तेषां वृत्तं चरितं पापलक्षणं तस्य क्षमनमपनेतुं तवशीलं सद्वृत्तं स्वभावोवा । कर्तुं । वर्तते इतिशेषः । एतद्विचिन्त्यं मनसोऽप्यगोचरं अन्यैश्चेन्द्रादिभिरतुल्यमसमं तवरूपं सौन्दर्यं । कर्तुं । वर्तते । अपुनः हृतः संहृतः देवानामिन्द्रादीनां पराक्रमोयैस्ते हृतदेव-पराक्रमाः दैत्यास्तेषां हन्तुं घातकं तववीर्यं बलं प्रभावो वा । कर्तुं । वर्तते । इत्थमनेन पूर्वोक्तेन प्रकारेण वैशिष्ट्यं दद्याहननलक्षणा तथा त्वया प्रकटितैव प्रकाशितैव । पापमाचरन्तोऽपि दैत्यास्त्वन्मुखमवलोक-यन्तोऽनुपमेन त्वत्पराक्रमेण हताः । शस्त्रपूता दिवमगमन् । शत्रूणां दुर्गतिर्दातुं न्यायात्वयातुतेऽपि कृतार्थीकृताः । इत्येवं दमेति बोध्यम् । वृत्तं पद्ये चरित्रे च । शीलं स्वभावे सद्वृत्ते इत्यमरः । अतुल्यमन्यैरिति शीलरूपवीर्याणां त्रयाणां विशेषणमिति वा ॥ २० ॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य

रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ॥

चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा

त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥ मं. २२ श्लो. २१

केनेति । ते तव अस्य महिषवधरूपस्य पराक्रमस्य उपमतिरुपमा तु लोके केन विद्यमानेन वस्तुना सह भवतु । उपमानाभावान्न केनापीत्यर्थः । उपमाशब्दयोगे, तुल्यार्थस्तुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्या-मित्यनेन तृतीयाया अप्राप्तौ तयानुक्तपराक्रमस्येति शेषे षष्ठी । ननु उपमा शब्दयोगे केनेत्यत्र कथं तृतीया अतुलोपमाभ्यामिति निषेधे इति चेदुच्यते—नात्रोपमाशब्दयोगे केनेति तृतीया । अपि तु सहयुक्ते अप्रधान इति तृतीया । न चात्र सहयोगो नेति शङ्क्यं वृद्धोयूनाति निर्द्देशेन विनापि तद्योगं तृतीयेत्यभ्युपगमात् । केनेति तृतीया आर्ष इति नागेशः । उपमेत्यत्र आतश्चोपसर्ग इत्यङ् वरददातीति वरदा । एवं शीले हे देवि, शत्रूणांभयं कर्तुं शीलमस्य ततोऽन्येषां अत अत्यन्तं हारि मनोहरं । कुत्रान्यत्र नकुत्रापीत्यर्थः । हे वरदे देवि, चित्ते मनसि दया, समरे संग्रामे निष्ठुरता, निष्ठुरायाः कठोरायाः भावः समरनिष्ठुरता क्रोधविषयणी क्रूरता भुवनत्रयेऽपि लोकत्रयेऽपि त्वय्येव दृष्टा ज्ञाता । नान्यत्र । दृशित्रं ज्ञानार्थः । धर्मस्य दर्शनायोगात् । ते इति षष्ठ्यन्तं

रूपं चित्तकृपयोरन्वेति । कर्कशं कठिनं क्रूरं कठोरं निष्ठुरं दृढमित्यमरः । भवत्वितिलोद् । दृष्टा इति निष्ठा । न तु क्तान्तोदशेः प्रयोगः । समर-
निष्ठुरतेत्यत्र त्वतलोर्गुणवचनस्येति पुंवद्भावः । समरनिष्ठुरतेति
प्रथमान्तं न तु द्वितीयान्तमिति वेदितव्यम् ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन

त्रातं त्वया समरमूर्द्धनि तेऽपि हत्वा ॥

नीता दिवं रिपुगणा भयप्यपास्त-

मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥ मं. २३ श्लो. २२

त्रैलोक्यमिति । एतद्बुद्धिस्थं । अंगुल्या वा निर्दिष्टं । त्रैलोक्यं
भुवनत्रयं भूभुवःस्वरूपं रिपोर्महिषस्य नाशनेन हननेन त्वया न विद्यते
खिलं प्रहृतं यस्मिन् एवं यथा भवति तथा त्रातं पालितं अखिलं त्रैलोक्य-
मिति शङ्कया क्रियाविशेषणं प्राक्तनैरङ्गीकृतं । त्रेड् पालने । क्तः ।
नुदविदोन्दत्रैत्यस्य पाक्षिकत्वात्तत्वाभावः । तथा समरस्य संग्रामस्य
मूर्द्धेव मूर्द्धा प्रधानस्थानमग्रभूमिः । तत्र हत्वा तेऽपि रिपुगणाः शत्रु-
समूहाः दिवं स्वर्गं नीताः प्रापिताः । त्वयेति शेषः । नीता इति नयतेः
कर्मणि क्तः । तत्र प्रधानकर्म्मणः प्रत्ययेनाभिहितत्वात् रिपुगणा इत्यदः
प्रथमान्तम् । शत्रूणां स्वर्गप्राप्ते हननमेव हेतुः । यदुक्तं । द्वावेव पुरुषौ
लेको सूर्यमण्डलभेदिनौ । परिव्राडयोगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत इति ।
अन्यथा पापात्मनां स्वर्गो दुष्प्राप इति भावः । तथा उन्मदभ्यः उद्रिक्ता-
हङ्कारेभ्यः सुरारिभ्यः देवशत्रुभ्यो भवमुत्पन्नमस्माकं भयं अस्मत्सम्बन्धि-
साध्वसं च त्वया अपास्तमपनीतं दूरीकृतं । ते तुभ्यं नमः । लोके न ता
नतिमहन्ति अतस्त्वां नमाम इति भावः । नमः स्वस्तीति सूत्रेण नमोयोगे
ते इति चतुर्थी ॥ २२ ॥

शूलेन पाहिनो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ॥

घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥ मं. २४ श्लो. २३

शूलेनेति । हे देवि अम्बिके मातः शूलेन शूलाख्येनायुधेन नः
अस्मान्पाहि रक्ष । पा रक्षणे । लोष्मध्यमपुरुषैकवचनम् । केभ्यः भयजन-
केभ्य इति शेषः । एवमग्रेऽपि । च पुनः खड्गेन नः पाहि । च पुनः
घण्टायाः स्वनेन शब्देन नः पाहि । च पुनः चापारोपितज्यामीर्वी
चापज्या तस्याः निःस्वनेन नः पाहीति ॥ २३ ॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ॥

भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥ मं. २५ श्लो. २४

प्राच्यामिति । हे ईश्वरि ईश्वरपत्ति व्यापिके । चण्डिके कोपनशीले देवि । आत्मनोनिजस्य शूलस्य भ्रमणस्येदं भ्रामणं परितश्चक्राकारेण परिवर्त्तनं । तेन प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि रक्ष । अस्मानितिशेषः । एवं प्रतीच्यां पश्चिमायां च आत्मशूलस्य भ्रामणेन रक्ष पाहि । दक्षिणे दक्षिणदिग्भागे आत्मशूलस्य भ्रामणेन रक्ष । तथा उत्तरस्यां दिशि आत्मशूलस्य भ्रमणेन रक्षेत्यन्वयः । अत्र नागेशस्तु भ्रामणेनेत्यत्र ह्रस्वाभावः संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वादित्याह । शान्तनुस्त्वत्र भ्रमणस्येदं भ्रामणं प्रदक्षिणीकरणं परितो मण्डलीकरणं । अनवस्थानमात्रं चलनमात्रं वा शूलसमवेताक्रिया स्यात् । भ्रमु अनवस्थाने । भ्रमु चलने इति धातुद्वयपाठात् । अतश्च प्रदक्षिणाकृतिभ्रमणं विवक्षितमिति सूचयितुं प्राच्यादिग्रहणं चकाराद्विदिग्रहणमित्याह । चतुर्भुजस्तु भ्रमेर्ण्यन्ताल्लुटि वृद्धौ मितां ह्रस्वो न भवति संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात् । एतेन स तैराकामयामास । अस्मत्संक्रमितैः पदैरिति । हरेर्यदकामि पदैककेन खमित्याह । एवमेव रामाश्रमः । वस्तुतस्तु भ्रमेर्ण्यन्ताल्लुटिवृद्धौ मिति मितांह्रस्वो न भवति । मितांह्रस्व इति सूत्रे वा चित्ताविरागे इत्यतो वेत्यनुवर्त्य व्यवस्थितभाषाश्रयणेन क्वचिन्नक्ष्यानुरोधेनमितां ह्रस्वो न प्रवतत इति वृत्तिकृता समाहितत्वात् । प्रज्वालयतीति प्रयोगस्तु घञन्तात्तत्करोतीति णावपिसिद्धः । संक्रामयतीति प्रयोगस्तु क्रमेर्घञन्तात् णौ न सिद्धयति । क्रमेर्नोदात्तोपदेशस्येति वृद्धिप्रतिषेधात्क्रम इत्यस्यैव न्यायत्वेन क्राम इत्यस्यासिद्धेः । अतः सर्वत्र वृत्तिकृन्मत्तमेव शरणीकर्त्तव्यम् । शूलस्य उत्तरस्यामित्यत्र गुणस्तु न भवति वाक्ये संहिताया वक्त्रधीनत्वात् । तदुक्तं सा विवक्षामपेक्षत इति ॥ २४ ॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ॥

यानिचात्यन्तघोराणि तैरक्षास्मास्तथाभुवम् ॥ मं. २६ श्लो. २५

सौम्यानीति । त्रैलोक्ये त्रिषु लोकेषु सौम्यानि सुन्दराणि प्रसन्नानि यानि ते रूपाणि । यानि च अत्यन्तमधिक घोराणि भयङ्कराणि तेष्वलक्षिता त्वं । तैः करणैर्वा । अस्मान्सुरात्रक्ष । तथा द्विविधैः रूपैः भुवं पृथ्वीं रक्ष । गोविन्दराजस्त्वत्र पातालादेर्भुविवरत्वाद्भुवग्रहणादेव

ग्रहणात् पुनरुक्तिरित्याह । असुरसर्पादीनां तमः प्रधानानाम् । निवास-
स्थानत्वात्पातालस्य तत्स्थानं बाध्यत्वेनाभिप्रेतत्वाद्वानुक्तिरिति वेदि-
तव्यं सौम्यानि रूपाणि गौरी लक्ष्मी सरस्वतीत्यादीनि । घोराणि काली-
तारास्त्रिमस्ता चामुण्डेत्यादीनि । चतुर्भुजस्तु सौम्यानि सृष्टिव्या-
पाराणि घोराणि संहारकारीणीत्याह । अत्यन्तेत्यत्रात्यर्थेति दाक्षिणात्य-
पाठः ॥ २५ ॥

खड्गशूलगदादीनि यानिचास्त्राणि तेऽम्बिके ॥

करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान्नक्षसर्वतः ॥ मं. २७ श्लो. २६

खड्गेति । खड्गश्च शूलं च गदा च तेषां समाहारः खड्गशूलगदं ।
द्वन्द्वश्च प्राणीतिसूत्रेण समाहारः । तत् आदिर्येषां तानि धनुरादीनि यानि
ते अस्त्राणि आयुधानि । कराः पल्लवा इव रागसाधर्म्यात् । करपल्लवाः ।
पल्लवसदृशाः कराः । यद्वा । कराणां पल्लवा इव पल्लवाः करपल्लवाः कर-
शाखाः । अंगुल्य इत्यर्थः । तैः सङ्गस्तद्वन्ति । यानि ते तव अस्त्राणि
आयुधानि वर्तन्त इति शेषः । तैरस्त्रैः सर्वतः समन्ततः अस्मान्नक्ष
पाहि । हस्तिशुण्डांशुबाह्याग्रबलिषूक्तः करः पुमानिति कोशान्तरम् ।
समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपीत्यमरः ॥ २६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० २८ ॥

स्तुतिमुपसंहरन्प्रकृतमनुसरन्नृषिः सुमेधाः

सुरथं राजानं वैश्यं चोवाच—

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ॥

अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥ मं. २९ श्लो. २७

भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ॥

प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥ मं. ३० श्लो. २८

एवमिति द्वाभ्याम् । एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जगतां भुवनानां
धात्री पोषयित्री सुरैरिन्द्रादिभिः स्तुता वाचा पूजिता नन्दनोद्भवैः
इन्द्रोद्यानजैः कुसुमैः पुष्पैरर्चिता आराधिता तथा गन्धैः कुंकुमादिभिः
अनुलेपनानि अङ्गरागाः यक्षकर्मदायः तैः अर्चिता कर्पूरागरुकस्तूरी
कर्चूरं चन्दनं तथा । महासुगन्धमित्युक्तं नाम्नास्याद्यक्षकर्मम् ।
तेनाङ्गरागाणां दिव्यं महासौगन्ध्यमभिव्यनक्ति । दिव्यैरिति न कुसुम-

विशेषणं । नन्दनैरिति विशेषणेनैव कुसुमानां दिव्यत्वावगमात् । दिव्यै-
रित्यस्य गन्धानुलेपनविशेषणतायां तु भौमगन्धानुलेपनव्युदासः स्पष्ट-
एवेति । तथा भक्त्या श्रद्धातिशयेन दिव्यैः दिविभवैः धूपैः धूपत्वेन
प्रसिद्धैः अग्निसंयोगवेद्याधिकमुगन्धिगुणैरष्टाङ्गः धूपादिसमाख्यैः धूपः
सञ्जाता यस्याः सा धूपिता समस्तैरखिलैस्त्रिदशैर्देवैः सम्पादितधूपा-
मोदा । प्रसादाय प्रसादेन वा सुमुखी सौम्यवक्त्रा सती समस्तान्प्रणता-
न्प्रणामपरायणान्मुरान्प्राह । वक्ष्यमाणं वाक्यमवोचत् । उपसर्गप्रतिरूपकः
प्रशब्दोऽव्ययम् । आहेति निपातः तिङन्तप्रतिरूपकः कालसामान्य-
वाचकः । यद्यपि ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुव इति सूत्रेणाप्याहेति
सिद्धयति तथापि लङन्तं तद्ब्रुवरूपमिति वर्तमाने समञ्जसमेव ।
इहतुभूते तद्रूपं न सिद्धयतीति निपात आश्रित इति वेदितव्यम् । सुष्ठु
द्योभनं मुखं यस्याः सा सुमुखी । स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधादिति
ङीप् । नखमुखादिति ङीष्निषेधस्तु न, असंज्ञात्वात् । धूपैः सुपूजितेति
दाक्षिणात्यपाठः ॥ २७-२८ ॥

देव्युवाच ॥ मं० ३१ ॥

देवी त्रिदशान्वक्ष्यमाणं त्रियतामित्यादि वरदानपरं
वाक्यमुवाचेति—

त्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ॥ मं० ३२

त्रियतामिति । हे त्रिदशाः सर्वे देवाः युष्माभिः यदभिवाञ्छि-
तमभिलषितं वस्तु वर्तते तत्सर्वं वस्तु अस्मत्तः सकाशाद्त्रियतां
प्राथ्यताम् । अस्मत्त इति अस्मदिति पञ्चमी बहुवचनान्तस्या स्मदः
पञ्चम्यास्तसिलादेशे अस्मत्त इति रूपं समञ्जसम् ॥

देवाञ्जुः ॥ मं० ३३ ॥

इति पूर्वोक्तं देवीवाक्यमाकर्ण्य देवाः इन्द्रादयः स्वाभिमत-
प्रकाशनाय देवीमुत्तरवाक्यमूचुरिति ।

भगवत्या कृतं सर्वं न किञ्चिदवशिष्यते ॥ मं० ३४ श्लो० २९

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ॥

भगवत्या इति । ऐश्वर्यादिषडर्थवत्या त्वया यद्यस्मादयं सन्निकृष्टः
महिषासुरः निहतः विगतप्राणः कृतः । ततः भगवत्या सर्वमस्माकं

प्रयोजनं कृतमेव । अतः किञ्चित्किमपि प्रयोजनं नावशिष्यते । नावशिष्ट-
मस्तीत्यर्थः । न कोऽपिशत्रुः सम्प्रत्यवशिष्ट इति ॥ २६ ॥

सम्प्रति शत्रोरभावाद्भाविशत्रुपराजयं प्रार्थयन्ते—

यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥ मं. ३५ श्लो. ३०

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथा परमापदः ॥

यदीति । च एवार्थः हे महेश्वरि रुद्रपतिन यदि त्वया वर इष्टं देय
एव । अस्मभ्यमिति शेषः । तदा सम्यक् स्मृता चिन्तिता असंस्मृता न
चिन्तिता वा अस्माकमापदः विपदः परं केवलं हिंसेथाः । हिंसायाः
हिंसेः हन्या इत्यर्थः । अत्र हिंसि हिंसायामिति चौरादिः कण्ठवादेर-
वृत्तरणात्पक्षे चापि प्रार्थनायां लिङ्गि परस्मैपदित्वात्परस्मैपदे प्राप्ते
व्यत्ययोबहुलमित्यात्मनेपदं व्यत्यये मध्यमपुरुषकवचने थासः सीयुटि
रूपं हिंसेथा इति । हिंसीथाइति दाक्षिणात्यपाठे रौधादिकाद्धिनस्तेः
परस्मैपदिनोऽपि व्यत्ययेनात्मनेपदे लिङ्गोमध्यमपुरुषकवचने बोध्यम् ।
नो इति प्रतिषेधार्थमव्ययम् । अमानोना प्रतिषेधे इत्यभिधानात् ।
परमाः आपद इति शतनुः । हिंसेथा आर्षे इति नागेष्टाः । हिंसेथाः
भौवादिकं न रौधादिकं तस्य परस्मैपदित्वादिति दंशोद्धारः । रामा-
श्रमस्तु हिंसेथा इति हिंसिधातुस्तुदादिगणोऽपि पठ्यते ततः आत्मनेपदं ।
अथवा रुधादिगणस्यस्य परस्मैपदित्वात् हिंस्या इति स्यात् । कथंचिदा-
त्मनेपदानयने हिंसीथा इति स्यात् । अतः हिंसेः णिच् तत् आत्मनेपदं
विधौ लिङ् पृषोदरादित्वात् णिचोलोपे हिंसेथाः इत्याहु ॥ ३० ॥

अन्यदपि प्रार्थनीयं प्रार्थयन्ते—

यश्चमर्त्यस्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥ मं. ३६ श्लो. ३१

तस्य वित्तद्विविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ॥

वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्नात्वं भवेथाः सर्वदाऽम्बिके ॥ मं. ३७ श्लो. ३२

यश्चेति । सार्द्धेन अम्बिके मातः एभिस्समत्कृतैस्त्वद्विषयैः स्तवैः
स्तुतिवाक्यैः त्वां भगवतीं यो मर्त्यः मनुष्यः स्तोष्यति आराधयिष्यति
अस्मत्प्रसन्ना अस्माकं प्रसन्ना सती अस्मद्देयवरानुकूला सतीत्यर्थः । हे
अमलानने प्रसन्नवदने तस्य मर्त्यस्य वेदनं वित्तज्ञानमिति यावत् । भावे
क्तोविधानात् । तस्य ज्ञानस्य ऋद्धिः समृद्धिरुपचय इत्यर्थः । वित्तद्विधा-
विभवैरैश्वर्यं सह धनानि गो महिष्यादीनि । बोधनं तत्स्करैर्नीत-

मित्यादौ गवादेरेव धनत्वेन प्रसिद्धत्वाद्वाराः स्त्रियः आदिशब्दात्सेव-
कक्षेत्रधान्य पुत्रमित्यादयस्तेषां सम्पदां सम्पत्तीनां वृद्धये उपचयार्थं
सर्वदा सर्वकाले भवेथाः । भवेः प्रार्थनायां लिङ्गे व्यत्ययादात्मनेपदम् ।
भू प्राप्तावित्यात्मनेपदिनो वा रूपम् । प्राप्नुया इत्यर्थः । एतच्छक्रादिस्तु-
तिपाठवतां ज्ञानधान्यादिसम्पद्वृद्धिं दातुं प्राप्नुयाइत्यर्थः । क्रियार्योपपद-
स्येति वृद्धये इति चतुर्थी । अत्रकेऽपि वित्तधनयोः पर्यायत्वमोपचारिको
भेदोविवक्षित इति वित्तं हेमरजतादिधनं गवादीत्याहुः ॥ ३२ ॥

ऋषिः सुमेधा मुनिः सम्वादमुपसंहरन्नाह—

ऋषिरुवाच ॥ मं० ३८ ॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मनः ॥

तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥ मं. ३९ श्लो. ३३

इतीति । हेनृप सुरथ इति उक्तरीत्या जगतोर्थे लोकरक्षण-
प्रयोजनाय तैः रक्षास्मास्तथा भुवमित्यादिनां । तथा स्वात्मनः स्वस्यार्थे
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापद इत्यादिना । देवैः प्रसादिता
प्रसन्नोक्ता भद्रकाली देवी तथेत्युक्त्वा भवद्वान्छितं वस्तु सिद्धय-
त्त्वित्युक्त्वा अन्तर्हिता बभूव । अन्तर्द्धानं जगाम । अदृश्या बभूवेत्यर्थः
भद्रकालीति कालः शिवः ततः पुंयोगे ङीप् । कालशब्दाद्वर्णप्राधान्ये
जानपदे वा ङीप् । भद्रं कल्याणमस्त्यस्यां सा भद्रा गुणवाचिनो
भद्रशब्दाद्गुणवचनेभ्यो मतुपोलुगिष्ठ इति मतुपो लुक् । भद्रंति देव्या
नामान्तरं । दुर्गा भगवती भद्रेति तथावगमात् । भद्रा चासौ काली च
भद्रकाली पुंवत्कर्मधारय इति पुंवद्भावः । भद्रं कालयतीति वा भद्रकाली
कर्मण्यणन्तान्ङीप् । दधातेः क्तप्रत्यये दधातोर्हि रादेशे
हितेति रूपम् ॥ ३३ ॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ॥

देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥ मं. ४० श्लो. ३४

इतीति भो भूप, पृथ्वोपते, सुरथ । जगतां लोकानां त्रयस्य
हितमिष्टं एषितुं शीलमस्याः सा जगत्त्रयहितैषिणी देवी देवानां शरीरे-
भ्यो यथा पुरा पूर्वं सम्भूता प्रादुरभूत् इत्येतत्सर्वं ते तुभ्यं राज्ञे कथितं ।
मयेतिशेषः ॥ ३४ ॥

प्राङ्निष्पितं चैतत् 'अतुलं तत्र तत्तेज' इत्यादिना

इतिहासान्तरं सूचयति—

पुनश्च गौरीदेहा सा समुद्भूता यथाभवत् ॥

वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥ मं. ४१ श्लो. ३५

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ॥

तच्छृणुष्व मयाख्यातं यथावत्कथयामि ते ॥ मं. ४२ श्लो. ३६

पुनरिति द्वाभ्याम् । चोऽप्यर्थः । पुनश्च पुनरपि देहः शरीरं
आसनमासः स्थितिर्यस्याः सा देहा सा । गृहीतशरीरेति यावत् । गौरी
गौरवर्णा । कौशिकी यथा अभवत् । गौरी कर्त्री । पुनर्गृहीतदेहा सती
यथा समुद्भूता अभवदित्यर्थः । यद्वा गौर्याः देहः शरीरकोशएव देहो
देहकारणं यस्याः शाकपाथिवादित्वान्मध्यमपदलोपी समासः । गौरी-
देहात्सेति दाक्षिणात्यपाठः । गौर्याः देहात्समुद्भूता आविर्भूता यथा येन
प्रकारेण अभवत् आविर्भावे हेतुसामान्यं विशेषणं । देवानामुपकारि-
णीति । देवानामिन्द्रादीनामुपकर्तुं शीलमस्याः सा प्रसिद्धा देवी ।
दुष्टानां मलिनचेतसां दितेः कश्यपपत्न्यां अपत्यानां धूम्रलोचनचण्ड-
मुण्डरक्तबीजादीनां वधाय तथा शुम्भति शोभते रणेष्विति शुम्भः ।
शुम्भशोभार्थे इति तौदादिकात्पचाद्यच् । यद्वा । शुम्भ शुभभाषणे
हिंसायां चेति भौवादिकस्येति पचाद्यजन्तं रूपम् । एवं नितरां शुम्भो
निशुम्भः । सर्वथा तालव्यशकारवन्तावेव शुम्भनिशुम्भशब्दौ । अत्र
शन्तनुमते दन्त्यादि शुम्भ भाषणे इति । अस्य भ्वाद्वा तुदादौ वा
तादृशस्यानुपलम्भादाग्रहमात्रमेवेति ज्ञेयम् । परन्तु दाक्षिणात्यपाठे
दन्त्यादिरेव । तस्याः पुत्रद्वयं जज्ञे सहस्राक्षाद्वलाधिकम् । ज्येष्ठः शुम्भ
इति ख्यातो निशुम्भश्च महासुरः ॥ तृतीयो नमुचिर्नाम महाबलपराक्रम
इति वामनपुराणे । पूर्वं शुम्भो निशुम्भश्च दानवौ भ्रातरावुभाविति
कालीपुराणे च तालव्यशकारवतोरेव शुम्भनिशुम्भशब्दयोः पाठात् ।
तथा च शुम्भनिशुम्भयोर्वधाय वधार्थमित्यर्थः तत्सर्वं मया आख्यातं
कथितं त्वं शृणुष्व शृणु । शृणोतेर्लोऽन्मध्यमपुरुषैकवचनस्य व्यत्ययादा-
त्मनेपदम् । उपकारिणीति उपकारस्वभावा । एनामधिकृत्य शक्रं प्रति
लक्ष्मीवाक्यं लक्ष्मीतन्त्रे । अभिष्टुता सुरैः साहं महिषं जघ्नुषी क्षणात् ।
महिषान्तकरी सूक्तं दृष्टं देवैर्महर्षिभिः ॥ उत्पत्तिं युद्धविक्रान्तिं स्तोत्रं

चेति सुरेश्वर । कथयन्ति सुविस्तीर्णं ब्राह्मणा देवपारगाः ॥ लभन्ते च
फलं तद्वदाधिपत्यमनश्चरमिति । महिषान्तकरी सुक्तं देवैर्महर्षिभिर्दृष्ट-
मिति ॥ ३६ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे
शक्रादिस्तुत्यर्थसंग्रहो नाम चतुर्थो विश्रामः ।
आदितो नवमो विश्रामः ॥ ६ ॥

समाप्तमिदं मध्यमचरित्रमध्यायत्रयात्मकम् ।

१०१ ॥ अथाध्यायनवकमुत्तरचरित्रमारभ्यते ॥

अथाध्यायनवकमुत्तरचरित्रमारभ्यते

—ॐ—

चिदम्बररहस्ये । उत्तरं चरितं देवि नवभिः परिकीर्तितमिति ।

तत्रादौ पञ्चमाध्यायारम्भः ॥

तत्र पञ्चमाध्याये मन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

षट्सप्ततिलोकसंख्याः पञ्चमे भोगमोक्षदाः । एक ऋषिरुवाचेति
पुरा शुम्भादयश्च षट् ॥ १ ॥ श्लोकमन्त्रास्ततो देवा ऊचुरत्राष्टमो मनुः ।
नमोदेव्यादिकाः श्लोकाः पञ्च मन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥ यादेवीत्यादयः
श्लोका भ्रान्त्यन्ताएकविंशतिः । पृथक् तेषु त्रयोमन्त्रा ज्ञेयास्ते च
त्रिषष्टिकाः ॥ ३ ॥ पुनः श्लोकात्मकोमन्त्रस्त्रिमन्त्रश्लोककः पुनः । या देवी
सर्वभूतेषु विष्णुमायेतिवद्बिदा ॥ ४ ॥ नमस्तस्यै इति प्रोक्तो विश्व-
क्षरको मनुः । नमस्तस्यै इति प्रोक्तो द्वितीयश्चतुरक्षरः ॥ ५ ॥ अष्टाक्षर-
स्तृतीयोऽपि नमस्तस्यै नमोनमः । एवं द्वाविंशतिलोके ज्ञेयं मन्त्रत्रयं
शिवे ॥ ६ ॥ त्रयोविंशश्लोकेषु मन्त्रावै सप्तषष्टिकाः । पूर्वत्रयोदशैर्मन्त्रैः
सहाशीतिरुदाहृताः ॥ ७ ॥ स्तुतासुरैरिति श्लोकद्वयं मन्त्रद्वयं ऋषिः ।
पुनः सप्तदश श्लोका ऋषिः श्लोकत्रयं ततः ॥ ८ ॥ दूतोक्तिश्च नवश्लोका
ऋषिः श्लोकोऽम्बिका ततः । चतुः श्लोकाः पुनर्दूतश्चतुश्श्लोकाः पुनः शिवा
॥ ९ ॥ श्लोकमन्त्रद्वयं पञ्चाक्षत्वारिंशं नवाधिकम् । अशीत्यापि च संयोगे
ह्येकोनविंशताधिकम् ॥ १० ॥ शतं मन्त्राश्च विज्ञेया अध्याये पञ्चमेऽनवे
इति ।

अथेह खलु कश्यपादित्यामुत्पन्नौ नमुचिज्येष्ठौ शुम्भनिशुम्भावसुरौ
ब्रह्माणमारुह्य प्राप्तवरौ त्रैलोक्यवर्तिरत्नजातजिघृक्षू पाकशासनादिपदं
बलात्कारेणाग्रहिष्टामिति पुराणान्तरप्रसिद्धमितिहासं संक्षेपेण वर्णय-
न्शुम्भनिशुम्भयोर्वधस्योपोद्घातत्वेन तत्प्रतापं निरूपयन्नृषिः सुमेधाः
सुरथं राजानमुवाच—

ऋषिरुवाच ॥ मं० १ ॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ॥

त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ॥ मं. २ श्लो. १

पुरेति । अत्र लक्ष्मीतन्त्रे । तामसे त्वन्तरे शक्र महाविद्यां विधाय सा । गौरीदेहात्समुद्भूता कौशिकीति तदा ह्यहम् ॥ १ ॥ वधाय दुष्ट-
दैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः । मदीयाः शक्तयो यास्ता देवश्रेष्ठ-
शरीरगाः ॥ २ ॥ तास्ता मद्रूपधारिण्यः साहाय्यं विदधुर्मम ॥ ताभिर्हृताश्च
दैत्येन्द्रा, हन्तव्यौ मे यदा तदा ॥ ३ ॥ संहृत्यात्मनि ताः सर्वाः मदीया
विप्रबोऽखिलाः । अहं निजघ्नुषी पञ्चादेत्यौ शुम्भनिशुम्भकाविति ॥ ४ ॥
पुरा पूर्वस्मिन्काले शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां कर्तृभ्यां मदी गवः बलं
सैन्यं सामर्थ्यं च तयोः आश्रयात् मदबलान्वितत्वादित्यर्थः । शचतीति
शचीन्द्राणी । शच् व्यक्तायां वाचि । सर्वधातुभ्य इन् इतीप्प्रत्ययः ।
कृदिकारादक्तिनिति । ङीप् । शच्याः पतिरिन्द्रः । तस्य तस्माद्वा
त्रैलोक्यं हृतम् । यज्ञानां भागा अंशाश्च हृताः । यज्ञे विधिविहितद्वारा
यज्ञभागा अपीन्द्रस्य विहृता इत्यर्थः । हर्षं गर्वं मदः शौट्ये गजदाने च
कीर्तित इति कोशः ॥ १ ॥

तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ॥

कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ॥ मं. ३ श्लो. २

ताविति । तौ शुम्भनिशुम्भौ सूर्यस्य भावः सूर्यता । सूर्याधिकार-
मिति यावत् । चक्राते विदधाते । कामरूपत्वात्सूर्यरूपतां शिश्रियाते
इत्यर्थः । तद्वत्सूर्याधिकारहरणवत् । इन्द्रोरिदमैन्दवं चन्द्रसम्बन्धिनम-
धिकारं । तथा कुत्सितं बेरं शरीरमस्येति कुबेरो यक्षराट् तस्येदं
कौबेरमधिकारं धनाध्यक्षरूपतां । अथानन्तरं यमस्येदं यामं तस्येद-
मित्यण् । याममेव याम्यं । चतुर्वर्णादित्वात्स्वार्थे ष्यञ् । याम्यं यमसम्बन्धि
अधिकारं । चः पुनरर्थः । अनन्तरं वरुणस्य अधिकारं तावेव चक्राते
इत्यन्वयः ॥ १ ॥

तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च ॥

ततो देवा विनिर्धूता अष्टराज्याः पराजिताः ॥ मं. ४ श्लो. ३

तावेवेति । तौ प्रसिद्धौ असुरावेव पवनस्य वायोः ऋद्धिं सम्पदं
अर्थादधिकारं चक्रतुः । चः पुनरर्थः । पुनस्तावेव वह्नेरग्नेः कर्मव्यापारं
चक्रतुः । चः चमुच्चयार्थः । चादन्येषामपि दिवोकसां कर्म चक्रतुरिति ।
ततस्तदनन्तरं । ताभ्यामिति शेषः । ताभ्यां विनिर्धूताः स्वर्गाद्द्वूरी-

कृताः पराजिताः प्राप्तपराभवाः अत एव भ्रष्टराज्याः भ्रष्ट राज्ञः कर्म-
धिकारो येषां ते एवभूताः देवाः आसन्नितिशेषः ॥ ३ ॥

हताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ॥

महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ॥ मं. ५ श्लो. ४

हतेति । ताभ्यां महद्ब्रह्मसुराभ्यां हतः अपहृतः अधिकारो
लोकपालत्वादिलक्षणो येषां ते हताधिकाराः । अत एव निराकृताः
निरस्ताः सर्वे तिस्रो जन्मयौवननाशलक्षणा दशा अवस्था येषां ते
त्रिदशाः देवाः त्रिदशस्य तृतीयार्थता त्रिभागवत् । तां प्रसिद्धां देवीं
विजिगीषाशीलां । न पराजितां पराभूतां कैरप्यपराजितां दुर्गां संस्म-
रन्ति । अस्मापुंरित्यर्थः । अत्र स्मेत्यध्याहारः । तेन लट्स्मेति भूते लट् ।
व्यत्ययोबहुलमिति वा भूते लकारव्यत्ययः । स्मरन्तिस्मापराजितामिति
दाक्षिणात्यपाठः । अपराजित ईशाने षष्ठ्यन्तरे नाजिते त्रिषु । गिरिकर्णी
जया दुर्गा शालिपर्णीषु योषिति इति मेदिनी ॥ ४ ॥

देवतान्तरं विहाय देव्येव किमर्थमस्माभिरभ्यर्थनीयेत्याह—

तयास्माकं वरोदत्तो यथापत्सु स्मृताखिलाः ॥

भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥ मं. ६ श्लो. ५

इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ॥

जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥ मं. ७ श्लो. ६

तयेति द्वाभ्याम् यथा प्रागुक्तरीत्या आपत्सु विपत्सु स्मृता सती
तत्क्षणादेव तां परं केवलं अखिलाः समस्ताः आपदः विपदः परमा
आपदो वा कर्माभूताः नाशयिष्यामीति अस्माकं वरः अस्मत्सम्बन्धि इष्टं
दत्तः आज्ञप्तः । इति मतिं अध्यवसायं कृत्वा चेतसि निधाय देवाः
नगानां पर्वतानां ईश्वरं राजानं हिमवन्तं हिमालयाख्यं जग्मुः ततस्त-
त्रेत्यर्थः । देवीं स्तुतिप्रियां, वेवेष्टीति विष्णुः विष्णोः परमात्मनः मायां
शक्तिं प्रतुष्टुवुः । प्रोपसर्ग आरम्भार्थः । स्तोतुमारब्धवन्त इत्यर्थः । इमां
स्तुतिमधिकृत्य शक्रं प्रतिलक्ष्मीवाक्यं लक्ष्मीतन्त्रे । अमुष्याः स्तुतये दृष्टं
ब्रह्माद्यैः सकलैः सुरैः । नमो देव्यादिकं सूक्तं सर्वकामफलप्रदम् । इमां
देवीं स्तुवन्नित्यं स्तोत्रेणानेन मामिह । क्लेशानतीत्य सकलानैश्वर्यं महद-
श्नुते । यज्जप्त्वा वैश्यसुरथौ परां सिद्धिमवापतुरिति ॥ ५ ॥ ६ ॥

मनः कल्पितसन्निधानां देवीं नमो देव्यै इत्यादि वक्ष्यमाणमूचुः—

देवा ऊचुः ॥ मं. ८ ॥

नमोदेव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताःस्मताम् ॥ मं. ९ श्लो. ७

नमोदेव्यै इति । दीव्यतीति देवः । पुंयोगे ङीप् । तस्यै देव्यै विजिगीषाशीलायै महतो ब्रह्मादीनपि देवयति सर्गादिषु व्यापारयतीति महादेवी तस्यै नमः । शिवयतीति शिवः कल्याणहेतुः । तत्करोतीति प्यन्तात्पचाद्यजन्ताट्वाप् । तस्यै सततं निरन्तरं नमः । प्रकृतिः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था । यद्वा । साधनदशायां प्रत्ययात्पूर्वं प्रकृतिः । तदुक्तं स्फोटनिरूपणे । प्रकृतिः पार्वती साक्षात्प्रत्ययस्तु महेश्वरः । अर्द्धनारीश्वरः शब्दः कामधुग्वः प्रसीदत्विति । तस्यै प्रकृत्यै नमः । प्रकृतिशब्दस्य छितिह्रस्वश्चेति नदीत्वपक्षे । आप्नद्या इत्यादि छयिरूपं । प्रकृष्टा कृतिः कार्यं यस्याः । प्रकरोतीति वाक्तिच् । प्रकृतिगुणसाम्ये स्यादमात्यादिस्वभावयोरितिकोशः । भद्राणि मङ्गलानि सन्त्यस्यामिति भद्रा सर्वमङ्गलेत्यर्थः । तस्यै नमः । तथा तां अस्मद्वरदातृत्वेन प्रसिद्धां नितरां यता यतेन्द्रियाः सन्तः चित्तप्रणिधानभाजः प्रणताः नम्राः वयं स्म भवामेति प्रार्थनायां लोट् । स्मेति पादपूरणेऽव्ययमिति वा ॥ ७ ॥

रौद्रायै नमोनित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमोनमः ॥

ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥ मं. १० श्लो. ८

रौद्रायै इति । रुद्रस्यायं रौद्रोरसः । रौद्रो भीष्मे रसे तीव्रे इति हैमः रौद्रं तृप्रममीत्रिष्वित्यमरः । रौद्रस्तृप्रपर्यायः । रौद्रो रसोऽस्त्यस्यामिति रौद्रा संहृतिशक्तिमत्वाद्धारणा । अर्श आद्यजन्ताद्रौद्रशब्दाट्वाप् । तस्यै नमः । नियमेन भवानित्या तस्यै नमः । नित्यं स्यात् शाश्वते त्रिष्वित्यभिधानात् । कालत्रयावस्थितायै ध्रुवायै इत्यर्थः । गौर्यै गौरो वर्णोऽस्त्यस्याः तस्यै । दधातीति धात्री भूमिरूपमाता च । धात्रीस्यादुपमातापि क्षितिरप्यामलक्यपीतिकोशः । तस्यै उपमातृधर्मेण जगत्पोषिकायै नमोनमः । वारं वारं नमस्कुर्मः । ज्योतिरस्त्यस्यामिति ज्योत्स्ना कौमुदी । ज्योत्स्ना तमिश्रेति निपात्यते । ज्योत्स्नायै प्रकाशरूपायै इति फलितोऽर्थः । ज्योत्स्ना चन्द्रातपेऽपि स्याज्ज्योत्स्नायुक्तनिशि स्मृतेत्यभिधानात् । चकारः पुनरर्थः । च पुनः । उनत्तीतीन्दुश्चन्द्रः । तं रूपयति

तच्छीला । रूप रूपक्रियायां । रूप रूपदर्शने च । चुरादिः ततस्ताच्छील्ये
णिनिः । सुखयतीति सुखा । परमानन्दमयीत्यर्थः । सुखदुःखतत्क्रियाया-
मिति धातोः पचाद्यचिटाप् ॥ ८ ॥

कल्याण्यै प्रणतावृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमोनमः ॥

नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै सर्वाण्यै ते नमोनमः ॥ मं. ११ श्लो. ९

कल्याण्यै इति । कलयति सौख्यमिति कल्यं नैरुज्यं । अघ्न्यादय-
श्चेति कलेर्यक् । कल्यं प्रभाते क्लीबं स्यात्कल्योवाकश्चुति वर्जिते ।
सञ्जनीरोगदक्षेषु कल्याणवचनेऽपि चेत्यभिधानात् । कल्यं नीरुजत्व-
माणयतीति अणशब्दे कर्मण्यण् । टिड्ढेतिङीप् । तस्यै प्रणताः भवाम
इति शेषः । वृद्ध्यै उपचयकारिण्यै । सिद्ध्यै अणिमादिरूपायै । नमोनमः
कुर्मोवयमित्यर्थः । नैर्ऋत्यै निर्गता ऋतिर्वृणा यस्याः सा निर्ऋतिः ।
निर्गता ऋतेः शुभादिति वा । निर्ऋतिरलक्ष्मीदिक् च तस्येयं नैर्ऋती
तस्यै । निर्ऋतिः स्यादलक्ष्म्यां स्त्री दिशां कालान्तरे पुमानिति कोशान्त-
रम् । भुवं विभ्रति धारयति भूभृतः मण्डूककूर्मादिकुलपर्वताः तेषां
भूभृतां लक्ष्म्यै । तथा सर्वाण्ये । शृणातीति शर्वः शिवः । श्रुत्सायाम् ।
कृगृभृद्भ्यो व इति वः । शर्वस्य स्त्री सर्वाणी । इन्द्रवरुणेत्यादिना
पुंगोमे ङीवानुका । तस्यै ते नमोनमः । अस्तिवति शेषः ॥ ९ ॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ॥

ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥ मं. १२ श्लो. १०

दुर्गायै इति । दुःखेन गम्यते इति दुर्गा । दुरधिगमेति यावत् ।
गत्यर्थानां ज्ञानार्थत्वात् । दुःखेन यमनियमादिकृतेन गच्छत्यस्यामिति
वा दुर्गा । सुदुरोरधिकरणे इति गमेडः । तस्यै सततं निरन्तरं नमः ।
तथा दुर्गं सङ्कटे पारयति पालयतीति दुर्गपारा । दुर्गः दुरधिगमः पारः
परिच्छेदो वा यस्याः । देशकालानवच्छेद्यत्यर्थः । तथा सारायै स्थिरांश-
भूतायै । सारो बले स्थिरांशे चेत्यमरः । सर्वकारिण्यै । सर्वजगज्जनने
स्वतन्त्रायै । तथा ख्यात्यै । ख्यातिर्यथा अनुभूतं सत्त्वपुरुषान्यथाभेदज्ञानं
ख्यातिः । सा च सत्ख्यातिरसत्ख्यातिः सदसत्ख्यातिरन्यथा ख्याति-
रनिर्वचनीयख्यातिरिति मतभेदात्पञ्चधा भिद्यते । तद्रूपायै । ख्याति-
विख्यातिस्तद्रूपायै वा । तथैव कृष्णः वर्णोऽस्या इति कृष्णा । दाक्षायिण्या-
दिस्वरूपेषु देव्याः इयामवर्णत्वेन प्रसिद्धत्वात् । तथा धूम्रायै धूमं राति

आदत्ते इति धूम्रः मिश्रकृष्णलोहितवर्णः । आत इति कः । छषोदरादिः । धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते मरः । धूम्रवर्णत्वात् धूम्राधूमावती विद्येति वा तस्यै सततं निरन्तरं नमोस्त्वित्यर्थः ॥ १० ॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमोनमः ॥

नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमोनमः ॥ १३ श्लो. ११

अतिसौम्येति । सोमस्य भावः सौम्यं । भावे ष्यञ् । अतिक्रान्तं सौम्यं यया सा अतिसौम्या । विद्याभावेन संसारतापच्छेदहेतुत्वात् । तथा रुद्रस्य भावो रौद्रं । युवादित्वाद्भावे हायनान्तयुवादिभ्योऽणित्यण् । अतिक्रान्तं रौद्रं यया सा अतिरौद्रा । अविद्याभावेन संसारकरत्वात् । अतिसौम्या चासौ अतिरौद्रा चेति कर्मधारये रूपं । तस्यै नताः प्रणाम-वन्तो वयं भवाम इति शेषः । तस्यै तत्तद्गुणविशिष्टायै नमोनमः । अस्त्विति शेषः । तथा जगतां प्राणभृतां प्रतिष्ठा आधारशक्तिस्थानं । मूलाधारसंज्ञं तत्प्रतिष्ठेत्युच्यते । आस्पदं प्रतिष्ठायामिति सूत्रादास्पदशब्द-पर्यायः प्रतिष्ठाशब्दः । तस्यै जगदाधाररूपायै वा । तथा देव्यै व्यव-हाररूपायै वा । तथा कृत्यै । करणं कृतिः । प्रयत्नः सर्गस्थितिसंहारात्मा कृत्यै प्रयत्नरूपायै नमः । प्रणामस्य त्रित्वमत्र जगदाधारत्वादिगुणत्रैवि-ध्याभिप्रायेणेति ॥ ११ ॥

या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ॥

नमस्तस्यै^{१५} नमस्तस्यै^{१५} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. १६ श्लो. १२

यादेवीति । सर्वभूतेषु अशेषप्राणिषु देवी क्रीडाशीला या प्रसिद्धा विष्णोः परमात्मनः मायामूलाविद्येति शब्दिता कथिता । तस्यै नमोनम इत्यन्वयः । विष्णुमाया हि सात्त्विकराजसतामसभेदेन त्रिधाभिद्यत इति । तत्परामर्शकं तस्यै इति पदं त्रिरभ्यस्यते । नमः पदं तु प्रसादने संभ्रमे वा । तदुक्तं विषादे विस्मये हर्षे खेदे दैन्येऽवधारणे । प्रसादने संभ्रमे च द्वित्रिभक्तं न दुष्यतीति । अन्यत्रापि । प्रकर्षहर्षकोपेषु स्वप्नदैन्यभयेषु च । स्तुत्यभ्यासानुवादिषु पौनरुक्त्यं न दुष्यतीति । अत्र केचित्त्रिःप्रण-मनेन महत्फलं एकस्यास्त्रिर्नमस्कारस्त्रिस्त्रिः प्रदक्षिणमित्याहुः । नम-स्तस्यै इति पदत्रयेण । कायिकवाचिकमानसिकनमस्कारत्रयं प्रदर्शित-मिति नागेशरामाश्रमदंशोद्धाराः । अथात्र या देवीनां संग्रहश्लोकाः । विष्णुमाया चेतना च बुद्धिर्निद्रा क्षुधा तथा । छाया शक्तिश्च तृणा च

क्षान्तिर्जातिस्ततः परम् । लज्जा शान्तिस्ततः श्रद्धा कान्तिलक्ष्मीस्ततः परम् । वृत्तिः स्मृतिर्दया चैव तुष्टिर्माता ततः परम् । भ्रान्तिर्व्याप्तिश्चित्तवैचैव त्रयोविंशतिसंख्यकाः । अतोऽधिकमनार्षं स्यात्तन्त्रे कात्यायने स्फुटमिति । या देवी वागोमात्मिका सर्वत्र कालत्रयात्मिका सर्वभूतेषु चतुर्विधभूतात्मिका अनात्मन्यात्मबुद्धिमात्मन्यनात्मबुद्धि जनयन्ती ममतावशंवदांल्लोकान्प्रसूयमाना सर्वजननी महामाया भगवतीति सर्वत्र सम्बध्यते । विष्णुमायेत्यादि त्रयोविंशतिशक्तोनां योजना पृथक्पृथगिति । इति प्रथमा विष्णुमाया देवी ॥ १२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ॥

नमस्तस्यै^{१०} नमस्तस्यै^{११} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. १९ श्लो. १३

चेतनेति । चित्तं चेतने । चुरादिः । ण्यासश्चस्थोयुजिति युच् । यद्यपि वैशेषिकादिदर्शने चेतना बुद्धिरेव । प्रतिपज्ज्ञप्तिचेतनाइति कोश-प्रामाण्यात्तथापि बुद्धिर्भस्त्रित्तविशेषविजृम्भितशक्तिश्चेतनेत्याश्रये न पुनश्चिदोषः । अन्ये तु चेतना चित्तवृत्तिविशेषशक्तिः । बुद्धिस्तु प्रकाश-ज्ञानस्वभावेत्याहुः । नागेशस्तु निर्विकल्पज्ञानं चेतना । बुद्धिस्त्वशेषविशेषावगतिः सविकल्पज्ञानमिति तयोर्भेदमाह । अभिधीयते कथ्यते इति । इति द्वितीया चेतना देवी ॥ १३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{२०} नमस्तस्यै^{२१} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. २२ श्लो. १४

बुद्धिरूपेणेति । बुद्धयतेऽनया, बोधनं वा बुद्धिः । स्त्रियां क्तिन् । एवं रूपेण संस्थिता या । सम्यगवस्थितेत्यर्थः । गत्यर्थत्किर्मर्काश्लिष् शोड्स्थासेत्यादिना सम्पूर्वात्तिष्ठतेः क्तः । द्यतिस्यतिमास्थामितीत्वम् । संस्थाधारे स्थितौ मृतावित्यभिधानात्स्थितिरित्यर्थः । इति तृतीया बुद्धिदेवी ॥ १४ ॥

या देवि सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{२२} नमस्तस्यै^{२३} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. २५ श्लो. १५

निद्रेति । नियतं द्राणं निद्रा क्षयनं । द्राकुत्सायां गती, निपूर्वः । आतश्चोपसर्ग इत्यङ् भुक्तान्नादिपरिपाकहेतुरिन्द्रियप्रवेशमलकोशे मनसो-ऽवस्थानं निद्रा । सर्वेन्द्रियव्यापारविरतप्राणनं सुखं निद्रेति वा ॥ इति चतुर्थी निद्रा देवी ॥ १५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{२६} नमस्तस्यै^{२७} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. २८ श्लो. १६

क्षुधेति । क्षुध बुभुक्षायां । सम्पदादित्वाद्भावेस्त्रियां क्विप् । भोक्तुमिच्छाक्षुत्, स्त्रियां धान्तः क्षुत्शब्दः । असनाया बुभुक्षाक्षुत् इत्यमरः । तया क्षुधारूपेणेति पृथक्पदं । यद्वा । निष्ठादिशेतिवद्भा-
गुरिभते हलन्ताट्टाप् । क्षुधेत्येवं रूपेणेत्यर्थः । क्षुधाविना प्राणिनां सुखं नास्तीति भावः ॥ इति पञ्चमी क्षुधा देवी ॥ १६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु छाया रूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{२९} नमस्तस्यै^{३०} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ३१ श्लो. १७

छायेति । छपति छिनत्ति संतापमिति छाया । प्रतिबिम्बरूपा । माछाशसिम्भोयः । प्रतिच्छायाशब्दोयथा । संक्रान्तच्छायमादर्शः । नष्टच्छायोमध्याह्न । इत्यत्रांतर्यभावाभावोऽपि विवक्षितः । यद्यपि । छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिबिम्बमनातपइत्यभिधानादनेकार्थश्छाया-
शब्दस्तथापि प्रकृते प्रतिबिम्ब एवार्थो गुह्यते । सर्वभूतेष्वन्येषामनव-
स्थानात् ॥ इति षष्ठी छाया देवी ॥ १७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{३१} नमस्तस्यै^{३२} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ३४ श्लो. १८

शक्तीति । शकनं शक्तिः सामर्थ्यं वस्तुगतः स्वभावसिद्धोधर्मः । यथा वह्नी दाहकता । चन्द्रे आह्लादकता । इत्याद्यनेकाशक्तिः । इत्येवंरूपेणेत्यर्थः । शक्तिः प्रतिवस्तुनियतार्थकारित्वं वस्तुधर्म इति-
शंतनुः । वस्तुस्वरूपमेव शक्तिः नतु वस्तुनोऽन्यो धर्मः शक्तिरिति
चतुर्भुजः । शक्तिः । कार्यजननसामर्थ्यमिति नागेशः । शक्तिः शिवस्या-
त्मस्वरूपेति रामाश्रमः । इह तु सर्वभूतेषु इत्याधाराधेयभावानुवादा-
द्वास्तुधर्मः शक्तिरितपक्षोऽभ्युपगत इत्यवधेयम् । अस्माच्छब्दादयमर्थो
बोद्धव्य इतीश्वरेच्छाकृतः सकेतः शक्तिर्वृत्तित्वे प्रसिद्धेतिकेचित् ॥ इति
सप्तमी शक्तिदेवी ॥ १८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{३५} नमस्तस्यै^{३६} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ३७ श्लो. १९

तृष्णेति । सर्वाणि भूतानि पृथिव्यादीनि, येषां देहानामारम्भक-

त्वेन सन्ति तानि सर्वभूतानि देहानि तेषु तर्षणं तृष्णा उपभोगनिमित्त-
कोऽभिलाषः । त्रितृष् पिपासायाम् । तृषिणुषिरसिभ्यः कित् इत्यष्टमी
तृष्णादेवी ॥ १६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{३८} नमस्तस्यै^{३९} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ४० श्लो. २०

क्षान्तीति । क्षमणं क्षान्तिः अपकारिण्यनपकारचिकीर्षा । प्रति-
कूलवेदना प्रत्युत उपेक्षा । क्षमू सहने दिवादितः । तस्याषित्वात् क्तिन् ।
अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः । भ्वादेस्तु षित्वात्षिट्ठिदादिभ्य इत्यच् ।
क्षमेति न क्षान्तिः । यदुक्तं । अषितः क्षाम्यतेः क्षान्तिः षितस्तु क्षमतेः
क्षमेति । इति नवमी क्षान्तिदेवी ॥ २० ॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{४१} नमस्तस्यै^{४२} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ४३ श्लो. २१

जातीति । जायते इति जातिः सामान्यं । अनेकेष्वेकाकारसाधन-
मित्येकमनेकसमवेतमिति तल्लक्षणात् । जानी प्रादुर्भावे क्तिच् स्ती च
संज्ञायामिति क्तिच् । जनसनेत्यात्वं । तितुत्रेतिनेट् । जातिः सामान्य-
गोत्रयोः । जातिश्च यथा गोत्वादितः । इति दशमी जातिदेवी ॥ २१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{४३} नमस्तस्यै^{४४} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ४६ श्लो. २२

लज्जेति । लज्जनं लज्जा । कर्तव्याकरणनिमित्तमन्यतः स्वतो वा
जनितलज्जनं संकोचनं मनुष्यादिचित्तेषु लज्जेत्युच्यते । ओलस्जीव्रीडे ।
गुरोश्चहल इत्यः प्रत्ययः । जस्त्वं । अदन्तत्वाट्ठाप् । इत्येकादशी
लज्जादेवी ॥ २२ ॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{४५} नमस्तस्यै^{४६} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ४९ श्लो. २३

शान्तीति । क्षमनं शान्तिः । क्षमेः क्तिन् । अनुनासिकस्य क्वीति
दीर्घः । विषयोपरमः शान्तिः । क्रोधाद्यभावः शान्तिरिति वा ।
विषयोपरतिरिति नागेशः । अन्तरिन्द्रियनिग्रह इति रामाश्रमः ।
विकृतेन्द्रियसंयम इत्यन्ये । इति द्वादशी शान्तिदेवी ॥ २३ ॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{५०} नमस्तस्यै^{५१} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ५२ श्लो. २४

श्रद्धेति । श्रद्धं श्रद्धा । शास्त्रोक्तेऽर्थे आस्तिक्यबुद्धिः । तदाह-
आदाराधनं भक्तिः श्रद्धा त्वास्तिक्यबुद्धितेति । श्रद्धास्तिक्येऽभिलाषे
चेति हैमः । अथवा । गुरुवेदवाक्ययोर्विश्वासः श्रद्धा । सकलजनेषु
साधारणानुकम्पा वा । सद्विषयनिरतिशयभावनानुबुद्धिर्वा । तथा च
देवलः । साम्मुख्याद्यातिसम्प्राप्तिरर्थिनां दर्शनेदया । सत्कृतिश्चानुसूया च
सा श्रद्धा परिकीर्तितेति । दुधात्र धारणपोषणयोः । श्रदित्यव्ययम् ।
श्रच्छब्दस्योपसंख्यानमित्युपसर्गसंज्ञा । आतश्चोपसर्ग इति स्त्रियामङ् ॥
इति त्रयोदशी श्रद्धादेवी ॥ २४ ॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{५२} नमस्तस्यै^{५३} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ५५ श्लो. २५

कान्तीति । कमनं काम्यते वा कान्तिः । शोभा कमनीयता च ।
कमु कान्तौ । कमेणिङ् । आयादय आर्द्धधातुके वा । स्त्रियां क्तिन् ।
अनुनासिकस्य क्वीति दीर्घः । कान्तिः शोभेच्छयोः स्त्रियाम् । शोभा-
कान्तिद्युतिश्छिविरित्यमरः कान्तिः स्वरूपोज्ज्वलतेत्यन्ये ॥ इति चतुर्दशी
कान्तिदेवी ॥ २५ ॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{५४} नमस्तस्यै^{५५} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ५८ श्लो. २६

लक्ष्मीति । सर्वभूतेषु सर्वप्राणिषु लक्षयति पश्यति नीतिज्ञमिति
लक्ष्मीर्धनादिसम्पत् । लक्षदर्शनाङ्कनयोः लक्षेर्मुट् चेति ईप्रत्ययस्तस्य च
मुट् । लक्ष्मीः पद्मा विभूतिश्च कायशोभा च कीर्तिता । लक्ष्मीः सम्पत्ति-
कोशयोरिति कोशान्तरम् ॥ इति पञ्चदशी लक्ष्मी देवी ॥ २६ ॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{५६} तमस्तस्यै^{५७} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ६१ श्लो. २७

वृत्तीति । वर्तनं वृत्तिः, वर्ततेऽनया वृत्तिर्जीवनोपायः । स्त्रियां
क्तिन् । आजीवो जीविका वार्त्ता वृत्तिर्वर्तनजीवने । स्त्रियां कृषिः पाशु-
पाल्यं वाणिज्यं चेति वृत्तय इत्यमरः । अभिधालक्षणा व्यञ्जन रूपा
वा । इति षोडशा वृत्तिदेवी ॥ २७ ॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{६२} नमस्तस्यै^{६३} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ६४ श्लो. २८

स्मृतीति । स्मरणं स्मृतिः अनुभूतभावनाख्यसंस्कारहेतुको ज्ञान-
विशेषोऽनुभवः संप्रमोषो वा स्मृतिः । स्याच्चिन्तास्मृतिराध्यानमित्यमरः ।
स्मृतिः स्मरणधीच्छासु शास्त्रे इति हैमः । स्मृ आध्याने । क्तिन् इति
सप्तदशी स्मृतिदेवी ॥ २८ ॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{६४} नमस्तस्यै^{६५} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ६७ श्लो. २९

दयेति । दयते रक्षत्यनेनेति दया परदुःखप्रहाणेच्छा । परदुःख-
समभाक्त्वं वा दया । दय दानगतिहिसारक्षणेष्ु । भिदादित्वादङ् ।
इत्यष्टादशी दयादेवी ॥ २९ ॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{६६} नमस्तस्यै^{६७} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ७० श्लो. ३०

तुष्टीति । तोषणं तुष्टिः अनधिगतानभिलाषः । विषयोपभोग
मावप्य तदभिलाषादुपरमस्तुष्टिरिति वा । विषयोपभोगं प्राप्य पुनस्तद-
भिलाषेऽनवाप्तावाप्तावपि परमं सुखं तुष्टिरित्यपि वा इत्येकोनविंश-
तिस्तुष्टिदेवी ॥ ३० ॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{६८} नमस्तस्यै^{६९} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ७३ श्लो. ३१

मात्रिति । मान्यते इति माता । मान पूजायाम् । मातिगर्भोऽस्या-
मिति वा माता जननी । देहाधिष्ठात्री वर्णाभिमानिनी देवता वर्गाष्टक-
रूपा मातृकाख्या वा । नप्तृनेष्ट्रितिसाधुः । मांति शिवपरिवारत्वेन
समाविशन्तीति मातरः ब्राह्मणाद्याः । सर्वभूतेषु जनयतिव्येषु मातृरूपेण
प्रकृतिरूपेण कारणरूपेण यादेवी सम्यगवस्थितेति वार्थः । इति विंश-
तिमातृ देवी ॥ ३१ ॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ॥

नमस्तस्यै^{७०} नमस्तस्यै^{७१} नमस्तस्यै नमोनमः ॥ मं. ७६ श्लो. ३२

भ्रान्तीति । अनुभवप्रमोषेण वस्तुनामन्यथा भावज्ञानम् । अतस्मिन्
तदितिज्ञानं वा भ्रान्तिः । भ्रमु चलने । क्तिन् । इत्येकविंशतिभ्रान्ति-
देवी ॥ ३२ ॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ॥

भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमोनमः ॥ मं. ७७ श्लो. ३३

इन्द्रियाणामिति । देव्याव्यापिकां शक्तिं स्तौति-अखिलेषु समस्तेषु भूतेषु प्राणिषु भूतानां पृथिव्यादीनां, तथा इन्द्रियाणां ज्ञानप्रधानानां श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणानां, कर्मप्रधानानां वाक्पाणिपादपायूपस्थानां अधिष्ठात्री प्रवृत्तिकारणं या देवी सा त्वं । तस्यै व्याप्तिदेव्यै विभुत्वस्वरूपायै ते नुभ्यं नमोनमः । अस्त्विति शेषः । भूप्राप्तावित्यस्य क्तान्तस्य भूतानामिति षष्ठ्यन्तं रूपम् । देव्याः भूतानामिन्द्रियकारणमाह श्रुतिः । मयासोऽन्नमस्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तमिति । यद्वा भूतानां पृथिव्यादिपञ्चानां अधिष्ठात्री आधारशक्तिः स्वामिनी या देवी, या च अखिलेषु भूतेषु ब्रह्मादितिर्यगन्तेषु विद्यमानानामिन्द्रियाणां ज्ञानकर्मात्मकानां अधिष्ठात्री आधारशक्तिः स्वामिनी प्रवर्तयित्री त्वमसि, तस्यै व्याप्तिदेव्यै व्यापिकायै नमो नमोऽस्तु । अहं द्यावापृथिवी आविवेशेति श्रुतेः । अत्र व्याप्तिदेव्यै इति गौडाः । व्याप्त्यै देव्यै इति दाक्षिणात्याः पठन्ति । एतेन सर्वगतत्वमुक्तं देव्याः । इति द्वाविंशतिर्व्याप्तिदेवी ॥ ३३ ॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिता जगत् ॥

नमस्तस्यै^० नमस्तस्यै^० नमस्तस्यैनमोनमः ॥ मं. ८० श्लो. ३४

चितीति । चयनं चितिः अविकारः अथवा चितिः प्रत्यक्चैतन्यं ज्ञानं । तद्रूपेणेतत्कृत्स्नं जगद्व्याप्य या स्थिता । समस्तजगतः सत्ता स्फूर्तिश्च चैतन्यसम्बन्धव्यतिरेकेण न भवतीति चितिश्चैतन्यव्याप्तिः सर्वरङ्गीकृतः । अन्यथा चैतन्यसम्बन्धाभावेन सत्तास्फूर्त्योरभावात् क्षणविषाणतुल्यतास्यादिति भावः । चिती संज्ञाने । स्त्रियामित्यधिकारे इक् कृष्यादिभ्य इतीक् प्रत्ययः । तस्यै नम इति पूर्ववत् । इति त्रयोविंशतिश्चित्तिदेवी ॥ ३४ ॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-

तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ॥

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी

शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ मं. ८१ श्लो. ३५

स्तुतेति । पूर्वं महिषवधकाले अभीष्टस्याभिमतस्य वस्तुनः
संश्रयात् लाभात् सुरैर्देवैः ब्रह्मादिभिः स्तुता वाचा पूजिता तथा
सुरेन्द्रेण शतक्रतुना दिनेषु आश्विनशुक्लनवम्यादितिथ्युपलक्षितदिनेषु ।
भौमादिविशेषवासरेषु वा । प्रत्यहं भगवत्या दिनेषु वा सेविता कल्पोक्त-
प्रकारेण बल्यादिपुरस्कृतपूजनेन या आराधिता सा ईश्वरी व्यापिका
नोऽस्माकं देवानां शुभस्य हेतुः कारणभूता, शुभानि मङ्गलानि सर्वा-
भ्युदयान् भद्राणि कल्याणानि क्षेमारोग्यानि करोतु । च पुनः अस्मा-
कमापदः विरोधिजनितदुःखानि अभिहन्तु संमुखे नाशयतु । प्रार्थनायां
लोट् । अभीष्टसंश्रयेति दाक्षिणात्यपाठे अभीष्टः वाञ्छितः संश्रयो यस्याः
सा अभीष्टसंश्रया देवीविशेषणम् ॥ ३५ ॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-

रस्माभिरीशा च सरैर्नमस्यते ॥

या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः

सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ मं. ८२ श्लो. ३६

या सांप्रतमिति । या सांप्रतमिदानीं उद्धतैः निर्मयादैः दित्यपत्यैः
शुम्भादिभिः तापितैः पीडितैः अस्माभिः सुरैर्देवैः । कर्तृभूतैः । या ईशा
कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्था । कर्माभूता । नमस्यते प्रणामविषयीक्रियते ।
च पुनः या भक्त्या आराधनादरविशेषेण विनम्राः मूर्तयस्तनवो येषा-
मेवंभूतैः अस्माभिः स्मृता ध्याता तत्क्षणं स्मृतिकालमेव नोऽस्माकं
सर्वापदः । सर्वाः आपदो येभ्यः सकाशादिति सर्वापदः । शत्रून्हन्ति सा
नः शुभं करोत्विति पूर्वोणान्वयः ॥ ३६ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं. ८३ ॥

ऋषिः सुमेधाः सुरथमुत्तरं वाक्यं विवक्षुः स्तुत्यनन्तरं कथा-
नकमुवाच—

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।

स्नातुमभ्यायतौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ मं. ८४ श्लो. ३७

एवमिति । एवं प्रकारेण इयं देव्या स्तवे स्तोत्रे आदिशब्दान्नः
आपदो हन्तिविति प्रार्थने च युक्तानां तत्परचेतसां देवानां । षष्ठी चानादरे
इत्यत्र षष्ठी । स्तवादियुक्तान्देवाननादृत्येत्यर्थः । तत्र हिमाद्रौ मतञ्जाश्रमे

पार्वती हिमाद्रिकन्या जह्नोराजर्षेरपत्यं स्त्री जाह्नवी गङ्गा तस्यास्तोमे
जले स्नातुं स्नानं कर्तुं अभि सम्मुखे आययौ आगतवती । नृपनन्दनेति
राज्ञः सम्बोधनम् ॥ ३७ ॥

यद्यपि पार्वतीं प्रति देवैरेवोत्तरं दातुमुचितं तथाप्यन्यत एव
देवा उत्तरं लब्धवन्त इत्यत आह—

साब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूभ्रवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।

शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूता ब्रवीच्छिवा ॥ मं. ८५ श्लो. ३८
सेति । सुशोभने भ्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः । सा प्रसिद्धा पार्वती
तान्स्तुतिपरान् देवान् भवद्भिरत्र मतङ्गाश्रमे का देवतास्तूयते इति
वाक्यमब्रवीत् । पृष्ठवतीत्यर्थः । अस्याः पार्वत्याः शरीरं कोशइव काष्ठच-
र्मादिनिमित्तखड्गपिधानमिव शरीरकोशः । यद्वा शरीरकोशतो देहावर
काचर्मणः ततः सकाशात्समुद्भूता निर्गता शिवा देवी पार्वतीं प्रति उत्तरं
वाक्यमब्रवीत् । ज्ञानार्थनिधित्वेन सर्वजगन्निधित्वेन च पार्वतीशरीरं
कोशत्वेनोपमीयते । कोशोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽथौषादिव्ययोरि-
त्यमरः ॥ एषा कथा कालीपुराणे यथा । सर्वे सुरगणाः सेन्द्रास्ततो गत्वा
हिमालयम् । गङ्गावतारनिकटे महामायां प्रतुष्टुवुः ॥ अनेकशः स्तुता देवी
तदा सर्वमिरोत्तमैः । मातङ्गवनितामूर्तिभूत्वा देवान्पृच्छत ॥ युष्माभिर-
मरैरत्र स्तूयते का च भाविनी । किमर्थमागता यूयं मतङ्गस्याश्रमं
प्रतीति ॥ ३८ ॥

स्तुतिपरान्देवानाश्रित्य पार्वतीं प्रति कौशिकीकिमब्रवीदित्याह—

स्तोत्रं ममैतत्क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः ॥

देवैः समस्तैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥ मं. ८६ श्लो. ३९

स्तोत्रमिति । समरे संग्रामे शुम्भदैत्यनिराकृतैः शुम्भासुरनिरस्तैः ।
तथा निशुम्भेन पराजितैः पराभूतैः समस्तैर्देवैः मम शिवायाः सर्वतेजो-
मय्याः एतत्स्तोत्रं क्रियते इत्यब्रवीदिति पूर्वणान्वयः । समेतैरिति दाक्षि-
णात्यपाठः ॥ ३९ ॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ॥

कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥ मं. ८७ श्लो. ४०

शरीरेति । यद्यस्मात्तस्याः पार्वत्याः शरीरकोशादम्बिका जगन्माता

निःसृता निर्गता तस्मात्कारणात्सा समस्तेषु लोकेषु भुवनैषु कौशिकी-
इति गीयते । सर्वैरिति कर्तृपदमध्याहार्यम् । कोशेन दीव्यतीति कौशि-
की । तेन दीव्यतीति ठक् । यद्वा कोशाद्या निर्गता कोशेन निर्वृता वेति
कौशिकी । निर्वृतेऽश्रयूतादिभ्य इति ठक् वा । कोशे भवा कौशिकी ।
अध्यात्मादित्वादृञ् । कौशिकी चण्डिकायां च नदीभेदे च योषितीति
शब्दार्णवः । कौशिकीत्यत्र तालव्यः शकारो न तु मूर्द्धन्यः । यत्र कुश्यत-
इतिकोशः । कुशसंश्लेषणे । कुश्यत इतिकोषः । कुष निष्कर्षे । कर्तरीति
घञ् । तालव्यमूर्द्धन्यावेतौ । अत्र कोशकोषयोरभेददर्शने तालव्यदन्त्योप-
धश्चायं शब्दः । कोशोऽभिधाने चास्त्री स्यादिति ॥ ४० ॥

तस्यां विनिर्गतायांतु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ॥

कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥ मं. ८८ श्लो. ४१

तस्यामिति । सा पार्वत्यपि स्वशरीरकोशात्तस्यां निर्गतायां सत्यां
कृष्णः वर्णोऽस्या अस्तीति कृष्णवर्णा अभूत् जाता । अतएव कालिकेति
समाख्याता । कालः कृष्णो वर्णस्तत्प्रधाना काली । वर्णायात्कालशब्दात्त-
द्वति वर्तमानात्स्त्रियां जानपदेति सूत्रेण ङीप् । ततः संज्ञायां कन् । केण
इति ह्रस्वः । इतिशब्दः शब्दस्वरूपपरः समाख्याता सम्यक् कथिता हिम-
प्रधानोऽचलः पर्वतः तस्मिन्कृतः आश्रयोयया । एवं भूता अभूत् । एषैव
कालिका । यदुक्तं कालिकापुराणे । विनिःसृतायां देव्यां तु मातङ्गधाः
कायकोशतः । भित्ताञ्जननिभाकृष्णा साभूद्गौरी क्षणादपि ॥ कालि-
काख्याभक्तसाहि हिमाचलकृताश्रया । तामुग्रतारां मुनयोवदन्तीह मनी-
षिणः ॥ उग्रादपि भयात्वात्री यस्माद्धुक्तं सदाशिविका । एषैवैकजटा
ख्याता यस्मात्तस्माज्जटैकिका ॥ अत्र कोशादुद्भूता कौशिकी एषैव
शुम्भनिशुम्भयोरन्येषामपि नाशहेतुः । यच्चोक्तं शिवपुराणे । दैत्यौ
शुम्भनिशुम्भाख्यौ भ्रातरौ सम्बभूवतुः । याचितं तपसा ताभ्यां ब्रह्मणः
परमेष्ठिनः । अवध्यत्वं जगत्यस्मिन्पुरुषैरखिलैरपि । अयोनिजा तु या
कन्यास्यङ्गकोशसमुद्भवा । अजातपुंस्पर्शरतिरविलङ्घ्यपराक्रमा ।
तस्याः स्तुनौ वधः संख्ये तस्यां कामाभिभूतयोः । इति चाभ्यर्थितो ब्रह्मा
ताभ्यां प्राह तथास्तिवति । एवं ब्रह्मवरदानेन तयोरभ्यर्थितरूपा कौशि-
क्येवेति ॥ ४१ ॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं विभ्राणां सुमनोहरम् ॥

ददर्श चण्डोमुण्डश्च भृत्यौशुम्भनिशुम्भयोः ॥ मं. ८९ श्लो. ४२

तत इति । कौशिक्याविर्भावानन्तरं शुम्भनिशुम्भयोः भृत्यौ सेवको । चण्डते इति चण्डः । चडि कोपे । पचाद्यच् । एवं मुण्डति खंडयतीति मुण्डः । मुडि खंडने । पचाद्यजन्तः । परं श्रेष्ठं सुष्ठुमनोहरति स्वाधीनं करोतीति तथाविधंरूपं बिभ्राणां अम्बिकां कौशिकीं ददर्शत्य-
न्वयः । अत्र पार्वत्याः नि सृताम्बिकेत्यव्यवहितकौशिकीसामानाधिकर-
ण्येन श्रवणादम्बिकाशब्देन प्रकृते कौशिक्येव ग्रहीतुमुचिता न कालिकेति
पूर्वोक्तरीत्या सुमनोहररूपस्य तत्रैव सद्भावादिति सुधीभिरवसेयमिति
॥ ४२ ॥

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ॥

काप्यास्तेस्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ॥ मं. ९० श्लो. ४३

ताभ्यामिति । शुम्भनिशुम्भौ प्रति चण्डमुण्डवाक्यम् । ताभ्यां चण्डमुण्डाभ्यां शुम्भाय शुम्भमनुकूलयितुं । चः पादपूरणे । आख्याता काथता । क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी । कथनप्रकारमाह—हे महाराज प्राप्तसर्वैश्वर्य । अतीव अत्यर्थं सुमनोहरा अति सुन्दरी हिमप्रधानमचलं पर्वतं भासयन्ती प्रकाशयन्ती कापि अनिवचनीया स्त्री योषा आस्ते । उपविष्टास्तीति शेषः । चाख्याता अतीवेत्यत्र वाक्ये संहिताया अविवक्ष-
णान्न सन्धिः ॥ ४३ ॥

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ॥

ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥ मं. ९१ श्लो. ४४

नैवेति । तादृक् तादृशं उत्तमं श्रेष्ठं क्वचित् क्वापि लोके केनचित् केनापि पुरुषेण न दृष्टमेवेति । एवकारो भिन्नक्रमः । कापि देवी देवस्त्री । यद्वा । कापि कृताभिषेका राज्ञी । अथवा काप्यनिवचनीया-
सौ स्त्री त्वया ज्ञायतां अवगम्यतां । ज्ञातितः कुलतश्चेति शेषः । ज्ञाति-
कुलज्ञानेन किमित्याह—हे असुराणादैत्यानामीश्वर प्रभो शुम्भ । त्वया
गृह्यतां भार्यात्वेन स्वीक्रियतामित्यर्थः ॥ ४४ ॥

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।

सातु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ मं. ९२ श्लो. ४५

स्त्रीरत्नमिति । स्त्रीरत्नमुत्तमा स्त्री अतिचारुणि सुन्दराण्यङ्गानि

हस्तपादाद्यवयवा यस्याः सा । स्वाङ्गाच्चेति ङीप् । दिशः प्राच्याद्याः
 त्विषा कान्त्या द्योतयन्ती प्रकाशयन्ती सा प्रसिद्धा तिष्ठति । पुनः तां
 स्थियं भवान् त्वं हम्गोचरां कर्तुं अर्हति योग्यो भवति । रत्नमित्यजह-
 झिङ्गत्वात्क्लीबत्वं । रत्नशब्द उत्कृष्टार्थवाचकः । जातौ जातौ यदुत्कृष्टं
 तद्रत्नमभिधीयत इत्यभिधानात् ॥ ४५ ॥

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।

त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे ॥ मं. ९३ श्लो. ४६
 यानीति । हे प्रभो निग्रहानुग्रहसमर्थ । शुभ । त्रैलोक्ये गजाना-
 मश्वानां समाहारः गजाश्वं । सेनाङ्गत्वात्समाहारः । गजाश्वं आदिर्येषां
 तानि रत्नानि तत्तज्जात्युत्कृष्टानि समस्तानि अविलानि मणयः पद्म-
 रागवज्रादयः । यानि वर्तन्त इति शेषः । यत्तदोर्नित्यसंबन्धात् । तानि
 रत्नानि साम्प्रतमधुना ते तव गृहे भान्ति प्रकाशन्ते इति वै प्रसिद्धमे-
 तत् । साम्प्रतं तानि ते गृहे इति दाक्षिणात्याः ॥ ४६ ॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।

पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥ मं. ९४ श्लो. ४७

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेंगने ।

रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोद्भूतम् ॥ मं. ९५ श्लो. ४८

ऐरावतेति द्वाभ्याम् । इरावति जलसमुद्रे सुरासमुद्रे वा भव ऐरा-
 वतः । इरा मद्ये च वारिणीत्यभिधानात् । पुराणि दारयतीति पुरन्दर
 इन्द्रः । वाचं यमपुरन्दरौ चेति खजन्तनिपातः । त्यब्लोपे कर्मणि
 पञ्चमी । पुरन्दरमभिभूयेत्यर्थः । समानीतस्तद्गजरत्नं ते तव गृहे वर्तत
 इत्यन्वयः । निर्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति । सर्वना-
 मानि तल्लिङ्गानि भवन्तीति । गजस्य रत्नशब्दविशेषणत्वे न दोषः ।
 गजो रत्नमिति दाक्षिणात्यपाठः । पारिणः समुद्राब्जातः पारिजातः कल्प-
 वृक्षः स चासी तरुश्च । जयमित्यंगुल्या निर्दशः । तथैव पुरन्दरमभिभूये-
 वेत्यर्थः । उच्चैः श्रवसी कणौ यस्येति हयोश्च तेंगने तिष्ठति ॥ ४७ ॥
 विमानमिति । विदधातीतिवेधाः ब्रह्मा । विधात्रो वेधचेति वेधादेशोऽसि
 प्रत्ययश्च । तस्य स्रष्टुः । अद्भुतं आश्चर्यं । हन्ति गच्छतीति हंसः । ते
 मानसौकसः । हंतेर्वृत्तुवदिहनीति सः यद्वा ॥ अचि, भवेद्वर्णागमाद्वंस इति
 सक् । हंसः स्यान्मानसौकसि । निर्लोभनृपत्रिण्वकंपरमात्मन्यमत्सरे इति

शब्दान्वः । तैः संयुक्तं सहितं रत्नभूतं । रत्नमिति भावप्रधानो निर्देशः ।
विशिष्टं मानयन्त्यनेनेति विमानं देवरथः । पुंसि संज्ञायामिति करणे घः ।
विशेषेण मांत्यस्मिन्निति वा । अधिकरणे ल्युट् । विगतं मानमुपमा अस्मे-
ति वा । विमानं व्योमयाने च तथा भूमिगृहेऽपि च । घोटके यानमात्रे च
पुनर्पुंसकयोर्मत इति कोशान्तरम् । यद्विमानमेवंभूतमिह लोके आनीत-
मासीत्तत्ते तव अङ्गत्यस्मिन्नित्यङ्गनमजिरं । अधिकरणे लुट् । तस्मिन्न-
जिरे तिष्ठतीत्यन्वयः । अङ्गनं प्राङ्गणे याने कामिन्यामङ्गनामतेति
विश्वः । एतेनाङ्गनशब्दं मूर्द्धन्योपधं पठन्तः प्रामादिका एवेत्यवधेयम्
॥ ४८ ॥

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।

किञ्जलिकनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ॥ ९६ ॥ श्लो. ४६

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्त्रावि तिष्ठति ।

तथायं स्यन्दनवरो यः पुरासीत्प्रजापतेः ॥ ९७ ॥ श्लो. ५०

निधिरिति द्वाभ्याम् । पद्मं कमलमस्त्यस्या इति पद्मा लक्ष्मीः ।
अर्श आद्यच् । पद्मा लक्ष्मीरस्त्यस्मिन्निति पद्मः । अर्श आद्यजन्तः । महा-
श्चासीपद्मश्च महापद्मः । तन्नामा एष प्रसिद्धो धनानामीश्वरात्कुबेरात्कु-
बेरमभिभूयेत्यर्थः । समानीतः प्रापितः । नितरां धीयते नितरां दधाति
पोषयत्यनेन वा निधिः शेवधिः । डुधाब्धधारणे । उपसर्गे घोः किः ।
निधीयते वा निधिः धिधारणे संपदादिः । आगमद्यास्त्रस्यानित्यत्वान्न
तुक् । तदेतन्निधिरत्नं ते गृहे तिष्ठतीत्युत्तरेणान्वयः । च पुनः आपो धीय-
न्तेस्मिन्नित्यब्धिः समुद्रः । कर्मण्यधिकरणे चेति धाजः किः । न म्लानानि
पङ्कजानि कमलानि यस्यां सा तां । किञ्चिज्जलन्ति जटीभवन्तीति किञ्ज-
ल्काः केसराः । जल अपवारणे । बाहुलकात्कः । किजल्कः केसरोऽस्त्रि-
यामित्यमरः । प्रशस्ताः किजल्काः यस्यां सा । अविशीर्णकेसरामिति
यावत् । अवयवगतो धर्मः केसरवत्त्वं पङ्कज इव मालायामप्यतिदिश्यते ।
अवयवावयविनोरभेदोपचारात् । करस्यदण्डेन दण्डी पुरुष इतिवत्किञ्ज-
लिकनीमित्युक्तं । नाम्ना किञ्जलिकनीमिति वा । मालां तुभ्यं ददौ ।
तत्सग्रतं पङ्कजरत्नं वापचारतस्ते गेहे तिष्ठतीत्यन्वयः ॥ ४९ ॥ छत्र-
मिति । वारुणं वारुणाख्यं दिक्पालसंबन्धि । काञ्चतीति काञ्चनं दीप्तिः ।
काचि दीप्ती । नन्द्यादित्वाल्ल्युः । कञ्चनं दीप्तिं सवति वर्षति तच्छीलं

काञ्चनस्रावि । लावण्यस्रावि मुखवदुत्प्रेक्षितमेतत् । काञ्चनस्येव कान्तिं
 स्रवतीति काञ्चनस्रावि । पृषोदरादित्वात्कान्तिशब्दलोप इति व्याख्यानं
 तु न चमत्कारावहं । काञ्चनं सुवर्णं स्रवति वर्षतीति काञ्चनस्रावीति
 नागेशः । यस्य गेहे महापद्मादयो निधयः सन्ति तस्यच्छत्रस्युतसुवर्णे-
 न किंस्यादित्युत्प्रेक्ष्यमदो व्याख्यानमिति शतनुः । अत्रैवं । अन्यच्छत्रापे-
 क्षया काञ्चनवर्षगुणस्याधिकत्वेन शोभाविशेषावहत्वाच्च रत्नत्वेऽव्याघा-
 तात् नहि काञ्चनवर्षच्छत्राहरणं लोभमूलकमपि तु शोभाविशेषसंपादन-
 मूलकं । निधिभिस्तादृशशोभायाअशक्यक्रियत्वादिति । छादयत्यनेनेति
 छत्रं । छद अपवारणे । ण्यंतः । इस्मन्वन्नृदिवषुचेतिह्रस्वः । तथा पुरा
 पूर्वं प्रजापतेर्ब्रह्माणोदक्षस्य वा आसीत् । ब्रह्मदक्षान्यतमस्वामिकोऽभूदि-
 त्यर्थः । सोऽयं स्यन्दते इति स्यन्दनोरथः । स्यन्दुप्रसवणे चलनशब्दार्था-
 युच् । तेषुवरः श्रेष्ठः । तथा तेनैव प्रकारेण समानीत इति शेषः तवगे-
 हे तिष्ठतीत्यर्थः । याने चक्रिणि युद्धार्थे क्षताङ्गः स्यन्दनो रथ इत्यमरः
 ॥ ५० ॥

मृत्योस्तृत्कान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हता ॥

पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥ मं. ९८ श्लो. ५१

मृत्योरिति । मरणं मृत्युः । तदधिष्ठात्री यमरूपा देवतापि मृत्युः ।
 अग्र्यतेऽस्मिन्नुपस्थिते इति व्युत्पत्तेः । मृड् प्राणत्यागे । भुजिमृड्भ्यां
 युक्त्युकाविति त्युक् । मृत्युर्नाम मरणे यमे इत्यमरः । तस्य मृत्योः ।
 उत्क्रमणमुत्क्रान्तिः मरणं । तां दादातीत्युत्क्रान्तिदा । नामेति प्रसिद्धी ।
 मृत्योर्यमस्य उत्क्रान्तिदा मृत्युदा शक्तिः सामर्थ्यं त्वया आहृता बलाद्गृ-
 हीतेति नामप्रसिद्धमेतत् । ईशेति शुभसंबोधनम् । सलिलानां राजा
 सलिलराजो वरुणः । राजाहःसखिभ्यष्टजिति टच् । तस्येति तत्स्वा-
 मिकः । पाशयति बन्धयत्यनेनेति पाशोनागनिमित्तो बन्धननिमित्तमा-
 युधं । कर्तुं । तव भ्रातुर्निशुम्भस्य । परिगृह्यते अनेनेति परिग्रहः परि-
 जनः । तस्मिन्निषेधेतिष्ठतीतिशेषः । पाशो बन्धनशस्त्रयोः । पत्नीपरिज-
 नादानमूलशापाः परिग्रहा इत्यमरः । परिपूर्वाद्ग्रहधातोः ग्रह वृह
 निश्चिगमश्चेत्यप् ॥ ५१ ॥

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ॥

वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥ मं. ९९ श्लो. ५२
 निशुम्भस्येति । चकारात्परिग्रहे इत्यनुवर्तते । अब्धेः समुद्रा-

जाताः समस्ताः रत्नानां मणीनां जातयोभेदाः मुक्तापद्मरागविद्रुमादयः शुम्भस्य परिग्रहे परिजनैः पत्न्यां वा विषये तिष्ठन्तीति शेषः । जातिः सामान्यगोत्रयोः । वह्निरग्निरपि । अग्निः शौचं नैर्मल्यकरणं ययोः । अग्नेः शौचं नैर्मल्यकरणं ययोरिति वा । वाससी अधरोत्तरीयाख्यवासो-युग्मं ते तुभ्यं ददौ । प्राञ्चस्तु । कल्पवृक्षोपकल्पितं स्वर्णमयमग्निदेवताकं अग्निक्षेपमात्रापनेयश्यामिकं वासोयुग्ममग्निशौचमाहुः । वह्निरपीति गौडाः । वह्निश्चापीति दाक्षिणात्याः ॥ ५२ ॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।

स्त्रीरत्नमेवा कल्याणी त्वया कस्माच्च गृह्यते ॥ मं. १०० श्लो. ५३

एवमिति । भो दैत्येन्द्र दैत्येश्वर । समस्तानि रत्नानि स्वस्वजा-त्युत्कृष्टानि वस्तूनि एवमुक्तप्रकारेण ऐरावतादीनि ते तुभ्यं त्वदर्थमनुकू-लयितुं वा आहृतानि उपहरीकृतानि । देवैरिति शेषः । स्त्रीरत्नमुत्तमा स्त्री एषा मदृष्टा कल्याणी कल्याणगुणवती सल्लक्षणत्वात्सर्वमङ्गलेति यावत् । कस्माद्धेतोः त्वया न गृह्यते । आग्रहे न किञ्चित्कारणमस्ति । तस्माद्गृह्यतामित्यर्थः ॥ ५३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं० १०१ ॥

चण्डमुण्डोक्तमुपसंहरन्सुरमुत्तरवृत्तान्तं मेधा मुनिरुवाच—

निशम्येति वचः शुम्भः सतदा चण्डमुण्डयोः ।

प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥ मं. १०२ श्लो. ५४

निशम्येति । शुम्भः चण्डमुण्डयोरिति प्रागुपन्यस्तं वचः निशम्य श्रुत्वा । गीर्यते अनयेति ग्रीवा कंधरा । सुष्ठु ग्रीवा यस्येति सुग्रीवः । तन्नामानं । दूयते अनेन यथोक्तवादिवात्पर इति दूतः संदेशहरः । दूढ परितापे । गत्यर्थेति क्तः । यद्वा दवति गच्छतीति दूतः । दुगतौ । दुत-निभ्यां दीर्घश्चेति क्तः । दूतं संदेशहरं । देव्या इति ल्यब्लोपे पञ्चमी । देवीमुद्दिश्येत्यर्थः । प्रेषयामास प्रस्थापयामास । ईषगती प्रपूर्वाञ्चौरादिकः । आदुगुणः । लिटि रूपम् । स्यात्संदेशहरो दूत इत्यमरः । महासुरमिति-गौडाः । महासुर इति दाक्षिणात्याः । द्वितीयान्तं दूतविशेषणम् । प्रथमान्तं शुम्भविशेषणमिति ॥ ५४ ॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।

यथा चाभ्येति संप्रीत्या तथा कार्यत्वया लघु ॥ मं. १०३ श्लो. ५५

इतीति । इति च इति च ईदृशं चण्डमुण्डसदृशमित्यर्थः । साम्ना-
भेदेनेति चार्थः । तत्र गत्वा सा स्त्री त्वया साम्ना भेदेन वा वक्तव्या ।
ननु तादृग्वचने किसामर्थ्यमिति दूतशङ्कां परिहरन्नाह—मम राज्ञः
वचनाद्वाक्यात् । सन्देशमात्रहरत्वेन भवान्नदुष्यतीति भावः । ननु
यथोक्तकथने सा कदाचिन्नागच्छेदिति शङ्कामपि निवारयति । यथेति ।
एवार्थे च । यथैव सा सम्यक् प्रीत्या अतिहर्षेण लघु शीघ्रं अभ्येति
आभिमुख्येनागच्छति त्वया तथा कार्यं विधेयम् ॥ ५५ ॥

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेतिऽशोभने ।

सा देवी तां ततः प्राहश्लक्ष्णमधुरया गिरा ॥ मं. १०४ श्लो. ५६

सेति । अतिशोभने बहुमुन्दरे यत्र यस्मिन् शैलस्य हिमाद्रेः उद्देशे
विषये अधित्यकायां सा देवी प्रकाशस्वरूपा कौशिकी आस्ते उपविष्टा-
स्ति । तत्र गत्वा प्राप्य श्लक्ष्णमनुत्कटं यदा स्यात्तथा मधुरया मृदुया
गिरा तां कौशिकीं आगतः सुग्रीवः प्राह अवादीत् । प्राहेति तिङ्न्त-
प्रतिरूपको निपातः । तां च देवीं तत इति दक्षिणात्यपाठः । श्लिषे-
रन्धोपधाया इति कस्नप्रत्यये श्लक्ष्णमिति ॥ ५६ ॥

दूत उवाच ॥ मं. १०५ ॥

सुग्रीवो दूतो देवीं प्राप्य शुम्भाभिप्रायं सूचयन्निजाभि-
लषितमुवाच—

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ॥

दूतोऽहंप्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥ मं. १०६ श्लो. ५७

देवीति । हे देवि । शुम्भो दैत्यानामीश्वरः प्रभुः सर्वाधिपत्वात् ।
त्रैलोक्ये त्रिषु लोकेषु परमाणामुत्कृष्टानामिन्द्रादीनामपि प्रभुः । तन्नि-
ग्रहकर्तृत्वात् । तेन प्रेषितः प्रेरितो दूतः सन्देशहरोऽहं सुग्रीवः तव
सकाशं समीपं त्वत्सकाशं इह हिमाद्रेरधित्यकायां आगतः प्राप्तः ।
अस्मीति शेषः । प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति मपर्यन्तस्य युष्मदस्मदस्त्वदा-
देशे त्वत्सकाशमिति सिद्धम् ॥ ५७ ॥

अन्यादृताहः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।

निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्वतत् ॥ मं. १०७ श्लो. ५८

अव्याहताज्ञ इति । यः सदा सर्वकालं सर्वास्वखिलासु देवाना-
मिन्दुगुर्विन्द्रादीनां योनिषु उत्पत्तिहेतुषु अत्र्यङ्गिरः कश्यपप्रभृतिषु अव्या-
हताज्ञः अप्रतिहतघासनी यः । योनिः स्त्रीपुंसयोश्च स्यादाकरे स्मर-
मन्दिरे इति विश्वः । योनिः कारणे भगतोययोरिति हैमः । एवं च योने-
विशेष्यत्वात्तस्य चोक्तकोशात्स्त्रीलिङ्गतया तद्विशेषणं सर्वास्विति न
दुष्यति । यदि तु विद्याधरादयो दश देवाः योनिरेषां ते देवयोनयो
देवांश्चाका इत्यर्थो विवक्षितस्तदान्यपदार्थतया देवयोनिशब्दस्य पुल्लिङ्ग-
त्वात्सर्वास्वित्यत्रार्थो लिङ्गव्यत्ययो बोध्यः । अत्र तागेशस्तु देवयोनिषु
तदाख्यगणेषु देवाश्च ते योनयश्चेत्याह । चतुर्भुजमिश्रस्तु योनिशब्दस्य
पुंस्त्वात्सर्वास्विति व्यत्ययात्स्त्रीलिङ्गतेत्याह । आज्ञानमाज्ञा शासनं ।
ज्ञा अवबोधने । आतश्चोपसर्गे इत्यङ् । अदन्तत्वाद्वाप् । अववादस्तु
निर्देशो निर्देशः शासनं च सः । शिष्टिश्चाज्ञा चेत्यमरः । अव्याहता अप्रति-
हता आज्ञा शासनं यस्य सः निःशेषेण जिता अभिभूता अखिलाः समस्ता
दैत्यारयो येन तथाविधः शुम्भः । यद्वाक्यमाह-वदति स्म तत्त्वं शृणुष्व
शृण्वित्यर्थः । विद्याधरापसरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः । पिशाचो गुह्यकः
सिद्धो भूतोऽमी देवयोनय इत्यमरः ॥ ५८ ॥

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।

यज्ञभागानहं सर्वानुपाशनामि पृथक्पृथक् ॥ मं. १०८ श्लो. ५९

ममेति । स पौरुषमाह चतुर्भिः । अखिलं त्रैलोक्यं मम मत्स्वामिक-
मस्तीति शेषः । अत एव देवा इन्द्रादयो मम वशानुगाः । मदिच्छा-
विधायिनः सन्तीति शेषः । वशा आयताश्च ते अनुगाश्च सेवकत्वात्पश्चा-
द्गामिनश्चेति कर्मधारयो वा । अथवा अनुइवार्थे । गाः वृषभा इव
वशाः स्वायत्ता इत्यर्थः । वशा नार्य इव अनुगाः । वश कान्तौ अजन्तः ।
वशो जनस्पृहायत्तेष्वायतत्त्वप्रभुत्वयोः । वशा नार्या बन्धगव्यां हस्तिन्यां
दुहितयंपीति हैमः । अहं शुम्भः सर्वान् तत्तद्देवताविशेषान् पृथक् पृथक्
इन्द्राद्यधिकारभेदेन यज्ञभागान् यज्ञोपकल्पिताहुतीः उपसन्निहितः सन्
अशनामि भुंजे ॥ ५९ ॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वशान्यशेषतः ।

तथैव गजरत्नानि हत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥ मं. १०९ श्लो. ६०

त्रैलोक्ये इति । त्रिषुलोकेषु वराणि श्रेष्ठानि रत्नानि मणयः मम वक्ष्यामि । सन्तीति शेषः । तथैव अशेषतः अशेषाणि गजरत्नानि ऐरावतादयोऽष्टौ मम वक्ष्यामीत्यनुषज्यते । हृत्वा देवेन्द्रवाहनमित्युत्तरान्वयि । देवेन्द्रवाहनमैरावतं हृत्वा गृहीत्वा तेन सहेत्यर्थवर्णने तु गजरत्नानीत्यनेनैवान्वयो बोध्यः । गजरत्नमिति दाक्षिणात्यपाठः ॥ ६० ॥

क्षीरोदमथनोद्धृतमश्वरत्नं ममामरैः ।

उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥ मं. ११० श्लो. ६१

क्षीरोदेति । क्षीरोदमुदकं यस्यासौ क्षीरोदो दुग्धसमुद्रः । उदकस्योदः संज्ञायामित्यधिकारे उत्तरपदस्य चेत्युदकस्य चोदादेशः । तस्य मथनाद्विलोडनादुद्धृतमाविर्भूतं उच्चैःश्रवसी कर्णौ यस्य सः । उच्चैःश्रवसः । अत्यन्वयपूर्वात्सामलोम्न इत्यत्राजिति योगविभागादचि पद्मनाभ इति वदजन्तः प्रयोगः । यथा हरिवंशे—आकाशस्थैर्दिवौकसैरिति । नैरुक्तो वा वर्णागमो बोध्यः । उच्चैःश्रवस इत्यकारान्ता संज्ञानाम यस्य तं । अश्वरत्नं ह्यश्रेष्ठं देवेन्द्रस्य शक्रस्य वाहनं हृत्वा समादाय तु पुनः प्रणिपत्य प्रणामं कृत्वा अमरैः सुरैः मम समर्पितमुपायनीकृतमित्यन्वयः ॥ ६१ ॥

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।

रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥ मं. १११ श्लो. ६२

यानीति । भोः शोभने सुन्दरि । देवेषु सूर्यादिषु गन्धर्वेषु देवगायनेषु चित्ररथादिषु उरसा गच्छन्तीत्युरगाः सर्पाः वासुक्यादयः । उरसो लोपश्चेति गमेर्ङः । तेषु विषये च पुनः यानि अन्यानि वस्तूनि रत्नभूतानि तानि मय्येव शुम्भे । एवं भूतानि प्राप्तानि स्थितानि वा नान्यत्रेति भावः । शोभने सप्तम्यन्तं वा मयीत्यस्य विशेषणम् ॥ ६२ ॥

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।

सात्वमस्मानुपागच्छ यतोरत्नभुजो वयम् ॥ मं. ११२ श्लो. ६३

स्त्रीरत्नभूतेति । हे देवि लोके जने स्त्रीषु रत्नभूतां श्रेष्ठत्वं प्राप्तां त्वां देवीं वयं मन्यामहे जानीमः । सा त्वमस्मानुपागच्छ प्राप्नुहि । कुतः यतः वयं रत्नभुजः श्रेष्ठवस्तुभोगकर्तारः स्म इति शेषः ॥ ६३ ॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।

भजत्वं चञ्चलापाङ्गिरत्नभूतासि वै यतः ॥ मं. ११३ श्लो. ६४

मामिति । हे चञ्चलापाङ्गि चपलनेत्रप्रान्ते । यतः यस्मात्
रत्नभूतासि रत्नत्वं श्रेष्ठत्वं प्राप्तासि अतः मां ममानुजं कनिष्ठभ्रातरं
उरुविक्रमं विक्रमातिशयभाजं निशुम्भं वा भज आश्रय । स्वाङ्गान्चेति
ङीप् । वै प्रसिद्धौ ॥ ६४ ॥

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।

एतद्बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥ सं. ११४ श्लो. ६५

परमैश्वर्यामिति । मत्परिग्रहात् मदाश्रयादतुलं निरुपमं परमुत्कृष्टं
ऐश्वर्यं प्रभुत्वं प्राप्स्यसे प्राप्ताभविष्यसि । एतत्प्रापयमानमैश्वर्यं बुद्ध्या
समालोच्य सदसद्वेति विचार्य मत्परिग्रहतां मत्पत्नीत्वं व्रज प्राप्नुहीत्यर्थः
॥ ६५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ सं० ११५ ॥

देव्या उत्तरं वक्ष्यन्देव्या अनौद्धत्यं सुरथं प्रति प्रकटय-
न्मुनिर्देवीवाक्यमनुवदति—

इत्युक्त्वा सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।

दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥ सं. ११६ श्लो. ६६

इत्युक्तेति । दुर्गा दुष्प्राप्या भगवती षडैश्वर्यवती अचिन्त्यमा-
हात्म्या वा भद्रा सर्वमङ्गला इति पूर्वनिर्दिष्टप्रकारेण दूतेन सुग्रीवेणोक्ता
सा देवी द्युतिमती गम्भीरं दुर्गेयं अभ्यन्तरवर्त्ति स्मितमीषद्धास्यं यस्या
एवं भूता सती दूतं प्रति जगौ उवाच । सा का यया हृदं जगद्धार्यते
आधारशक्तिवात् । गम्भीरेति गाते गच्छन्ति वा जलजन्तवोऽत्रेति
गम्भीरं । गाङ्गती । गम्लती । अनयोगंभीरगम्भीराविति निपातः ।
यद्यपि निम्नं गभीरं गम्भीरमित्यभिधानान्निम्नार्थो गम्भीरस्तथापीह-
दर्थबाधाह्नक्षतया दुर्गेयत्वेपर्यवस्यति । गौ शब्दे । आदेव इत्यात्वं । आत
जीगलः ॥ ६६ ॥

देव्युवाच ॥ सं. ११७ ॥

स्वीद्धत्वं गोपायमाना दूतोक्तिमेवादौ भगवती स्तुपन्नुवाच—

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम् ।

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापितादृशः ॥ सं. ११८ श्लो. ६७

सत्यमिति । हे दूत । त्रयो लोकास्त्रैलोक्यं । चतुर्वर्णादिभ्यश्चेति

स्वार्थे व्यञ्ज । तस्य अधिपतिः प्रभुः शुम्भः निशुम्भश्चापि तादृशः शुम्भ-
तुल्यः युवराजत्वादिति । त्वया सत्यं तथ्यमुक्तं । अत्र विषये किञ्चिदपि
मिथ्या असत्यं ईषदपि नोक्तं नोदितं । उक्तं वद व्यक्तायां वाचि । क्तः ।
वचिस्वपियजादीनां कितीति सम्प्रसारणम् । सत्यं तथ्यमृतं सम्यगित्य-
मरः । सत्यं कृते च शपथे तथ्ये च त्रिषु तद्वतीति कोशान्तरम् ॥ ६७ ॥

तर्हि विलम्बे कोहेतुरित्याशङ्क्यामाह—

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ॥

श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥ मं. ११९ श्लो. ६८

किं त्विति । किं चेत्यर्थः । अत्र विषये यन्मया प्रतिज्ञातं सङ्कल्पितं
कर्तव्यत्वेन निश्चितं तन्मिथ्या कथं केन प्रकारेण क्रियते । प्रतिज्ञातं
त्ववश्यं विधेयमेवेत्यर्थः । सङ्कल्पितं न जानामीत्याशङ्क्यामाह अल्प-
बुद्धित्वादल्पज्ञानतया प्रतिज्ञा कर्तव्यनिश्चयः मया कृता सा त्वया
श्रूयतामित्यन्वयः । मृषा पश्चात्तापसूचकोऽल्पबुद्धित्वादित्ययं हेतुर्दूत-
प्रतारणार्थः ॥ ६८ ॥

प्रतिज्ञामेव प्रकटयन्नाह—

यो मां जयति संग्रामे यो मेदर्पं व्यपोहति ।

यो मे प्रतिबलोलोके समे भर्ता भविष्यति ॥ मं. १२० श्लो. ६९

योमामिति । यः पुमान् मां कौशिकीं संग्रामे युद्धे जयति बलेना-
भिभवति स मे भर्ता पतिर्भविष्यतीत्येकः पक्षः । यः मे मम दर्पं बला-
भिमानं अयुद्धेनैव व्यपोहति शमयति स मे भर्ता भविष्यतीति द्वितीयः
पक्षः । अयुद्धेन दर्पोपशमो यथा दाशरथिना रामेण यामदग्न्यस्य । यो
लोके भुवने प्रतिबलः समानसामर्थ्यः स मे भर्ता भविष्यतीति तृतीयः
पक्षः । पूर्वपूर्वपक्षाभिभवेसति सर्व पक्षाः दूतप्रतारणार्थाः । असम्भ-
वत्वात्सत्यापि ॥ ६९ ॥

तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।

मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिगृह्णातु मे लघु ॥ मं. १२१ श्लो. ७०

तदिति । यद्यस्मान्मज्ज्यमन्तरेण मत्प्राप्तिदुर्लभा । तत्तस्मादत्र
हिमाद्रिशिखरे महासुरः शुम्भो निशुम्भो वा आगच्छतु अत्रविषये चिरेण
चिरकालेन विलम्बेन किं लघु शीघ्रं मां जित्वा अभिभूय मे पाणिं हस्तं
गृह्णातु विवाहं करोतु । इति वाक्यं दूतप्रतारणं सत्यं चेति । पणायन्त्य-

वैधेति पाणिः । पण व्यवहारे । अशिपणाय्योरुडायलुको चेति इण् आय-
प्रत्ययस्य लुक् च । पञ्चशतः शयः पाणिरित्यमरः ॥ ७० ॥

दूत उवाच मं. १२२ ॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।

त्रैलोक्ये कः पुमाँस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ॥ मं. १२३ श्लो. ७१

अवलिप्तासीति । हे देवि द्युतिमति । त्वं अवलिप्तासि स्तब्धासि ।
एवं मां योजयतीति प्रकारकं वाक्यं मम अग्रतः पुरः मा ब्रूहि । शुम्भनि-
शुम्भयोरग्रे त्रैलोक्ये कः पुमान् योद्धुं तिष्ठेन्न कोपीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।

तिष्ठन्ति संमुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ॥ मं. १२४ श्लो. ७२

अन्येषामिति । अन्येषां रक्तबीजादीनामपि सम्मुखे युधि संग्रामे
सर्वे निःशेषाः देवाः न तिष्ठन्ति वै प्रसिद्धमेतत् । किंपुनस्त्वमेकिका
असहायभूत स्त्रीजातिः । अबला स्यास्यतीति शेषः । एकादाकिनिवास-
हाये इतिकन् । कुत्सायां वा एकिकेति प्रयोगः ॥ ७२ ॥

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।

शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्रीप्रयास्यसि संमुखम् ॥ मं. १२५ श्लो. ७३

इन्द्राद्या इति । आदौ भव आद्यः । इन्द्रः आद्यो येषां ते इन्द्राद्याः ।
कलाभिरंशैः सहिताः सकलाः देवाः सुराः येषां संयुगे संग्रामे न तस्थुः
स्थिरा न बभूवुः । तेषां शुम्भादीनां शुम्भनिशुम्भरक्तबीजप्रभृतीनां
संमुखं समक्षं त्वं स्त्री कथं केन प्रकारेण प्रयास्यसि गमिष्यसीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।

केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥ मं. १२६ श्लो. ७४

सेति । मयैव उक्ता प्रार्थनया कथिता शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वम-
न्तिकं सा प्रसिद्धा त्वं गच्छेति प्रार्थनायां लोट् । केशानां आकर्षणेन
बलाद्ग्रहणेन निर्धूतं तिरस्कृतं गुरोर्भावो गौरवं श्रेष्ठभावो यस्या एवं-
भूता सती मा गमिष्यसि । केशाकर्षणेन त्वद्ग्रहणे तिरस्कृतगौरवभवत्त-
यनापेक्षया मदुक्त्या तत्र गमनं न्याय एवेत्यर्थः ॥ ७४ ॥

देव्युवाच ॥ मं. १२७ ॥

एवमेतद्बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।

किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचितापुरा ॥ मं. १२८ श्लो. ७५
 एवमिति । शुम्भोबली बलयुक्तः । चपुनः निशुम्भः अति अत्यर्थं
 वीर्यवान् पराक्रमी इति त्वयोक्तं एवमेतद्यथार्थमित्यर्थः । पुरा पूर्वं मे
 मम प्रतिज्ञा यो मां जयति संग्रामे इत्यादिरूपा । आलोचनमालोचो
 विचारः । लोचूदर्शने । आलोचो विचारः संजातोऽस्याः आलोचिता
 संजातविचारा । न आलोचिता अनालोचिता असंजातविचारा । अना-
 लोच्यकृता यद्यस्मात्तत्तस्मात्तिकरोमि । अनालोच्यापि कृतायाः प्रतिज्ञा-
 याः निर्वाह एवोचितः । कृतप्रतिज्ञात्यागिनां तत्र तत्र नरकप्राप्तिस्मर-
 णादिति दूतप्रतारणाय देव्या परिहासोक्तिः ॥ ७५ ॥

स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।

तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु यत् ॥ मं. १२९ श्लो. ७६

ननु त्रैलोक्यनिर्मातुर्ब्रह्मणो लब्धवरबलत्तया पाकशासनादिलोक-
 पालसंपद्विलासभाजोरुभयोर्देत्यमण्डलीमूर्द्धन्ययोः सहसा तृणवदवहेलनम-
 नुचितमित्यादिविवक्षुं दूतमवकलय्य दूतानामवध्यतामवकलयन्ती धृष्टता-
 मपि निवारयन्ती वाक्याटवेन दूतं निवृत्तरीकरोति—सत्त्वमिति । यस्मा-
 त्प्रतिज्ञातं विधेयमेवेति निश्चयस्तत्तस्मात् शुम्भप्रेषितस्त्वं गच्छ ।
 शुम्भमिति शेषः । किं मया ते तुभ्यं यदेतदुक्तं कथितं आदृतः मदुक्ति-
 कथने सावधानः सन् असुराणामिन्द्राय प्रभवे शुम्भाय तत्सर्वमाचक्ष्व
 कथय । ननु अनुचितं कथं वक्तव्यमित्याशङ्कयामाह—सचेति । च पुनः
 सः शुम्भो यद्युक्तमुचितं तत्करोत्वित्यन्वयः । दूतस्य ययोक्तवादित्वन
 दोषो न भवति । त्वदुक्तिसमनन्तरोचितानुचिततद्विचारप्रयुक्तसन्तोषद-
 ण्डादिस्तु सपत्नं प्रति प्रभोः कृत्यमिति भावः । तयोक्तमेव नस्वकपोल-
 कल्पितमिति शिवम् ॥ ७६ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे

पञ्चमाध्यायार्थसंग्रहोनामपञ्चमोविश्रामः ।

आदितोदशमोविश्रामः ॥ १० ॥

अथ षष्ठाध्यायारम्भः ॥

तत्र षष्ठाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदंबरहस्ये—

विंशतिश्लोकसंयुक्ते षष्ठाध्याये शृणुप्रिये । आदावृषिस्वाचेति
श्लोकाश्चत्वार ईरिताः ॥ १ ॥ पुनर्ऋषिस्वाचेति तेनाज्ञप्तस्ततः परम् ॥
मन्त्रत्रयमिदं प्रोक्तं देव्युवाचेति वै ततः ॥ २ ॥ दैत्येश्वरेण प्रहित एको
मन्त्रः प्रकीर्तितः । अथोऋषिस्वाचाथेत्युक्तः सोऽभ्यधावत् ॥ ३ ॥ इत्या-
दिद्वादशश्लोकाः षष्ठेऽध्याये प्रकीर्तिताः ॥ चतुर्विंशतिभेदास्ता देवताहु-
तयः क्रमादिति ॥ ४ ॥

ऋषिस्वाच ॥ मं. १ ॥

दूतवाक्यमुपश्रुत्य शुम्भस्योत्तरकार्यं विवक्षुः सुरथं

प्रति ऋषिः सुमेधा उवाच—

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।

समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥ मं. २ श्लो. १

इत्याकर्ण्येति । देव्याः द्युतिमत्याः इति पूर्वोक्तं वचः यो मां जयती-
त्यादि आकर्ण्य श्रुत्वा । मर्षणं मर्षः । मृष क्षान्तौ । घञ् । न मर्षः अमर्षः
क्रोधः । कोपक्रोधामर्षरोषेत्यमरः । तेन पूरितः व्याप्तः स दूतः सुग्रीवः
समागम्य शुम्भसमीपं गत्वा विस्तरात् शब्दप्रपञ्चात् । दैत्यानां दितेरप-
त्यानां राजा प्रभुः दैत्यराजः शुम्भः तस्मै तमनुकूलयितुं तदर्थं वा सम्य-
ग्विविच्य आचष्ट अकथयदित्यन्वयः । आकर्ण्येति । कर्णभेदने चुरादिर-
दन्तः । आङ्पूर्वाद्स्मात्समासे क्त्वो ल्यप् । दैत्यराजायेति राजाहः
सखिभ्यष्टच् ॥ १ ॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः ।

सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥ मं. ३ श्लो. २

तस्येति । तस्य स्वप्रेषितस्य सुग्रीवाख्यस्य तत् यो मां जयतीत्यादि
देवीप्रोक्तं वाक्यं आकर्ण्य असुरेषु दैत्येषु राजते इत्यसुरराट् असुरेश्वरः ।
क्रोधनं क्रोधः । क्रुधकोपे । भावे घञ् । क्रोधेन सह वर्तमानः सक्रोधः

सन् दैत्यानामधिपं सेनानायं धूम्रे लोचने यस्य तं तादृगाख्ययाप्रसिद्धं
प्राह अन्नवीदित्यन्वयः । तत इति द्रुतसमागमनानन्तरम् ॥ २ ॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।

तामानय बलाद्दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥ मं. ४ श्लो. ३

हे धूम्रलोचनेति । हे धूम्रलोचन । स्वस्यसैन्येन षष्ठिसहस्रासुर-
समुदायेन परिवारितो युक्तस्त्वं बलात् हठात् केशाः शिरोवर्त्तिनस्तेषा-
माकर्षणेन विह्वलां व्यग्रमानसां दुष्टां अवलाजातीयामपि मादृशपुरुष-
द्वेषिणीं तां कौशिकीं आनय प्रापयेत्यर्थः ॥ ३ ॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठते परः ।

स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥ मं. ५ श्लो. ४

तदिति । तस्याः परित्राणं रक्षणं ददातीति परित्राणदः कश्चित्
परः शत्रुरन्यो वा उत्तिष्ठते त्रातुं समीहते इत्यर्थः समीहितस्यानूर्ध्व-
कर्मत्वादुदोऽनूर्ध्वकर्मणीत्यात्मनेपदम् । अमरः देवः इं लक्ष्मीमक्षणीति
व्याप्नोतीति यक्षः । अक्षु व्याप्तौ । कर्मण्यण् । यक्ष्यते पूज्यते वा यक्षो
गुह्यकजातिभेदः । अकर्त्तरि च कारके संज्ञायामिति कर्मणि घञ् । गन्धं
सौरभमवतीति गन्धर्वः । अवंगतौ । कर्मण्यण् । शकन्वादिः । सहन्तव्य
एवेति । एवकारो भिन्नक्रमः । तत्परित्राणद इति विशेषणेन सामर्थ्या-
न्त्राणार्थस्योपस्थानात्त्रातुमिति पृथक् चोक्तम् ॥ ४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं. ६ ॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं सदैत्यो धूम्रलोचनः ।

वृतः षष्ठ्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥ मं. ७ श्लो. ५

तेनेति । ततः कौशिकी समाचारप्राप्त्यनन्तरं तेन शुम्भेन तामान-
येत्यादि आज्ञप्तः आदिष्टः स सेनापतित्वेन प्रसिद्धो दैत्यः धूम्रलोचनः
तन्नामा असुराणां सहस्राणां षष्ठ्या वृतो युक्तः सन् द्रुतं सत्वरं आज्ञा-
पनसमनन्तरमेव ययौ । तं देशमिति शेषः । ज्ञाप ज्ञानज्ञापनयोः । चौरा-
दिकज्ञपेः क्तः । वा दान्तशान्तेति साधुः । आज्ञप्त इति । षष्ठिशब्दस्ति-
प्रत्ययान्तस्तान्तो न तु ठान्तः । एवं च ठान्तं षष्ठिशब्दं पठन्तः
प्रामादिका एवेत्यवधेयम् ॥ ५ ॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।

जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ मं. ८ श्लो. ६
स इति । ततस्तद्देशप्राप्त्यनन्तरं दृष्ट्वा चक्षुर्विषयीकृत्य तोहतीति
तुहिनं हिमं तुहिर् अर्दने । वेपितुह्योर्हंस्वच्चेति इनन् । तुहिनप्रधानोऽचलः
हिमनदाख्यया प्रसिद्धः पर्वतः तत्र संस्थितां देवीं कौशिकीं । शुम्भ-
निशुम्भयोर्मूलमन्तिकं त्वं प्रयाहि गच्छेति । उच्चैः सचीत्कारं जगाद
अत्रवीदित्यन्वयः । मूलशब्दोऽत्र समीपवाची । मूलमाद्यन्तिके श्रेष्ठेष्विति
नामानुशासनात् ॥ ६ ॥

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।

ततो बलान्नयाम्येष केशकर्षणविह्वलाम् ॥ मं. ९ श्लो. ७

न चेदिति । चेद्यदि भवती त्वं अद्य दिने प्रीत्या हर्षणं स्वेच्छया
मद्भर्तारं मत्प्रभुं न उपैष्यति न गमिष्यति ततस्तर्हि एषोऽहं केशकर्षणेन
विह्वलां भवतीं बलात्पराक्रमात्प्रयामि नेष्यामीत्यन्वयः । साबलोक्ति-
रेषा । उपैष्यतीत्यत्र एत्येधत्युद्धस्वितिवृद्धिः । नयामीति वर्तमानसामीप्ये
वर्तमानवद्वेति भविष्यति लट् । तत इति सार्वविभक्तिकस्तसिस्तर्हीत्यर्थं
॥ ७ ॥

स्वकीयं मनुष्यादयन्देवी धूम्रलोचनमुवाच—

देव्युवाच ॥ मं. १० ॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान्बलसंवृतः ।

बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥ मं. ११ श्लो. ८

दैत्येति । दैत्यानामोश्वरेण प्रभुणा प्रहितः प्रेषितः । तावत् बल-
वान् स्वशरीरसामर्थ्ययुक्तः ततोऽपि बलेन सैन्येन संवृतः परिवेष्टितः ।
मां तत इति तं देशं नयसि नयिष्यसि एवं कृते ते तषाहं किं करोमि किं
करिष्यामि । किकर्तुं शक्नोमीति वा ॥ ८ ॥ सुरथाय संक्षेपेण धूम्रलोचन-
वधं निदिशन्तृषिः सुमेधा उवाच—

ऋषिरुवाच ॥ मं. १२ ॥

इत्युक्तः सोऽभ्यभावत्तामसुरो धूम्रलोचनः ।

हंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥ मं. १३ श्लो. ९

इत्युक्त इति । इति दैत्येश्वरेण उक्तः सः प्रसिद्धो धूम्रलोचनाख्योऽ-

सुरः तां देवीं अभि अभिमुखं अधावत् अगच्छत् ततो धावनसमनन्तर-
मेव सा प्रसिद्धा अम्बिका कौशिकी हंकारेणैव कूर्चबीजापरनाम्ना क्रोधा-
ख्योच्चारणेनैव तं धूम्रलोचनं भस्म भसितस्वरूपं चकारेत्यन्वयः ॥ ९ ॥

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिकाम् ।

ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥ मं. १४ श्लो. १०

अथेति । धूम्रलोचनभस्मतापत्यनन्तरं क्रुद्धं सकोपं असुराणां
सेनैव सैन्यं । स्वार्थे ष्यञ् । महच्च तत्सैन्यं च महासैन्यं सेनासमुदायः ।
कर्तुं । स्यंति अन्तं कुर्वन्तीति सायकाः बाणाः खड्गाश्च । तैस्तीक्ष्णैर्लो-
महारिभिः । तथा शक्तिभिः कासूभिः सहितैः युक्तैः परश्वधैः कुठारैः ।
तथा अनिर्वचनीयप्रकारेणेति । कर्मीभूतां अम्बिकां कौशिकीं ववर्ष छाद-
यामास । ववचिदम्बिकेति प्रथमान्तः पाठः । परश्वधशब्दस्तालव्यमध्यो
दन्त्यमध्यश्च । तालव्यपाठे टुओश्चिर् गतिवृद्धयोः । अन्येभ्योऽपीति डः ।
परश्वं धयतीति परश्वधः । दन्त्यमध्यपाठे तु । परस्य स्वं दधातीति प-
रस्वधः । परशुश्च परश्वधः इत्यमरः परश्वधपरस्वधाविति शब्दभेदे ।
कुठारः स्त्री च स्वधितिः परशुश्च परस्वधः इति । एतत्कोशद्वयबलादयं
तालव्यमध्यो दन्त्यमध्यश्चेत्यवधेयम् । शरे खड्गे च सायक इत्यमरः ।
प्रथमान्ते अम्बिका कर्त्री, अत एव तथापदस्वारस्यमिति नागेशः ॥ १० ॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।

पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥ मं. १५ श्लो. ११

निर्नायकसैन्ये देव्याः प्रयासोव्यर्थ इति मत्वा सिंहो युगुधे । तत
इति । सायकादिववर्षणानन्तरं कोपादमर्षात् धुताः कम्पिताः सटाः केसरा
येन एवंभूतः स्वोऽनन्यसाधारणो निजभूतो वाहनः । स्वयमात्मानं वाह-
यतीति कर्मणि ल्युट् । स्ववाहनः देव्याः सिंहः । अर्द्धर्षादित्वात्पुंस्त्वं
स्वीयवाहन इति नागेशः । दंशोद्धारकृत् । स्वस्या वाहनः सर्वनाम्नो
वृत्तिमात्रे पुंवद्भावइत्याह । चतुर्भुजमिश्रस्तु आर्षत्वाद्भ्रस्वत्वमित्याह ।
भीरोरिदं भैरवं भीषणं, सुष्ठुभैरवं नादं गर्जनं कृत्वा असुरसेनायां पपात
आविशदित्यन्वयः । षट् अवयवे । अस्मादचि सटेति रूपम् । सटाजटाके-
सरयोरिति हैमः । दूर्वायां भैरवः पुंसि शंकरे भीषणे त्रिष्विति कोशा-
न्तरम् ॥ ११ ॥

काञ्चित्करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।

भाक्रम्य चाधरेणान्यान्संजघान महासुरान् ॥ मं. १६ श्लो. १२

कांश्चिदिति । कांश्चित्कानपि दैत्यान् करस्य हस्तस्य प्रहारेण चपेटया संजघान सम्पक् प्रकारेण हतवान् । च पुनः अपरान् दैत्यान् आस्यन्दतेऽम्लादिना प्रस्रवतीति आस्यं तेन आस्येन मुखेन आस्येभवं आस्यं दंष्ट्रादि । दिगादित्वाद्यत् । आस्येन दंष्ट्रादिना वा संजघान । अन्यान्महासुरान् नध्रियत इत्यधरोष्ठः धृङ् अनवस्थाने । पुंसीतिवः । नञ् समासः अधरेणोष्ठेनाक्रम्य गृहीत्वा संजघानेत्यन्वयः । संजघानेति दाक्षिणात्यपाठः । सिंहेन विशिष्यते । मुखं मुखान्तरालं च द्वयमास्यमिति शाश्वतः । आस्यं मुखे च तन्मध्ये तद्भुवे च स्त्रियां स्थितौ । अधरस्तु पुमानोष्ठे हीनेनोष्ठे च वाच्यवदिति कोशान्तरम् । आक्रान्त्या चाधरेणेति दाक्षिणात्याः । आक्रान्तिराक्रमणं तेनेत्यर्थः ॥ १२ ॥

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।

तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान्पृथक् ॥ मं. १७ श्लो. १३

केषामिति । प्रशस्ताः केसराः सटाः अस्य सन्तीति केसरी सिंहः । केषांचित् केषामपि दैत्यानां कुण्ड्यते निष्कास्यते मलमेभ्य इति कोष्ठानि जठराणि । नखमेषामिति नखाः कररूपाः । नविभ्राडिति साधुः । तैः कृत्वा पाटयामास विदारयामासेत्यर्थः । तथा तेनैव प्रकारेण केषांचित् शिरांसि मूर्धनः । तलतीति तलः चपेटा विस्तृतांगुलिकः करः । तल प्रतिष्ठायाम् । अजन्तः । तस्य प्रहारेण पृथक् कायाद्भिन्नं चकारेत्यन्वयः । पुंसि कोष्ठोऽन्तर्जठरं कुण्डलेऽन्तर्गृहेऽपिचेत्यभिधानात् । उषिकुषिगतिभ्यः स्थितिस्थित्यन्तः कोष्ठशब्दः पुल्लिङ्गोऽपि इह व्यत्ययात्कलीबत्वम्भजते । तलं स्वरूपाधरयोः खङ्गमुष्टिचपेटयोरिति विश्वः ॥ १३ ॥

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।

पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धृतकेसरः ॥ मं. १८ श्लो. १४

विच्छिन्नेति । तथा तेनैव प्रकारेण सिंहेन अपरे अन्ये दैत्याः बाहवश्च शिरांसि च तेषां समाहारो बाहुशिरः । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । विशेषेण छिन्नं द्विधाकृतं बाहुशिरो येषां तथा विधाः कृताः । च पुनः धृतकेसरः कम्पितसटः सिंहः अन्येषां दैत्यानां कोष्ठात् जठरात् । रुणद्धि हृष्यते वा रुधिरं । पपौ अपादित्यन्वयः । कोष्ठादिति । जात्यभिप्रायेणैकवचनम् ॥ १४ ॥

क्षणेन तद्वलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।

तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥ मं. १९ श्लो. १५

क्षणेनेति । महात्मना दीर्घदेहेने महोत्साहेन वा अति अत्यन्तं कोपिना क्रोधवता । देव्याः वाहनेन तेन प्रसिद्धेन केसरिणा सिंहेन सर्वं सकलं बलं सैन्यं क्षयं नाशं नीतं प्रापितमित्यन्वयः ॥ १५ ॥

सिंहकर्तृकबलक्षयानन्तरं किंजातमित्याह—

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।

बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः ॥ मं. २० श्लो. १६

चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।

आज्ञापयामास च चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ मं. २१ श्लो. १७

श्रुत्वेति द्वाभ्याम् । तं प्रसिद्धमसुरं धूम्रलोचनाख्यं देव्या कौशिक्या निहतं श्रुत्वा च पुनः देव्याः केसरिणा कृत्स्नमखिलं बलं सैन्यं क्षयितं जातक्षयं श्रुत्वा ततः तस्मात्समनन्तरमेव दैत्यानामधिपतिः प्रभुः शुम्भः प्रस्फुरितः कम्पितः अधरः ओष्ठोयस्य एव भूतः सन् चुकोप क्रोधमकरोत् । च पुनः तौ पूर्वोक्तौ महासुरौ चण्डमुण्डौ वक्ष्यमाणक्रमेण आज्ञापयामास अशिक्षयदित्यर्थः । क्षयितमिति । क्षयशब्दात्तदस्य सञ्जातमित्यर्थे तारकादित्वादितच् । क्षयशब्दात्तत्करोतीति णिजन्तान्निष्ठा वा । नागेशस्तु । क्षयशब्दादाख्यातसन्नन्तात् क्तः कृतक्षयमित्यर्थ आह ॥ १६ ॥ १७ ॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुलैः परिवारितौ ।

तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥ मं. २२ श्लो. १८

हे चण्डेति । हे चण्ड हे मुण्डेति पृथक्सम्बोधनमुभयोः प्राधान्यसूचनार्थं । बहुलैः बहुभिर्बलैः सैन्यैः परिवारितौ युक्तौ । तत्र हिमवति युवां गच्छतमित्यर्थः मलोप आर्ष । छन्दोऽनुरोधाद्विन्दुलोप इति नागेशः । हे चण्डेत्यादि पृथङ्निर्देशमवलम्ब्य पूजाख्यायामेकस्मिन्वा बहुवचनं । द्वित्वापेक्षं पूजाख्यायामपि न बहुवचनं प्रमाणाभावात् । सेति । उत्तरश्लोकप्रथमपादोऽप्यत्रैव सम्बध्यते । केन प्रकारेणानेतव्येत्याकाङ्क्षायामाह—केशेष्वाति । केशेष्वाकृष्य केशाकर्षणं कृत्वा वा बध्वा रज्ज्वादिना बन्धनं सम्पाद्य लघु स्त्रीर्ज्ञं सा देवी कर्मभूता कुवाम्बां

कर्तृभ्यां समानीयतां अमुं देशमिति शेषः । कर्मणि यगन्तात्प्रार्थनायां
लोट् ॥ १८ ॥

केशेष्वकृष्य बध्वा वा यदि वः संशयो युधि ॥

तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ मं. २३ श्लो. १९

केशेष्विति । प्रथमपादोऽस्य पूर्वश्लोकेनान्वित इत्युक्तं प्राक् । यदि
तस्या आनयने वो युष्माकं संशयः संदेहोऽस्ति । तदा अशेषाण्यखिलानि
खज्जगाद्यायुधानि येषां तथाभूतैः सर्वैः असुरैः कर्तृभूतैः युधि संग्रामे
सा देवी विनिहन्यताम् । यदीत्यादिना शीघ्रमागम्यतामित्यनेन ग्रन्थेन
देव्या हननपक्षमनुज्ञाप्य मुख्यतया देव्या आनयनरूपं पक्षं निद्वारयिष्य-
त्यग्रिमे पद्ये ॥ १९ ॥

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ॥

शीघ्रमागम्यतां बध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् मं. २४ श्लो. २०

तस्यामिति । दुष्टायां पुरुषद्वेषिण्यां तस्यां कौशिक्यां हतायां सिंहे
च विनिपातिते शीघ्र युवाभ्यां सर्वैर्वा आगम्यतां । अथ हननपक्षाभावे-
रज्ज्वादिना तामपि बध्वा बन्धनपूर्वकं गृहीत्वा शीघ्रमागम्यता-
मित्यन्वयः । अन्ये तु तस्यां हतायां बलक्षयं प्राप्तायामित्याहुः । परे सिंहे
विनिपातिते तस्यां हतायां भूमौ गतायां तामम्बिकां गृहीत्वा शीघ्र-
मागम्यतामिति योजयन्ति । अत्र पक्षे हन्तिगन्त्यर्थः । अथवा अथेति
वेत्यथं बधेहिसार्थस्य बध्वेति प्रयोगः । तामम्बिकां बध्वा हत्वा
गृहीत्वा वा आगम्यतामित्यर्थः । धूम्रलोचनहन्त्र्येव धूमावतीति
शिवम् ॥ २० ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीतेमध्यभागे

षष्ठाध्यायार्थसंग्रहो नाम षष्ठो विश्राम

आदितएकादशो विश्रामः ॥ ११ ॥

अथसप्तमाध्यायारम्भः

तत्र सप्तमाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

पञ्चविंशलोकयुक्तेऽध्याये मन्त्रास्तु सप्तमे ॥ आदावृषिरुवाचेति त्रयोविंशतिमन्त्रकाः ॥ १ ॥ श्लोकमन्त्राश्चकृष्युक्तिस्ततः श्लोकत्रयं क्रमात् । सप्तविंशतिरेवं तु मन्त्रसंख्या वरानने ॥ २ ॥ षष्ठे च सप्तमेऽध्याये धूम्राक्षी देवता स्मृतेति ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं. ॥ १ ॥

सप्रपञ्चं चण्डमुण्डवधमृषिः सुमेधाः सुरथं निर्दिशन्नुवाच—

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ॥

चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ मं. २ श्लो. १

आज्ञप्ता इति । ततः धूम्रलोचनवधानन्तरं ते प्रसिद्धाः हस्त्यश्वरथपादातमित्येवं चत्वारि अङ्गानि अवयवा यस्य एवं विधं यद्बलं सैन्यं तेनोपेताः शुम्भेनाज्ञप्ताः आदिष्टाः चण्डमुण्डौ पुरोगमौ अग्रेसरौ येषामेवंभूता । अभ्युद्यतानि ऊर्ध्वीकृतानि आयुधानि प्रहरणानि यैरेवंभूताः सन्तो दैत्याः दितिवंश्याः ययुः । हिमवन्तमिति शेषः । हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयमित्यमरः ॥ १ ॥

ददृशुस्ते ततोदेवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ॥

सिंहस्योपरि शैलेन्द्र शृङ्गे महति काञ्चने ॥ मं. ३ श्लो. २

ददृशुरिति । ततः हिमवच्छिखरप्राप्त्यनन्तरं काञ्चतीति काञ्चनं हिरण्यं । काञ्चिदीप्ती नन्द्यादित्वात्ल्युः । काञ्चनस्य विकारः काञ्चनं । मयङ्बैतयोरिति पाक्षिकोऽण् काञ्चनमये महति विस्तृते शैलेन्द्रस्य हिमवतः शृङ्गे शिखरे सिंहस्योपरिभागे व्यवस्थितां । ईषदत्तपो हासो हास्यं यस्यास्तां सस्मितामित्यर्थः । एवंविधां देवीं चण्डमुण्डादयो ददृशुरित्यन्वयः ॥ २ ॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुद्यताः ॥

आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥ मं. ४ श्लो. ३

तेदृष्टेति । ततः । किंवृत्तमित्युत्प्रेक्षायां । तां कौशिकीं दृष्ट्वा उद्यताः
उत्साहिताः ते चण्डमुण्डपुरोगमाः दैत्याः तां समादातुं गृहीतुं उद्यममु-
द्योगं चक्रुः कृतवन्त इत्यर्थः । चापश्च असिश्च तयोः समाहारश्चापासि ।
धनुः खड्गं । प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः । आकृष्टं च तच्चापासि च आकृष्ट-
चापासि । आकृष्टचापासिनो धराः तेषां चण्डादीनां समीपं सन्निधि
गच्छन्तीति समीपणाः । चण्डादिपार्श्ववर्तिनाः । तथा अन्ये अपरे
चण्डादिभृत्याः तथा तेनैव प्रकारेण तां देवीं समादातुं गृहीतुमुद्यमं
व्यापारं चक्रुरिति भावः । सप्रत्यश्चधनुषआकर्षणं खड्गस्य तु चर्मकोशा-
दिति बोध्यम् ॥ ३ ॥

तत्र काल्या उत्पत्तिं वक्ष्यन्पूर्वं हेतुमाह—

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन्प्रति ।

कोपेन चास्या वदनं मसीवर्णमभूत्तदा ॥ ॥ मं. ५ श्लो. ४

ततइति । देवीग्रहणोद्योगपरिज्ञानानन्तरं अम्बिका कौशिकी
तान्स्वग्रहणकृतोद्योगानरीन् शत्रून् प्रति उच्चैः अतिशयितं कोपं चकार ।
च पुनः कोपेन करणेन अस्याः कौशिक्याः वदनं मुखं । कर्तुं । तदा
तत्समादानोद्योगकाले मण्यते पीडयते अंगुल्यादिना इति मषी । मषी-
बालार्कमण्डलमित्यभिधानान्मषीवर्णं बालार्कमण्डलवर्णं तस्या मुखम-
भूदित्यन्वयः । बालार्कमण्डलस्य चारक्तत्वान्न कोपि दोष इति केचित् ।
कोपेन कृष्णरूपविवक्षाया अपि कविभिर्माघादिषु वर्णितत्वान्नायं दोषः ।
वस्तुतस्तु कोपेनेत्यत्र प्रयोजत्वं तृतीयार्थो न साक्षात्करणत्वं । तथा
कोपेन भ्रुकुटीतो निर्गमः काल्याः । तस्याश्च काल्याः सन्निधितो देव्याः
मुखे कृष्णभावोऽभवदित्यर्थः । एतावता मुखे स्वच्छता वर्णितेति
मन्तव्यं । मषीलिपिसाधनं कज्जलादिद्रव्यमषहिंसायाम् । सर्वधातुभ्य
इन् । कृदिकारादक्तिन्इति ङीष् । तस्या इव वर्णोऽस्येति । मषीवर्ण-
कृष्णवर्णमभूत्सम्पन्नं । कालवर्णः कालिकोपादानात् । दन्त्यपाठे मस्यते
इति मसीलिपिद्रव्यविशेषः । मसी परिणामे । सर्वधातुभ्य इन् । कृदि-
कारादक्तिन्इति ङीष् । यद्वा पचाद्यच् गौरादित्वाङीष् । मेलामसीजलं
पात्राञ्जनं च स्यान्मसिर्द्वयोरिति त्रिकाण्डशेषः । मलिनाम्बुमषी मसी-
त्यभिधानचिन्तामणिश्च । मषीशब्दो मूर्द्धन्योपधो दन्त्योपधश्चेति लोके
प्रसिद्धः ॥ ४ ॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम् ।

काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥ मं. ६ श्लो. ५

भ्रुकुटीति । भ्रुवोः कुटी कौटिल्यं तथा कुटिलाद्वक्त्रात्तस्याः कौशिक्याः ललनं ललः । लल ईप्सायाम् । लङ् विलासे वा । डलयोरैक्यम् । ललं विलासमीप्सां वा अटतीति ललाटं । उक्तधातुभ्यां बाहुलकादाटच् । फलति खड्गाद्याघातेन विशीर्यते निष्पद्यते वा फलकम् । त्रिफला विशरणे । फल निष्पत्तौ । कृत्रादिभ्यो वुन् । ललाटं फलकमिव सचर्ममयत्वसादृश्यात् । करालं भीषणं वदनं यस्याः सा । असिः खड्गः पाशो नागपाशः तयोः समाहारः असिपाशं तदस्त्यस्या इति असिपाशिनी । अत इनठनाविति इन् । ततः ऋन्नेभ्योऽङीप् । काली कृष्णवर्णा विशेषेण निष्क्रान्ता निःसृता । कालशब्दात्कृष्णवर्णावाचिनस्तद्वति वर्तमानाज्ज्ञानपदेति ङीप् । द्रुतमिति शीघ्राथमव्ययम् । लघुक्षिप्रमरं द्रुतमित्यमरः । भालेगोव्यलिकाली कललानोत्यभिधानचिन्तामणिः ॥ ५ ॥

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।

द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥ मं. ७ श्लो. ६

विचित्रेति । त्रिभिविशेषकम् । कीदृशी काली । विचित्रमद्भुतं यत्खट्वाङ्गं नरपञ्जरी नाम 'सांसरि' इति लोकप्रसिद्धं आयुधविशेषः । खट्वाङ्गं नरपञ्जरीत्यभिधानात् । तस्य धरा धारणकर्त्री । केचित्तु खट्वैकपादप्रखट्वा दण्डाकृतिलोहनिमित्तमस्त्रं खट्वाङ्गमुच्यत इत्याहुः । अत्र पक्षे खट्यते निद्रालुभिरिति खट्वा पर्यङ्कः खट्कांशायाम् । अशूप्रुषीति क्वन् । अदन्तत्वाद्वाप् । खट्वाया अङ्गमिवखट्वाङ्गं । नराणां पुरुषाणां माला स्रक् । मृतपुरुषकेशेरैव परस्परग्रथनकल्पितमृतपुरुषमणिमयो माला नरमाला सैव भूषणमस्याः सा । अत्र केऽपि नरशब्दं मुण्डलाक्षणिकं मत्वा नृमुण्डमालैव नरमाला नरेन्द्रमूर्धस्रजमावहन्तीति वामनपुराणदर्शनात् । द्वौवर्णौ ईयते प्राप्नोतीति द्वीपं द्विवर्णं चर्म । ईङ् गतौ बाहुलकात्पो गुणाभावश्च । द्वीपं द्विवर्णं चर्म अस्त्यस्येति द्वीपी चित्रव्याघ्रः । तस्य चर्म द्वीपिचर्म तदेव परिधीयत इति परिध्यानं वासो यस्याः सा । शुष्कानि आर्द्रतारहितानि मन्यन्ते इति मांसानि यस्याः सा । शुष्कमांसा । निर्मासदेहेत्यर्थः । मन ज्ञाने । मनेर्दीर्घश्चेति सप्रत्यये मांसपदसिद्धिः अतिभैरवा अतिभीषणा ॥ ६ ॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।

निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिहमुखा ॥ म. ८ श्लो. ७

अतीति । विस्तरणं विस्तारः व्यासः । प्रथमे वावशब्द इति सूत्रेण विपूर्वात्स्त्रुणातेर्घञ् । विस्तारो विग्रहो व्यास इत्यमरः । विस्तार-
मतिक्रान्तमतिविस्तारं अतिविस्तारं मुखं यस्याः सा । लेडि । लिहन्ति
अनया सा जिह्वा । लिह आस्वादने । शेवायह्वजिह्वेति साधुः ।
जिह्वायाः ललनेन चालनेन अवलेहनेन वा भीषणा दारुणा । निमग्नानि
कोटरीभूतानि आरक्तानि ईषज्जोहितानि लोचनानि यस्याः सा । नादेन
आपूरितानि व्याप्तानि दिशां प्रागादीनां मुखानि प्रारम्भाः यया सा ।
खन्यते अनेन इतिमुखं । खनु अवदारणे । डित्खनेर्मुट् चोदात्त इत्यच्
सचडित् । धातोर्मुङागमः । प्राक्खनेर्मुङुदात्तश्च ततोऽप्यच् प्रत्ययो भवेत् ।
प्रजामृजा यतः खातं तस्मादाहुर्मुखं बुधा इति निरुक्तम् । मुखमुपाये
प्रारम्भे श्रेष्ठे निःसारणास्ययोरिति हैमः ॥ ७ ॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।

सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥ म. ९ श्लो. ८

सेति । पूर्वोक्तसकलविशेषणविशिष्टा सुरारीणां दैत्यानां तत्र
चण्डमुण्डस्वामिके सैन्ये सेनायामभितः वेगेन पतिता प्राप्ता महासुरान्
श्रेष्ठदैत्यान् घातयन्ती नाशयती सा कौशिकी तद्बलं तेषां दैत्यानां
बलं सैन्यं वा अभक्षयतेत्यन्वयः । वेगः प्रवाहजत्रयोरपीत्यमरः ॥ ८ ॥

पार्ष्णिग्राहंकुशग्राहि योधघण्टासमन्वितान् ।

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥ म. १० श्लो. ९

पार्ष्णीति । पृष्यते इति । अनेन वा पार्ष्णिः । घृणिपृष्णिपार्ष्णीति
साधुः । पार्ष्णिः स्त्रीपुंसयोः पादमूले स्याद् ध्वजिनीकटाविति रन्तिदेवः ।
ध्वजिनीति प्रायोवादः । पार्ष्णि पश्चात्पदं गृह्णातीति कर्मण्यण् । पार्ष्णि-
ग्राहो गजपृष्ठभागस्थः । सेनापृष्ठे पुमान्पार्ष्णिः पश्चात्पदजिजीविषोरिति-
विश्वः । अंकयते अनेनेत्यंकुशः सृणिः । अकिलक्षणे । सानसिवर्णसीति
साधुः । अंकुशं गृहीतुं शीलमस्येत्यंकुशग्राहो । पूर्वभागस्थः । युध्यन्त
इति योधा भटाः मध्यभागस्थाः । युधसम्प्रहारे पचाद्यच् । घण्टा
प्रसिद्धा एतैः समन्वितान्युक्तान् । वारयन्ति परबलमिति वारणाः

करिणः तान् एकेन हस्तेन समादाय मुखे वदने चिक्षेप प्रावेशयदित्य-
न्वयः । कुञ्जरो वारणः करीत्यमरः ॥ ६ ॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।

निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम् ॥ म. ११ श्लो. १०

तथैवेति । तथैव करिचर्वणप्रकारेणैव तोरणं तुरं त्वरा । तुरत्त्वरणे ।
घञर्थे कः । बाहुलकाद्धञ् वा । संज्ञापूर्वकत्वात् गुणः । तुरेण त्वरया
गच्छन्तीति तुरगाः अश्वाः । गमेदचेति खच् । खच्च वा ङित् । तुरगैरश्चैः
सह सरत्यश्वानिति सारथीः । सुगतौ अन्तर्भावितण्यर्थः । सरतेर्णिच्चे-
द्धथिन् । तेन सारथिना यन्त्रा । रम्यते अनेनेति रथः । रमु क्रीडायाम् ।
हन्तिकुषिनीरमिकाशिभ्यः कथन् । मलोपः । रथं योधं भटं च । उच्यते
अनेनेति वक्त्रं मुखं । वच परिभाषणे । ब्रुवोवचिः वा । गृध्रवीपचिवचीति
त्रः । वक्त्रमास्ये छन्दसीति हैमः । वक्त्रे मुखे निक्षिप्य दशनैर्दन्तैः अति-
भैरवमतिदारुणं यथा स्यात्तथा चर्वयति । बहुदन्तव्यापारेणात्तीत्यर्थः ।
दशनैरिति दंश दशने करणेल्युट् । दहदशेति निर्देशात्क्वचिदक्ङित्यापि-
नलोपः । यद्वा कर्तरि ल्युट् । रदना दशना दन्ता इत्यमरः ॥ १० ॥

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।

पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥ म. १२ श्लो. ११

एकमिति । अयानन्तरं एकमसुरं केशेषु जग्राह । च पुनः अपरमन्यं
ग्रीवायां जग्राह । पादेन चरणेनाक्रम्यैव अन्यमसुरं अपोथयत् जिहिंस ।
उरसा वक्षसा आक्रम्य अन्यमसुरमपोथयदित्यन्वयः । पुथभाषायां
चुरादिः । धातूनामनेकार्थत्वादत्र हिसार्थः ॥ ११ ॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।

मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥ म. १३ श्लो. १२

तैरिति । तैः प्रसिद्धैरसुरैः मुक्तानि त्यक्तानि शस्त्राणि खड्गादीनि
तथा महास्त्राणि ब्रह्मास्त्रादीनि । मुखेन जग्राह गृहीतवती । किंच दशनैः
मथितान्यपि विलोडितान्यपि रुषा क्रोधेन जग्राहेत्यर्थः ॥ १२ ॥

बलिना तद्वलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।

ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्याँश्चाताडयत्तथा ॥ म. १४ श्लो. १३

बलिनामिति । बलं वीर्यं तद्वतां दुर्दुष्ट आत्मा स्वभावो येषां

तेषामसुराणां दाक्षिणात्यपाठे महात्मनामिति । महानात्मा देहो येषां
तेषां महादेहानामिति नागेशः । आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म-
वर्णमचेत्यमरः । असुराणां सर्वं अखिलं तद्बलं सैन्यं ममर्दं कालीतिशेषः ।
मृदक्षोदे क्यादिः । लिट् । चूर्णीचकारेत्यर्थः । धातूनामनेकार्थता ।
अन्यान् कांश्चिदभक्षयच्च । च पुनः अन्यान् कांश्चित्तथा अताडयदित्यन्वयः ।
तडभाघाते चुरादिः ॥ १३ ॥

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।

जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥ म. १५ श्लो. १४
असिनेति । तथा काल्या असिना क्षुद्रखड्गेन । केचिदसुरानिहताः ।
केचिदसुराः खट्वाङ्गेन नरपञ्चर्या ताडिताः विद्धाः तथा काल्या दन्ता-
नामग्रेः पुरोभागैरभिहताः पीडिताः सन्तः असुराः विनाशं पञ्चतां जग्मुः
प्रापुरित्यन्वयः ॥ १४ ॥

क्षणेन तद्बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।

दृष्ट्वा चण्डोऽभिद्रुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ॥ म. १६ श्लो. १५
क्षणेनेति । क्षणेन अत्यल्पसमयेन असुराणां दैत्यानां तत्सर्वं बलं
सैन्यं काल्या निपातितं हतं दृष्ट्वा तां प्रसिद्धमतिभीषणां अत्यन्तं दारुणां
अभिमुखं चण्डः तन्नामापुरः दुद्राव गतवानित्यन्वयः ॥ १५ ॥

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।

छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥ म. १७ श्लो. १६
शरवर्षैरिति । विभ्यत्येभ्य इति भीमानि दारुणानि । भीमादयो-
ऽपादाने इति भियो मकि भियः षुग्वेत्यस्य वैकल्पिकत्वात् षुगभावे
रूपम् । भीमो वृकोदरे घोरे शङ्करेऽम्लवेतसे इति हैमः । महान्तश्च ते
भीमाश्च महाभीमाः । तैः शराणां बाणानां वर्षैः वृष्टिभिरिव वर्षरखण्ड-
धाराभिः सहस्रशः सहस्रसंख्याकैः क्षिप्तैः प्रेषितैश्चक्रैः लोहनिर्मितैरायुध-
विशेषैश्च मुण्डः मुण्डनामा दैत्यः तां प्रसिद्धां । भीमे घोरे अक्षिणी यस्याः
तां कालीं छादयामास । आवृतां चकारेत्यर्थः ॥ १६ ॥

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।

बभुर्यथार्कविम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥ म. १८ श्लो. १७
तानीति । अनेकानि बहूनि तस्याः काल्याः मुखं विशमानानि

प्रविशमानानि तानि मुण्डक्षिप्तानि चक्राणि कर्तृभूतानि बभूवुः शुशुभिर ।
 तत्रोपमा । अर्च्यन्त इत्यर्काः सूर्याः । अर्च पूजायाम् । कर्मणि घञ् ।
 चजोरिति कुत्वम् । सुबहूनि अर्काणां बिम्बानि मण्डलानि घनानां
 मेघानामुदरं विशमानानि यथा तद्वत्चाकचिक्यादि भांजि चक्राणि तन्मुखं
 विशमानानि बभुरित्यन्वयः । अभूतोपमेयम् । अत्र शानच् छान्दसः ।
 उदरमिति जठरं । ऋगतावुत्पूर्वः अच् । उदृच्छति उदिर्यति वा उदरं ।
 उदरं तुन्दरणयोरिति हैमः उदरशब्दोपचारान्मध्यमाह ॥ १७ ॥

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।

काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ म. १९ श्लो. १८

तत इति । शरवर्षचक्रक्षेपानन्तरं भैरवं भोषणं नदितुं शीलं
 यस्याः सा । करालस्य भीषणस्य वक्त्रस्य अन्तर्मध्ये दुर्दर्शः दुःप्रेक्षेर्दशनैः
 उज्ज्वलति प्रकाशते इत्युज्ज्वला दीप्ता । ज्वल दीप्तौ । अच् । नतु
 ज्वलतीति णः । तत्रानुपसर्गादित्यनुवृत्तेः । शृङ्गारवती काली अतिरुषा
 महता क्रोधेन भीमं दारुणं यथा स्यात्तथा जहास । हासं चकारेत्यर्थः ।
 उज्ज्वलस्तु विकासिनि । शृङ्गारे विशदे दीप्तेऽपीति हैमः ॥ १८ ॥

उत्थाय च महासिंहं देवी चण्डमधावत ।

गृहीत्वा चास्य केशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ म. २० श्लो. १९

उत्थायेति । महासिमिति पृथक्पदम् । हं देवीति च । हमिति
 विशेषोक्त्यनुकरणं रोषावेशसूचकं वा । हमिति शब्देन दीव्यति क्रीडते
 इति हं देवी हमिति शब्दवादिनी काली महासिं महाखड्गं उत्थाय उद्यम्य
 चण्डमसुरं अधावत अभिदुद्राव । च पुनः केशेषु गृहीत्वा तेन पूर्वमेव
 स्वयमुद्यतेनासिना खड्गेन अस्य चण्डस्य शिरो मूर्धानमच्छिनत् द्विधा
 चकार ॥ १९ ॥

अथ मुण्डोऽभ्यधावतां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।

तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा ॥ म. २१ श्लो. २०

अथेति । चण्डवधानन्तरं मुण्डः तां कालीं अभ्यधावत अभिदुद्राव ।
 किं कृत्वा चण्डं ज्येष्ठभ्रातरं देव्या निपातितं हतं दृष्ट्वा सा काली रुषा
 खड्गेन अभिहतं तमपि मुण्डमपि अपातयत् ॥ २० ॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।

मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥ म. २२ श्लो. २१
हृतशेषमिति । ततस्तस्मिन्काले इत्यर्थः । ततः सार्वविभक्ति-
कस्तसिः । चण्डं सुमहावीर्यं अतिपराक्रमं मुण्डं च निपातितं दृष्ट्वा हतेभ्यः
शेषमवशिष्टं सैन्यं । कर्तुं । चण्डमुण्डस्वामिकं भयेन आतुरमधैर्यसत् दिशः
प्राच्याद्याः कर्मीभूताः भेजे अशिश्रियत । पलायनपरा सेना अभूदित्यर्थः
॥ २१ ॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ।

प्राह प्रचण्डादृहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥ म. २३ श्लो. २२
शिर इति । काली देवी चण्डस्य शिरः च पुनः मुण्डं एव गृहीत्वा
मुण्डमित्यवयवलक्षणया मुण्डस्य मुण्डमित्यर्थः । प्रचण्डेनोत्कटेनादृहासेन
मिश्रमेकीभूतं यथा स्यात्तथा चण्डिकां कौशिकीं प्राहेत्यन्वयः ॥ २२ ॥

मया तवात्रोपहतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।

युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि ॥ म. २४ श्लो. २३
मयेति । युद्धं यज्ञ इव स्वर्गप्रदत्वसाधर्म्यात् । तस्मिन् युद्धयज्ञे महा-
पशू पशुत्वसाधर्म्याच्चण्डमुण्डौ तदाख्यौ मया काल्या तव तुभ्यमुपहतौ ।
अत्र युद्धयज्ञे स्वयमात्मना शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि त्वमेवेत्यन्वयः ।
महापशू इति रूपकाभिप्रायेण । यज्ञे इति । यज्ञं देवपूजासगतिकरण-
दानेषु । अस्मादिज्यन्ते देवा अत्रेति । यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्
इति नङ् प्रत्ययः । स्तोःश्रुनाश्रुः । इति चुत्वेन नस्य ञः । ततौ ज्ञः ।
यद्वा युद्धयज्ञे विषये तथा देवगणप्रीत्यै महापशुर्नरः । तथा मया ऋत्विजैव
चण्डमुण्डौ नाम महापशू हतौ । अतः परं शुम्भं निशुम्भं च महापशू
त्वमेव हन्तुमर्हसीतिभावः ॥ २३ ॥

ऋषिरुवाच ॥ म० २५ ॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।

उवाचकालीकल्याणीललितं चण्डिकावचः ॥ म. २६ श्लो. २४
ताविति । तौ प्रसिद्धौ महासुरौ चण्डमुण्डौ काल्या आनीतौ दृष्ट्वा
कल्याणी सर्वमङ्गला चण्डिका कौशिकी काली ललाटभवां ललितं हृद्यं
सुन्दरं वचः उवाचेत्यन्वयः ॥ २४ ॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।

चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देविर्भविष्यसि ॥ म. २७ श्लो. २५

यस्मादिति । यस्माद्धेतोः चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वं मामुपागता
तत्तस्तस्माद्धेतोः हे देवि लोके भुवने चामुण्डा इति ख्याता प्रसिद्धा
भविष्यसीत्यन्वयः । चामुण्डेति प्रयोगः पृषोदरादित्वात्साधुरिति शिवम्
॥ २५ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे

सप्तमाध्यायार्थसंग्रहो नाम सप्तमो विश्रामः ।

आदितो द्वादशो विश्रामः ॥ १२ ॥

अथाष्टमाध्यायारम्भः

तत्राष्टमाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये ।

सार्धैकषष्टिश्लोकाढ्येऽष्टमेऽध्याये मनुञ्जशृणु । आद्य ऋषिश्चैकषष्टि-
श्लोकमन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥ ततोऽर्द्धश्लोकरूपश्च त्रिषष्टिमन्त्रसन्ततिः ।
रक्ताक्षीदेवता चाष्टौ देव्यस्तु परिकीर्तिताः । अष्टौ देव्यो ब्राह्मयाद्या
इति ।

ऋषिरुवाच ॥ म० १ ॥

ऋषिः सुमेधाः सविस्तरं रक्तबीजबधं कथयन्सुरथमुवाच—

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।

बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ म. २ श्लो. १

ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।

उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेशह ॥ म. ३ श्लो. २

चण्डेति युग्मेनान्वयः । चण्डे दैत्ये देव्या निहते सति मुण्डे
मुण्डनाम्नि दैत्ये देव्या निहते सति तुल्ययोग्यताप्रतिपादनार्थं चकार-
द्वयम् । च पुनः बहुलेषु सैन्येषु सेनासु क्षयः सञ्जातमेषामिति-
क्षयिताः सञ्जातनाशाः तेषु सत्सु क्षयं प्रापितेषु वा । ततः तद्वृत्ता-
न्तप्राप्त्यनन्तरं असुराणामीश्वरः प्रभुः कोपेन पराधीनमस्वाधीनं चेतो
यस्य सः । प्रतापयत्यनेनेति प्रतापः स्वभावः । तप सन्तापे ण्यन्तः ।
पुंसीतिषः । प्रतपनं वा प्रतापः । भावे घञ् । प्रतापोऽस्येति प्रतापवान् ।
शुम्भः दैत्यानां यानि सर्वाणि सैन्यानि तेषामुद्योगमुद्यमं कर्म । आदिदेश
आज्ञापयामास । सर्वसैन्यानामिति दैत्यानामित्यस्य विशेषणं वा । ह
इति पादपूरणे । स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजमित्यमरः ।
अस्यार्थः—कोणो धनं । दण्डः दमः सैन्यं च । ताभ्यां जातं यत्तेजः स
प्रतापः प्रभावश्चेति । तेजस्तु । अधिक्षेपापमानादेः प्रयुक्तस्य परेण
यत् । प्राणात्ययेऽप्रसहनं तत्तेजः समुदाहृतमिति भरतः ॥ १-२ ॥

अद्य सर्वबलदैत्या षडशीतिरुदायुधाः ।

कम्बूनां चतुरशीतिनिर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥ म. ४ श्लो. ३

किमादिदेशेत्याह—अद्येति त्रिभिर्विशेषकम् । अद्य दिने सर्वबलैः सर्वसैन्यैः सह उदायुधाः उद्यत्प्रहरणाः षडशीतिः षडधिका आशीति-
दैत्याः निर्यान्तु । आलयाग्निर्गच्छन्तु । किञ्च काम्यते इति कम्बुः शङ्खः ।
कमुकान्तौ । जत्रवादयश्चेति निपातः । कम्बुर्वलयशङ्खयोरिति विश्वः
शङ्खाकृतिधरत्वात्पञ्चजननामासुरः कम्बुः बहुवचननिर्देशाज्ञक्षणया
कम्बुनाम्निकुले जातानां मध्ये चतुरधिकाशीतिदैत्याः स्वस्यात्मनः बलैः
सैन्यैर्वृताः युक्ताः निर्यान्तु गृहान्निर्गच्छन्तु । षडशीतिरिति राजसमीपवर्तित
सामन्तामात्याभिप्रायेण । अशीतिशब्दः पक्तिर्विशतीति निपातना-
त्साधुः । अत्र विशेष्यबहुत्वेऽपि षडशीति चतुरशीत्योर्न बहुवचनमेव
कित्वेकवचनमपि । संख्याः संख्येये ह्यादश त्रिषु । विशत्याद्याः सदैकत्वे
सर्वाः संख्येयसंख्ययोरित्यभिधानात् । अस्यार्थः एकादिका नवदशपर्यन्ताः
संख्याः संख्येये त्रिलिङ्गाः । तेनैको विप्र इत्यादि भवति । न तु विप्र-
स्यैक इत्यादि । विशतिराद्यायासां ताः संख्याः संख्येयसंख्ययोर्वन्तः ।
एकवचनान्ताश्च । यथा विशतिर्गावः गवां विशतिरिति ॥ ३ ॥

कोटवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानिवै ।

शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥ म. ५ श्लो. ४

कोटवीर्याणीति । कोटौ सप्तामात्रे वीर्यं पराक्रमो यस्यासौ कोटि-
वीर्यो नाम कश्चिदसुरो मूलपुरुषः । तदीयवंशस्य तदाख्यया प्रसिद्धानि
असुराणां पञ्चाशत्कुलानि । वै इति वार्थः । धूम्रस्येमे धौम्राः धूम्रनामा-
सुरवंश्याः । तस्येदमित्यण् । तेषां शतं कुलानि । ममाज्ञयामदीयादेशेन
निर्गच्छन्तु । गृहान्निःसरन्तु इत्यर्थः । कूयन्ते इति कुलानि । कुङ्क्षब्दे
बाहुलकाक्षक् । सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ । वंशोऽन्ववायः
सन्तान इत्यमरः । कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेष्वपि चेति कोशान्तरम्
॥ ४ ॥

कालका दौर्हदा मौर्या कालकेनास्तथासुराः ।

युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वारता मम ॥ म. ६ श्लो. ५

कालकाइति । कालं कालनामानं स्ववंशप्रवर्तकत्वेन कायन्ति
शब्दायन्ते इति कालकाः कालासुरवंश्याः दुर्हृष्टं हृदयं यस्यासौ दुर्हृष्टामा
कश्चिद्वैत्यः । तस्येमे दौर्हदाः दुर्हृष्टामासुरवंश्याः । गर्गादिभ्यो यञ् ।

कालकानाम काचिद्दानवी । तस्या अपत्यानि कालकेयाः महाभारत-
प्रसिद्धाः । तस्या अपरे अन्ये साधारणा असुराः ममाज्ञया त्वरिताः
द्रुतक्रियाकारिणः सन्तः युद्धाय युद्धार्थं सज्जाः सन्नद्धाः सन्तो निर्यान्तु
निर्गच्छन्ति त्वत्यन्वयः ॥ ५ ॥

इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।

निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्वहुभिर्वृतः ॥ म. ७ श्लो. ६

इतीति । पूर्वोक्तमाज्ञाप्य भैरवं शासनमाज्ञा यस्य सः दारुण-
शासन इत्यर्थः । महान्ति सैन्यान्यत्रेति महासैन्यं सेनासमुदायः तस्य
बहुभिः सहस्रैः असंख्यैर्वृतो युक्तोऽसुराणां पतिः शुम्भो निर्जगाम । तस्मा-
त्स्थानादपाक्रामत् । दाक्षिणात्यानां महासैन्य इति विसर्गान्तपाठे
महत्सैन्यं यस्येति विगृह्य शुम्भविशेषणं बोध्यम् ॥ ६ ॥

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।

ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥ म. ८ श्लो. ७

आयान्तमिति । अति अत्यन्तं भीषणं दारुणं तत्पूर्वोक्तसैन्यं आयान्तं
आगच्छन्तं प्राप्तं दृष्ट्वा चण्डिका कौशिकी ज्यायाः प्रत्यञ्चायाः स्वनैः ।
ध्रियते शेपाद्यैरिति धरणी । अतिसृष्टित्यनिः । कृदिकारादिति ङीष् ।
गच्छन्ति अनेन अस्मिन्वेति गगनमाकाशः । गमेर्गश्चेति युच् । गश्चान्ता-
देशः । तयोरनन्तरं मध्यं पूरयामासेत्यन्वयः । धरणं धारणं मानविशेषं
धरणी भुवीति हैमः । नभोऽन्तरिक्षं गगनमित्यमरः ॥ ७ ॥

ततः सिंहो महानादमतीवकृतवान्नुप ।

घण्टास्वनेन तान्नादानम्बिका चोपबृंहयत् ॥ म. ९ श्लो. ८

ततइति । सैन्यदर्शनोत्तरं कौशिकी कृतज्यास्वनानन्तरं सिंहः
कौशिकीवाहनः महानादं अतिशयितं गलगज्जनं अतीवात्यर्थं अनेक-
प्रकारं कृतवान् । नृपेति मुरथसम्बोधनम् । महानादमिति जातिनिर्देशः
च पुनः तान् नादान् ज्यास्वनसिंहकृतशब्दान् अम्बिका कौशिकी
घण्टायाः स्वकरस्थायाः स्वनेन शब्देन उपबृंहयत् अवर्द्धयदिति यावत् ।
आगमशासनस्यानित्यत्वादडभावः ॥ ८ ॥

धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।

निदादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना ॥ म. १० श्लो. ९

धनुर्ज्येति । नादैः सिंहनादैः आपूरितानि व्याप्तानि दिशां प्रागादीनां मुखानि यया सापि काली धनुर्ज्यारोपिता ज्या धनुर्ज्या सा च सिंहश्च घण्टा च तासां भीषणैर्निनादैः शब्दैः कर्तृभूतैः जिग्ये अभिभूतानि । अभिभवे न्यूनीकरणेऽर्थे सकर्मकः । ततः कर्मणि लिट् । भावकर्मणोरित्यात्मनेपदम् । संस्त्रिडोर्जेरिति कुत्वम् । किभूता काली विस्तारितं सञ्जातविस्तारमाननं मुखं यया सा । तारकादित्वादितच् । यद्वा नादानिति पूर्वश्लोकादनुवर्तते । धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादान् काली कर्तृभूता निनादैः शब्दैः करणभूतैः जिग्ये जिगाय । अभिभूतांश्चकारेत्यर्थः । आत्मनेपदमार्षम् । धनुर्ज्येति स्वस्वरूपाख्यानमात्रम् । ज्यापदेनैव धनुर्गुणप्रतीतेः ॥ ६ ॥

तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।

देवीसिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥ म. ११ श्लो. १०

तस्मिनादमिति । तं कालीकृतं धनुर्ज्यासिंहघण्टानिनादं शब्दमुपश्रुत्य श्रुत्वा सरोषैः सक्रोधैः दैत्यानां सैन्यैः कर्तृभूतैः चतुर्दिशं चतुर्दिक्षु देवी कौशिकी सिंहो देवीवाहनः । काली ललाटोद्भवा । एताः सर्वा कर्माभूताः । परिवारिताः वारणादिभिराच्छादिता इत्यन्वयः ॥ १० ॥

एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।

भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ म. १२ श्लो. ११

ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।

शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥ म. १३ श्लो. १२

एतस्मिन्निति द्वाभ्याम् । एतस्मिन्नन्तरे अवसरे सुरद्विषां दैत्यानां विनाशाय विनाशार्थं अमरेषु देवेषु सिंहानां श्रेष्ठानां इन्द्राग्नियमवरुणप्रभृतीनां भवाय सम्पदे अति अत्यन्तं वीर्यं तेजः बलं पराक्रमः ताभ्यामन्विताः युक्ताः ब्रह्मा प्रजापतिः ईशो रुद्रः गूहति रक्षति सेनामिति गुहः कार्तिकेयः । इगुपधेतिकः । विष्णुः केशवः । विष्णुशब्देन वराह-नृसिंहावपि । तेषां इन्द्रस्य पुरन्दरस्य च शक्तयः शरीरेभ्यो देहेभ्यो निष्क्रम्य निर्गत्य शक्तिशक्तिमतोस्तादात्म्यादव्यतिरेकिण्यो देवताः तद्रूपैः तत्समानाकारैः चण्डिकां कौशिकीं ययुरित्यन्वयः । यद्वा देव्याः कौशिक्याः शरीरेभ्यः शरीरावयवेभ्यो विनिष्क्रम्य निर्गत्य चण्डिकां

ययुः प्रापुरित्यन्वयः । शरीरस्यैकत्वेन बहुवचनसामर्थ्यादिवयवेषु पर्यव-
सानम् । तथा च वामनपुराणे । निनदन्त्यास्ततो देव्या ब्रह्माणी मुख-
तोऽभवत् । हंसयुक्तविमानस्या साक्षसूत्रकमण्डलुः । माहेश्वरी त्रिनेत्रा
च वृषारूढा त्रिशूलिनी । महाहिवलया रौद्रा जटामण्डलिनी क्षणात् ।
कण्ठादथ च कौमारी वह्निपत्राय शक्तिनी । समुद्भूता च देवर्षे मयुरवर-
वाहना । बाहुभ्यां गच्छारूढा शङ्खचक्रगदासिनी । शार्ङ्गबाणधरा
जाता वैष्णवी रूपशालिनी । महोग्रमुसला रौद्रा दंष्ट्रोह्निवितभूतला ।
वाराही पृष्ठतोजाता शेषनागोपरिस्थिता । वज्राकुशोद्यतकरानाना-
लङ्कारभूषिता । जाता गजेन्द्रपृष्ठस्था माहेन्द्री स्तनमण्डलात् । विक्षि-
पन्ती सटाक्षेपैर्ग्रहनक्षत्रतारकाः । नखिनी हृदयाज्जाता नारसिंही
सुदारणेति ॥ ११ ॥ १२ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ।

तद्वदेवहि तच्छक्तिरसुरान्याद्ध्युमाययौ ॥ म. १४ श्लो. १३

तद्रूपारति कथनात्तदेव प्रकटयति-यस्येति । भूषणानि महाहिव-
लयादीनि । वाहनानि हंसादीनि अनतिक्रमेति यथाभूषणवाहनम् ।
यस्य देवस्य ब्रह्मादेः यद्रूपं या आकारः तद्वदेव तेन रूपेण तुल्यमेव
तच्छक्तिस्तदव्याप्तिरेकिणी देवता योद्धुं अमुना ययौ प्राप्तेत्यन्वयः ।
भूषणेत्युपलक्षणं तेनायुधसंग्रहः । यथा भूषणवाहनमित्यत्राव्ययं विभक्तो-
त्यादिना समासः । तद्वदित्यत्र तेन तुल्यं क्रियाचेद्वातिरिति वतिः ॥ १३ ॥

तदेव व्याकुरुते—

हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।

आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥ म. १५ श्लो. १४

हंसेति । हंसैर्युक्तस्य विमानस्याग्रे उपरि आयाता प्राप्ता अक्षन्ती-
त्यक्षा रुद्राक्षाः । अक्षव्याप्तौ । पचाद्यच् । अक्षयुक्तं सूत्रं अक्षसूत्रं रुद्राक्ष-
मालां कस्य प्रजापतेर्जलस्य वा मण्डः सारः तं लाति लभते वा कमण्डलुः
जलपात्रम् अक्षसूत्रकमण्डलुभ्यां सह वर्तमाना साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
रुद्राक्षमालाकमण्डलुधारिणीत्यर्थः । एवं भूता ब्रह्मणः शक्तिरव्यतिरेकिणी
देवता या सा । ब्रह्माणं अणति कीर्तयतीति ब्रह्माणी । अण
शब्दे कर्मण्यण् । टिड्ढेति ङीप् । ब्रह्माणी अभिधीयते उच्यते लोकैरिति-
शेषः । अक्षो ज्ञानात्मशकटावयवेषु च पाशके । विभीतकेऽथ रुद्राक्षे इति

कोशान्तरम् । अस्त्रीकमण्डलुः कुण्डीत्यमरः । साक्षसूत्रकमण्डलुरित्यु-
पलक्षणम् । अस्याः स्वरूपं विष्णुधर्मोत्तरे । तत्र ब्राह्मी चतुर्वक्त्रा षड्-
भुजा हंसवाहना । पिङ्गाभा भूषणोपेता मृगचर्मोत्तरीयका । वरं सूत्रं
स्रुचं धत्ते दक्षबाहुत्रये क्रमात् । वामे तु पुस्तकं कुण्डीं बिभ्रती चाभय-
प्रदेति ॥ १४ ॥

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।

महाहिवलया प्राप्ता चन्द्रेखाविभूषणा ॥ म. १६ श्लो. १५

माहेश्वरीति । महेश्वरस्य रुद्रस्येयं शक्तिर्माहेश्वरी । वृषं आरूढा ।
त्रिशूलं वामहस्ते वरं वरमुद्रां दक्षहस्ते धारयितुं शीलमस्याः सा ।
आहन्तीत्यहिः सर्पः । आङ्घ्रिहनिभ्यां ह्रस्वश्चेतीन् डित् । महान्तो
च तावही च महाही अनन्ततक्षकौ । वलेते इति वलयौ कङ्कणौ यस्याः
सा । वल सम्बरणे । अस्माद्वलिमलितनिभ्य इति कयन् । वलयः कण्ठ-
रोगे ना वलयं पुनपुंसकम् । कटकं वलयोः स्त्रियामित्यमरः । चन्द्रेखा
चन्द्रकला विभूषणं यस्याः सा प्राप्ता कौशिकीमाययावित्यन्वयः । एत-
दप्युपलक्षणम् । यथा विष्णुधर्मोत्तरे । माहेश्वरी वृषारूढा पञ्चवक्त्रा
त्रिलोचना । बालेन्दुभृज्जटाजूटा शुक्ला सर्ववरप्रदा । षड्भुजा वरदा
दक्षे सूत्रं डमरुकं तथा । शूलं घण्टाभये वामे सैव धत्ते महाभुजेति ॥ १५ ॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।

योद्धुमभ्याययौ दैत्यान्स्विका गुह रूपिणी म. १७ श्लो. १६

कौमारीति । कुमारयतीति कुमारः कार्तिकेयः । कुमार क्रीडा-
याम् । पचाद्यच् । कुः कृतिसतेषदर्थयोः । कौ मारयति दुष्टानिति वा
कुमारः । पचाद्यच् । तस्येयं शक्तिः । शक्तिः कासूर्हस्ते यस्याः सा ।
मयते इति मयूरो बर्ही । मय गतो खजूरादित्वादूरः । मयां रीतीति
वा मयूरः । अन्येभ्योऽपीति डः । पृषोदरादि । मयूरः वर. श्रेष्ठः वाहनं
यस्याः सा । गुहः कार्तिकेयः तद्रूपिणी तदाकारा । अम्बिका जगन्माता ।
योद्धुं दैत्यान्भिमुखं आययौ । प्राप्तेत्यन्वयः । अत्राप्यायुधाद्युपलक्षणम् ।
विष्णुधर्मोत्तरे कौमारी रक्तवर्णा स्यात्षड्भुक्त्रा साकलोचना । रवि-
बाहुर्मयूरस्या वरदा शक्तिधारिणी । पताकां बिभ्रती दण्डं पानं बाणं
च दक्षिणे । वामे चापमधो घण्टां कमलं कुक्कुट त्वधः । परशुं बिभ्रती
तीक्ष्णं तदधस्त्वभयान्वितेति ॥ १६ ॥

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गुरुडोपरिसंस्थिता ।

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ म. १८ श्लो. १७

तथैवेति । विष्णोरियं शक्तिर्वैष्णवी गरुडिः पक्षेः डीयते इति गरुडो वेनतेयः । डीङ् विहायसागतौ । अन्येभ्योऽपीति डः । पृषोदरादित्वात्तलोपः । गरुडस्योपरिपृष्ठे संस्थिता उपविष्टा । शङ्खः पान्चजन्यः । चक्रं सुदर्शनः । गदा कौमोदकी । शृङ्गस्य विकारः शार्ङ्गं धनुः । अनुदात्तादेश्चेत्यञ् । शार्ङ्गाः पक्षिभेदाः मन्दपालोपाख्याने भारते एव शार्ङ्गशब्दस्य पक्षिवाचित्वस्य स्पष्टीकृतत्वात् । शार्ङ्गाणां पक्षिणामिमे शार्ङ्गाः पक्षाः सन्त्येष्विति शार्ङ्गाः पक्षिणो बाणा इत्यर्थः । तस्येदमित्यणन्तादशं आद्यच् । शङ्गं च शार्ङ्गाश्च तेषां समाहारः शार्ङ्गं सेनाङ्गत्वात्समाहारः धनुर्बाणाश्च खड्गः प्रसिद्धः तेषां समाहारः शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गं खड्गं, तद्वस्ते यस्याः सा । इयं षड्भुजा । तथा च वामनपुराणे । बाहुभिर्गण्डारुढा शङ्खचक्रगदासिनी । शार्ङ्गबाणधरा जाता वैष्णवी रूपशालिनीति । एतेन अभ्युपा बाहुमूले स्यादित्यभिधानादभ्युपा कक्षा तस्यां खड्गधारिणीति वदन्तो निर्मूला एव तादृशस्य कोशस्य निर्मूलत्वात् ॥ १७ ॥

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतोहरेः ।

शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराही बिभ्रती तनुम् ॥ म. १९ श्लो. १८

यज्ञेति । वर श्रेष्ठमाहन्तीति वराहः । अन्येभ्योऽपीति डः । वराहस्येदं वाराहं । तस्येदमित्यण् । यज्ञमयसर्वावयवं वाराहं यज्ञवाराहं । अतुलं निरुपमं रूपमाकारं बिभ्रतो धारयतो हरेः विष्णोः या शक्तिरविनाभाविनी देवता वाराही वाराहसम्बन्धिनीं तनुं मूर्तिं बिभ्रती धारयन्ती सापि तत्र युद्धे आययौ प्राप्ता बभूवेत्यन्वयः । अस्या ध्यानं यथा विष्णुधर्मोत्तरे । कृष्णवर्णा तु वाराही शूकरास्या महोदरी । वरदा दण्डिनी खड्गं बिभ्रती दक्षिणे सदा । खेटपाशाभया वामे सैव चाथ लसद्भुजेति ॥ १८ ॥

नारसिंहो नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।

प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षितनक्षत्रसंहतिः ॥ म. २० श्लो. १९

नारसिंहीति । नृसिंहस्य भक्तत्राणार्थगृहीताद्धनराद्धसिंहकलेवरस्य सदृशं तुल्यं वपुः शरीरं बिभ्रती धारयन्ती सटानां ग्रीवावर्तिकेशानां

क्षेपेण प्रेरणेन क्षिप्ताः नक्षत्राणां ताराणां संहतयः समूहा यथा सा ।
नरसिंहस्येयं नारसिंही शक्तिः । तत्र रक्तबीजहननप्रस्तावे प्राप्तेत्यन्वयः ।
सटाक्षेपेति विशेषणं तत्कायस्यातिमहत्त्वमभिव्यनक्ति ॥ १९ ॥

वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरिस्थिता ।

प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥ म. २१ श्लो. २०

वज्रहस्तेति । वज्रं कुलिशं हस्ते यस्याः सा वज्रहस्ता । गजानां
राजा गजराजः ऐरावतः । राजाहः सखिभ्यष्टजिति टच् । तस्योपरि
पृष्ठे स्थिता उपविष्टा सहस्रं नयनानि नेत्राणि यस्याः सा । यथा यादृक्-
प्रकारकायुधादिविह्वोपलक्षिता । शक्नोतीति शक्रः इन्द्रः । तथैवायुधा-
दिविह्वोपलक्षिता तादृक्प्रकारिकैव सा इन्द्रस्येयमैन्द्री शक्तिः प्राप्ता
तत्रेति शेषः अस्या ध्यानं यथा विष्णुधर्मोत्तरे । ऐन्द्री सहस्रदृक् सौम्या
हेमाभा गजसंस्थिता । वरदां सूत्रिणी वज्रं विभ्रत्यूर्ध्वं तु दक्षिणे । वामे
तु कलशं पात्रं त्वभयं दक्षिणे करे इति । वज्रमस्त्रीस्यात्कुलिशं भिदुरं
पविरित्यमरः ॥ २० ॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।

हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याह चण्डिकाम् ॥ म. २२ श्लो. २१

तत इति । तत्तद्देवशक्तिसमागमनानन्तरं ताभिः पूर्वोक्ताभिः
देवानां ब्रह्मादीनां शक्तिभिरव्यतिरेकिणीभिर्देवताभिः परितः वृतः
युक्तः । ईष्टे इतीशानो रुद्रः । ताच्छील्ये ईशेश्वानश् । मम प्रीत्या
मत्प्रीतिहेतोः असुराः रक्तबीजादयः भवत्या हन्यन्तामिति चण्डिकां
कोशिकीं आह । अन्नवीदिति साध्याहारोऽन्वयः । प्रीत्येतिहेतो
तृतीया ॥ २१ ॥

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।

चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी ॥ म. २३ श्लो. २२

तत इति । शिवस्यागमनं शिवदूत्याविर्भावायेति । ततः शिव-
दर्शनानन्तरं अति अत्यन्तं भीषणा दारुणा चण्डिकायाः कौशिक्याः शक्तिः
सामर्थ्यं । अंशभूता वा । उग्रं रुद्रमतिक्रान्तात्युग्रा । प्रगल्भतया । शिवः
शिवा वा देवता अस्त्यस्या इति शिवा गोमायुः । अर्श आद्यच् । शकुना
वेदकत्वात् । स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तका इत्यमरः ।
शिवानां फेरुणां शतं गणः । शिवाशतस्य निनादः फेकारब्धनिः ।

सविद्यते यस्याः परिसरे इति शिवाशतनिनादिनी अतः इनठनाविति मत्वर्थीयः । शृगालगणनादेनान्वितेति यावत् । शक्तिरंशभूता । देव्याः कौशिक्याः शरीरात् हृदयप्रदेशात् भविष्यच्छिवद्वैतविधानविशेषेण निष्क्रान्ता निर्गता आसीदिति शेषः ॥ २२ ॥

साचाह धूम्रजटिलमोशानमपराजिता ।

दूतत्वं गच्छ भगवन्पार्श्वशुम्भनिशुम्भयोः ॥ म. २४ श्लो. २३

सेति । सा कौशिकीदेहोद्भवा शक्तिः अपराजिता कैरप्यनभिभूता धूम्रजटिलं धूम्रवर्णजटाशालिनं ईशानं रुद्रं आह अत्रवीत् । किमाहेत्याकाङ्क्षायामाह । दूतत्वमिति सार्द्धत्रयेण । हेभगवन् ऐश्वर्यादिषडर्थभगविशिष्ट ईशान दूतत्वं दूतो वार्ताहरः तद्भावं गच्छ प्राप्नुहि । च पुनः शुम्भनिशुम्भयोः पार्श्वं समीपं गच्छेत्यन्वयः । गच्छेति काकाक्षिगोलकन्यायेनोभयत्र सम्बध्यते । धूम्रजटिलमित्यत्र पिच्छादित्वादिलच् । कर्मधारयान्मत्वर्थीय आर्षः ॥ २३ ॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।

ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥ म. २५ श्लो. २४

ब्रूहीति । दनोः कश्यपपत्न्या अपत्ये दानवौ अति अत्यन्तं गर्वितौ साभिमानौ शुम्भं निशुम्भं च उभौ । त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतामित्यादिवृत्तं ब्रूहि कथय । ये च तत्र शुम्भनिशुम्भान्तिके युद्धाय युद्धार्थं समुपस्थिताः प्राप्ताः अन्ये दानवास्तानपि ब्रूहि । यत्तदोर्नित्यसम्बन्धात्तानित्यध्याहार्यान्वयः ॥ २४ ॥

तत्र वक्तव्यार्थमाह—

त्रैलोक्यमिन्द्रोलभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।

यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥ म. २६ श्लो. २५

त्रैलोक्यमिति द्वाभ्याम् । इन्द्रः पुरन्दरः भवद्भिरपहृतं त्रैलोक्यं त्रिलोकाधिकारं लभतां प्राप्नोतु । देवाः अमराः हविः यज्ञे आहुतित्वेनोपकल्पितं देवसम्प्रदानकं घृतादिद्रव्यं भुञ्जते इति हविर्भुजः सन्तु । देवानां भागोयागे भवद्भ्यां नाहर्तव्य इति भावः । तर्हि अस्माभिरायुः शेषं कुत्रनेयमित्यत्राह—यूयमिति । यदि जीवितुं प्राणान्धारयितुमिच्छथ

सहि ध्रुयं पतन्त्यत्रपापादिति पातालं सुतलं लोकं प्रयात इतः परावृत्य गच्छतेत्यन्वयः । पातालं बलिसन्नतया प्रसिद्धत्वेन तत्रावस्थाने नापराधिनो भवन्त इति भावः । दैत्यसमुदायाभिप्रायं बहुवचनम् ॥ २५ ॥

बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकांक्षिणः ।

तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेनवः ॥ म. २७ श्लो. २६

बलावलेपादिति । बलस्य अवलेपनमवलेपः । लिप उपदेहे । भावे-
घञ् । तस्मात् अवलेपात् बलाभिमानाद्धेतोः यदि भवन्तो युद्धं कांक्षितुं
शीलमेषामेवंभूताः सन्ति तदा स्वयमात्मना आगच्छत । वः युष्माकं
पिशतीति पिशितं मांसं । पिश अवयवे । पिशोःकिञ्चेतीतन् । यद्वा
पिश्यते स्म वा क्तः । तेन मांसेन मच्छिवाः शृगालाः तृप्यन्तु गतभोजने-
च्छा भवन्त्वित्यन्वयः । पिशितं तरसं मांसमित्यमरः ॥ २६ ॥

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।

शिवदूतीतिलोकेऽस्मिस्ततः साख्यातिमागता ॥ म. २८ श्लो. २७

यत इति । सम्प्रति कौशिकीदेहोद्भवाया देव्या नाम निरुक्ति-
माह—यतः यस्मात् कारणात् दूतस्य सन्देशहरस्य भावः दौत्यं ब्राह्मणा-
दित्वात्ष्यञ् । तेन कारणेन तया देव्या कौशिकीदेहभूतया शक्त्या
स्वयमात्मना कर्त्या शिवोद्भूतः नियुक्तः आज्ञप्तः ततस्तस्मात्कारणात्
अस्मिन्नोके सा कौशिकीदेहोद्भवा शक्तिः शिवदूतीतिसंज्ञया ख्याति
प्रसिद्धि आगता प्राप्तेत्यन्वयः । अत्र यद्यपिभावे दूतवर्णिगभ्यां चेति
यप्रत्यये दूत्यमिति प्रयोगोन्याय्यस्तथापि ब्राह्मणादिगणपाठात्ष्यत्रपि
साधुः । दौत्येनेति सप्तम्यर्थं तृतीया । स्यात्सन्देशहरो दूतो दूत्यं तद्भाव-
कर्मणीत्यमरकोशव्याख्यावसरे व्याख्यातृभिरप्येवमेव व्याख्यातम् । नागे-
शस्तु दूत्यमेव दौत्यं प्रज्ञाद्यणित्याह । दशोद्धारकृत्तु दूतस्य भावो दूत्यं ।
दूतवर्णिगभ्यां चेति यः । ततः प्रज्ञाद्यणि दूत्यमेव दौत्यमित्याह । रघु-
नाथाश्रमस्त्वत्त्वमेवाह । शिवो दूतो यस्याः सा शिवदूती बहुव्रीहेश्रान्तो-
दात्तादितिङीष् । यद्वा शिवं दूतं करोतीति णिच् णिजन्तात् कर्मण्यण्
ततो गौरादित्वाङ्गीष् ॥ २७ ॥

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।

अमर्षापूर्तिता जग्मुर्यतः कात्यायनीस्थिता ॥ म. २९ श्लो. २८

तेऽपीति । शृणातीति शर्वोरुद्रः । शृहिसायाम् । अस्मात्कृगृह-

भ्योवः । यद्वा षर्वं हिंसायामित्यतः षर्वं गतावित्यतो वा ववयोरभेदा-
त्पचाद्यचिसर्वोऽपि । सर्वस्तुषर्वोभगवांशम्भुः कालंजराभिध इति नाम-
निधानात् । तथापि तालव्यादिरेव प्राचीनैः पठितः प्रसिद्धश्च । शर्वेण
आख्यातं सन्देशत्वेनोक्तं देव्याः शिवदूत्याः वचः त्रैलोक्यमिन्द्रोल्भता-
मित्यादिरूपं श्रुत्वा तेषां शुम्भादयोऽपि महासुराः । अमर्षेण क्रोधेन
पूरिताः तत्र जग्मुः यतः यत्रेति सार्वविभक्तिकस्तसिः । कतस्य मुने-
र्गोत्रापत्यं स्त्री कात्यायनी कौशिकी स्थिता तस्थौ । गर्गादिभ्यो यञ् ।
इति यज्ञन्तात्कात्यशब्दात्सर्वत्रलोहितादिकतंतेभ्यः इति षफः । फस्या-
यनादेशः । षित्त्वान्ङोष् । कात्यायनी । नामनिरुक्तिस्तु कालीपुराणे
तत्तेजाभिर्धृतवपुर्देवीकात्यायनेनैव । संधुक्षिता पूजिता च तेन कात्यायनी
स्मृतेति ॥ २८ ॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यवृष्टिभिः ।

ववर्षुर्द्वतामर्षास्तान्देवीममरारयः ॥ म. ३० श्लो. २९

तत इति । देवी सन्निधिप्राप्त्यनन्तरं प्रथममेव आदावेव अग्रे
सम्मुखे उपरि वा । शराः बाणाः । शक्तयः कासूनान्यः ऋष्टयः सूक्ष्म-
खङ्गाः तेषां समाहारः शरशक्त्यवृष्टिः । सेनाङ्गत्वात्समाहारः । तस्य वृष्टि-
भिरखण्डनिःक्षेपैः । उद्धतः उद्गतः अमर्षः क्रोधो येषां तथाविधा
अमराणां देवानामरयः शत्रवो दैत्याः तां प्रसिद्धां देवीं कौशिकीं ववर्षुः ।
आच्छादयामासुरित्यवयवः । पुरोऽधिकमुपर्यग्राणीत्यमरः । वृष्टिशब्दो
यद्यपि जलसेकभाक् तथाप्यत्र तदर्थबाधादखण्डाक्षेपे औपचारिकः ।
ववर्षुरित्यत्र यद्यप्यसंयोगाल्लिट्कित् इति लिटः कित्वाद्गुणनिषेधो
न्याय्यस्तथापि न शब्दददति पृथग् योगकरणसामर्थ्यान्नाश्रितकार्यस्या-
नित्यत्वज्ञापनात्कवचिद् गुणोऽपि साधुरिति बोध्यम् । नागेशस्तु ववर्षु-
रित्यत्रार्पत्वाद्गुण आह । एतदेवरामाश्रमादयः । केचित्तु वर्षणं षषः ।
वर्ष इवाचरति वर्षति । आचारे क्विप् । तत आचारक्विबन्ताद्वर्षशब्दा-
ल्लिटि ववर्षुरिति बहुवचनेरूपम् ॥ २९ ॥

सा च तान्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरम्बधान् ।

चिच्छेद् लीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ म. ३१ श्लो. ३०

साचेति । च पुनः सा कौशिकी आध्मातेन शब्दवत्ता धनुषा मुक्तैः
क्षिप्तैः महेषुभिः दीर्घबाणैः लीलया क्रीडया अनायासेनेति यावत् । तैः

असुरैः प्रहितान् प्रेरितान्वाणान् शूलसहिताः शक्तयः शूलशक्तिसहिताः
परश्वधाः शूलशक्तिपरश्वधाः तान् चिच्छेदत्यन्वयः । शाकपार्थिवादित्वा-
न्मध्यमपदलोपः ॥ ३० ॥

तस्याग्रतस्तथाकाली शूलपातविदारितान् ।

खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन्कुर्वती व्यचरत्तदा ॥ म. ३२ श्लो. ३१

तस्याग्रत इति । तस्याग्रतः अत्र सन्धिरार्धः । तस्याः कौशिक्याः
अग्रतः पुरस्तात् । तथा तेनैव प्रकारेण कौशिकी कृतप्रकारेणैवेत्यर्थः ।
काली देवी ललाटोद्भवा । शूलस्य पातेनाक्षेपेण विदारितान् । खट्वाङ्गेन
नरपञ्जर्यां पोथितान्हिसितान् अरीन् कुर्वती सती तदा तस्मिन्काले
व्यचरत् । इतस्ततः सन्चारमकरोदित्यन्वयः । कुर्वन्तीति नुम्सहितः
पाठस्त्वसाधुः ॥ ३१ ॥

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हर्ताजसः ।

ब्रह्माणी चकारोच्छन्नूयेन येनस्म धावति ॥ म. ३३ श्लो. ३२

कमण्डल्विति । ब्रह्माणमानयति जीवयतीति ब्रह्माणी ब्राह्मी
शक्तिः । येन येन प्रदेशेन धावतिस्म तेन तेन प्रदेशेन कमण्डलोः कुण्डघा-
जलस्य आक्षेपेण सेकेन हतं नाशितं बलं वीर्यं येषां तान् । हतं नाशितं
ओजः अवष्टम्भभूतं तेषां तान् तथा भूतान् तान् शत्रून् रिपूनकरोदित्य-
न्वयः । मन्त्रविशेषाभिमन्त्रितजलक्षेपान्निःसामर्थ्यान् शत्रूनकरोदित्यर्थः ।
येन येनेति सप्रत्यर्थं व्यत्ययेन तृतीया । लट्स्मे इति सूत्रेण धावतीति-
स्मयोगे लट् ॥ ३२ ॥

माहेश्वरी त्रिशुलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।

दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥ म. ३४ श्लो. ३३

माहेश्वरीति । माहेश्वरस्येयं माहेश्वरी शैवी शक्तिः त्रिशुलेन कर-
णेन दैत्यान् जघान हतवती । तथा वैष्णवी शक्तिः चक्रेण दैत्यान् जघान ।
अति कोपना अत्यन्तक्रोधशीलेति सर्वत्र योजना । कुमारस्य कार्तिक-
स्येयं कौमारीस्कान्दी शक्तिर्दैत्याञ्जघान । स्तोःश्चुनाश्चुरिति चुत्वेन
जः ॥ ३३ ॥

ऐन्द्री कुलिशपातेन शतशोदैत्यदानवाः ।

पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ म. ३५ श्लो. ३४

ऐन्द्रीति । इन्द्रस्येयमैन्द्री शक्तिः तस्याः कुलिशस्य वज्रस्य पातेन पतनेन करणेन विदारिताः सन्तः रुधिरस्य असृजः ओघं प्रवाहसमूहं वर्षितुं शीलं येषामेवं भूताः सन्तः शतं शतमिति शतशः दैत्याः दिति-पुत्राः दानवाः दनोः पुत्राश्च भूमौ पेतुः पतिता बभूवुरित्यन्वयः । शतश इति संख्यैकवचनाच्च वीप्सायामिति शस् । पेतुरित्यत्रात एकहल्मध्ये अनादेशादेर्लिटीत्येत्वाभ्यासलोपो ॥ ३४ ॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।

वराहमूर्त्या निपतँश्चक्रेण च विदारिताः ॥ म. ३६ श्लो. ३५

तुण्डेति । मूच्छंतीति मूर्तिः । मूच्छा मोहसमुच्छ्राययोः । क्तिच् । राज्ञोपः । वराहस्येव मूर्तिः कायो यस्याः सा वराहमूर्तिः यज्ञवराह-शक्तिः तस्याः तुण्डतीति तुण्डं मुखम् । तुडि तोडने । पचाद्यच् । तुण्डस्य प्रहारेण विध्वस्ताः अधः पातिताः तथा तस्याः दृश्यते अनेनेतिदंष्ट्रा विषाणं । दंक्ष दक्षने । दाम्नी शसेतिष्टन् । टाप् । दंष्ट्राया अग्रेण पुरो-भागेन क्षतं वक्षः उरो येषां तथाभूतास्तथा वराहमूर्त्या चक्रेण च विदा-रिताः पाटिताः न्यपतन् । भूमौ पतिता असुरा इति शेषः । वाराहमूर्त्या इति दाक्षिणात्यपाठः नागेशसम्मतश्च । तत्रेयं व्याख्या । वाराही चासौ मूर्तिश्च वाराहमूर्तिः । तथा चक्रेणेत्यनेन वाराह्या मुखमेव वराहसदृशं न त्वन्यदिति सूच्यते । एवं शक्तिमतो वराहस्यापि बोध्यम् । वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमित्यमरः । मूर्तिः पुनः प्रतिष्ठायां मूर्तिः काठिन्य काययोर-पीति हैमः ॥ ३५ ॥

नखैर्विदारितांश्चान्यानभक्षयन्ती महासुरान् ।

नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिग्म्बरा ॥ म. ३७ श्लो. ३६

नखैरिति । करजैर्विदारितान् । यानरीन् शत्रून् भक्षयन्ती नादेन आपूर्णानि दिग्म्बराणि प्रागादिदिशः अम्बरमाकाशं च यया तथाभूता नरसिंहस्येयं नारसिंही शक्तिः । आजौ संग्रामे चचार । इतस्ततो बभ्रा-भेत्यन्वयः ॥ ३६ ॥

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।

पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाय सा तदा ॥ म. ३८ श्लो. ३७

चण्डाट्टहासैरिति । चण्डैस्तकटैः सकोपैर्वा अट्टः अतिशयितैः हासैः हास्यैः करणभूतैः शिवदूत्या देव्या अभितः दूषिताः भीषिताः सन्तः

अमुराः दैत्याः पृथिव्यां भूमौ पेतुः । पातिताः । तदा तत्पतनकाले
सा च शिवदूती तान् भूमौ पतितानसुरान् चखाद अभक्षयदित्यन्वयः ।
अत्र तृतीयासमासः । यच्च कर्तृभूतायाः शिवदूत्याः क्तान्तक्रियया समास
उचित एव तथापि चण्डाट्टहासैरिति करणसमन्वयार्थं समासाभाव एव
न्याय्यः । समस्तपदैकदेशभूतक्रियायां करणान्वयासम्भवात्समासश्चानु-
चितोऽपि तत्र भगवता द्वेपायनेन कृत एव तदर्थमित्थं व्याख्येयम् । अत्र
चण्डाट्टहासः कस्या इति यद्यपि न प्रतीयते तथापि खादनक्रियायां
कर्तृभूतायाः शिवदूत्याः एवेत्यवसीयते । अन्य सम्बन्धस्येहानुपादानात् ।
दुष धातोर्णिजन्तात्कप्रत्यये दोषोणाविति उकारस्योदादेशे दूषिता
इति रूपम् ॥ ३७ ॥

इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।

दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ म. ३९ श्लो. ३८

इतीति उक्तप्रकारेण विविधैरभ्युपायैः यत्नैः महासुरान् मर्दयन्तं
मातृणां गणं ब्राह्म्यादीनां समूहं क्रुद्धं दृष्ट्वा देवानामरेः शुम्भस्य सैनिकाः
सेनापतयः नेशुः अदर्शनं प्रापुः पलायिता इत्यर्थः । सेनां रक्षन्तीति
सैनिकाः । रक्षतीति ठक् । सेनायां समवेतीति सैनिकाः । सेनायावेति
ठक् । सेनारक्षास्तु सैनिकाः । सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्चते
इत्यमरः । णश् अदर्शने । अस्माक्येति बहुवचने एत्वाभ्यासलोपयोर्नेशु-
रिति रूपम् ॥ ३८ ॥

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान्मातृगणादितान् ।

योद्धुमभ्याययौ दैत्यो रक्तबीजो महासुरः ॥ म. ४० श्लो. ३९

पलायनपरानिति । पलायनमेव परमुत्कृष्टमेष्टं तथाविधान् ।
मातृणां ब्राह्म्यादीनां गणेन समूहेनादितान्पीडितान् दृष्ट्वा रक्तं रुधिरं
अपरस्वसदृशोत्पादकत्वाद्बीजमिव बीजं यस्य सः । यद्वा । रक्तं रुधिरं
बीजं हेतुर्यस्य सः । चितायां प्रक्षिप्तस्य रम्भस्य तन्महिष्याश्च रुधिरेणैव
रक्तबीजस्य जातत्वात्तन्नामासुरः । महिषमन्त्री भ्राता चेति वामनपुराण-
प्रसिद्धाकथास्ति । स महासुरः योद्धुं युद्धं कर्तुं अभि अभिमुखं आयायौ
आयात इत्यन्वयः । पलायनमित्यत्र परापूर्वस्य अयतेत्युटि उपसर्गस्याय-
ताविति सूत्रेण रेफस्य लृत्वं । बीजशब्दसाधनं तु विशेषेण जायते
अनेनेति बीजम् । उपसर्गश्च संज्ञायामिति डः । अन्येषामपीति दीर्घः बीजं

तु रेतसि, स्यादाधाने च तत्त्वे च हेतावंकुरकारणे इति हैमः । रजतिस्म
इतिरक्तम् । रंजरागे । रक्तोऽनुरक्तेनीत्यादि रञ्जिते लोहिते णिषु ।
क्लीबत्वं कुंकुमे ताम्रे प्राचीनामलकेऽसृजीति कोशान्तरम् ॥ ३६ ॥

रक्तबीजस्य सहजं स्वभावमाह—

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।

समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥ म. ४१ श्लो. ४०

रक्तबिन्दुरिति । अस्य रक्तबीजाख्यस्य शरीरतः देहात् रक्तस्य
रुधिरस्य बिन्दतीति बिन्दुः पृथक् । यदा यस्मिन्काले भूमौ पृथिव्यां
पतति श्लिष्यति । तदा तस्मिन्काले मेदतीति मेदोमांसरसः । त्रिमिदा
स्नेहने । पचाद्यच् । यद्वा मेदनं मेदः । चञ् । यद्यपि हृन्मेदस्तुवपावसेत्य-
भिधानात्सान्त एव मेदःशब्दो वपावचनः प्रसिद्धस्तथापि मदघ्नोमेद-
कुष्ठेति शालिहोत्रप्रयोगादकारान्तोऽपि मेदशब्दो वपावचनः । मेद-
मस्त्यस्यामिति मेदिनी । अकारान्तान्मेदशब्दादतद्भिः । यद्वा । मेद्य-
तीति मेदिनी । त्रिमिदाइत्यतो ब्रह्मादित्वादिभिः । मेदिन्यामाधार-
भूतायांसरक्तबीज एव प्रमाण इयत्तापरिच्छेदको यस्यसः । तत्प्रमाणो-
ऽसुरः सन्समुत्पतति उत्तिष्ठतीत्यर्थः । बिन्दुरिति बिदि अवयवे ।
बाहुलकादुः । बिन्दुर्दलेक्षतान्तरे । भ्रुवोर्मध्ये रूपकाव्यकृतौ च पृषते
पुमान् । पृषन्ति बिन्दुपृषता इत्यमरः ॥ ४० ॥

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।

ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥ म. ४२ श्लो. ४१

युयुधे इति गदा आयुधं पाणौ यस्यस गदापाणिः । स महासुरः
रक्तबीजः इन्द्रस्य पुरन्दरस्य शक्त्या सः युयुधे । विनापि तद्योगं तृतीया ।
वृद्धायूनेति ज्ञापकात् । युयुधे इति । युधं सम्प्रहारे दिवादिरनुदात्ता-
त्कर्त्तरि लिट् । ततः आत्मना सह युद्धारम्भानन्तरं इन्द्रस्येयमैन्द्री शक्तिः
स्वीयेन वज्रेण करणेन रक्तबीजमसुरमताडयत् । हे स्वआत्मीयेति वा
वा राज्ञः सुरधस्य सम्बोधनम् ॥ ४१ ॥

कुलिशेनाहतस्याशु तस्य सुस्त्राव शोणितम् ।

समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ म. ४३ श्लो. ४२

कुलिशेनिति । ऐन्द्रघाक्षितेन कुलिशेन वज्रेण करणेन आहतस्य
ताडितस्य तस्य रक्तबीजस्य शरीरत इति शेषः । रक्तबीजसम्बन्धे वा

शोणितं कर्तुं आशु शीघ्रं सुखाव प्राप्नुयत । ततस्तस्मादेव शोणिता-
द्रक्तबीजस्यैव रूपमाकृतिर्येषां ते तद्रूपाः । तथा तत्तथैव रक्तबीजस्यैव
पराक्रमो येषां ते तत्पराक्रमाः । योधा योद्धारः । रक्तबीजसदृशाकार-
पराक्रमाः समुत्तस्थुः उपस्थिता बभूवुः । तत्सदृशा इति वक्तव्ये तद्रूपा-
स्तत्पराक्रमा इत्युक्त्या च रक्तबीजस्य रक्तबीजरक्तोत्पन्नानामसुराणां
च कश्चिद्विशेषो ध्वन्यते । तथाहि । रक्तबीजरुधिरादसुराज्जन्तवन्ते ।
रक्तबीजरक्तजामसुराणां रक्तात् न केचिदुत्पद्यन्ते इति । सुखावेति ।
सुगतौ अकर्मकः दन्त्यादिः । परोक्षे लिट् । कुलिशेनाहतस्य रक्तबीजस्य
शोणितं कर्तुं सुखावेत्यकर्मकत्वम् । घटात्पयः स्रवतीति वत्कर्मनिरपेक्ष-
स्यावसेयम् । घटः स्रवतीत्यादौ प्रसिद्धेरकर्मकत्वं । तदुक्तं-धातोरर्थान्तरे
वृत्तं धात्वर्थेनोपसंग्रहात् ॥ प्रसिद्धेरविवक्षातः कर्मणोऽकर्मिका क्रियेति ।
शौर्योद्योगौ पराक्रमावित्यमरः ॥ ४२ ॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।

तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ म. ४४ श्लो. ४३

यावन्त इति । तस्य रक्तबीजस्य शरीरात् यावन्तः यत्परिमाणाः
यत्संख्याका रक्तबिन्दवः पतिताः । भूमावित्तिशेषः । तावन्त एव
तत्परिमाणसंख्याका एव रक्तबीजस्यैव वीर्यं प्रभावः बलं स्थूल्यं विक्रमः
अतिशक्तिता येषां ते तद्वीर्यबलविक्रमाः । पुरुषाः पुंन्यक्तयो दैत्याः जाता
उत्पन्ना इत्यन्वयः । वीर्यं बलं प्रभावश्च स्याद्वीर्यं वीरकर्म च । स्थूल्य-
सामर्थ्यसैन्येषु बलं ना काकसीरिणोः । विक्रमस्तु पदाक्रान्तौ शौर्ये चापि
प्रकीर्तितः । विक्रमस्त्वतिशक्तितेत्यमरः । यावन्त इति यत्तदेतेभ्यः परि-
माणे वतुप् ॥ ४३ ॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।

समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ म. ४५ श्लो. ४४

ते चापीति । रक्ताद्रुधिरात्सम्भवो येषानेवं विधाः पुरुषाः पुंन्य-
क्तयो दैत्याः तेष्वपि मातृभिः ब्राह्मणादिभिः समं अत्युग्राणि अतिदारु-
णानि यानि शस्त्राणि आयुधानि तेषां पातैराघातैः अतिभीषणं मयङ्करं
यथास्यात्तथा युयुधुरिति । उभयमपि क्रियाविशेषणमवगन्तव्यम् । युध-
सम्प्रहारे अनुदात्तेत् । इह तु व्यत्ययात्परस्मैपदम् ॥ ४४ ॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।

ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥ म. ४६ श्लो. ४५

पुनरिति । चोऽप्यर्थः । पुनरपि इन्द्रशक्तेः वज्रस्य पातेन आघातेन अस्य रक्तबीजस्य शिरः यदा क्षतं आहतं दलितमिति यावत् । तत्तदो-
नित्यसम्बन्धात्तदा वज्राहताच्छिरसः प्रादुर्भूतं रुधिरं कर्तुं ववाह वहति-
स्म । सुखावेति यावत् । ततश्च रक्तप्रवाहाद्बहुतरं प्रवृत्तात् सहस्रशः
पुरुषा जाता इत्यन्वयः । ववाहेति । अत्र वह प्रापणे इत्यस्माज्जिति
द्विवचने हलादिशेषे लिट्यभ्यासस्योभयेषामित्यनेनाभ्यासस्य सम्प्रसारणे
कृते सम्प्रसारणाच्चेति नित्ये पूर्वरूपे प्राप्ते वा छन्दसीत्यनुवृत्तेः पूर्वरूप-
स्याभावपक्षे मित्रावरुणा यजमानाविति वत् । पुनः प्रसङ्गविज्ञानादि-
कोयणचीतियणादेशे रूपम् । न चेदं छन्दः इति तु न वाच्यं । पुराणं
पञ्चमो वेदः । वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमानित्यादिवचनैः छन्दः
पर्यायवेदत्वातिदेशात् । संज्ञापूर्वकस्य विधेरनित्यत्वात्सम्प्रसारणाभाव-
इति त्वगतिकानुगतिः । बाह्य प्रयत्ने इत्यस्य वा धातूनामानेकार्थत्वमा-
श्रित्य अनुदात्तेत्वनित्यत्वात्तन्मतेपदस्य चक्षिणोऽङ्गित्करणज्ज्ञापकाद-
नित्यत्वमाश्रित्य परस्मैपदे रूपमित्यन्ये । ववाहेति वहिर्गतावित्यस्य
रूपमिति नागेशः । ववाह सुखाव । सम्प्रसारणाभावश्छान्दसः । वह
गतावित्यस्य वा रूपं सम्प्रसारणं तु वह प्रापणे इत्यस्यैव यजादिषु
पाठान्नान्यस्येति रामाश्रमः । अपरे तु 'वव' इत्यव्ययम् । रक्तनिःसरण-
जनितध्वनिमाह । अथवा वव इति शब्दानुकरणं आहेति च कालसामा-
न्यवाचि विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् । तथा च रक्तनिर्गमनसमये रक्तं कर्तुं
वव इत्येवं रूपं शब्दमाह ॥ ववेति शब्दानुकरणाद्विभक्तिस्तु न भवतीति
॥ ४५ ॥

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।

गदया ताडयामास ऐन्द्रीतमसुरेश्वरम् ॥ म. ४७ श्लो. ४६

वैष्णवीति । हकारः पुनरर्थः । ऐन्द्रीतमित्येकपदम् । वैष्णवी
शक्तिरेनं रक्तबीजं समरे संग्रामे चक्रेण सुदर्शनाख्येन करणेन अभिमुखं
जघान चिच्छेद । ऐन्द्रघाः शक्तेः इतं पराङ्मुखं अर्थात् वैष्णव्याः सम्मुखं
प्राप्तं एनं असुराणामीश्वरं प्रभुं रक्तबीजं गदया कौमोदक्या ताडयामासे-
त्यन्वयः ॥ ४६ ॥

वैष्णवी चक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।

सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ म. ४८ श्लो. ४७

वैष्णवीति । वैष्णव्याश्चक्रेणायुधेन भिन्नस्य दारितस्य रक्तबीजस्य रुधिरस्य स्रवणं स्रावः प्रवाहरूपेण प्रवृत्तिः तस्मात्सम्भव उत्पत्तिर्येषां तैः सहस्रेण सहस्रेणेति सहस्रशः वीप्सया असंख्यातैर्महासुरैः जगद्भुवनं व्याप्तं व्याकीर्णमासीदित्यन्वयः । सहस्रश इत्यत्र संख्यैकवचनाच्च वीप्सा-
यामिति शब्दः ॥ ४७ ॥

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।

माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥ म. ४९ श्लो. ४८

शक्त्येति । कुमारस्य कार्तिकेयस्येयं शक्तिः कौमारी शक्त्या आयुधेन महासुरं रक्तबीजं जघान जिहिंस । तथा वराहस्येयं वाराही शक्तिरसिना खड्गेन रक्तबीजं जघान । वाराहरूपतया यज्ञवराहशक्तेः खड्गधारणं न सम्भवतीति न शङ्कनीयम् । तस्या वदनस्यैव वराहवदनु-
कारितया करचरणादेर्मानुषावयवतुल्यतायाः सकलपुराणप्रसिद्धत्वात् । महेश्वरस्य रुद्रस्येयं माहेश्वरी शक्तिस्त्रिशूलेनायुधेन रक्तबीजं जघाने-
त्यन्वयः ॥ ४८ ॥

शक्तिभिराकुलीकृतस्यापि रक्तबीजस्य विक्रममाह—

स चापि गदया दैत्यः सर्वाण्वाहनत्पृथक् ।

मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥ म. ५० श्लो. ४९

स चापीति । चपुनः सोऽपि रक्तबीजः दैत्योऽपि कोपेन क्रोधेन समाविष्टो युक्तः सन् सर्वा एव मातृः ब्राह्मणाद्याः शक्तीः पृथक्पदं प्रत्येकं गदया अहनत् अताडयत् । किंभूतो रक्तबीजः असून्प्राणान्नातीत्यसुरः महांश्चासावसुरश्च महासुरः । एवं व्याख्याने दैत्यमहासुरयोर्नौ पौन-
रुक्त्यम् । महांश्चासावसुरश्चेतिव्युत्पत्त्यापि जातिसामान्यवचनेन दैत्य-
शब्देन सामर्थ्येन महत्त्वगुणभाजाविशिष्टेनासुरपदेनातिशयोक्तं पुन-
रुक्तिः । अहनदित्यत्रादि प्रभृतिभ्यः शपडिति विकरणस्य लुक् तु न
भवाति । तनादि कृञ्भ्य उरिति सूत्रे तनादित्वादेव सिद्धे पृथक् कृञ्ग्रह-
णेन गणकार्यस्यानित्यत्वज्ञापनात् । तेन न विश्वसेदविश्वस्ते इत्यादि-
प्रयोगाः सिद्धयन्ति । यद्वा हन्तीति हनः । पचाद्यच् । हन इवाचरत्
अहनत् । सर्वप्रातिपदिकेभ्यः क्विप्वा वक्तव्य इति क्विप् । ततः सना-
द्यन्ता धातव इति धातुत्वे हनशब्दाज्झि रूपम् । नागेशस्तु अहनदिति

छान्दसमाह । दंशोद्धारकृत् । अहनदित्यत्र गणकार्यस्यानित्यत्वमाश्रित्य शपो न लुगित्याह । रघुनाथाश्रमस्तु हन्त्यर्थाश्चेति चुरादिपाठात् हन-
हिंसायामित्यस्माद्विकल्पणिजन्ताणिचोऽभावे रूपं शप्प्रत्ययमे सति लङीत्याह ॥ ४६ ॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।

पपात यो वै रक्तौघस्तेनासंशतशोऽसुराः ॥ म. ५१ श्लो. ५०

तस्येति । बहुधा बहुप्रकारैः शक्तिशूलादिभिरायुधैः आहतस्य ताडितस्य रक्तबीजस्य यो रक्तस्य रुधिरस्य ओघः प्रवाहः समूहो वा भूमौ पपात तेन रक्तौघेन शतं शतमिति शतशः वीप्सया असंख्याताः असुराः रक्तबीजसदृशा दैत्याः आसन् उत्पन्ना बभूवुरित्यन्वयः । बहुधेति संख्याया विधार्थे धा इति सूत्रेण संख्यावाचिनो बहुशब्दात् धा प्रत्ययः । शतश इत्यत्र शतशब्दोऽनन्तवचनः ॥ ५० ॥

तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।

व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥ म. ५२ श्लो. ५१

तैरिति । असुरस्य रक्तबीजस्य न सृजतीत्यसृक् रुधिरम् । नञ् पूर्वात्सृजेः क्विप् । क्विन्प्रत्ययस्य कुरिति कुत्वम् । तत्र हि क्विन् प्रत्य-
योऽस्मादिति बहुव्रीहिः । ऋत्विग्दधृक्स्वगिति सृजेः क्विन् विधानात् । तस्मादसुरासृजः सकाशात्सम्भूतैः उत्पन्नैरसुरैः अनिर्दिष्टाभिधानत्वा-
दैत्यसामान्यैः सकलं जगत्त्रैलोक्यं व्याप्तं पूरितमासीदभूत् । ततः अनन्तरं देवा इन्द्रादयः उत्तममुत्कृष्टं भयं साध्वसमाजग्मुः प्रापुरित्यर्थः । लोकत्राणाय दैत्यानां नाशे प्रतिपित्सिते दैत्यभूयस्त्वमाकलय्य देवाः सभया बभूवुरिति तात्पर्यम् । एकदेशेऽपि पटे दग्धे पटो दग्ध इति व्यव-
हारवज्जगदेकदेशोऽपि जगदेवेति तत्स्वल्पजगद्व्याप्तिशङ्कां दूरीकर्तुं सकलग्रहणम् । सकलशब्दमात्रोक्तौ तु तस्य किं तदिति साकांक्षत्वात्त-
द्व्याघाताय जगदित्यप्युक्तम् ॥ ५१ ॥

तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वर ।

उवाच कालीं चामुण्डे विस्तरं वदनं कुरु ॥ म. ५३ श्लो. ५२

तानिति । प्राह सत्वरिति गौडाः । प्राह सत्वरमिति दाक्षिणा-
त्याः । तान् रक्तबिन्दुसज्जातासुरबाहुल्यदशनाद्विषण्णान् सम्भ्रमोपेतान्
सुरान् दृष्ट्वा प्रकर्षण समन्ताद्व्यन्ते भटा अत्रेति प्राहो रणमूर्द्धा तस्मि-

प्राहे युद्धमूर्द्धनि त्वरया सह वर्तमाना चण्डिका कौशिकी कालीं ललाटो-
द्भवां शक्तिं चामुण्डे चण्डनाशकर्मणा प्रसिद्धे विस्तरं विततं वदनं स्वीयं
मुखं कुर्वित्युवाचेत्यन्वयः । प्रकर्षेणहन्यन्तइति अन्येभ्योऽपीति डः ।
प्राहस्तुरणमूर्द्धनीतिकोशान्तरम् । अस्य प्रयोगो यथा स्कन्दपुराणे—रथेन
काञ्चनाङ्गनं प्रययौ प्राह लालस इति । प्राहे युद्धमूर्द्धनि लालसा अत्यन्तं
तृष्णा यस्य स इत्यर्थः । देवी पुराणेषु प्रययौ प्राह काम्ययेति । नागे-
शस्तु । तान्मुरान्विषणान् दृष्ट्वा सत्त्वरा त्वरा सहिता चण्डिका सुरान्प्राह ।
यूयं मा विषीदतेति शेषः । एवं सुरानाश्वास्य विस्तरं विस्तरवत् वदनं
कुरु इति कालीमुवाचेत्यपीनरुक्त्यमित्याह । दंशोद्धारकृत्तु प्राहसदिति
पदच्छेदं कृत्वा तान्विषणान्सुरान्दृष्ट्वा प्राहसत् । हास्येहेतुः । अहो मम
वीर्याज्ञानाद्विषणा इति । अत एव सा त्वरावती सती कालीमुवाचेति
सम्बन्ध इत्याह । चतुर्भुजमिश्रस्तु त्वरेति तृतीयान्तं विवबन्तमाह ।
रामाश्रमोऽपि तथैवानुससारेति ॥ ५२ ॥

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।

रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेनवेगिता ॥ म. ५४ श्लो. ५३

मच्छस्त्रपातेति । मम शस्त्राणां पाता आघातास्तेभ्यः सम्भूतान्
उत्पन्नान् रक्तस्य रुधिरस्य बिन्दून् तथा च रक्तबिन्दोः सम्बन्धिनः
महासुरान् रक्तबिन्दोः सकाशाज्जातान्महासुरान्वा अनेन वक्त्रेण वेगिता
सञ्जातवेगा सती त्वं प्रतीच्छ स्वीकुरु । आहारार्थं गृहाणेत्यन्वयः । रक्त-
बिन्दोरिति षष्ठी जन्यजनकभावसम्बन्धः षष्ठ्यर्थः । तथा च रक्तबिन्दु-
जान्महासुरानिति फलितोर्थः ॥ ५३ ॥

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।

एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥ म. ५५ श्लो. ५४

भक्षयन्तीति । तेभ्यः रक्तबीजबिन्दुभ्यः उत्पन्नान्महासुरान्भक्ष-
यन्ती त्वं चामुण्डा रणे संग्रामे चर विहर ततः किं सेत्स्यतीत्यत आह—
एवमिति अमुना प्रकारेण एष दैत्यः रक्तबीजः क्षीणं रक्तं यस्य तादृशः
सन् क्षयं नाशं गमिष्यति प्राप्स्यतीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

ननु रक्तबीजरक्तजा असुरा किकरिष्यन्तीत्यत आह—

भक्ष्यमाणस्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।

इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥ म. ५६ श्लो. ५५

भक्ष्यमाणा इति । अपरे रक्तबीजरक्तजा असुराः उग्राः रीद्राः सन्ति ते त्वया भक्ष्यमाणः खाद्यमानाः सन्तः न उत्पत्स्यन्ति नोदेष्यन्ति । पदगती अनुदात्तेत् । इह तु अनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वात्परस्मैपदम् । उत्पत्स्यन्तीत्यार्षत्वान्न तड्डीति नागेद्याः । इति तां कालीं उक्त्वा आदिश्य तस्यास्तदादेशकारित्वेन निर्णीतत्वात्तथेति तदुत्तरमनपेक्षयैव देवी कौशिकी शूलेन तं रक्तबीजं अभि अभिमुखे वर्तमानं जघान हृतवतीत्यन्वयः । आङ्घ्रियमहन् इत्यात्मनेपदमिह न भवति । तस्याकर्मकविषयत्वादिह च सकर्मकत्वात् ॥ ५५ ॥

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।

ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥ म. ५७ श्लो. ५६

मुखेनेति । काली मुखेन करणेन त्रिशूलाघातात्प्रवृत्तं रक्तबीजस्य शोणितं कर्म जगृहे । अभूमिष्ठमेवान्तरिक्षे पपावित्यर्थः । ततः देवीसम्बन्धिशूलघातानन्तरं काली कुरुधिर पानानन्तरं वा तत्र युद्धे असौ रक्तबीजः गदया आयुधेन चण्डिकां कौशिकीं आजघान ताडयामासेत्यन्वयः ॥ ५६ ॥

न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोल्पिकामपि ।

तस्याहतस्य देहान्तु बहु सुखाव शोणितम् ॥ म. ५८ श्लो. ५७

यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।

न चास्या इति । सःर्द्धश्लोकेनान्वयः । रक्तबीजकृतः गदायाः पातः आघातः अस्याः कौशिक्याः अल्पैवाल्पिका तामपि वेदयतीति वेदना दुःखं तां न चक्रे नोत्पादयामासेति । सच्चिदानन्दत्वादित्यर्थः । वेदनामिति विद वेदनाख्याननिवासेषु । णिच् । ण्यासश्रयेति युच् । टाप् । आवाधा वेदना दुःखमिति हलायुधः । तस्येति देव्या शूलेनाहतस्य तस्य यतः यस्माद्देहाल्लक्षणयादेहावयवात् । यत् शोणितं रुधिरं कर्तुं सुखाव । तुरप्यर्थः । ततः अङ्गाद्वह्निपि तच्छोणितं चामुण्डा काली वक्त्रेण व्यात्तेन मुखेन सम्यक्प्रतीच्छति गृह्णाति पिपबतीति यावत् । शोणितस्त्राववर्त्तमानकालापेक्षया सम्प्रतीच्छतीति लट् निर्देशः । वर्त्तमानसामोप्ये वर्त्तमानवद्वेति वा भूते लट् ॥ ५७ ॥

मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥ म. ५९ श्लो. ५८

ताँश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्त च शोणितम् ।

मुख इति । ये, अस्य, आ, च इति । पृथक्पदानि । आः इति पीडायाम् । अस्य संग्रामस्य मुखे प्रारम्भे भूमौ रक्तपातात् समुद्गताः उत्पन्ना ये महासुराः तान् चामुण्डा काली चखाद भक्षयामास । अथ रक्तजासुरभक्षणानन्तरं रक्तबीजस्य शोणितं च चामुण्डा पपौ मुखमुपाये प्रारम्भे श्रेष्ठे निःसरणास्ययोरिति हैमः । आस्तु स्यात्कोपपीडयोरित्यमरः । यद्वा समुदिति पृथक्पदम् । गता इति च । ये अस्या इति रक्तपातान्महासुरा इति पदानि । तथा च । भूमौ रक्तपातादनन्ति प्राणवन्तो भवन्तीति रक्तपातानः । अनप्राणने क्विवन्तः । रक्तपातानश्च ते महासुराश्च रक्तपातान्महासुराः । रक्तपातात्प्राणवन्तो महासुराः ये अस्याः काल्याः मुखेगतास्तान् रक्तबीजान्सुरान् समुत् मुदासह वर्तमाना चामुण्डा काली तान् रक्तजासुरान् चखादेत्यन्वयः । तस्य शोणितं पपाविति पूर्ववत् ॥ ५८ ॥

देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋषिभिः ॥ म. ६० श्लो. ५९.

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।

देवीति । देवी कौशिकी चामुण्डया काल्या पीतं शोणितं यस्य तथाभूतं तं जघान व्यसुं चकार । केनायुधेनेत्यत आह—शूलेन त्रिशूलै-
नैकमुखेन वा । वज्रेण कुलिशेन । बाणैः शरैः । असिभिः सूक्ष्मखड्गैः
'निम्चा' इति प्रसिद्धैः लङ्काकाण्डे कतककारेण तथा व्याख्यानात् ।
ऋषिभिरैकधारखड्गैः चतुर्भुजमिश्रेण तथा व्याख्यानाच्च । ऋषिशब्दो-
ऽजादिरिति प्राङ्निर्णीतम् । बाणैरिति बहुवचनं युक्तमेव । असिभिर्ऋषि-
भिरित्यनयोर्बहुवचनं देवसाम्यत्वेनानन्तशक्तियुक्तत्वात्पूज्यत्वसूचकम् ।
स्वसहशान्तरतायुधजननाशमानुषास्त्रतुल्यता । कथमन्यथा वज्रमिन्द्रः
समुत्पाद्येत्यादि सङ्गच्छेतेति । कौशिकीस्वरूपं तु कालिकापुराणे सा
कौशिकीति विख्याता चाक्षरूपा मनोहरा । शूलं वज्रं च बाणं
च खड्गं शक्तिं तथैव च । दक्षिणैः पाणिभिर्देवी गृहीत्वा तु विराजिता ।
गदां घण्टां च चापं च चर्मं शङ्खं तथैव च । ऊर्वादिक्रमतो देवी विभ्रती
वामपाणिभिरिति । अनेन वज्रेणेत्यस्य स्थाने चक्रेणेत्यपपाठः ।
कौशिक्याश्चक्रस्याभावात् ॥ ५९ ॥

स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥ म. ६१ श्लो. ६०

नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजोमहासुरः ।

स पपातेति । महीं पालयतीति । पाल रक्षणे । कर्मण्यण् । मही-
पालेति राज्ञः सम्बोधनम् । महीपाल रक्षक । एवं बलिनः शत्रोरपि
शस्त्रैर्जर्जरीकरणमनुष्ठेयमेवेति सूचनार्थम् । अन्यथा पुनरपि देवादुपलब्ध-
राज्ये अत्रापेक्षया राज्यत्यागो न त्वयाकर्तव्यमिति भावः । शस्त्राणां
शूलादीनां सङ्घेन समूहेन सम्यगाहतस्ताडितः स प्रसिद्धो महासुर-
रक्तबीजः । चामुण्डया निःशेषपीतृरुधिरत्वास्त्रीरक्तः । निर्गतं रक्तं
यस्मादेवंभूतश्च महीपृष्ठे भूमेरुपरिभागे पपातेत्यन्वयः । पृष्यत इति
पृष्ठम् । तिथपृष्ठगूथेति साधुः । पृष्ठं चरममात्रेऽपि देहस्यावयवान्तरे इति
कोशान्तरम् । अस्त्रसङ्घेति । अत्र यद्यपि सङ्घसाथौ तु जन्तुभिरित्यभि-
धानात्सजातीयैरेवजन्तुभिः सङ्घः । शस्त्राणां च जन्तुत्वाभावात्तत्समु-
दाये अमरकोशोक्तदिशा सङ्घशब्दस्तत्रानुपपन्नः तस्यापि संहृत्यत इति
सङ्घः । सङ्घोघौ गणप्रशंसयोरिति घञन्तसङ्घशब्दसाधनपरसूत्रे गणे-
इतिसाधारणसमुदायपर्यायगणशब्दोपादानात् सङ्घसङ्घातपुञ्जीघसार्थयू-
थकदम्बका इति भागुरिकोशाच्च सङ्घशब्दः साधारणसमुदायेऽपि वर्तत
इति बोध्यम् । एवं सार्थो वणिकसमूहः स्यादपि सङ्घातमात्रके इति
कोशान्तरात्सार्थशब्दोऽपि । अन्येतु देवानां शस्त्राणि जन्तव इव चेष्टन्ते
जन्तुजचेष्टावशत्वेन चेष्टितत्वादेवमुक्तम् । उपचाराद्वा सङ्घशब्दः साधा-
रण समुदाये वर्तत इत्याहुः । दाक्षिणात्यास्तु शस्त्रसंहतितो हत इति
पठन्ति तत्र सार्वविभक्तिकस्तसिः । शस्त्र संहत्या हत इत्यर्थः । शस्त्र-
संहतिमेत्य च हतः ल्यब् लोपे पञ्चमीत्याहुः ॥ ६० ॥

ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥ म. ६२ श्लो. ६१

तेषां मातृगणाऽजातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ म. ६३

ततस्त इति । ततः रक्तबीजपतनानन्तरं ते प्राग्विषणाः
तृतीया यौवनाख्या दशा सदा येषांते त्रिदशाः देवाः । अतुलं निरुपमं
हर्षणं हर्षः आनन्दः । हृष तुष्टौ । घञ् । तं आवापुः प्रापुः । नृपेति सुर-
यसम्बोधनम् । नृपातीति नृपः । आतोऽनुपसर्गे कः । अजातइतिच्छेदः ।
सार्वविभक्तिकस्तसिः । अजाया मायायाः कौशिक्याः सम्बन्धी जन्मः
मातृगणः चामुण्डानारसिंही शिवदूतीप्रभृतिरूपः रुधिराहारयोग्यः
अमृक्पानान्मदः अमृङ्मदः । शाक पार्थिवादिः । रुधिरपानजनितहर्ष

इत्यर्थः । तेन उद्धतस्तरलः उत्कटो वा उच्छृङ्खलो वा सन् । तेषा-
मित्यनादरे षष्ठी । अत एव तान्देवाननादृत्य ननर्तं ताण्डवं चकारेत्य-
न्वयः । नागेशस्तु तेषामसुराणां असृङ्मदेनोद्धतो जातः सन् मातृगणो
ब्राह्मणादिसमूहो ननर्तत्याह । रामाश्रमस्तु त्रिदशानां मध्ये असृङ्मदो-
द्धतो जातो ननर्तति वा । तेषामसुराणामसृगे व मदः तेनोद्धतः ।
अस्मिन्पक्षे असमर्थसमासोऽसृक् शब्दस्य नित्यसापेक्षत्वाच्छान्दसत्वाद्वा-
जेयमिति शिवम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे मध्यभागे सरयूप्रसादसंगृहीते
श्रीमहासरस्तीचरिते रक्तबीजवधो नामाष्टमो विश्रामः ।

आदितस्त्रयोदशो विश्रामः ॥ १३ ॥

अथ सप्तशत्यानवमाध्यायारम्भः ॥

तत्र नवमाध्याय मन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

अध्याये नवमे देवि श्लोका नन्दाग्निसंख्यकाः । राजोवाचैक
मन्त्रस्तु श्लोकद्वयमतः परम् ॥ १ ॥ ऋष्युक्तिः श्लोकमन्त्राश्च षट्
त्रिंशत्समुदीरिताः । एकचत्वारिंशदेवमाहूतिर्नवमे शुभे ॥ २ ॥ देवता
भैरवी तारा शृणु गोप्यं वरानन इति ।

राजोवाच ॥ मं. १ ॥

एकस्य सेनापते रक्तबीजस्य पराक्रममद्भुतं निशम्येतोऽपि
रमणीयमाख्यानं शुश्रूषुः सुरथः मुनि सुमेधसमुवाच ।

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्भवता मम ।

देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥ म. २ श्लो. १

विचित्रमिति द्वाभ्याम् । अममेति छेदः । भावप्रधानो निर्देशः ।
न ममत्वं यस्य सः तत्सम्बुद्धौ हे अमम ममतारहित, हे भगवन् षडैश्वर्य-
सम्पन्न मुने सुमेधः । भवता त्वया रक्तबीजस्य वधे विषये आश्रितं
सम्बद्धं संसक्तं विचित्रमत्यद्भुतं देव्याः कौशिक्याश्चरितं चेष्टितं माहा-
त्म्यमोदार्यं । यद्वा चरितं माहात्म्यं प्रतापातिशयः । आख्यातं कथितं ।
अथवा महानात्मायत्नोद्धार्य बुद्धिर्वा तस्य भावः माहात्म्यं महायत्ना-
श्रयत्वं काल्यास्तदीयरुधिरपाने विनियोगात् । महाधैर्यं तादृशे भीति-
हेतौ स्वावस्थानात् । महाबुद्धिमत्त्वं तादृशरचनाकर्तृत्वात् । सर्वथापि
समाहारद्वन्द्वे एकवचनम् । आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिरित्यमरः ॥ १ ॥

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।

चकारशुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥ म. ३ श्लो २

भूय इति । रक्तबीजे तन्नाम्नि निपातिते निहते सति अतिकोपनः
अधिकक्रोधः शुम्भः निशुम्भश्च अतिशयेन बहु भूयः, भूरि यत्कर्म युद्ध-
लक्षणं चकार तदहं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तदितिप्रकरणलभ्यम् । बहुशब्दा-

दीयसुनि बहोर्लोपो भू च बहोरिति प्रकृतेर्भविदेशे आदेः परस्येतीकार-
स्येयसुनो लोपे भूय इति सिद्धम् । पुरुहं पुरु भूयिष्ठं स्फिरं भूयश्च भूरि
चेत्यमरः ॥ २ ॥

ऋषिरुवाच ॥ मं. ४ ॥

ऋषिः सुमेधाः सुरथप्रश्नमुपवर्णयन्नुवाच । उत्तरवाक्यार्थो द्वितीयं
कर्म—अत्र यद्यप्युभयोरसुरयोर्युद्धप्रश्ने ज्येष्ठस्य शुम्भस्य चरितं प्रथमं
पृष्ठं तथापि देव्या प्रथमं कनिष्ठः निशुम्भ एव हतस्तस्मादादौ युवराज-
चरितं वक्तुं तावन्महर्षिरुपक्रमते—

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।

शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥ मं. ५ श्लो. ३

चकारेति । आह्वानमाहवः संग्रामः । ह्वेञ् स्पर्द्धायां शब्दे च ।
आङ्गियुद्धे इत्यप् सम्प्रसारणं च । आहवः सङ्गरे यज्ञे इति हैमः ।
तस्मिन्नक्तबीजे देव्या निपातिते निहते सति अन्येषु घूम्रलोचन चण्ड-
मुण्डमौर्यकम्बुप्रभृतिषु हतेषु सत्सु शुम्भनामासुरः दैत्येश्वरः निशुम्भश्च
युवराजः अनुलमनुपमं कोपं चकार कृतवानित्यन्वयः ॥ ३ ॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्रहन् ।

अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया ॥ मं. ६ श्लो. ४

हन्यमानमिति । हन्यमानं हतमित्यर्थः । हन्तेः कर्मणि यगन्ता-
द्वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वेति भूते लट् । लटः शतृशानचाविति
शानच् । आनेमुक् । महासैन्यं सेनासमुदायं विलोक्य दृष्ट्वा अथ दर्शन-
समनन्तरं अमर्षः क्रोधः तं उद्रहन्विभ्राणः । यद्वा अमर्षमुद्रहन्नित्येक-
पदम् । अमर्षं कोपं मुदं वीरभाषादुत्साहं च वहन् धारयन् निशुम्भः
मुख्यया प्रधानभूतया असुराणां दैत्यानां सेनया सहेत्याक्षिप्यते अभ्य-
धावत् देव्या अभि सम्मुखमधावत् । लङ्घि सत्तैः पाद्माधमेति धावादेशः ।
यद्वा धावु गतिशुद्धयोः स्वरितेत् । तस्येदं रूपम् । यद्यप्युत्पूर्वो वहति-
रूपयमने प्रायो वर्तते तथापि धातूनामनेकार्थत्वादुद्रहन्विभ्राण
इत्यर्थः ॥ ४ ॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।

संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥ मं. ७ श्लो. ५

तस्येति । तस्य निशुम्भस्य अग्रतः पुरस्तात् तथा पृष्ठे पश्चाद्भागे पार्श्वयोर्वामदक्षिणभागयोश्च वर्तमाना महासुराः रोषेण संदष्टः खण्डितः उष्यते दह्यते उष्णाहारेणेति ओष्ठः । उष दाहे । उषकुषीतिथन् । पुटः सम्पुट इव यैस्ते संदष्टौष्ठपुटाः रोषखण्डिताधरौष्ठसम्पुटाः क्रुद्धाः सन्तः देवीं कौशिकीं हन्तुं उप समीपे आययुः प्रापुरित्यन्वयः । संदष्टौष्ठेत्यत्रो-
त्वोष्ठयोः समासे वेति वृद्धिः । यद्यपि ओष्ठाधरौ तु रदनच्छदौ दशन-
वाससी । ओष्ठो दन्तच्छदोऽधर इत्यभिधानादोष्ठशब्द उत्तराधरौष्ठपर
एव साधारणोऽस्ति तथापि युद्धप्रकरणाद्रोषोद्गमे विग्रहे एकवचन-
निर्देशादधरोष्ठ एव ओष्ठशब्देन विवक्ष्यते । पुट सश्लेषणे । अस्मादिगु-
पधज्ञाप्री किरः इति कः पुटशब्देन परस्परसक्तपिधानसम्पुटरूपं वस्तु-
च्यते । क्रुद्धेति कर्तरिक्तः ॥ ५ ॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।

निहन्तुं चण्डिकांकोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥ म. ८ श्लो. ६

आजगामेति । मातृभिः ब्राह्मणादिभिः पूर्वं युद्धं कृत्वा पुनः
महावीर्यः महाप्रभावः स्वस्यात्मनः बलैः सैन्यैः वृतः वेष्टितः शुम्भोऽपि
दैत्यराजः भ्रातृस्नेहाच्चण्डिकां कौशिकीं निहन्तुं कोपादाजगामायया-
वित्यन्वयः । इयं नित्या भगवती हन्तुमशक्येति शुम्भो न जानातीति
व्यञ्जयितुं कोपादित्युक्तं । वीर्यं बलं प्रभावश्चेत्यभिधानाद्बलशब्देन
प्राणसामर्थ्यं । स्थौल्यसामर्थ्यं सैन्येषु बलं ना काकसीरिणोरित्यमरः ॥६॥

ततोयुद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ॥

शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥ म. ९ श्लो. ७

तत इति । शुम्भनिशुम्भसमागमानन्तरं । अतीव निर्भरं उग्रं रौद्रं
शराणां वर्षमिव वर्षं अविच्छिन्नधारत्वेन साम्यात् शरसमूहमित्यर्थः ।
वर्षतोः मुञ्चतोः शुम्भनिशुम्भयोः देव्या कौशिक्या सह अतीव निर्भरं
युद्धमासीत् । देव्या इति सहाय्यं तृतीया । कयोरिव । जलं वर्षतोर्मुञ्चतो-
र्मघयोरिव । एकत्वाद्देव्या एकवचनं शुम्भनिशुम्भयोर्द्वित्वाद्द्विवचन-
मिति । अत्र सहायोगेऽपि वृद्धो यूनेतिवतृतीया । शरस्तु तेजने बाणे-
दध्यग्नेनाशरे जले इतिविश्वमेदिन्यौ । शर शब्दो दन्त्यादिरपि चित्र
पुङ्खः शरः सर इति त्रिकाण्डशेषात् । धातूनामनेकाथत्वाद्दृष्टिरत्र मोचने
वर्तते ॥ ७ ॥

चिच्छेदास्ताञ्छरास्ताभ्यां चण्डिकाशुशरोत्करैः ।

ताडयामास चाङ्गेषु शस्तौघैरसुरेश्वरौ ॥ म. १० श्लो. ८

चिच्छेदेति । शुशरोत्करैरिति गौडपाठः तत्र आशु इति पदच्छेदः । ताभ्यां शुम्भनिशुम्भाभ्यां अस्नात् क्षिप्तान् शरान् चण्डिका कौशिकी शराणामुत्करैः समूहैः आशु शीघ्रं चिच्छेद । स्तशरोत्करैरिति दाक्षिणात्यपाठे तु स्वेषामात्मीयानां शराणामुत्करैः समूहैः स्वस्या वा शरोत्करैः सर्वनाम्नोवृत्तिमात्रे पुंवद्भाव विधानात् । उत्कीर्यन्ते इत्युत्कराः । कर्मणि ऋदोरप् । स्यान्निकायः पुञ्जराशी तूत्करः कूटमस्त्रियामित्यमरः । च पुनः चण्डिका असुरेश्वरी दैत्यराजौ कर्मभूतौ अङ्गेषु अवयवेषु शस्त्रौघैः बाणौघैः ताडयामास आजघानेत्यन्वयः ॥ ८ ॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।

अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्यावाहनमुत्तमम् ॥ म. ११ श्लो. ९

निशुम्भइति । नितरां शितं शाणारोपणेन तनूकृतं तीक्ष्णीकृतमित्यर्थः । खड्गं अस्ि च पुनः सुप्रभं रुचिरकान्तिं चर्म फलकं पुरःप्रहारनिवारणसाधनं । आदाय गृहीत्वा देव्याः कौशिक्याः उत्तमं श्रेष्ठं वाहनं आरोहणसाधनं सिंहं मूर्ध्नि मस्तके अताडयत्प्रजह्ने इत्यन्वयः । निशितमिति शो तनूकरणे निपूर्वः । तस्मात् क्तप्रत्यये शाच्छोऽन्यतरस्यामितीत्वे रूपम् । शितं घाती क्रुशे तीक्ष्णे इति हैमः । सुप्रभमिति खड्गचमणोऽभयोरपि विशेषणम् । कान्तिमत्त्वस्योभयत्रापेक्षणात् ॥ ९ ॥

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।

निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचन्द्रकम् ॥ म. १२ श्लो. १०

ताडितेति । निशुम्भेन वाहने सिंहे ताडिते आहूते सति देवी कौशिकी क्षुरति विलिखति रोमाणीति क्षुरो मुण्डनसाधनमस्त्रं । क्षुर विलेखने । अस्मात् ऋज्जेत्यादिना रक्प्रत्ययः । प्रकृतेः रेफलोपो गुणाभावश्च निपातितः । क्षुरं प्राप्ति आकारेण पूरयति मुखेनानुकरोतीति क्षुरप्रो बाणविशेषः । प्रा पूरणे । आतइतिकः । तेन क्षुरमुखेन बाणेन निशुम्भस्य उत्तमं श्रेष्ठजातिलोहोद्भव अस्ि खड्गं द्विधा चकार । च पुनः क्षुरप्रेण अष्टौ चन्द्राः लिखिताश्चित्रिताः रोप्यसुवर्णादि घटिता वा यस्मिन् तदष्टचन्द्रम् । अष्टचन्द्रकं, शेषाद्विभाषेति कप् । ईदृशं चर्मफलकं चिच्छेदेत्यन्वयः ॥ १० ॥

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।

तामप्यस्यद्विधाचक्रे चक्रेणाभिमुखागताम् ॥ म. १३ श्लो. ११

छिन्ने इति । कौशिक्या चर्मणि फलके खड्गे च छिन्ने स प्रसिद्धोऽसुरः । निशुम्भः शक्तिं कासूं चिक्षेप प्रेरयामास । अभिमुखं सम्मुखं आगतां तामपि निशुम्भक्षिप्तां शक्तिं चक्रेणायुधेन द्विधाचक्रे चिच्छेदेत्यन्वयः । आगता-
मिति कर्तरिक्तः । न केवलं खड्गचर्मणी चिच्छेद । अपितु शक्तिमपि
इत्यपि शब्दाभिप्रायः ॥ ११ ॥

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।

आयातं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥ म. १४ श्लो. १२

कोपाध्मातइति । अथशक्तिच्छेदानन्तरं कोपेनाध्मातःवायुना
भस्त्रेवपूरितकोशः कोपाग्निना प्रज्वलितः दानवः निशुम्भशूलं आयुधं
जग्राह । प्रयोक्तुं गृहीतवान् । च पुनः प्रयोगानन्तरं आपातं अभिमुख-
मागतं तं तच्छूलमपि देवी कौशिकी । मुष्यते अनयेति मुष्टिः प्रसृतांगुलिः
करः तस्याः पातेन प्रहारेण अचूर्णयत् चूर्णमचीकरदित्यन्वयः । अस्त्रं शूलं
रुगायुधमित्यभिधानात् । आध्मात इत्यत्र कर्मणि क्तः । सत्यापपाशेति
सूत्रेण अवध्वंसनार्थकचूर्णप्रातिपदिकाणिच तदन्ताह्वयचूर्णयदिति
रूपम् । चूर्णं प्रेरणसंपेषणयोरिति चौरादिकधातोर्वेदं रूपम् । स्त्रीपुंसयोः
स्मृतो मुष्टिरित्यभिधानात् ॥ १२ ॥

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।

सापिदेव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥ म. १५ श्लो. १३

आविध्यायेति । शूलचूर्णभावानन्तर्यमेतार्थः । सोऽपि निशुम्भोऽपि
गदामायुधविशेषमाविध्य भ्रामयित्वा चण्डिका कौशिकीं प्रति चिक्षेप
प्रेरयामास । देव्या कौशिक्या कर्तृभूतया सापि गदा कर्मभूता त्रिशूलेन
करणेन भिन्ना विदारिता सती भस्मत्वं भस्मभावमागता प्रातेत्यन्वयः
आङ्पूर्वोविध्यतित्यपासह चरितो निःक्षेप्यायुधाकारान्वितो भ्रामणे
वर्तते । शब्दशक्तिस्वाभाव्यात् । आविद्धो भ्रमणिरित्यत्र तु ताडनार्थ एव
व्यधिस्तथैव शब्दशक्तेः । एतेन आविध्याय गदां सोऽपि इतिपाठोऽपपाठः
॥ १३ ॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।

आहत्य देवीबाणौवैरपातयत भूतले ॥ म. १६ श्लो. १४

तत इति । गदाभस्मतापत्यनन्तरं परं शृणातीति परशुः फरसा इति लोकप्रसिद्धमस्त्रं स हस्ते यस्य तं दैत्यानां पुङ्गवं श्रेष्ठं आयान्तं । प्रहर्तुमिति शेषः । तं निशुम्भं बाणौघैर्बाणसमूहैः आहत्य विध्वा देवी कौशिकी भूतले भुवि अपातयतेत्यन्वयः । पुमान् गौरिवेति पुङ्गवः श्रेष्ठः । उपमितं व्याघ्रादिभिरिति समासः । गोरतद्वितलुकीति टच् । स्युस्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा इत्यमरः । अत्र बाणक्षतपीडितो मूर्च्छितो निशुम्भो भूमौ पपात न गतासुः । ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामातकामुं क इति वक्ष्यमाणत्वात् ॥ १४ ॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।

भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥ म. १७ श्लो. १९

तस्मिन्निति । तत्तत्कर्मणा प्रसिद्धे भीमविक्रमे घोरातिसामर्थ्यं भयङ्करकर्मणि वा भ्रातरि अनुजे मूर्च्छां प्राप्य भूमौ निपतिते सति अतीव निर्भरं संक्रुद्धः भ्रातरीति सम्बन्धिशब्दश्रवणात् । अर्थाद्-भ्राता शुम्भ एव अम्बिकां कौशिकीं हन्तुं प्रययौ प्रापेत्यन्वयः । चिद्रूपाया देव्या अविनाश्यत्वं जानानोऽपि क्रोधान्धतया देवीं हन्तुं जगाम तमसान्धः कः कं पश्यतीति प्रसिद्धेः । तत्त्वतस्तु शुम्भो देव्या अविनाश्यत्वं जानात्येवेति भावः । सा कथा कालिकापुराणवामनपुराणादिषु प्रसिद्धेति । विक्रमस्त्वतिशक्तिता । विक्रमो वीर्यकर्मणि । विक्रमः पाद-विक्षेपे विक्रमो वीरकर्मणीतिकोशान्तरम् ॥ १५ ॥

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।

भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्यारोणं बभौ नभः ॥ म. १८ श्लो. १६

स इति । रथे तिष्ठतीति रथस्थः । ष्ठा गतिनिवृत्तौ । सुपिस्थ इति कः । अत्युच्चैरिति दीर्घविग्रहः । स शुम्भः । गृहीतानि स्वीकृतानि परा उत्कृष्टा मा शोभा येषु तानि परमाणि आयुधानि यैरेवं भूतैरतुलैः अनुपमैरष्टाभिरष्टसंख्याकैर्भुजैर्बाहुभिरशेषमखिलं नभः आकाशं व्याप्य आक्रम्य बभौ इत्यन्वयः । अत्युच्चैरिति भुजविशेषणं वा ॥ १६ ॥

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।

ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारतीव दुःसहम् ॥ म. १९ श्लो. १७

तमायान्तमिति । देवी कौशिकी तं शुभमायान्तं अभिमुखमा-
गच्छन्तं आलोक्य दृष्ट्वा शङ्खं अवादयत् ध्वनयतिस्म । णिजन्तस्य वदेर्ल-
ङ्गिरूपम् । च पुनः अतीवात्तितरां दुःसहं सोढुमशक्यं धनुषोज्यायाः
धनुरारोपितमौर्व्याः शब्दं टङ्कारं चकार । देवीत्यनुषज्यते । आरोपणं
ज्यायाः सूचयितुं धमुर्ग्रहणम् । मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुण इत्यन्तरः ।
शङ्खस्वनो ज्याशब्दश्च युद्धोत्साहजनकौ ॥ १७ ॥

पूरयामास ककुभोनिजघण्टास्वनेन च ।

समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥ म. २० श्लो. १८

पूरयामासेति । देवीत्यनुवर्तते । समस्तानि अखिलानि यानि
दैत्यानां सैन्यानि तेषां तेजसः प्रभावस्य बलस्य वीर्यस्य वा वधं नाशं
विधातुं शीलस्य, सोऽस्त्यस्मिन्वा स तथाविधः तेन निजघण्टायाः
स्वीयघण्टायाः स्वनेन नादेन ककुभोदिशः पूरयामास वर्द्धयामासेत्यन्वयः ।
यासु दिशास्ववस्थितानि दैत्यसैन्यानि ताः ककुभो निजघण्टास्वनेन
पूरयामासेति भावः । पूरीमाप्यायने दिवादिः । ततो हेतुमणिजन्ताक्षिति
कास्यनेकाजित्यामि आमइति लिटो लुकि कृत्वाऽनु प्रयुज्यते लिटीत्यस्ते-
र्लिट् परस्यानुप्रयोगे पूरयामासेतिरूपम् । स्वनेन चेति चकारेण शङ्ख
घण्टाज्यास्वनश्रयं समुच्चीयते । तेजः प्रभावे दीप्तौ च बले शुक्रं च
स्मृतमिति कोशान्तरम् ॥ १८ ॥

ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।

पूरयामास गगनं गां तथोपदिशादश ॥ म. २१ श्लो. १९

तत इति । शङ्खज्याघण्टास्वनेन दिक्पूरणानन्तरं सिंहः कौशि-
कीवाहनः यन्ति, इयन्ते वा इभाः करिणः । इण गतौ । इणः किदितभः ।
महान्तश्च ते मदाश्च महामदाः इभानां महामदाः इभमहामदा । त्या-
जिताः हानिं प्रापिताः इभमहामदा यैः एवं भूतैर्महानादैः महद्भिः
कण्ठशब्दैः गगनमाकाशं गां पृथ्वीं पूरयामास । उपशब्द आधिक्ये ।
तथा तेनैव प्रकारेण दशसंख्याका दिशः पूरयामास । अयं भावः—देवी-
कृतशङ्खज्याघण्टास्वनापेक्षया सिंहनादोऽधिकः । यतोऽसौ गगनं पृथ्वीं
दिशामपि दिशः पूरयामास । अथ च सिंहनादेन महत्तरेण शङ्खज्या-
घण्टानां स्वनाः इत्युपशब्देन सूच्यते । तथा च उपपूरयामास । शङ्खादि-
स्वनापेक्षया अधिकं पूरयामासेत्यर्थः ॥ १९ ॥

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्षमामताडयत् ।

कराभ्यां तज्जिनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥म. २२ श्लो. २०

तत इति सर्वपूरकसिहस्वनानन्तरं काली कौशिकी ललाटोद्धवा गगनमाकाशं समुत्पत्य कराहतकन्दुकवदाकाशं परिचुम्ब्य क्षमते इति क्षमा भूमिः । क्षमूष् सहने । क्षमेरुपधालोपश्चेत्यच् । अदन्तत्वादृप् । क्षमां भूमिं कराभ्यां हस्ताभ्यां अताडयत् आहतवती । यद्वा समुत्पत्य हर्षादुत्प्लुत्य गगनं क्षमां च द्यावापृथिव्यौ द्वे अपि अताडयत् । तत्र गगनस्य नीरूपद्रव्यस्य हननवाधाद्गगनान्तर्वर्ति ब्रह्माण्डकपाटो गगनशब्देन लक्ष्यते । तस्य करक्षमाघातस्य दिवः पृथिव्या घातस्य वा । निनदनं निनादः शब्दः णद अव्यक्ते शब्दे । नोगदनदेत्यवभावपक्षे घञ् । तेन सिहशब्दातिशायिशब्देन प्रेति प्राथम्ये वर्तते । प्र प्राथम्यमञ्चञ्तीति प्राञ्चः प्राग्भवाः । अञ्चु गतिपूजनयोः । ऋत्विग्दधृग्सन्दिगुष्णिगञ्चुयुजीत्यादिना क्विन् । प्राञ्चश्च ते स्वनाः शङ्खज्याघण्टासिहसम्बन्धिनः स्वनाः शब्दाः ते प्रसिद्धाः तिरोहिताः अन्तर्हिताः । यथा मन्द्रः शब्दोहि तारशब्देन तिरोधीयते महादुन्दुभिनादेन च वीणारखवत् । अन्येषामेवं कर्तुमशक्यत्वाद्देव्याः शक्त्यतिशयो व्यज्यते । तिरोहिता इत्यत्र तिरस इत्यव्ययम् । तिरोऽन्तर्द्धौतिथ्यर्थेत्यमरः । हिता इति गत्यर्थं हिनोति । अत्र कर्त्तरिगत्यर्थं क्तान्तः । अन्तर्द्धानमेवतिरसोर्थः । अन्तर्द्धानं हिताः प्राप्ताः । पिहिता इत्यर्थः ॥ २० ॥

अट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।

तैः शब्दैरसुरास्त्रेषुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥म. २३ श्लो. २१

अट्टेति । ह्रस्वस्वरत्रयविशिष्टमट्टेति गौडपाठः । शिवदूती कौशिकीविग्रहनिर्गता पूर्वोक्ता शक्तिः । अट्टनमट्टः हिंसा । अट्ट अतिक्रमहिंसनयोः । भावे घञ् । अट्टं हिंसनमिवाचरतीतिमूर्च्छात्रासादिप्रदत्वादित्याचारकिवन्तादट्टशब्दाल्लटः शतरि अट्टन्, हिंसकइवाचरन्नट्टो ध्वनिर्यस्य सः अट्टन् अट्ट इतिस्थितौ शकन्ध्वादित्वात्पररूपे अट्टट्टः । प्राणनाशकसदृशध्वनिविशिष्ट इत्यर्थः । टः पृथिव्यां कलङ्के टः टो ध्वनी करटेऽपि टः । टो महेश्वर आख्यातश्चान्येऽपि प्रकीर्तितः इत्येकाक्षराभिधानात् । अट्टश्चासौटश्च अट्टट्टः, स चासौ हासश्च तमित्यर्थः । अट्टशब्दस्यातिक्रान्तार्थाश्रयणे तु महाहासमित्यर्थः । अट्टतेहिनस्तीत्यट्टः ।

हिसकष्टो ध्वनिरस्येति वा । अनुदात्तेत्त्वलक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वा-
ल्लटः शत्रादेशः । अट्टाट्टहासमिति दाक्षिणात्यपाठे अट्टः उच्चैर्हासः अट्टाट्ट-
हासः । उच्चैः सदृशो हास इत्यर्थः । प्रकारे गुणवचनस्येति द्वित्वम् ।
अथवा अट्टन् हिसकड्वाचरन् टो ध्वनिर्यस्यैवं भूतोहासः । एवं व्याख्याने
शत्रन्तस्याट्टधातोः क्विबन्तस्य शकन्वादि कल्पनक्लेशो न स्यादिति ।
अट्टट्टहासं कर्म चकार । महाहासं चकारेत्यर्थः । हेति प्रसिद्धौ । तैः
अट्टट्टहासजनिताः शब्दैः असुराः त्रैमुः उद्वेगं प्रापुः । त्रैसेलिटि एत्वाभ्यास-
लोपो । महाधीरः शुम्भो राजा परं अधिकं कोपं ययौ प्रापेत्यन्वयः ॥ २१ ॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।

तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥ म. २४ श्लो. २२
दुरात्ममिति । दुर्दृष्ट आत्मा मनो यस्य । परपत्याद्यभिभाषा-
दिति । हे दुरात्मन् दुष्टचित्त । सग्रामभुवीति शेषः । इति शब्दस्वरूपं
यदा अम्बिका कौशिकी व्याजहार उक्तवती तदा तस्मिन्काले आसमन्ता-
त्काशान्ते सूर्यादयोऽत्रेत्याकाशं नभः । काशु दीप्तौ । हलश्चेति घञ् ।
तस्मिन्संस्थितैः आकाशस्थैर्देवैः कर्तृभूतैः जयशत्रून्भिभव सर्वोत्कर्षण
वद्वंस्व वा इति वर्णद्वयात्मकं शब्दस्वरूपमभिहितमुत्तमित्यन्वयः । तिष्ठ-
तिष्ठेति कोपकृतसम्भ्रमे द्विवचनम् । दुरात्ममिति सम्बोधयन्त्या शुम्भ-
द्विवचनजनितो महाद्वेषस्तस्मिन्सूच्यते । अन्यथा अकस्मात्प्रातियोद्धरिदु-
ष्टाक्तरोचिती नावहेत् । जिजये । जि अभिभवे वा इति धात्वोर्लोपमध्यम-
पुरुषैकवचने जयेति रूपम् । संस्थाधारे स्थितौ मृतावित्यमरः ॥ २२ ॥

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ताज्वालातिभीषणा ।

आयान्ती वह्निः कूटा भा सा निरस्तामहोत्कया ॥ म. २५ श्लो. २३

शुम्भेनेति । आगत्य ईषदेकपादप्रक्षेपमग्रे कृत्वा शुम्भेन कर्त्रा ।
ज्वलतीति ज्वाला ज्वाला वा तेजः । ज्वल दीप्तौ । ज्वलितिकसन्तेभ्य
इति णः । ज्वालेन ज्वालयते तेजसा अति अत्यन्तं भीषणा या सा शक्तिः
काशूः मुक्ता त्यक्ता । देवीमुद्दिश्येति शेषः । वहति हव्यमिति वह्निरग्निः ।
वह प्रापणे । वहिश्चिश्चुद्वुरलाहात्वरिभ्योनिदिदिति निः । स निच ।
तस्याग्नेः कूटयतीति कूटः समूहः । कुट दाहे । पचाद्यच् । स इव आभा
कान्तिरस्या एवं भूता आयान्ती देवी हन्तुमागच्छन्ती सा शुम्भप्रयुक्ता
शक्तिः महती उल्का ज्वाला यस्याः सा तथा तन्नाम्न्या शक्त्या तन्नामा-

स्त्रान्तरेण वा करणेन निरस्ता निवारिता । देव्येतिकर्तृपदमध्या ह्रियते ।
ज्वलशब्दास्त्रियां टाप् । बह्वेद्व्योर्ज्वालकीलावित्यभिधानाद्बह्वेरिति
प्रायोवादः । हेतिः स्यादायुधज्वाला सूर्यतेजःसुयोषितीति दर्शनात् ।
मायादम्भादिभृङ्गेषुसीराङ्गेषु नृत्तपुच्छयोः । निश्चलेष्योघने राशौ कूर्टं
पूर्वारयन्त्रयोरिति हैमः । निरस्तः प्रहितो मुक्तः प्रेरितः क्षिप्त उज्झितः
इति कोशान्तरम् ॥ २३ ॥

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।

निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥ म. २६ श्लो. २४

सिंहनादेनेति । अवति अव्यते वा अवनिः पृथ्वीः । अव रक्षणादौ
अतिसृष्टित्यनिः । कृतिकारादक्तिन् ङीष् । अवन्याः पतिः रक्षक इति
सुरथसम्बोधनम् । पतिः समासएवेति घिसंज्ञा । ह्रस्वस्व गुण इति गुणः ।
शुभस्य सिंहवत्तदनं सिंहनादः श्वेडा । णद अव्यक्ते शब्दे । घञन्तः ।
तेन करणेन लोकानां विष्टपानां त्रयं भूभुवःस्वलक्षणं तस्यान्तरं मध्यं
भुवर्लोकः । कर्म । व्याप्तं । अभूदिति शेषः । निःनिश्चितं हननं निर्हननं
तदेव निर्घातः प्रमापणमारणपर्यायः । तस्य निःस्वनः शब्दः शुम्भसैनिकैः
समरावः । निशुम्भभ्रातः, देवीं जहि मारय घातय इति कण्ठरवतः
कथितः शब्दो निर्घातनिःस्वनः । कर्ता । शुम्भस्य सिंहनादेन जितवान् ।
अभिभवन्नभूदिति शेषः । जयनं जितमभिभवः । जिअभिभवे । भावे क्तः ।
जितमभिभवोऽस्यास्तीति जितवान् । तदस्यास्तीति मनुप् । निर्जय
मारयेत्यादिशुम्भसैनिकशब्दः शुम्भसम्बन्धिसिंहनादेन पराजयं प्राप्तवा-
नित्यर्थः । निस्तर्हणं निहननं क्षणनं परिवर्जनम् । निर्वापणं विशसनं
मारणं प्रतिघातनमित्यमरः । अन्ये तु यद्यपि शुम्भस्य सिंहनादेन लोक-
त्रयान्तरं व्याप्तमभूत्तथापि देवीं निर्जहि मारयेत्यादि दैत्येश्वरसैनिकशब्दः
शुम्भसम्बन्धि सिंहनादादप्यधिकतमत्वात् शुम्भनादं जितवानभिभूत-
वानित्यर्थः । जिअभिभवे । तस्मात्कर्तरि क्तवतुः । जिघातोः सकर्म-
कत्वात्सिंहनादमितिकर्माक्षिप्यते । एवं बहवोऽर्थाः बहुभिः कल्पिताः ।
रामाश्रमस्तु तेन सिंहनादेन निर्घातनिःस्वनोऽपि जितवानभिभूतः ।
जयतेः कर्मणि क्तवतुरार्ष इत्याह । अत्र रहस्यविदस्तु । अवनीपेति
सुरथसम्बोधनम् । ते इति पृथक्पदं कर्मत्वेनाभि सम्बद्धघते । शुम्भस्य
सिंहनादेन लोकत्रयान्तरं व्याप्तमभूत् । शुम्भवधसूचको निर्घातनिःस्वनः
उत्पातध्वनिः अतिमहत्तया ते कालीशिवद्वयौ शक्ती जितवानभिभूत-

वान् । करेण गगनक्षमाताडनजनितध्वनिमत्त्वेन काल्याः पूर्वत्र निर्देशात् ।
अट्टहासध्वनिमत्त्वेन शिवदूत्याः पूर्वत्र निर्देशाच्च । तयोः शक्त्योर्जयेन
तच्छब्दस्य जयः तावदाधिक इत्याहुः ॥ २४ ॥

शुम्भमुक्ताञ्जशरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्जशरान् ।

चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ म. २७ श्लो. २५

शुम्भमुक्तानिति । अथ शुम्भसिंहनादोत्तरनिर्घातस्वनानन्तरं देवी
कौशिकी उग्रैः रीद्रैः स्वैः आत्मीयैः शरैः बाणैः शतशः शतं शतं ।
सहस्रशः सहस्रं सहस्रं । शुम्भेन मुक्तान् देवीमुद्दिश्य प्रयुक्तान् शरान्
चिच्छेद द्विधा चकार । संख्यैकवचनाच्चेति शतशः सहस्रशः इत्येतत्पद-
द्वयमव्ययत्वात् शरान् स्वशरैरित्येतयोश्चभयोर्विशेषणम् । अथ शुम्भः
तत्प्रहितान् तथा देव्या प्रहितान्प्रेरितान् शतशः सहस्रशः शरान् स्वशरैः
उक्तसंख्याकैश्चिच्छेदेत्यन्वयः । देवीशुम्भयोः समं युद्धमभूदिति भावः
॥ २५ ॥

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।

स तदाभिहतोभूमौ मूर्च्छितो निपपात ह ॥ म. २८ श्लो. २६

तत इति । समरतोऽनन्तरं सा प्रसिद्धा चण्डिका कौशिकी क्रुद्धा-
सती शूलेनायुधेन शुम्भं अभिजघान आभिमुख्येन ताडयामास । तदा
तस्मिन्काले अभिहतः शूलेन ताडितः स शुम्भो दैत्यराजः मूर्च्छन्
मूर्च्छा । मूर्च्छा मोहे । गुरोश्चहल इत्यः । उपधायां चेतिदीर्घः । अदन्त-
त्वाट्टाप । मूर्च्छा मोहः सञ्जातो यस्यासौ मूर्च्छितः । विचेताः सन् भूमौ
पपातेत्यन्वयः । हेतिप्रसिद्धौ ॥ २६ ॥

ततः परशुहस्तं तमित्यनेन पूर्वं निशुम्भस्य मूर्च्छोक्ता

सम्प्रति पुनरुन्नीवितस्य निशुम्भस्य पराक्रमं मुनिराह—

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।

आजघान शरैर्देवीं कालीं केशरिणं तथा ॥ म. २९ श्लो. २७

तत इति । ततः शुम्भस्य मूर्च्छया भूतले पतनानन्तरं ततः प्रागेव
मूर्च्छितो निशुम्भो युवराजः चेतनां संज्ञां प्राप्य उपलभ्य आत्तकार्मुकः
गृहीतचापः सन् शरैः बाणैः देवीं कौशिकीं कालीं चामुण्डां केशरिणं सिंहं
आजघान ताडयामासेत्यन्वयः । आत्तेति आज्पूर्वाद्दातेः क्तप्रत्यये अव-
उपसर्गात् इति सूत्रेण अजन्तादुपसर्गात्परस्य दा इत्यस्य घुसंज्ञकस्याचस्त-

कारादेशे दस्य खरिचेति चत्वे त्रितकारं रूपम् । आङ्पूर्वोददातिरु-
त्सर्गेणग्रहणे । कार्मुकं धनुः कर्मण उकञ् । तद्धितेष्वचामादेरिति वृद्धिः ।
वंशे कार्मुक मिष्वासे कमठे इति हैमः । आजघानेत्यत्र आङ्गोयमहन
इत्यात्मनेपदं न प्रवर्तते तस्याकर्मकविषयत्वात् ॥ २७ ॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।

चक्रायुधेनदितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥ म. ३० श्लो. २८

पुनश्चेति । दितेः कश्यपपत्न्याः जातः दितिजः असुरः । जनी
प्रादुर्भावे । पञ्चम्यामजातावितिङः । दनुजानां दानवानामीश्वरः स्वामी
निशुम्भः शरैः कौशिक्यादेः पीडनानन्तरं पुनश्च पुनरपि मायावित्वा-
न्मायया बाहूनामयुतं दशसहस्रं कृत्वा विरच्य । अयुतबाहुर्भूत्वेत्यर्थः ।
चक्रायुधेन चक्रेणायुधेन । जातावेकवचनं । चक्रेरायुधैः चण्डिकां कौशिकीं
छादयामास सम्बृतां चकार । अप्राप्तानामेव तेषां छेदनस्य वक्ष्यमाण-
त्वात्पश्यतां तत्तद्दैत्यानां क्षणं व्यवधानस्य जायमानत्वात्संबृतां चकारे-
त्यर्थः । चक्रायुतेनेति दाक्षिणात्यपाठः ॥ २८ ॥

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशनी ।

चिच्छेद तानिचक्राणिस्वशरैःसायकांश्चतान् ॥ म. ३१ श्लो. २९

तत इति । देव्याश्चक्रैराच्छादनानन्तरं भगवती यत्नवती दुःखेन
गम्यते यत्रेति दुर्गाद्विक्रान्तारसमुद्रादिः तत्र अर्तिः पीडा तस्याः, नाशयते
अनयेति नाशनी । करणल्युङन्तान्डीप् । नाशिनीति वा । तत्र नाशयितुं
अस्या इति विग्रहे ताच्छीत्येणिनिः । दुर्गं सङ्कटे या अर्तिः तस्या
नाशिनी । दुर्गा दुःखेन गम्यते अस्यामिति विग्रहे । सुदुरोरधिकरणे इति
गमेर्ङः । क्रुद्धा सती स्वैरात्मीयैः शरैः तानि निशुम्भप्रहितानि चक्राणि
कर्मभूतानि चिच्छेद । च पुनः चक्रनिःक्षेपणात्पूर्वं शुम्भेन मुक्तान्
स्यन्तीति सायकान्वाणान् चिच्छेदेत्यन्वयः । स्यतेः ण्वुल्तृचाविति ण्वुलि
युवोरनाकावित्यकादेशे आतोयुगिति सायकेतिरूपम् । अर्तिःपीडा
धनुष्कोट्योः शरे खड्गे च सायक इत्यमरः ॥ २९ ॥

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।

अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ॥ म. ३२ श्लो. ३०

ततइति । निशुम्भप्रयुक्तानेकचक्रभञ्जनानन्तरं निशुम्भोयुवराजः
वेगेन जवेन गदामायुधमादाय गृहीत्वा दैत्यानामसुराणां सेनाभिः

सम्यगावृतः परिवेष्टितः सन् चण्डिकां कौशिकीं हन्तुं अभ्यधावत आद्र-
वत् । धावु गतिशुद्धयो स्वरितेतत्वादस्य लङात्मने पदम् । वै इति
निश्चयार्थकमव्ययम् ॥ ३० ॥

तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।

खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे ॥ म. ३३ श्लो. ३१

तस्येति । आपततएव तस्य निशुम्भस्य गदामायुधं शिते शाणा-
रोपणेन तीक्ष्णीकृते धारे अग्रे यस्य तथाविधेन खड्गेन आशु शीघ्रं
चण्डिका कौशिकी विच्छेद द्विधाचकार । च पुनः निरायुधः सनिशुम्भः
शूलमायुधं समाददे संजग्राह । देवीं हन्तुमिति शेषः । यो तनूकरणे ।
अस्मात् क्तप्रत्यये याच्छोरन्यतरस्यामितीत्वे शितमिति रूपम् । आददे
इति त्रित्वादात्मनेपदम् ॥ ३१ ॥

शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।

हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ॥ म. ३४ श्लो. ३२

शूलहस्तमिति । चण्डिका कौशिकी अमरार्दनं देवहंसकं शूलं
हस्ते यस्य तं निशुम्भं युवराजं सम्मुखं आयान्तं आगच्छन्तं वेगात् जवात्
आविद्धेन भ्रामितेन शूलेन आयुधेन हृदि वक्षसि विव्याध ताडयामासे-
त्यन्वयः । आविद्धेनेति व्यध ताडने क्तः । ग्रहिज्येति सम्प्रसारणम् ।
धातूनामनेकार्थत्वात् आङ्पूर्वो व्यधिरत्र भ्रामणे वर्तते । हृदीत्यत्र ।
हृदयसम्बन्धिकत्वात्प्रकरणान्निशुम्भस्येति गम्यते । शूलहस्तमिति प्रहर-
णार्थेभ्यः परे निष्ठासप्तम्यावाति वार्तिकेण हस्तशब्दस्य परनिपातः ।
अमरार्दनमिति अर्दयते इत्यर्दनः । अर्दं हिंसायां । नन्द्यादित्वाल्ल्युः ।
अमराणामर्दनः अमरार्दनः । अरिमर्दनमिति दाक्षिणात्यपाठः ॥ ३२ ॥

शूलप्रहारानन्तरं जातं वृत्तमाह—

भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयाग्निःसृतोऽपरः ।

महाबलोमहावीर्यास्तथेति पुरुषो वदन् ॥ म. ३५ श्लो. ३३

भिन्नस्येति । कौशिक्या शूलेन भिन्नस्य विदारितस्य निशुम्भस्य
हृदयाद्वक्षसः सकाशान्महद्बलं प्राणसामर्थ्यं यस्य स महाबलः । महद्द्वीर्यं
प्रभावो यस्य स महावीर्यः । देवीं प्रति तिष्ठ संग्रामाङ्गणे त्वमवस्थिता
भवेति वदन्भाषमाणः अपरः शुम्भविग्रहादन्यः पुरुषो नरः निःसृतः
निरगादित्यन्वयः । अपरः पुरुष इत्युक्तौ देहभेदे नापरत्वं न तु निशुम्भ-

रूपक्षेत्रज्ञत्वेन । अत एव न परः अन्यः इत्यर्थोऽनुसन्धेयः । क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः । पुरुषा पुरुषा नरः । पुरुषावात्ममानवावित्यमरः । हृदयं स्वास्त-
वंक्षणोरिति कोशान्तरम् । वीर्यं जलं प्रभावश्चेत्यमरः ॥ ३३ ॥

तस्य निष्कामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।

शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ॥ म. ३६ श्लो. ३४

तस्येति । निशुम्भशरीरान्मायाशरीरधारिपुरुषोद्गमानन्तरं देवी कौशिकी स्वनवत् सशब्दं यथास्यात्तथा प्रहस्य प्रकृष्टं हासं कृत्वा प्राक्त-
ननिशुम्भविग्रहानिष्कामतः निर्गच्छतस्तस्य पुरुषस्य द्वितीयविग्रह-
धारिणो निशुम्भस्य स्वनवत्तिष्ठेति भाषमाणं शिरः मस्तकं खड्गेन चिच्छेद । ततः शिरश्छेदनाद्वेतोः शिरश्छेदनानन्तरं वा असौ निशुम्भः युवराजः भुवि संग्राम भूमौ अपतत् पपातेत्यन्वयः । काकाक्षिगोलकन्या-
येन स्वनवदिति प्रहस्येत्यनेन शिरसा च विशेष्यते । मायया द्वितीयविग्रह-
धारिणं दृष्ट्वा भगवती सर्वस्या अपि मायाया मम्मयत्वेन त्वन्मायायाश्च मयोपसंहृतत्वादेतन्मायिकविग्रहे नष्टे त्वन्मायायाश्च मत्प्रभावेनानुदया-
त्सम्प्रति न भविष्यतीति प्राहसदिति देव्या हासे बीजमिति भावः ॥ ३४ ॥

ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।

असुरांस्तांस्तथाकालीशिवदूती तथापरान् ॥ म. ३७ श्लो. ३५

ततइति । ततो निशुम्भवधानन्तरं निशुम्भादपरानन्यान् शुम्भ-
सैनिकानसुरान् सिंहश्चखाद अभक्षयत् । किभूतान् दंष्ट्राभिः क्षुण्णाः सम्पिष्टाः शिरोधरा ग्रीवा येषां तान् । ततः सिंहभक्षितेभ्योऽपरान् काली तथा शिवदूती चखादेत्यन्वयः । उग्रमिति क्रियाविशेषणम् ॥ ३५ ॥

कोमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।

ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ॥ म. ३८ श्लो. ३६

कोमारीति । केचित्केऽपि महासुराः कुमारशक्तेः शक्त्या कासू-
नाम्नायुधेन निर्निश्चयेन भिन्नाः विदारिताः सन्तः नेशुः । अत्यन्ता-
दर्शनं प्रापुः मृता इत्यर्थः । अन्ये केचिन्महासुराः ब्रह्माणी ब्राह्मी शक्तिः
वा ब्रह्म वेदमणति कथयतीति ब्रह्माणी शारदा । अण शब्दे कर्मण्यण्
स्त्रियां टिड्ढेति डीप् । तस्याः मन्त्रेण वाग्भवादिना पूतेन अभिमन्त्र-
णात्पवित्रेण संस्कृतेन वा । तौति आवृणोतीति तोयं जलं । तु इति
सोत्राद्धातोः गतिवृद्धिर्हिंसावरणार्थादौणादिको यः । तेन निराकृता

निरस्ता आसन्निति अव्याहृतेन नैशुरिति पूर्वेण पदेन वान्वयः । ब्रह्म
तत्त्वं तपो वेदो ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिरित्यमरः ॥ ३६ ॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिक्षाः पेतुस्तथापरे ।

वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ॥ म. ३९ श्लो. ३७

माहेश्वरीति । माहेश्वर्या रुद्रशक्तेः त्रिशूलेन भिक्षाः विदारिताः
अपरे असुराः तेन प्रकारेण भुवि पेतुरिति । वाराह्याः यज्ञवराहशक्तेः
तुण्डेन वक्त्रेण यो घातः प्रहारस्तेन चूर्णीकृताः पिष्टाः अपरे असुराः
भुवि पेतुरिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३७ ॥

खण्डखण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः ।

वज्रेण चैन्द्रीहस्ताप्रविमुक्तेन तथापरे ॥ म. ४० श्लो. ३८

खण्डखण्डमिति । वैष्णव्या विष्णुशक्त्या चक्रेण सुदर्शनास्त्रेण
दानवाः खण्डं खण्डं यथास्यात्तथा कृताः कृताः छिन्नाः पेतुरिति ।
कृतो छेदने । अस्मात्कृत्यत्युटो बहुलमिति बहुलग्रहणात्कर्मणि इगुपधेति
कः । कृत्यन्ते इति कृताः कृता इत्यर्थः । अथवा कृता इति तान्त-
प्रयोगे न्याये कृता इति तलोप आषं इति कश्चित् । प्रकारे गुणवचन-
स्येति खण्डखण्डमित्येतस्य गुणवचनवाचिनो द्वित्वे कर्मधारयवदुत्तरेष्वि-
त्यधिकारात्सुप्लुकि खण्ड खण्डमिति सिद्धम् । सूत्रे गुणोपसर्जनद्रव्यस्य
केवलगुण वचनस्य च ग्रहणादिह खण्डशब्दस्य गुणवाचितया क्रियाविशे-
षणतायां क्रियाविशेषणानां कर्मत्वं नपुंसकतैकत्वं च वक्तव्यमिति
वचनान्मृदु पचतीत्यादिवत्प्रयोगः । खण्डसदृशमीषत्खण्डं स्यादित्यर्थः ।
कृताः इति करोतेः तान्तस्य प्रयोगो वा । खण्डखण्डमिति क्रियाविशे-
षणम् । खण्डं खण्डमित्यपपाठः । तथा ऐन्द्रयाः इन्द्रशक्तेः हस्तस्याग्रा-
न्मुक्तेन प्रेरितेन वज्रेण अपरे असुराः खण्डखण्डं कृताः सन्तः भुवि पेतु-
रिति पूर्वेणान्वयः ॥ ३८ ॥

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।

भक्षिताश्चापरे काली शिवदूती मृगाभिपैः ॥ म. ४१ श्लो. ३९

केचिदिति । भयेनापि केचिन्मृता इत्याह—केचिन्नष्टा इत्यत्रके
इति भिन्नपदं चिन्नष्टा इति पृथक् छिद्यते । महाहवादिति कर्मणि ल्यब्-
लोपे पञ्चमी । आह्वयन्ते स्पर्धया योद्धुं प्रतिभटा अत्रेत्याहवः । आह्वानं
च । ह्यञ् स्पर्धायां शब्दे च । अस्मादाङ्गियुद्धे इति सूत्रेणापुप्रत्ययः ।

सम्प्रसारणं च । महांश्च स च आहवश्च महाहवः । आहवः सङ्गरे यज्ञे
 इति हैमः । तुमुलसंग्रामः महाहवं प्राप्तेत्यर्थः । चेतनं चित् बुद्धिः ।
 चित्ती संज्ञाने । सम्पदादित्वाद्भावे क्विप् । नष्टा लुप्ता बुद्धिदेषां ते
 चिन्नष्टाः । भयात्लुप्तबुद्धय इत्यर्थः । वाहिताग्न्यादिषु इत्यस्य वैकल्पिक-
 त्वाग्निष्ठायाः परनिपातः । केचिदसुराः भयात्के जले विनेशुः । देव्या-
 भयाज्जलप्रवेशं कुर्वन्तो मृता इति भावः । कं शिरोऽम्बुनोः । प्रेक्षोप-
 लब्धिश्चित्संवित्प्रतिपज्जन्निचेतनाः । अभ्यामर्दसमाधातसंग्रामाभ्याग-
 माहवा इत्यमरः । अपरे शुम्भसेनावशिष्टाः सर्वेऽप्यसुराः काली कौशिकी
 ललाटोद्भवा । शिवदूती, शिवं दूतकर्मणि प्रवर्त्तयितुं कौशिकी विग्रहा-
 दाविर्भूता मृगाणामधिपः प्रभुः सिंहः एतैर्भक्षिताः खादिताः । आसन्निति
 शेषः । भक्षिता इत्यत्र कर्मणि क्तः । काली च शिवदूती च मृगाधिपश्च
 तैः । चार्थे द्वन्द्वः । परवह्निङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोरिति परलिङ्गतेति
 शिवम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे मध्यभागे सरयूप्रसादसंगृहीते

नवमाध्यायार्थसंग्रहो नाम नवमोविश्रामः

आदितश्चतुर्दशो विश्रामः ॥ १४ ॥

अथसप्तशत्यादशमाध्यायारम्भः ।

तत्र दशमाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

दशमे सार्द्धसप्ताह्यविंशतिश्लोकसंयुते । आदावृषिस्वाचेति श्लोक-
मन्त्रद्वयं ततः ॥ १ ॥ देव्युवाचाथमन्त्रौ द्वौ श्लोकरूपीततः परम् । पुन-
र्देव्येकमन्त्रेणाप्यष्टौ मन्त्राउदाहृताः ॥ २ ॥ तथा ऋषिः श्लोकमन्त्राः
सार्द्धद्वाविंशतिर्माता । मन्त्रसंख्या तु द्वात्रिंशदन्ते ह्यर्द्धमनुर्मतः ॥ ३ ॥
दशमे सिंहमासीना शूलपाशविधारिणी । मुख्या चतुर्भुजा बाणचापहस्ता
शुभेक्षणेति ॥ ४ ॥

ऋषिस्वाच ॥ म० १ ॥

निशुम्भवधसमनन्तरमेवाखिलसैन्यं नष्टमवलोक्यात्मानं चायुध-
मात्रसहायमेकाकिनं समभिव्रीक्षमाणो भगवतीं च मातृगणसहायममृष्य-
माणः कोपाद्देव्यराज आचष्टेति सुरथं प्रति मेधामुनिस्वाच ।

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा आतरं प्राणसम्मितम् ।

हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ॥ म. २ श्लो. १

निशुम्भमिति । शुम्भो दैत्येश्वरः । प्रसरणेन अनन्त्येभिरिति
प्राणाः असवः । अन प्राणने । हलश्चेति घञ् । इतिरायमुकुटः । अन्ये
प्राणयन्तीति प्राणाः । आनयतेर्ङइत्याहुः । अनितेरिति णत्वम् । तैः संमितं
तुल्यं । भ्राजत इति भ्राता पितृजातः । भ्राजूदीप्तौ । नष्टुनष्टितिसाधुः ।
तं निशुम्भं नितरां हतं परासुं दृष्ट्वा च पुनः बलं सैन्यं हन्यमानं हतं दृष्ट्वा
क्रुद्धः सन् वचः, बलावलेपादित्यादि वाक्यं देवीमब्रवीदित्यन्वयः ।
भातृमगिन्यौ भ्रातरावुभौ । पुंसिभूम्यसवः प्राणा इत्यमरः । हन्यमान-
मित्यत्र कर्मणि यगन्तादन्तेर्वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वेति भूते लट् ।
निशुम्भे हते प्राणाएव मे हताः किमतः परमवशिष्टमिति सूचायितुं
प्राणसम्मितमित्युक्तिः ॥ १ ॥

बलावलेपदुष्टे त्वं मा दुर्गे गर्वमाचह ।

अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे याति मानिनी ॥ म. ३ श्लो. २

बलावलेपेति । शुम्भवाक्यमेतत् । यातिमानिनीति गौडपाठः । बलंप्राणसामर्थ्यं तेन यः अवलेपोऽहङ्कारः तेन दुष्टे दुर्विनीते । अवलेपस्तु गर्वं स्याल्लेपने भूषणेऽपि चेत्यभिधानात् । तथा च बलस्य अवलेपात्सम्बन्धाद्दुष्टे दुर्विनीते अतएव हे दुर्गे दुःखगम्ये सा त्वं गर्वणं गर्वोऽहङ्कारः । गर्वमाने । भावे घञ् । तं मा आवह आश्रय । सा का या एवं अन्यासां बलं प्राणासामर्थ्यं पराक्रममाश्रित्य अति अत्यन्तं मननं मानः चित्तसमुन्नतिः । मनु अवबोधने । भावे घञ् । मानोऽस्त्यस्या- इति मानिनी । अतइनठनावितीन्नन्तादृशेभ्यो ङीप् । मानिनी सती युध्यसे संग्रामयसे । अन्यबलेन युध्यमानायास्तव बलाभिमानो नोचित- इतिभावः । गर्वोऽभिमानोऽहङ्कारो मानश्चित्तसमुन्नतिरित्यमरः । बला- वलेपाद्दुष्टेति दाक्षिणात्याः । बलस्य अवलेपात्सम्बन्धाद्दुष्टेति । युध्यसे त्वत्तिमानिनीति दाक्षिणात्यपाठः । अत्र सम्बुद्धयन्तपाठे अरि- भिरप्यतिमानिनि इतिसम्बोध्यसे तत्कथमन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे तस्मात्तव मानो व्यर्थः । अतो दुष्टासीत्यभिप्रेत्य दुष्टेति सम्बोधनम् । अत्रायं भावः—चण्डमुण्डयोर्वधस्य काल्याकृतत्वाद्वक्तबीजस्यापि काल्यैव रुधिरस्य पीतत्वात्सैन्यस्य च सिंहशिवद्वयादिभिरेवाहतत्वात् धूम्रलोचनं च अन्यथाविधवीर्यस्य भस्मता सम्पादनेऽपि गर्वस्य भवत्या निरर्थक- त्वात्तु शुम्भस्य न चातिबलत्वाद्धननेऽपि बालवधतो गर्वं क्रियमाणे लोकपरिहासप्रसङ्गादेवं चैतावत्कालपर्यन्तं भवत्या कः पराक्रमः सम्पा- दितो येनातिमानो भवत्या इति ॥ २ ॥

देव्युवाच ॥ म. ४ ॥

अन्यासां बलमाश्रित्येति वदतः शुम्भस्य स्वविषयक जीवभाव- सामान्यज्ञानं निरसितुं स्वसामर्थ्यं महिमानं च प्रकाशयितुं तदुत्तुलमर्थं भगवती सूचयितुमुवाच—

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।

पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ॥ म. ५ श्लो. ३

एकैवेति । स्वस्त्रियं हित्वा परस्त्रीलोलुपत्वेनाधमत्वं शुम्भस्याध- कलय्य शङ्करस्यापि भगवतो द्वृत्येन हितोपदेशमन्वानस्य परममूढत्वेन च दोषं विशदयन्त्या भगवत्या साभिप्रायं हे दुष्टेति शुम्भः सम्बोधित

इति बोध्यम् । दुष्ट असूयक हे शुम्भ, अवास्मिन् जगति भुवनत्रये अहमे-
कैव परमात्मस्वरूपत्वात् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति श्रुतेः । यद्वा अहं
मायापर्यायया एकैवास्मि । एका स्वजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्येत्यर्थः—
यच्च श्रुतौ । अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपा-
मिति । अतः मम देव्याः अपरा अन्या द्वितीयाव्यक्तिः का । न कापीत्यर्थः ।
पृथक्तया स्थूलदृशा प्रतीयमाना अपि विविधा व्यक्तयो ब्राह्मणाद्या
वस्तुतो मदन्या न भवन्त्येवेति भावः । ननु प्रत्येकविलक्षणा कारस्य
भेदगमकत्वादेतासु तत्तद्देवताशक्तिषु तत्तद्विशेषाकारस्यनियतभिन्नत्वा-
त्कथं भगवत्या स्वतो भेदापलापः क्रियते इत्याशङ्क्यामाह—पश्येति ।
हेदुष्ट द्वैताक्रान्तदृष्टे दूषितबुद्धे शुम्भ, भवनं मम मत्सकासाद्विविधा भूति-
रूपतिर्यासां ताः मद्विभूतयः मदैश्वर्यभूताः । विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमित्य-
भिधानादेताः मद्विभूतयः मदंशावतारभूताः ब्राह्मणादिशक्तयो मय्येव
विद्यन्त्यः विशतीः निविशमानाः कर्मभूताः त्वं पश्येत्यन्वयः । द्वितीयार्थं
छान्दसीप्रथमा । यथा दुग्धं दधित्वमापन्नं न दुग्धाद्भिद्यते । यथा च
हेमकटककुण्डलादिभावमापन्नं हेमभावं न जहाति । एवंमत्तो जातमखिलं
भुवनं मत्तो न भिद्यते इति भावः । शुम्भस्यैतद्विषये विश्वासाार्थं च स्वस्यां
विभूतिलयं भगवती प्रति जानीते इति भावः ॥ ३ ॥

ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम् ।

तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका ॥ म. ६ श्लो. ४

ततइति । देवीवचनानन्तरं ब्रह्माणी ब्राह्मी शक्तिः प्रमुखे आदौ
यासां ताः ब्रह्माणीप्रमुखाः समस्ताः अखिलाः ताः प्रसिद्धाः तस्याः
प्रसिद्धायाः देव्याः कौशिक्याः । तनोति तन्यते वा शरीरं । तनु विस्तारे ।
भृमृशीत्युः । तनुः कायेत्वचि स्त्री स्यात्त्रिष्वल्पे विरले कृशे इति विश्व-
मेदिन्यौ । तस्यां तनौ शरीरे लयनं लयः संश्लेषणं अपृथग्भावमिति
यावत् । जग्मुः प्रापुः । तदा कौशिकी तन्वा सहात्मनि मातृगणं लयं
सम्पाद्य एकीभावकाले अम्बिका जगन्माता भगवती एकैवासीत् ।
अद्वितीया कौशिक्ये वावतिष्ठदित्यन्वयः । लीडूश्लेषणे । अस्मादेभावे
एरजित्यचिलय इति रूपम् । लयस्तुर्यलये साम्ये संश्लेषणविनाशयोरिति
हैमः ॥ ४ ॥

देव्युवाच ॥ म० ७ ॥

आत्मनि मातृगणलयं सम्पाद्य देवी अन्यासां बलमा-

श्रित्य युध्यसे इति शुम्भवाक्यस्योत्तरमाह—

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता ।

तत्संहतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरोभव ॥ म. ८ श्लो. ५

अहमिति । अहं कौशिकी इह मतङ्गाश्रमे विभूत्या विभवेन व्याप-
कत्वेनैश्वर्येण वा परिकल्पितैर्बहुभिरनेकसंख्याकैः रूपैः ब्राह्मणाद्याकारैः
यद्बलं सैन्यं सामर्थ्यं वा आस्थिता ब्रहीतवत्यस्मीति शेषः । तद्बलं
सामर्थ्यं सैन्यं च मया संहतं तिरोहितं । आजौ संग्रामे एका एकाकिनी
एव तिष्ठामि । त्वमप्याजौ स्थिरः पलायनरहितो भवेत्यन्वयः । विभूत्या
इति प्रकृत्या चारु इत्यादिवत् तृतीया । बहुभिः रूपैरित्यत्र इत्थंभूत-
लक्षणे तृतीया । जटाभिस्तापस इतिवत् । बहुरूपव्याप्यबलाश्रयत्वयुक्त-
भगवत्यनुकूलो भवनव्यापारो वाक्यार्थः । विभूत्येति । विभूतिर्भूतिरै-
श्वर्यमित्यमरः । भवनं भूतिः । स्त्रियां क्तिन् । विभूतिरितिकथनमन्य-
प्राप्तिनिवृत्त्यर्थम् । आस्थितेति आङ्पूर्वात्तिष्ठतेर्गत्यर्थकमकस्त्रिषशीङ्-
स्थेति कर्मणि क्तः । आजौविति । अजनं आजिः । संग्रामः । अजगती ।
इज्जजादिभ्यः इतीञ् विधानसामर्थ्यादजेर्वी भावो न अन्यथा व्यादिभ्य
इत्येवावक्ष्यत् । बहुलं तणीति वा । आजिः स्त्री समभूमौ च संग्रामे इति
विश्वः । आजौवित्येतत्पदं काकाक्षिगोलकन्यायेनोभयत्र सम्बद्धयते ।
अहमाजावेकैव तिष्ठामि त्वमाजौ स्थिरो भवेत्युभयत्र सम्बन्धसम्भवात् ।
इहेत्यनेन हिमाद्रिकूटं मतङ्गाश्रमो वा परामृश्यते । नतु रणम् । अजा-
विति पृथगुक्तेरित्याहुः । वस्तुतस्तु इह आजौवित्येवं विशेषणविशेष्य-
भावेनान्वये न दोष इति निर्मत्सरैः सुधीभिराकलनीयम् ॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच ॥ म० ९ ॥

ऋषीर्देवीशुम्भसंवादं निर्वर्ण्य सुरथं शुम्भवधं सूचयन्नुवाच—

ततः प्रवृत्ते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः ।

पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ॥ म. १० श्लो. ६

तत इति । आजौ स्थिरोभवेत्यन्तवाक्योक्त्यनन्तरं सर्वेषां देवाना-
मसुराणां च पश्यतामित्यनादरे षष्ठी । पश्यतो देवानसुराश्चानादृत्ये-
त्यर्थः । देव्याः कौशिक्याः शुम्भस्य चेत्येवमुभयोर्दारुणं भयङ्करं युद्धं कर्तुं
प्रवृत्ते प्रवर्तिष्ठ । अत्र भये हेतुः । शुम्भस्य जयेसति देवानां भयं

देव्याश्च जये असुराणां च भयस्यभविष्यत्वादुभयेषां भयजनकमिति भावः । सर्वेषां देवानामसुराणां च पश्यतामवलोकयतां दारुणं भयजनकमित्येवं युद्धमिति वा प्रवृत्ते इति ॥ ६ ॥

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैवदारुणैः ।

तयोयुद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ॥ म. ११ श्लो. ७

शरवर्षैरिति । शराणां वर्षैरिव वर्षैः । उपमितमिति समासः । शितै तीक्ष्णैः कुन्ताद्यायुधैः । तथा च सुदारुणैः घोरैरस्त्रैः ब्रह्मास्त्रादिभिः विशिष्टैरायुधैः करणैः । भूयः बहुतरं सर्वेषां लोकानां जनानां भयङ्करं भयजनकं तयोर्देवीशुम्भयोः युद्धं सम्प्रहारोऽभूदित्यन्वयः । आयुधभेदाद्युद्धभेदः । आयुधसाम्यात्तत्साम्यम् । भयङ्करं प्रतिभयमित्यमरः । भूय इति । अतिशयेन बहु भूयः । बहोर्लोपो भू च बहोरिति सूत्रेण बहु-
शब्दादीयसुनि प्रकृतेर्भूइत्यादेशे आदेः परस्येतीयसुनईकारलोपे सिद्धं रूपम् ॥ ७ ॥

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।

बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ म. १२ श्लो. ८

दिव्यानीति । अथ युद्धानन्तरं अम्बिका कौशिकी । दीव्यन्त्यस्या-
मिति द्यौः सुरलोकः । बहुलकात् दिवेडिविः । सुरलोको द्यौर्दिवौ इत्यमरः । दिविभवानि दिव्यानि समन्त्रकाणि ब्रह्मास्त्रादीनि । अस्त्रा-
ण्यायुधानि शतशः शतं शतं मुमुचे । प्रयुक्तवती । शुम्भमुद्दिश्येत्यर्थं त
आयाति । दैत्येन्द्रः दैत्येश्वरः शुम्भः तानि देवीप्रयुक्तानि दिव्यान्यस्त्राणि
आग्नेयास्त्रादीनि कर्मभूतानि तेषामस्त्राणां प्रतीघातः विरोधः तैः
विरोधिभिः वरुणाद्यस्त्रैः विघातः तस्यकर्तृभिः अस्त्रैः कारणभूतैः बभञ्ज
खण्डयामासेत्यन्वयः । अस्त्रप्रतिघातास्त्राणि यथा आग्नेयं वारुणेन
वारुणं वायव्येन । वायव्यं सारपणं । सारपं गारुडेन । गारुडं वैष्णवेन प्रति-
हृतं भवति । एतानि धनुःशास्त्रे प्रसिद्धानि । प्रतिहननं प्रतिघातः हन्ते-
भविष्यत् । हनस्तोऽचिण्णलोरिति तकारः । होहन्तेरिति कुत्वम् । अत
उपधाया इति वृद्धिः । उपसर्गस्य घञीतिदीर्घः । तत्प्रतीघातकर्तृभिरि-
त्यत्र जनिकर्तुः प्रकृतिरिति लिङ्गात्समासः ॥ ८ ॥

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।

बभञ्ज लीलयैवोग्रहूङ्कारोच्चारणादिभिः ॥ म. १३ श्लो. ९

मुक्तानीति । परमेश्वरी कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्था कौशिकी तेन शुम्भेन मुक्तानि प्रयुक्तान्यस्त्राणि कर्मभूतानि । उग्रं रौद्रं हूङ्कारोच्चारणं क्रोधबीजोच्चारणं आदिः प्रथममेषां तैः आदिशब्दात्फट्कारादिभिः अस्त्रैः लीलयैव विलासेनैव नत्वायासेन । बभञ्ज मदयामासेत्यन्वयः । उग्रं च तत्तूङ्कारोच्चारणं च तदादिभूतं येषामस्त्राणां तैः । अत्रहूमिति दीर्घो-
च्चारणेनैव क्रोधबीजत्वं तन्त्रे स्पष्टम् ॥ ९ ॥

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।

सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेपुभिः ॥ म. १४ श्लो. १०

तत इति । देव्या शुम्भास्त्रच्छेदनानन्तरं स देवीखण्डितास्त्रः असुरः शुम्भः शराणां शतैः देवीं आच्छादयामास आवर्त्रे । छेदं संवरणे चुरादिः । आङ्पूर्वः ततोलङ्कारूपम् । णिच्श्चेत्यात्मनेपदम् । सा प्रसिद्धा देव्यपि कुपिता सती । तदित्यव्ययम् तस्येत्यर्थः । धनुःकर्म । इषुभिर्बाणैः चिच्छेदेत्यन्वयः । इषुभिरित्यत्र इष्यते एभिरितीषवोबाणाः ईष गति-
हिंसादर्शनेषु । ईषेः किच्चेत्युः । आदेरिच् । कलम्ब मार्गणसराः पत्री रोपइषुर्द्वयोरित्यमरः । अत्र देव्याइषोरमोघत्वादेकैवेषुणा शुम्भधनु-
श्छेदसम्भवादिषुणेत्येव सिद्धे इषुभिरिति बहुचनेन पुनः पुनर्गृहीतानां बहूनां धनुषां बाणैश्छेदनमभिव्यनक्ति । एवं च धनुरित्यत्र जातावेक-
वचनमवधेयम् ॥ १० ॥

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ॥

चिच्छेद देवी चक्रेणतामप्यस्य करे स्थिताम् ॥ म. १५ श्लो. ११

छिन्नीति । छिन्नेधनुषीत्युभयत्रापि जातावेकवचनम् । तथाउक्त-
प्रकारेण देव्या धनुःषुः छिन्नेषु द्विधाकृतेषु सत्सु दैत्येन्द्रः तद्वत् शक्ति-
कासू आयुधं आदद जग्राह । आङ्पूर्वोददातिर्ग्रहणार्थः उभयपदी । ततो-
लिटि रूपम् । देवी कौशिकी अस्य शुम्भस्य करे हस्ते स्थितां प्रयोक्तुं
करे गृहीतामित्यर्थः । तामपि शक्तिमपि चक्रेणायुधेन चिच्छेदेत्यन्वयः ।
अपि शब्दः प्राविच्छन्नधनुः समुच्चयार्थः कासू सामर्थ्ययोः शक्तिरिति कोशः
॥ ११ ॥

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत ।

अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ॥ म. १६ श्लो. १२

तत इति । शक्तिच्छेदानन्तरं हे अधिप प्रभो सुरथ, दैत्यानामीश्वरः शुम्भः खड्गं उपादाय गृहीत्वा तदा खड्गग्रहणकाले च पुनः भानवः किरणाः सन्त्यस्मिन्निति भानुम् । शतं कृत्रिमाः शततया परिकल्पिताः चन्द्राः यत्र तच्छतचन्द्रं फलकमिति शेषः । उपादाय गृहीत्वा देवीं कौशिकीं अभि अभिमुखं अधावत् वेगेनागच्छदित्यन्वयः । धातु गति-
शुद्धयोः स्वरितेत् । लङि रूपम् । शतसंख्याकचन्द्राणामन्यत्रासम्भवा-
त्फलकमध्याह्नियते । अथवोत्तरश्लोके चर्मकथनादत्राध्याहारः । भानू-
रदिमदिवाकरावित्यमरः । दैत्यानामधिपेश्वर इति गमकत्वात्समास
इतिनागेशः । रामाश्रमस्तु । दैत्यानां ये अधिपा निशुम्भरक्तबीजाद-
यस्तेषामीश्वर इति ॥ १२ ॥

तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका ।

धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम् ॥ म. १७ श्लो. १३

तस्यापतत इति । चण्डिका कौशिकी आपतत एव वेगादागच्छत
एव तस्य शुम्भस्य शितैस्तीक्ष्णैः धनुषः सकाशान्मुक्तैः निर्गतैर्बाणैः
प्रतिफलितैः अर्कस्य करैः अमलमुज्ज्वलं खड्गं चर्मफलकं च चिच्छेदैत्य-
न्वयः । अपनीतपिधानत्वात् श्यामवर्णयोरपि खड्गफलकयोः प्रतिफलित
सूर्यकिरणसम्पर्कादर्ककरामलमभयोरिति भावः । बाणः स्याद्दोस्तनौ
दैत्यभेदेकुसुमकाण्डयोरित्यनेकार्थ्याभिधानाद् बाणशब्दादनेकार्थोपस्थिते
बाणधर्धनुर्मुक्तैरिति विशेषणमिषुरूपोपस्थित्यर्थमिति बोध्यम् । खड्गफल-
कयोश्छेद्यत्वाद्बाणैरिति बहुवचनं वेति ॥ १३ ॥

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ।

जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः ॥ म. १८ श्लो. १४

हताश्व इति । देव्याहता अश्वः यस्यस हताश्वः । छिन्नं धनुर्यस्य
सः छिन्नधन्वा विगतः सारथिर्यन्ता यस्य तथाविधः शुम्भः तदा विरथः
धनुरादीनामभावकाले अम्बिकाया निधनं नाशः देवीसम्बन्धिमरणं
तस्मिन्नुद्यतः प्रयत्नवान् घोरं भीमं मुद्गरमायुधं जग्राहेत्यन्वयः । छिन्न-
धन्वेति छिन्नं धनुर्यस्येति विग्रहे धनुषश्चेत्यनङ् । धन्वा तु मरुदेशे ना
क्लीबं चापे स्थलेऽपि च । धनुश्चापौ धन्वशरासन इत्यभिधानात् ।
निधनेति । निधानमिति निधनं । डुधाञ् धारणपोषणयोः । कृपवृजि-
मन्दिनिधात्रः कयुः । निधनं स्यात्कुले नाशे इति मेदिनी । मुद्गरमिति ।

गिरति । ग्रसते गरः । ग् निगरणे । अच् । मुदो गरः मुद्गरः । लौह-
मायुधं लोके 'मुंगरा-मुग्दर' इति प्रसिद्धम् । मुद्गरोलोहलगुड इति
चतुर्भुंजरामाधमौ । द्रुघणे मुद्गरवनावित्यमरः ॥ १४ ॥

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।

तथापि सोऽभ्यधावतांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥ म. १९ श्लो. १५

चिच्छेदेति । यद्यपि सा देवी आपततः वेगेनागच्छतः तस्य
शुम्भस्य मुद्गरं वनं कर्म निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः चिच्छेद । तथापि छिन्न-
मुद्गरोऽपि सः शुम्भो वेगवान् जवोपेतः सन् । मुष्यते अनयेति मुष्टि-
वृद्धांगुलिः करः । तमुद्यम्य उत्थाय प्रहाराभिमुखं कृत्वेत्यर्थः । तां देवीं
अभि अभिमुखं अधावत् आगच्छदित्यन्वयः ॥ १५ ॥

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।

देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ॥ म. २० श्लो. १६

स मुष्टिमिति । स प्रसिद्धः दैत्यः पुङ्गव इव पुङ्गवः दैत्येषु अति-
श्रेष्ठः शुम्भः देव्याः कौशिक्याः हृदये वक्षसि मुष्टिं बद्धमुष्टिकं करं पातया-
मास प्रयुक्तवान् । अक्लीवेमुष्ट्यरत्नीद्वाविति कोशान्तरम् । पुमांश्चासौ
गौश्चेति गोरतद्धितलुकीति टच् । दैत्यः पुङ्गवइव बलवानित्यर्थः । उप-
मितिसमासः । स्युस्तरपदेव्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः । सिंहणादूलनागाद्याः
पुंसि श्रेष्ठार्थगोचरा इत्यमरः । च पुनः सा प्रसिद्धा देवी कौशिकी तल-
तीति तलं चपेटा । तल प्रतिष्ठायां । पचाद्यच् । तेन चपेटापातेन शुम्भ-
उरसि वक्षसि अताडयदपीडयत् । तड आघाते चुरादिः । कर्त्तरि लङ् ।
वितस्ती च चपेटे च चापज्यारक्षणे तलमित्यभिधानात् ॥ १६ ॥

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।

स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ॥ म. २१ श्लो. १७

ततः किजातमित्याह-तलेति । स प्रसिद्धः । दैत्यानां राजादैत्य-
राजः शुम्भः । राजाहः सखिभ्यश्च समासान्तः । तस्य चपेटस्य प्रहारेण
आघातेन अभिहतस्ताडितः सन् महीतले महीपृष्ठे निपपातेत्यन्वयः
तलश्चपेटे तालादौ तलं ज्याघातवारणे इति विश्वः । स दैत्यराजः
शुम्भः संह्यते अनेनेति सहोबलं । षह अभिभवे । असुन् । सहसा बले-
नेत्यर्थः । सहसेत्यव्ययम् । तत्पक्षे अतर्कितमित्यर्थः । पुनस्तथैव निपत-
नात् प्रागिवउत्थितः ऊर्ध्वभागेस्थितवानित्यन्वयः । सहोबलेज्योतिविच-

सहाहेमन्तमार्गयोरिति हैमः । षहधातोः पचाद्यच्च अदन्तोऽपि । सहा-
स्त्रियां बले न स्त्रीतिरभसः । अव्ययपक्षे तु अतर्किते तु सहसेत्य-
मरः ॥ १७ ॥

उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।

तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ॥ म. २२ श्लो. १८

उत्पत्येति । न केवलं पूर्ववदुत्थितोऽभूत् किन्तु उत्पत्य उत्प्लुत्य
देवीं कौशिकीं प्रगृह्य गृहीत्वा । उच्चैः दूरं अन्येनाप्राप्यं गगनमाकाशं
आस्थितः आश्रितश्चाभूदतिशेषः । तिष्ठतेरकर्मकत्वेऽपि आङ्पूर्वस्य
तिष्ठतेः श्रयणार्थाविलम्बनेनार्थान्तरवृत्तेः सकर्मकात्कर्तरि गत्यर्थे क्तः ।
आङ्स्थः प्रतिज्ञायामिति वार्त्तिकेणात्मने पदविधानादातिष्ठते इत्यास्थित
इति विग्रहः । गगनमाश्रयत्वेन प्रतिज्ञातवानिति भावः । तत्रापि गगने-
ऽपि सा प्रसिद्धा चण्डिका कोपवती सती निषिद्धः आधारः अधिकरण-
माश्रयो यस्याः सा निराधारा निरधिकरणासती तेन शुम्भेन सह युयुधे
संप्रजहार । युधेरनुदात्तेत्वादात्मनेपदम् । अनिराधारेति वा पद-
च्छेदः । अनिराधारेव अनिराधारा साश्रयेतियावत् । अन्तर्गतब्राह्मणादि
रूपत्वाद्वंसगरुडमयूरादिवाहनत्वादाश्रयसहितेव देवोत्थयः । अथवा
श्रीदेव्याः शब्दब्राह्मणआकाशस्थत्वेन साधारत्वादनिराधारेति भावः । १८

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।

चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥ म. २३ श्लो. १९

नियुद्धमिति । तदा गगनारोहणकाले खे आकाशे दैत्यः शुम्भः
चण्डिका देवी च परस्परमन्योन्यं प्रथमं पूर्वं । असेधिषुरिति सिद्धाः
अणिमादिसिद्धिमन्तो देवयोनिविशेषाः । षिधु हिंसासंराध्योः । गत्यर्था-
कर्मकेति कर्तरि क्तः । सिद्धिरस्त्येषामिति वा । अर्श आद्यच् । मुनयो
नारदाद्याः । तेषां विस्मयनं विस्मयः । स्मिङ्ईषद्वसने । एरच् । विस्मयो-
ऽद्भुतमाश्चर्यमित्यमरः । तस्याश्चर्यस्यकारकं उपजनकम् । निगृह्य नितरां
वा युद्धं नियुद्धं बाहुभिश्चक्रतुरित्यन्वयः । नियुद्धं बाहुयुद्धे स्यादित्यमरः ।
परस्परमित्यत्र कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये इत्यनेन परशब्दस्य
द्वित्वे समासवच्च बहुलमित्यत्र बहुलग्रहणादसमासवद्भावे पूर्ववदस्थस्य
सुपः रभावे विसर्गे तस्यकस्कादित्वात्सत्वेचरूपम् । चक्रतुरित्यत्र
कर्मव्यतिहारेऽपि कर्तरि कर्मव्यतिहारे इति सूत्रेण नात्मनेपदम् । परस्पर-

मित्यनेनैककर्मव्यतिहारस्यावगमने नोक्तार्थानामप्रयोग इति न्याया-
दात्मनेपदाभावात् । नियुद्धं तद्भुजोद्भवमिति हैमः ॥ १९ ॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।

उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ॥ म. २४ श्लो. २०

तत इति । अम्बिका कौशिकी तेन शुम्भेन सह सुचिरं चिरतरं
नियुद्धं बाहुयुद्धं कृत्वा तं उत्पात्य ऊर्ध्वं नीत्वा उत्पूर्वात्पततेऽप्यन्ता-
ल्यपि रूपम् । भ्रामयामास । चरणवृत्तिक्षप्य समन्ततो गमयामासेत्य-
न्वयः । भ्रमणं भ्रामः । भावे घञ् । अतउपधाया इति वृद्धिः । भ्रामं
करोति भ्रामयति । तथा च तत्करोतीति प्यन्ताद्भ्रामशब्दात्सनाद्यन्ता
इति कृतधातुसंज्ञाह्निटि कास्यनेकाच इत्यामिणेरयादेशे आमइतिलिटो-
लुकि आमप्रत्ययवत्कृतोऽनुप्रयोगस्येति लिङन्तास्तेरनुप्रयोगे सिद्धं रूपम् ।
अमु अनवस्थाने । अस्मात् प्यन्ताह्निटि तु जनीजृप्वनसुरज्ज्ञोऽमन्ताश्चेत्य-
नेनामन्तत्वान्मित्संज्ञायां मित्तां ह्रस्वत्वे भ्रमयामासेति रूपमापद्येत ।
संज्ञापूर्वकोविधिरनित्य इत्याश्रयणं त्वगतिकगतिः । ततः भ्रमणानन्तरं ।
धरति विश्वमिति धरणी पृथ्वी । धरणीतले धरण्यामित्यर्थः । तलं
स्वरूपाधारयोरित्यभिधानात् । चिक्षेप । पातयामासेत्यर्थः । तत इत्यत्र
सार्वविभक्तिकस्तसिः । तेन तमित्यर्थः । रामाश्रमस्तु तत इत्यतो
विनापि चकारं चकारार्थोऽवगन्तव्य इत्याह । उत्पाद्येति दाक्षिणात्यपाठे
उत्क्षिप्येत्यर्थः ॥ २० ॥

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।

अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ॥ म. २५ श्लो. २१

स इति । देव्या क्षिप्तः प्रेरितः दुष्टात्मा द्वेषद्वेषिताशयः स शुम्भः
धरणीं महीं प्राप्य वेगितः । वेगशब्दात्तत्करोतीत्यणिच्तदन्तादक्तः ।
सञ्जातवेगः सन् चण्डिकाया देव्या निधनेच्छया मारणवांछया मुष्टि
बद्धांगुलिकं करं उद्यम्य उद्यतं कृत्वा अभिमुखमधावत आद्रवत् । आत्मा
यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्णं चेत्यमरः ॥ २१ ॥

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।

जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ॥ म. २६ श्लो. २२

तमिति । ततः मुष्टिं प्रजिहीर्षुं तं शुम्भं सर्वेषां दैत्यजनानां दैत्य-

लोकानां ईश्वरं राजानं आयान्तं आगच्छन्तं देवी कौशिकी वक्षतीति वक्षः
उरः । वक्षसङ्घाते । उरो वत्सं च वक्षश्चेत्यमरः । वक्षसि उरसि
शूलेनायुधेन भित्त्वा विदार्य जगत्यां भूमौ पातयामासेत्यन्वयः । लोकस्तु
भुवने जने इत्यमरः । जगती भुवनेक्षमायां छन्दो भेदे जनेऽपि चेति
कोशान्तरम् ॥ २२ ॥

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।

चालयन्सकलां पृथ्वीं साग्धिद्वीपां सपर्वताम् ॥ म. २७ श्लो. २३

स इति । क्षणु हिंसायाम् । विपूर्वः । ततः कर्मणि क्तः । अनुदात्तो-
पदेशेत्यनुनासिकलोपः विक्षत इति रूपम् । देव्याः शूलस्य अग्रेण मुखेन
विक्षतः विशेषेण हिंसितः स शुम्भः । गताः असवः प्राणाः यस्य तादृशः
सन् उर्व्यां भूमौ पपात । किं कुर्वन् कलयन्तीति कलाः अंशाः । कल
संख्याने । पचाद्यचि टाप् । कलास्यादंशशिल्पयोरिति हैमः । कलाभिः
सहितां पृथ्वीं भूमिं चालयन्देशान्तरं प्रापयन् अतथाकुर्वन् क्षिपन्वेत्यर्थः ।
चल कम्पने ज्वलादिः । ततो णिजन्तात्कृतवृद्धेः क्षतरि रूपम् । अत्र
कम्पने चलिरिति मित्त्वं न प्रवर्तते । कम्पनरूपार्थाभावात् । अतएव
वायुश्चलयति शालां कम्पयतीत्यर्थः । अत्रैव मित्त्वं । कम्पनादन्यत्र तु
शीलं चालयति अतथाकरोतीत्यर्थः । हरतीत्यर्थ इति स्वामी । सूत्रं
चालयति क्षिपतीत्यर्थः । एषु प्रयोगेष्वर्थान्तरसद्भावे मित्त्वाभावइव
प्रकृतेऽप्यर्थान्तरसद्भाव इति बोध्यम् । नागेशस्त्वार्ष आह । रामाश्रमस्तु
चलनं चालः । तत्करोतीति णिच् । तदन्ताच्छतरि रूपमित्याह । किं
भूतां पृथ्वीं अध्वयः समुद्राः द्विगता आपोऽण्विति द्वीपाः जलमध्यगत-
शाल्मलिशाकद्वीपादयः तैः सह वर्त्तमानाः । ऋक्पूरुषादितिसमासान्तः ।
द्व्यन्तरूपसर्गभ्योऽपईत् । पुनः किंभूताम् । पर्वणि सन्त्येषामिति पर्वताः ।
तैः सहिताम् । द्वीपोऽस्त्रियामन्तरीपं यदन्तर्वापरिणस्तटमित्यमरः । पर्वतः
पादपे पुंसि शाकमत्स्यप्रभेदयोः । देवमुन्यन्तरे शैले इति हैमः ॥ २३ ॥

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन्दुरात्मनि ।

जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः ॥ म. २८ श्लो. २४

तत इति । कौशिक्या दुरात्मनि दुष्टस्वभावे तस्मिन् शुम्भे हते
सति ततोहेतुतः अखिलं समस्तं जगत् प्रसन्नं त्रिष्कलुषमभवदित्युत्तरेणा-
न्वयः । च पुनः अखिलं जगत् स्वस्थस्य भावः स्वास्थ्यं निराकुलतां

अतीव गाढं आप प्रपेदे । च पुनः नभः आकाशं मलत्पङ्कवर्षादिः निष्क्रान्तं
निर्मलमभवत् । जीवति शुम्भे एतद्विपरीतमभूदिति भावः विश्वमशेषं
कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानिनिःशेषमित्यमरः । स्वत्यतीव च निर्भरे
इत्यमरः ॥ २४ ॥

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।

सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते ॥ म. २९ श्लो. २५

उत्पातमेघा इति । मेहन्तीति मेघाः । मिह सेचने । पचाद्यच् ।
न्यङ्क्वादिवात्कुत्वम् । मेघो मुस्ताजलदयोरिति कोशान्तरम् । शुभा-
शुभसूचकः उत्पातः गगनतो नक्षत्राकृतिनिष्पतन् ज्वालाविशेष उल्का ।
तथा च प्राक् शुम्भासुरमरणात्पूर्वं सोल्काः उल्कासहिताः ये उत्पात-
मेघाः आसन् ते तत्र शुम्भे देव्या पातिते सति शमं शान्तिं ययुः ।
उल्काशब्दश्च नियतस्त्रीलिङ्गः । लङ्का शेफालिका टीका धातकी पञ्च-
काढकी । सिधका शाषिका हिवका प्राचिकोल्का पिपीलिकेति स्त्री-
लिङ्गाभिधानात् । तथा तत्र शुम्भे देव्या पातिते सति सरन्तीति सरितो
नद्यः । सृ गतो । सरतेरिति । मृज्यते वितृणीक्रियते सततगमनेनेति
मार्गः पन्थाः । मृजुशु ङी । हलश्चेतिषत्र । मार्गं पथि वहन्ति एवं शीलाः
मार्गवाहिन्यः आसन् । सरितोमार्गवाहिन्यइत्युक्त्या हननात्पूर्वं ताश्च
स्वप्रवाहसहिताः उत्पथगामिन्यः स्थिताआसन्नित्यभिव्यज्यते । मार्गो
मृगपदे मासे सौम्यक्षेप्त्वेवर्षेण पथीतिहैमः । आसन्निति अस्तेर्बहुवचनेलङ्घि
रूपम् । तथा शुम्भे निपातिते इत्यत्र पाठे अमार्गं इति छेदः । प्रागमार्ग-
वाहिन्यः सरितः शुम्भे निपातिते शमं ययुः । अमार्गगामिताराहित्य-
मितियावत् ॥ २५ ॥

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।

बभूवुर्निहते तस्मिन्गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ म. ३० श्लो. २६

तत इति । देव्याः तस्मिन् शुम्भे निहते मारिते सर्वे देवानां गणाः
इन्द्रादयः हर्षनिर्भराणि आनन्दपूर्णानि मानसानि चेतांसि येषां ते
हर्षनिर्भरमानसा बभूवुः । निःशेषेण भरः निर्भरः पूर्णतेत्यर्थः ततः
तस्मिन्निहते सति देवहर्षोद्गमानन्तरं गन्धर्वा देवगायकाश्चित्ररथविश्वा-
वसुप्रभृतयः ललितं ईप्सितं ललिताख्यं रागभेदं वा जगुरित्यन्वयः ।
गानाचार्योपदिष्टं स्याल्ललितं रतिचेष्टितम् । मनोज्ञं चापि ललितमिति

कोशान्तरम् । रामाश्रमस्तु ललितं मनोहरं यथा स्यात्तथा जगुः ज्ञानं कृतवन्त इत्याह ॥ २६ ॥

अवादयस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।

ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ॥ म. ३१ श्लो. २७

अवादयन्निति । निहते तस्मिन्नित्यनुवर्तते । तथैव हर्षनिर्भरमान-
सतया अन्ये गन्धर्वजातयः अवादयन् । ततानद्धमुरजानितिशेषः । एते
दिव्यानि वाद्यानि आनन्दोद्रेकेण वाद्याभिज्ञा देवविशेषाः अवादय-
न्नित्यर्थः । अद्भ्यः सरन्तीत्यप्सरसाः स्वर्गस्थाः । अप्सरा इति सूत्रेणा-
सुन्नन्तो निपातः । तासां गणाः समूहाः उर्वशीरम्भाद्याः ननृतुः नृत्यं
चक्रुः । चकारो वाद्यसमुच्चयार्थः । वान्तीति वाताः वायवः पुण्याः शैत्य-
मान्द्यसौरभ्यवन्तः रजः शून्याः ववुः वान्तिस्म । दिवा दिनं करोतीति
दिवाकरः । सुष्ठु प्रभाः कान्तयो यस्येति सुप्रभः अभूत् । शुम्भे जीवति
निष्प्रभतोत्पातरूपा या प्राक् स्थिता सेदानो निवृत्तंति भावः ॥ २७ ॥

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः ॥ म. ३२ श्लो. २८

जज्वलुरिति । च पुनः अग्नयः आहवनीयगाहपत्यदक्षिणाख्याः
शान्ताः धूमरहिताः निर्मलाः सन्तः जज्वलुः । हते शुम्भे यज्ञाः प्रवृत्ता
इत्यर्थः । किम्भूता अग्नयः शान्तासु शान्ताख्ययाप्रसिद्धासु दिक्षु जनितः
स्वनः शिखाप्रचारशब्दो येषां ते शान्तदिग्जनितस्वनाः । तच्छिखा-
प्रचारस्तु तन्त्रशास्त्रप्रासद्वयश्च चटचटादिरूपः शुम्भाशुभसूचकः । शान्त-
दिग्लक्षणमाह वराहः । अङ्गारिणी दिग्गविणा विमुक्ता यस्यां रविस्तिष्ठति
सा प्रदीप्ता । प्रधूमिता यास्यति यां दिनेशः शेषाश्च शान्ताः शुभदाश्च
ताः स्युरिति । अथवा दिक्षु जनिताः पलायितदैत्यादिभिराविष्कृता ये
स्वनाः हाहाकारादयस्ते शान्ते इत्यर्थः अथवा दिक्षु जनितः स्वनो
दिग्जनितस्वनः शान्तो दिग्जनितस्वनो येषां ते । दिग्दाहं कुर्वाणा
अग्नयः पूर्वं लोके जज्वलुः । दाहस्याग्निकर्मत्वात् । सम्प्रति तु शान्ताः
सौम्याः सन्तो जज्वलुरित्यर्थः ॥ २८ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे मध्यभागे सरयूप्रसादसंगृहीते

सरस्वतीचरिते दशमाध्यायार्थसंग्रहोनाम दशमो

विश्राम आदितः पञ्चदशोविश्रामः ॥ १५ ॥

अथसप्तशत्याएकादशाध्यायारम्भः ॥

तत्रैकादशाध्यायमन्त्रविभागो यथा विदम्बररहस्ये—

श्लोकास्तु सार्द्धपञ्चाशज्ज्ञेया एकादशे शिवे । पञ्चाशच्छ्लोक-
मन्त्राश्च अन्तेऽर्द्धश्लोकमन्त्रकः ॥ १ ॥ आदावृषिरुवाचेति मन्त्राद्यस्ततः
परम् । चतुस्त्रिंशततः श्लोका मन्त्ररूपास्ततः परम् ॥ २ ॥ देव्युवाच
ततः श्लोको देवा ऊचुः पुनस्तथा । श्लोकश्च देव्युवाचेति श्लोकाश्चैव
चतुर्दश ॥ ३ ॥ अर्द्धाहुतिर्भवेदन्ते पञ्चाशत्पञ्चमन्त्रकाः । वैष्णवी देवता
ह्यत्र महा गरुडवाहनेति ॥ ४ ॥

ऋषिरुवाच ॥ म. १ ॥

सुरथं प्राति सुमेधा मुनिः देवकृतां दृष्टं च स्तुतिं

समष्ट्या सूचयन्नुवाच—

दृष्टमित्यत्र लक्ष्मीतन्त्रे । नारायणी स्तुतिर्नाम सूक्तं परमशोभ-
नम् । पुरन्दर तदा दृष्टं देवैरग्निपुरोगमैः ॥ १ ॥ एषा सम्पूजिता
भक्त्या सर्वज्ञ त्वं प्रयच्छति । कौशिकी सर्वदेवेश सर्वकामप्रदा ह्यहम्
॥ २ ॥ उत्पत्तिर्युद्धविक्रान्तिः स्तुतिश्चेति पुरातनैः पठ्यते त्रितयं विप्रैः
वेदवेदाङ्गपारगैः ॥ ३ ॥ एतासां परमा प्रोक्ता कूटस्था सा महीयसी ।
महालक्ष्मीमहाभागा प्रकृतिः परमेश्वरीति ॥ ४ ॥ कौशिक्येव सरस्वती
अस्या रूपं यामले । सरस्वत्यष्टहस्ता तु बाणं च मुसलं तथा । शूलं चक्रं
तथा शङ्खं घण्टां वै लाङ्गलं तथा ॥ ५ ॥ धनुरेतानि दिव्यानि हस्तैर्देवी
बिभर्ति सा । श्वेतपर्वतसंकाशा श्वेतवस्त्रविभूषिता ॥ ६ ॥ नानारत्नसमा-
कीर्णा वेदविद्याविनोदिनी । आषाढेनवरात्रे तु पूज्या शुभनिर्वाहिणीति
॥ ७ ॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्र

सेन्द्राः सुरावह्निपुरोगमास्ताम् ।

कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभा-

द्विकाशिवक्त्रास्तु विकाशिताशाः ॥ म. २ श्लो. १

देव्येति । देव्या क्रीडाशीलया कौशिकया महतां श्रेष्ठानां असुराणां
रक्तबीजादीनां इन्द्रे प्रभौ शुम्भे तत्र रणाङ्गने हते सति सेन्द्राः देव-
नायकसहिताः बह्निरग्निः । पुरोगच्छतीति पुरोगमः अग्रेसरो येषां ते ।
देव्या इष्टस्य अभिमतस्य शुम्भवधस्य लभ्यते इति लाभः अधिकफलं ।
डुलभष् प्राप्तौ । अकर्तरीतिघञ् । तस्मात्त्यब्लोपे पञ्चमी । लाभमधिक-
फलं प्राप्येत्यर्थः । काशनं काशः । काशुदीप्तौ तालव्यान्तो धातुः ।
विशेषेण काशः विकाशः दीप्त्यतिशयः सोऽस्त्येषामिति विकाशीनि ।
अत इनठनाविति मत्वर्थीयः । विकाशीनि वक्त्राणि येषान्ते । प्रसन्न-
मुखाइत्यर्थः । तुश्चार्थः । अतएव विकाशः प्रकाशः सञ्जातः आशास्विति
विकाशिताः सञ्जातप्रकाशा इत्यर्थः । तारकादित्वादितच् । विकाशिताः
आशा दिशो यैस्ते । तथाभूताः सन्तः । कातस्य गोत्रस्यापत्यं स्त्री
कात्यायनी । कतशब्दादुर्गादित्वाद्यञन्तात्सर्वत्र लोहितादिकतन्तेभ्यः
इति षफप्रत्यये तस्य षित्त्वात्षिद्गौरादिभ्यश्चेति ङीष् आयनादेशे च
रूपम् । तां प्रसिद्धां कौशिकीं तुष्टुवुः वाचा पूजयाश्वकुरित्यन्वयः ।
लाभादित्यस्य स्थाने लम्भादिति दाक्षिणात्यपाठे उपसर्गात्खलघञोरिति
पृथग्योगकरणश्रुमिति नागेशरामाश्रमाद्या आहुः । लाभोऽधिकं फलमित्य-
मरः । आशाश्च हरितश्च ता इत्यमरः ॥ १ ॥

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद

प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।

प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं

त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥ म. ३ श्लो. २

देवीति । हे प्रपन्नानां आश्रितानां अति पीडां हरतीति प्रपन्नार्ति-
हरे देवि क्रीडाशीले । प्रसीद प्रसन्ना भव । हरतेरनुद्यमने अच् । स्त्रियां
टाप् । संबुद्धौ चेत्याप एकारः । प्रसीदेति षद्वल् विशरणगत्यवसादनेषु
लोण्मध्यमपुरुषैकवचनेपाद्याध्मेतिसीदादेशः । अखिलस्य समस्तस्य
जगतः प्रपञ्चस्य मातः जननि उभादानभूते हे देवि त्वं प्रसीद । मान्यते
इति माता । मान पूजायाम् । माति गर्भाऽस्यामिति वा । नप्तनेष्टृति-
साधुः । माता गौदुर्गा जननी महीतिहैमः । जनयित्री प्रसूर्मातित्यमरः ।
पटैकदेशे दग्धे पटो दग्धइतिषज्जगच्छब्देनैकदेशो गृह्यते इतिशङ्कावार-
णार्थमखिलस्येति प्रयोगः । हे विश्वेश्वरि विश्वव्यापिके प्रसीद । अखिलं

विश्वं त्वं पाहि रक्ष । पारक्षणे । लोणमध्यमपुरुषैकवचनम् । ननुकुतोऽहं-
 रक्षामीत्याद्यङ्क्यामाह-त्वमीश्वरीति । चरं च अचरं च तयोः समाहारे
 चराचरम् । सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवतीत्येकवद्भावः यद्वा चरा-
 चरस्य स्थावरजङ्गमादेः त्वमीश्वरी प्रभुरसि । दैत्याभिभूते जगति प्रायो
 देवमानुषादीनामेव स्वाहास्वधादिनिवृत्तेः हननाच्चोपद्रुतत्वादेवमुक्तम् ।
 चरिष्णुजङ्गमचरं त्रसमिज्जं चराचरमित्यमरः । चरगतौ । पवाद्यच् ।
 चरिचलिपतिवदीनां द्वित्वमच्याक्चाभ्यासस्येत्यनेन द्वित्वम् । अभ्यास-
 स्यागागमश्चेति रूपम् । चराचरस्येति निर्धारणे षष्ठी । चराचरमध्ये
 त्वमेव स्वतन्त्रेतिरामाश्रमः ॥ २ ॥

अधारभूता जगतस्त्वमेका

महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।

अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-

दाप्यायते कृत्स्नलङ्घ्यवीर्ये ॥ म. ४ श्लो. ३

विश्वव्यापकतां दर्शयति—आधारभूतेति यतः हेतोः महीस्वरूपेण
 वसुधाकारेण स्थिता त्वमसि तस्माज्जगतः आधारभूता अधिकरणतां
 प्राप्ता त्वमेका व्यक्तिन्या । पृथ्वीरूपा त्वं त्वद्रूपा पृथ्वीत्यर्थः । अपा-
 मिति । अलङ्घ्यमनतिक्रमणीयं वीर्यं बलं यस्याः । एवं भूते देवि अपां
 जलानां स्वरूपेण स्थितया जलरूपेत्यर्थः । राहोः शिरोवदनार्थिका षष्ठी ।
 त्वया देव्या कृत्स्नमेतज्जगदाप्यायते तर्प्यते ओप्यायी वृद्धौ । आङ्गुपसर्ग-
 बलात्तर्पणार्थः । ण्यन्तात्कर्मणि लट् । यद्वा संवर्धयते इत्यर्थः ॥ ३ ॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या

विश्वस्य बीजं परमासि माया ।

सम्मोहितं देवि समस्तमेत-

त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥ म. ५ श्लो. ४

त्वमिति । विष्णुः परमात्मा तत्सम्बन्धिनी शक्तिः । देवात्मशक्ति
 स्वगुणैर्निगूढा । अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्य-
 कर्णः । स वेति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता समाहुरग्न्यं पुरुषं पुराणमिति ।
 न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते । परास्य
 शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया चेति श्रुतेः । अनन्त-

वीर्या । बहुप्रभावा त्रिगुणमयत्वात् । अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यै-
रुतविश्वदेवैरित्यादिश्रुतेः । तथा विश्वस्य प्रपञ्चस्य बीजं हेतुः । परमो-
त्कृष्टा माया विसदृशप्रतीतिभूता ज्ञानं त्वमसि । जालवानीयत इति
श्रुतेः । जालमत्रैन्द्रजालं तदुपलक्षितात्रमाया अविद्याशक्तिः । हे देवि
समस्तमेतत्प्रपञ्चजातं सम्मोहितं सम्यक् परमात्मविस्मृतिपूर्वकं सञ्जात-
मोहं । त्वयेति शेषः । तथा च श्रुतिः अनीशया शोचति मुह्यमानाः
अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः जघन्यमाना अपियंति मूढाः अन्धेनैवनीय-
माना यथान्धाः । आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन । नतं
विदाथय इमा जजाना नान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव नीहारेणप्रावृता जल्प्या
चासुतृप् उक्थशासश्चरन्तीति । बीजमिति । विशेषेण जायते अनेनेति
बीजम् । उपसर्गे च संज्ञायामितिङः । अन्येषामपीति दीर्घः । बीजन्तु
रेतसि । स्यादाधाने च तत्त्वे च हेतावङ्कुरकारणे इति हैमः । ननु अन्धं
तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते इति श्रुत्या मायोपासनायां तस्य
निषेधात् किं मे स्तुतिं कुर्येत्याशङ्क्यामाहुः-त्वं वै प्रसन्ना प्रसन्ना इति ।
प्रसन्ना आराधनेनप्रसादवती त्वं भवनं भुविः उत्पत्तिः भवतेः स्त्रियां इक्कृ-
ष्यादिभ्य इति इक्प्रत्ययः अचिष्णुधातुभ्रुवामित्युवङ् भुवेरुत्पत्तेः मोचनं
मुक्तिः मोक्षः तस्य हेतुः कारणं त्वं वै प्रसिद्धमेतत् । यथा वक्ष्यति तव
ज्ञानं भविष्यतीति । किञ्च अविद्यारूपा त्वं बन्धं सम्पादयसि विद्यारूपा
प्रसन्ना तत्त्वतो ज्ञाता त्वं मुक्तिहेतुः । विद्ययामृतमश्नुते इति श्रुतेः । तमेव
विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽज्जनायेति श्रुतेः । यद्वा भुवि
पृथिव्यां मुक्तेर्हेतुः कारणं विद्यारूपेणेत्यर्थः ॥ ४ ॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः

स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्

का ते स्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः ॥ म. ६ श्लो. ५

विद्या इति । विदन्त्याभिरिति विद्याः । विद ज्ञाने । संज्ञायां
समजनिषदनिपतमनविदषुञ्जीङ्भृजिणः इति करणे क्विबन्तादाप् ।
समस्ता अष्टादशापि । तथाचोक्तम् अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा
न्यायविस्तरः । धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्याह्येताश्चतुर्दश । आयुर्वेदोऽधुनु-

वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः । अथंशास्त्रं चतुर्थं च विद्या ह्यष्टादशैव
 तादृति । एता विद्यास्तव भेदाः त्वत्प्रकाशास्त्वदंशा इति यावत् । अत-
 स्तव विद्यानां च पार्थक्याभावादैक्ये पर्यवसिते का ते स्तुतिः प्रवर्तता-
 मिति शेषः न कापीत्यर्थः । कीदृशीस्तुतिः स्तव्यपरापरोक्तिः । स्तवनं
 स्तवः । षट्श्रु स्तुतौ । ऋदोरप् । स्तवमहति स्तव्यः । दण्डादिभ्यो यः ।
 अचोयत्तितु नेदं सिद्धयति । तद्बाधकेन एतस्त्विति सूत्रेण क्यपि स्तुत्य
 एवरूपप्रसङ्गात् । स्तव्ये स्तवाहं वस्तुनि विषये परापरे उत्कृष्टनिकृष्टे
 उक्ती यस्यां सा । स्तुतिस्तुत्योः पृथक्त्वे खलुः स्तुतिः प्रवर्तते लोके अतः
 विद्यारूपा सरस्वतीरूपा च त्वमिति स्तुतिर्न घटते इति भावः । त्वं
 ब्राह्मी । त्वं वैष्णवी । त्वं माहेश्वरी । त्वं नारसिंही । त्वं वाराही । त्व-
 मिन्द्राणी । शिवदूती त्वमित्याद्यपि स्तुतिरेकत्वाच्च घटत इत्याह-स्त्रिय
 इति । समस्ताः सर्वाः सकलाभिश्चतुष्पष्टिभिः शिवागमवात्स्यायनसूत्र-
 प्रसिद्धाभिः सहिताः युक्ताः । वा तत्तद्देवांशैः सहिताः स्त्रियः ब्राह्मद्या-
 द्याश्च जगत्सु तव भेदाः अंशाः इति का ते स्तुतिर्न कापीत्यर्थः । स्तव्यं
 स्तुतेः परं पृथक् स्तव्याच्च स्तुतिः परापृथगिति पार्थक्यनिबन्धना स्तुतिर्हि
 लोके प्रवर्तते । अत्र तु ब्राह्मद्यादिभ्य स्त्रीभ्यश्च देव्याः पार्थक्याभावा-
 दैकात्म्यतया स्तव्यस्तवयोरेकत्वे स्तुतिर्न घटते । आरोपि गुणवर्णनं
 स्तुतिः । गुणाधिकरणकमेकमेवेति स्तुतेरप्रसवोक्तिरिति भावः । एकया
 अम्बया मातृभावमापन्नया त्वया एतज्जगत्पूरितमाप्यायितम् । त्वमेव
 जगज्जगत्त्वमिति का ते स्तुतिर्न कापीत्यर्थः । स्तुतेर्भेदनिबन्धनधत्वात् । यद्वा
 न कापि तेस्तुतिरित्यत्र हेतुः । स्तव्येति मुख्यगौणसङ्कीर्तनं हि स्तुतिरित्य-
 मिधीयते । न च सर्वव्यापिन्यास्ते गौणी शक्तिः मुख्यगुणकीर्तनं चानुवाद
 एवेति का ते स्तुतिरिति भावः । यद्वा । ततः स्तुतिरपि त्वमेव कुत-
 इत्याह-स्तव्यपरापरोक्तिः । स्तव्ये स्तवाहं पराख्या उक्तिर्वाक् अपरा
 अन्या च पश्यन्ती मध्यमा वैखरीरूपा उक्तिर्वाक् या सापि यतस्तवमेव ।
 यदाहुर्योगज्ञाः-चितिः प्रत्यवमर्शार्था परावाक् सुरसोदिता । सैषा सार-
 तया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिन इति । एषा परा सूक्ष्मा । तथा चागमे ।
 सूक्ष्मा कुण्डलिनी मध्यं ज्योतिर्मात्रा ह्यणीयसी । येयं विमर्शरूपैव
 परमार्थचमत्कृतिः । सैव सारं पदार्थानां परावागमिधीयते । नादाख्या
 सर्वभूतेषु जीवरूपेण संस्थिता । अनादिनिधना सैव सूक्ष्मा वागनपायिनी ।
 अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् । विवर्ततः शब्दभावेन प्रक्रिया
 जगतोत्पत्तः । वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा स्मृतिगोचरा । द्योतिकार्यस्य

पश्यन्ती सूक्ष्मा ब्रह्मेवकेवलमिति । इत्यादिक्रमेण सर्वत्रसदोदितायाः सूक्ष्मायाः परायाः शब्दब्रह्मणः शक्तेर्बहिर्हन्मिषन्त्याः प्रथमोविवर्त्तः पश्यन्ती नाम । तथा चोक्तम्-अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतः संहतक्रमा । स्वरूपज्योतिरेवान्तः सूक्ष्मा वागनपायिनीति । अस्यार्थः अविभागा स्थानकरणप्रयत्नप्रकारेण वर्णानां विभागहीना । अत एव संहतक्रमा । तथैवान्तःस्वरूपज्योतिः स्वयं प्रकाशा स्वयमात्मानो रूपं ज्योतिश्च सर्वत्रहि सर्वविधायिनी शक्तिरेवेति । वान्तः सूक्ष्मबीजादंकुरमिव बहिर्हन्मिषन्ती किञ्चिदुच्छूना परायामध्यमायाश्चावस्थान्तरस्था पश्यन्तीति पश्यन्तीत्युच्यते । ततः परन्तु-अन्तःसङ्कल्परूपाया क्रमरूपानुपातिनी । प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्त्तते । एतत्कथयामीति विमर्शरूपा अन्तः सङ्कल्परूपा प्राणवृत्तिमतिक्रम्य श्रोत्रग्राह्यवर्णाभिव्यक्तिरहिता-क्रमरूपानुपातिनी मानसिकवर्णोच्चारक्रमेण द्वितीयोविवर्त्तो मध्यमारूपो जायते । मध्यमा किल द्वयोर्वाग्विवर्त्तयोः पश्यन्ती वैखरीसंज्ञयोर्मध्ये वर्तमाना मध्यमेत्युच्यते । तदनन्तरञ्च स्थानेषुविवृते वायी कृतवर्णपरिग्रहा । वैखरी वाक्प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना इति लक्षणात्स्थानकरणप्रयत्नक्रमव्यज्यमानः श्रोत्रग्राह्यदुन्दुभिबीणादिनादपरिचयो गद्गदाव्यक्ताकारादिविलाससमुच्चयपदवाक्यात्मकतृतीयो विवर्त्तो वैखरीत्युच्यते । विशिष्टं खमाकाशं मुखरूपं राति गृह्णातीति विखरः प्राणवायुसञ्चारविशिष्टोवर्णोच्चारः तेनाभिव्यक्तोवैखरीति । विखरे शरीरे भवा वैखरीति केचित् । एवं परस्वभावापि भवती शब्दभावेनापि वर्त्तते इति स्तुतिरपीति भावः ॥ ५ ॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ।

त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ म. ७ श्लो. ६

सर्वभूतेति । इदानीं भगवत्याः सर्वमयत्वेऽपि स्तुति समर्थयति भूतशब्दः समपर्यायः । सर्वेण विश्वेन समा चैतन्यरूपेत्यर्थः । युक्ते क्षमादावृते भूतं प्राण्यतीते समे त्रिष्वित्यमरः । यदेति चेदर्थं सर्वभूता ब्रह्मरूपा निर्गुणा त्वं देवी ईश्वरी यदा माया नियन्त्री ईश्वरभावमापन्ना चेत्तदा स्तुता वर्णितगुणा वेदैरस्माभिश्च । अयं भावः । माया अविद्यात्मिका त्वमित्येकाविधा । परमात्मरूपात्वमिति च द्वितीयाविधा । निर्गुणोऽपि परमात्मा मायानियन्तृतया सिसृक्षावशादाविष्कृतेश्वरभाव-ईश्वर इति प्रथमविधानानुकूलागुणात्मापराविधा । तत्र च मायाविद्या

न स्तुतिसहेति । अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते इति श्रुत्या
 तदुपासनाविधानत् । परमात्माप्यशक्यस्तुतिः यतो वाचो निवर्तन्ते
 अप्राप्यमनसा सहेति । एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्त-
 रात्मा । कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलोनिर्गुणश्चेति ।
 इत्यादिबहुभिः श्रुतिभिर्दृज्यत्वं निर्गुणत्वं चात्र गुणावलम्बिन्याः स्तुते-
 रसम्भवाच्च । अथ सगुणोऽपि गुणेरनभिभूतः सर्वज्ञः सर्वेश्वरः सर्वनियन्ता
 सर्वोपास्यः सर्वकर्मफलदाता समस्तकल्याणगुणनिलयः सच्चिदानन्दरूपः
 ईश्वर इति तृतीयाविधा यद्यवलम्ब्यते तदा तु स्तुतिः सुकरा । यः
 सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वस्याधिपतिः सोऽकामयत बहु स्याम् । स ऐक्षत । यो
 ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै तंह देवमात्मबुद्धि-
 प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये । इत्यादिश्रुतिभिर्जीवेश्वरभेदपुरःसरं
 सेव्यसेवकविधया भक्तियोगकथनात्तमुत्तारः पूर्वमिति स्तुत्या स्तुते-
 रप्यनुज्ञानाच्च । तद्य इयं वीणायां गायन्त्येतं ते गायन्ति तस्याते सन्धन
 सनय इति श्रुत्या च लौकिकेष्वपि गानेषु ईश्वरस्यैव गीयमानत्वं निर्देशात्
 श्रुत्यन्तरं च, यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति
 यत्प्रयन्त्यभिर्संविशन्ति तज्जिज्ञासस्व ब्रह्मेति श्रुतिः । जगत्कर्तृत्वादिगुणं
 स्तुत्युपयोगि प्रतिपादयति । किञ्च भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः
 भीषास्मादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्द्धावात पञ्चमः । तस्य वाक् तन्तिर्नामानि
 दामानि तदस्येदं घाचातन्त्यानामभिर्दामभिः सर्वं प्सितमिति श्रुतिस्तु
 ईश्वरनियन्तृत्वमाह । तदीश्वरभावमापन्ना त्वं स्तुतास्माभिरित्यर्थः ।
 कीदृशी त्वम् सुष्ठु ऋज्यतेऽस्मिन्निति स्वर्गः । सुखविशेषः । ऋजगति-
 स्थानार्जनोपाजनेषु । हलश्चेति घञ् । न्यङ् क्वादित्वात्कुत्वम् । मोचनं
 मुक्तिरपवर्गः । मुचेः स्त्रियां क्तिन् । स्वर्गसहिता मुक्तिः स्वर्गमुक्तिः
 शाकपाथिवादिः । द्वन्द्वस्तु न तथात्वे द्वन्द्वधीति मुक्तेः पूर्वनिपातप्रसङ्गात्
 अभ्याहितत्वाच्च । स्वर्गसहितां मुक्तिं प्रकर्षेण ददाति तच्छीला । सुप्य-
 जातो णिनिस्ताच्छील्ये । इति ददातेणिनिप्रत्ययः । ऋन्नेभ्य इति ङीप् ।
 नचोपसर्गं भिन्न एव सुपि णिनिरिति व्याख्यानादुत्प्रतिभ्यामाङि सत्ते-
 रूपसंख्यानमिति वार्तिकपरिकल्पनाद्धरिदत्तमाधवादिभिरपि तथैवानुसृत-
 त्वाच्च न सोपसर्गाणिनिप्रत्ययेन भाव्यमिति वाच्यम् । स्वकपोलकल्पित-
 वृत्तिकृद्वाक्तिकस्य भाष्यविरुद्धेन निर्मूलत्वात् । अधृष्यश्चाधिगम्यश्च स
 बभूवोपजीविनाम् । न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः । पतत्यधो धामविसारि
 सर्वतः । न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिरित्यादिषु कालिदासमाधभार-

विप्रभृतिमहाकविप्रयोगेषु उपसर्गेष्वुपपदेणिनिप्रत्ययदर्शनाच्चेति दिक् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीति दाक्षिणात्यपाठः । अत्र भुज्यते इति भुक्तिर्भोगः ।
शेषं पूर्ववत् । एवं रूपा यदास्माभिस्त्वं स्तुतासि तदा तव स्तुतये पर-
मोक्तयः अधिकोक्तयः का वा भवन्तु न कापीत्यर्थः । यद्वा यदा त्वं परमा
उत्कृष्टा परब्रह्मस्वरूपत्वादीश्वरभावेऽखिलदेववन्द्यत्वाच्च तदा सर्वा अपि
उक्तयः वाचः भवत्याः स्तुतये स्तवनाय भवन्तु पर्यवस्यन्त्विति भावः
॥ ६ ॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ।

स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. ८ श्लो. ७

सर्वस्येति । सर्वस्य जनस्य जन्तोः हृदि स्वान्ते बोधनं बुद्धिरव-
सायः तद्रूपेण संस्थिते सम्यगवस्थिते । स्वर्गः सुखविशेषः । अपवर्जनम-
पवर्गो मोक्षः । वृज्जी वर्जने । घञ् । अपवर्गस्त्यागमोक्षयोरिति हैमः ।
स्वर्गापवर्गौ भोगमोक्षौ ददातीति स्वर्गापवर्गदा । अदन्तादृप् । आमन्त्रणे
हे देवि ईश्वरि प्रकाशशीले । नराभयनं यस्यासौ नारायणो विष्णुः तस्य
विष्णोरियं नारायणी विष्णुमायेत्यर्थः । तस्येदमित्यदन्तान्नारायण-
शब्दान्डीप् । यद्वा नराणां समूहोनारः । तस्य समूह इत्यण् । तदयनं
यस्य पूर्वपदादिति गत्वे नारायणशब्दो विष्णुवाची । तदा तु तस्येद-
मित्यण् तु न स्यात् वृद्धाच्छ इति प्रत्यये नारायणीयेति प्रसज्जेत् । अथ
नारायणो विष्णुरूढ्वर्कमा नारायण इति शब्दार्णवः । तस्येयं शक्तिर्ना-
रायणी तत्सम्बोधने ते तुभ्यं नमोऽस्तु । अत्र कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्ट-
लाभादिति कात्यायनीस्तुतो प्रकृतायां स्त्रिय इत्यादिना प्रकृता. कात्या-
पत्यांश्चा एवेति प्राक्प्रणीतत्वाद्यपि सर्वस्येत्यत आरभ्य नारायणीस्तुति-
रिदानीं प्रस्तूयतेऽपूर्वा तथापि कार्यभेदमात्रभिन्नत्वाद्वास्तुतस्तयो रैक्याद-
विरुद्धावगन्तव्येति प्राञ्चः । हृदीति ह्रियते विषयैरिति हृदयमन्तः
करणं । हरति विषयानिति वा । हहरणे । वृहोः कुक्कुक्चेति कयन्
दुगागमश्च । हृदय वक्षसि स्वान्ते बुक्वायामिति हैमचन्द्रः । हृदयस्य
पद्ममिति हृदादेशः । चित्तं तु चेतो हृदय स्वान्तं हन्मानसं मन इत्यमरः ।
पद्म इति सूत्रे प्रभृतिग्रहणस्य प्रकारार्थकत्वात्क्वचित्स्वादावापि हृदादेश
इत्याश्रित्य हृदिति पृथङ्निर्देशः । संस्थाधारेस्थितौमृताविति काश-
भेदः । जनलोके जगद्भेदे पृथग्जने इति हैमचन्द्रः ॥ ७ ॥

कलाकाष्ठादिरूपेण पारणामप्रदायिनि ।

विश्वस्योपरतो शक्ते नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. ९ श्लो. ८

कलाकाष्ठादिरूपेणेति । कलयतीति कला क्षणद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु लवद्वयमिति शास्त्रसिद्धः निमेषाः । त्रिंशन्निमेषाः कलाः । कलसंख्याने । पचाद्यच् । अदन्ताट्टाप् । काशतइतिकाष्ठाः । अष्टादश-निमेषाः । हनिकुषीति कथन् । काष्ठा दारुहरिद्रायां कालमानप्रकर्षयोः । स्याद्विशि स्थानमात्रे च काष्ठामाख्यातमिन्द्रिये इति विश्वः । आदिशब्दा-त्क्षणमुद्भूताहोरात्रपक्षमासत्वंयनसंवत्सरादयो गृह्यन्ते । कलादिसंवत्स-रान्तकालरूपेण विश्वस्याखिलस्य बाल्ययौवनवार्द्धकादिवयोऽवस्थाभेदैः परिणामं तात्त्विकमन्यथाभावं प्रकर्षेण ददाति एवंशीले देवि तथा विश्वस्य प्रपञ्चस्योपरतो अवसाने या सक्ता समर्था रुद्ररूपा तत्सम्बुद्धौ हे शक्ते । यद्वा । अवसानसमये या शक्तिः कालरात्रीति वासिष्ठादिग्रन्थ-प्रसिद्धा तद्रूपे हे देवि । शक्तिरायुधभेदे स्यादुत्साहादौ बले स्त्रियामिति हेमचन्द्रः । नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तिवति पूर्ववत् । काष्ठाकक्षादि-रूपेणेति दाक्षिणात्याः ॥ ८ ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरिनारायणि नमोस्तुते ॥ म. १० श्लो. ९

सर्वेति । मङ्गन्ति मङ्ग्यन्ते वा मङ्गलानि कल्याणानि । मणि समर्पणे । मङ्गेरलच् । मङ्गलं पुनः । कल्याणे मङ्गलो भौमे मङ्गला श्वेत-द्विविकेति हैमः । मङ्गलेभ्यो हिता मङ्गल्या रुचिरा । उपगवादिभ्यो यत् । मङ्गले साधुर्वा मङ्गल्या रुचिरा । तत्र साधुरिति यत् । अथवा सर्वेभ्यो मङ्गलेभ्यः मङ्गल्या रुचिरा । सर्वमङ्गलेति प्रसिद्धत्वादिति भावः । यथा देवीपुराणे । सर्वाणि हृदयस्थानि मङ्गलानि शुभानि च । ददाति चेच्छित्तान्तोके तेन सा सर्वमङ्गलेति । सर्वमङ्गला चासौ मङ्गल्या चेति कर्मधारयो वा पुंवत्कर्मधारयेति पुंवद्भावः । मङ्गल्यो रुचिरेऽश्वत्ये इति हेमचन्द्रः । तथा शिवे । शिवो रुद्रोऽस्ति भर्तृत्वेनेति शिवा । यद्वा शिवाः फेरवः सन्त्यस्याः गणत्वेनेति उभेयथाप्यर्श आद्यजन्ताट्टाप् । देवीपुराणे—शिवा मुक्तिः समाख्याता तत्प्रदत्वाच्छिवा स्मृतेति । तथा सर्वार्थसाधिके । सर्वेषामर्थानां प्रयोजनानां अर्थधर्मकाममोक्षाणां वा साधिके निष्पादयिनि । अर्थोभिधेयैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिष्वित्यमरः । देवीपुराणे—धर्मादीश्चिन्तितता यस्मात्सर्वलोकस्य यच्छति । अतो देवी समाख्याता लोके सर्वार्थसाधिकेति । तथा शरण्ये । शरणे रक्षितरि

साधुः शरण्या । तत्र साधुरिति यत् । शरणं गृहरक्षित्रोरित्यमरः । देवी-
पुराणे—विषाग्निभयघोरेषु शरण्यास्मरणाद्यतः । शरण्यातेन सा देवी
मुनिभिः परिकीर्तितेति । तथा त्र्यम्बके । त्रीणि अम्बकानि तेत्राणि
अस्याः त्र्यम्बका त्रिनेत्रेति यावत् । अम्बकं नयनं दृष्टिरिति हलायुधः ।
देवीपुराणे-सोमसूर्यानलाक्षित्वात्त्र्यम्बका सा स्मृता बुधैरिति । तथा
गौरीति । गौरो गौरवर्णोऽस्याः । गुरी उद्यमने । ऋज्जेन्द्रेति रत्नन्तोनि-
पातः । गौरादित्वाण्डोष् । गौरीत्यसञ्ज्ञातरजः कन्याशङ्करभार्थयोरिति
विश्वः । देवीपुराणे—योगाग्निदग्धदेहा या कन्याजाता हिमालये ।
शङ्खन्दुकुन्दधवला ततो गौरीति सा स्मृतेति । तथा नारायणि । नारा-
यणो विष्णुस्तस्य पतिर्न लक्ष्मीरूपे । नारायणीशब्दनिवृत्त्यर्थं देवी-
पुराणे—जलायना निराधारा समुद्रशयनापि वा । नारायणीसमाख्याता
नरनारीप्रवर्तकेति । ते तुभ्यं नमोऽस्तु । अस्य श्लोकस्य सप्ता वृत्तिपाठे
महत्फलमिति वृद्धाः ६ ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूतसनातनि ।

गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. ११ श्लो. १०

सृष्टीति । सर्जनं सृष्टिः । सृज विसर्गे । स्त्रियाक्तिन् । व्रश्चेतिषः ।
ष्टुनाष्टुः । स्थानं स्थितिः पालनम् । तिष्ठतेः क्तिन् । द्यतिस्यनीतीत्वम् ।
स्थितिः स्थाने च सीम्निचेतिहैमः । विनाशः प्रलयः तेषां कार्याणां याः
कारणभूताः शक्तयः स्त्रीरूपाः शक्तयः अधिष्ठातृ देवताः तद्भूते तत्स्व-
रूपे । त्रिशक्तयो यथा वराहपुराणे या सा त्रिशक्तिरुद्दिष्टा शिवेन पर-
मात्मना । तत्र सृष्टिः पुराप्रोक्ता श्वेतवर्णस्वरूपिणी । एकाक्षरेतिविख्याता
सर्वाक्षरमयी शुभा । वागीशीति समाख्याता सैव देवी सरस्वतीतृपद्मस्य
सा वैष्णवीविशालाक्षी रक्तवर्णा सुरूपिणी । अपरा सा समाख्याता रौद्री-
रुद्रपरायणा । सिता रक्ता तथा कृष्णा त्रिमूर्तित्वंजगाम ह । या सा
ब्राह्मी शुभा मूर्तिस्तया सृजति वै प्रजाः । सौम्यरूपेण सुश्रोणि ब्रह्मासृष्टि-
विधानतः । यासा रक्तेन वर्णेन सुरूपा तनुमध्यमा । शङ्खचक्रधरा देवी
वैष्णवी सा कला स्मृता । सा पाति सकलं विश्वं विष्णुमायेति कीर्त्यते ।
या सा कृष्णेन वर्णेन रौद्री मूर्तिस्त्रिशूलिनी । दंष्ट्रा करालिनी देवी सा
संहरति वै जगत् । एषा त्रिशक्तिरुद्दिष्टा नयसिद्धान्तगामिनो इति
धरणीं प्रतिवराहभगवतो वाक्यम् । अथवा सृष्ट्यादिशक्तीनां भूतः
सम्पत्तद्रूपे । पुनः कीदृशे सनातनि नित्ये । सनेत्यव्ययं नित्याद्यं कम् ।

सनाभवासनातना नित्येत्यर्थः । सनात् सनत्सना नित्ये सर्वदेति सदेति
चेत्यभिधानात् । सनेत्यव्ययात्, सायंचिरंप्राह्मेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्यु लौतु-
ट्च । टिट्त्वान्डीपि रूपम् । शाश्वतस्तु ध्रुवो नित्यसदातनसनातना
इत्यमरः । तथा गुणाश्रये गुणाः सत्त्वादयः तेषामाश्रये आश्रयणीये ।
साम्यावस्थारूपत्वात् । गुणाः आश्रयोयस्या वा गुणेषु वर्तमानत्वात् ।
अथवा श्रयणं श्रयः । श्रिञ् सेवायाम् । एरच् । न श्रयः गुणानामाश्रयः ।
संसंवन्ननं यस्याः सा गुणाश्रया चिद्रूपतयानिर्गुणत्वादिति भावः । तथा
गुणमये इतिगौडाः । मयतेगच्छतिलोकानितिमया । मयगतौ । पचाद्यच् ।
अदन्तत्वाद्वाप् । गुणैर्मायागुणैर्यतिमतीत्यर्थः । गुणमये गुणत्रयस्वरूपे वा ।
मयवन्ताद्यद्यपि ङीप् प्राप्नोति तथापि बाहुलकाद्वाप् । तथा नारायणि
ते तुभ्यं नमोऽस्त्विति प्रार्थनायां लोट् । गुणमयिइति दाक्षिणात्यपाठः
॥ १० ॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।

सर्वस्यार्त्तिहरेदेवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १२ श्लो. ११

शरणागतेति । शरणं रक्षितारमागताः प्राप्ताः प्राणादिभ्येतद्रक्षण-
समर्थं स्वरक्षणार्थमागताः । शरणंगृहरक्षितोरित्यमरः । दीयन्ते क्षीयन्ते
अन्नाद्यभावेनेति दीना बुभुक्षिता रङ्गाः । दीङ्क्षये । इणषिञ्जिदीङ्षप-
विभ्योनगिति नक् आर्ताः रोगाभिभूताः पीडिता इति । तेषां परित्राणं
परितो रक्षणं परायणमभीष्टं यस्याः सा । तत्सम्बोधने । शरणागत-
सहिताः दीनाः शरणागत दीनाः । तत्सहिता आर्ता इति विग्रहः ।
शाकपार्थिवादिः । न चद्वन्द्वेन निर्वाहः । अल्पाक्षरेण दीनार्तयोः पूर्व-
निपातापत्तेः परायणे ऽत्यभीष्टे स्यात्तत्पराश्रययोरपीति हैमः । परंमुख्यं
अयनमुद्देश्यं यस्या इति वा । तथा न केवलं शरणागतदीनार्त्तानामेव
परित्राणं तव कृत्यमपि तु सर्वस्य लोकस्य अर्त्तिं पीडां हरतीत्यातिहरा ।
हरतेरनुद्यमने अच् तथा देवि प्रकाशशीले । नारायणि लक्ष्मीस्वरूपे ते
तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ ११ ॥

रक्तबीजवधोक्ताः ब्राह्मणादिशक्तीरतिदिशन्तः कौशिकीं

क्रमशः स्तुवन्ति हंसेत्यादिनवभिःश्लोकैः ।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणो रूपधारिणि ।

कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १३ श्लो. १२

हंसयुक्तेति । श्वेतगरुडः पक्षिविशेषः युक्तेविमाने देवयानेतिष्ठ-
तीति हंसयुक्तविमानस्था । सुपिस्थ इति कः । सम्बुद्धौचेत्याप एकारः ।
तथा ब्रह्मवेदमणतिकीर्तयति इति ब्रह्माणी ब्राह्मी शक्तिः । तस्याः रूपते
स्तूयते इति रूपमाकारः । रु शब्दे । स्वर्णशिल्पेतिप्रत्ययोदीर्घश्च-
निपातः । रोपयति विमोहयतीति वा रूपम् । रूप विमोहने । पचाद्यच् ।
आकारे चैव सोन्दर्ये रूपं तु श्लोकशब्दयोरिति हैमः । ब्रह्माणीरूपधरति
धारयतीति वा । सुप्यजातोणिनिस्ताच्छीत्ये इति णिनिः । तत्सम्बोधने
तथा कौशाम्भः क्षरिके । कुशानां दर्भाणामिदं कौशं दर्भसम्बन्धि तस्येद-
मित्यण् । अम्भसां जलानां क्षरणं क्षरः । सेचनम् । क्षर संचलने ।
घञर्थकः । क्षरं करोतीतिक्षरिका । तत्करोतीति ण्यन्तात् ण्वुल्तुचाविति
ण्वुलि अदन्तत्वास्त्रियांटापि प्रत्ययस्थादितीत्वेरूपम् । शत्रुषु । तद्वार्योद्यो
वधार्थं कुशोदकप्रक्षेपणं कमण्डलुजल प्रक्षेपमात्रं कुर्वतीत्यर्थः । यदुक्तं पूर्वत्र
कमण्डलुजलक्षेपेत्यादि । क्षरतेस्तु कर्तरि ण्वुलि क्षारिकेति प्रसज्येत ।
तत्करोतीति ण्यन्तात्क्षरशब्दात्तु क्षकाराकारस्योपधाभावादत उपधाया
इति सूत्रेण वृद्धेः प्रसङ्ग एव नास्तीतिभावः । एवं च क्षरं करोतीति
क्षरयति आसेचयतीत्यर्थः । तत्करोतीति ण्यन्तस्येदं रूपम् । कुशो रामसुते
दर्भं पापिष्ठे योक्त्रमत्तयोरिति हैमः । हे नारायणि लक्ष्मीरूपे ते तुभ्यं
नमोऽस्तु ॥ १२ ॥

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।

माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १४ श्लो. १३

त्रिशूलेति । महेश्वरो रुद्रस्तस्येयं शक्तिर्देवता माहेश्वरी । तस्याः
स्वरूपमाकारः । तेन शूलमायुधं चन्द्रः चन्द्रेकदेशः कलारूपः । आहन्ती-
त्यहिः सर्पः । आङ् पूर्वोहनः । आङ्घ्रिहनि भ्यां ह्रस्वश्चेति इन्डित् ।
तेषां द्वन्द्वे अल्पाक्षरत्वाद्वन्द्वेघीत्यतश्च चन्द्राहिशब्दयोः पूर्वनिपातः,
बहुवचनियमात् । तेषां धराधारणकर्त्रीत्यर्थः । धृञ् धारणे अस्मात्पचाद्य-
जन्तादृापि रूपम् । तत्सम्बुद्धावापएकारः । तथा हे महावृषभवाहिनि ।
वर्षति कामानिति वृषः धर्मः । वृषु सेचने इगुपधेतिकः । वृषः स्याद्वासके
धर्मं सौरभेये च शुक्ले इति कोशान्तरम् । महान्नासौवृषभश्च महावृषभः
धर्मरूपोवृषभः । सोस्त्यस्यावाहनत्वेनेतिमहावृषभ वाहिनी । उह्यते
अनेनेति वा । वह प्रापणे । कर्मणि करणे वा घञ् । वाहो भुजे पुमान्मान-
भेदाश्चवृषवायुषु इति हैमचन्द्रः । अथवा वृषभं वाहयति तच्छीला

वृषभवाहिनी । वहतेहेतुमण्यन्तात्सुष्यजाताविति ताच्छील्ये णिनि ।
 ऋन्नेभ्योऽङीप् । महती चासौवृषभवाहिनी च महावृषभवाहिनी ।
 पुंवत्कर्मधारयेति पुंवद्भावः । आन्महत इत्यात्वम् । हे नारायण परमा-
 त्मशक्ते ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ १३ ॥

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।

कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १५ श्लो. १४

मयूरेति । मयूराः केकिनः । कोकनं कुक् । कुक् आदाने । सम्पदादि-
 त्वाद्भावेविवप् । कुटतीति कुटः । कुट कौटिल्ये । इगुपधेतिकः । कुका
 कुटः कर्तृकरणे कृता बहुलमिति समासः । कुक्कुटस्ताम्रचूडः प्रसिद्धः ।
 ताभ्यां वृते तेवृते आवृतेति वा । पुराणेषु कार्तिकेयस्य वाहनार्थं मयूराः
 युद्धचातुर्यदिदृक्षया सहचारिणः कुक्कुटाश्च वर्णिताः । अत्रापि कौमार्याः
 कार्तिकेयशक्तित्वादेवमुक्तम् । तथा च महाभारते वनपर्वणि एकोनत्रिंश-
 दधिकद्विंशततमेऽध्याये-कुक्कुटश्चाग्निना दत्तस्तस्य केतुरलंकृतः । रथे
 समुच्छिन्नोभातिकालग्निरिषलोहित इति । पुनस्तत्रैव च तस्य स्तुती ।
 त्वं क्रीडासे षण्मुखकुक्कुटेन मथेष्टनानाविधकामरूपीति । वृत्तौ निश्चये-
 नाङ्गीकृतौ वाहनक्रीडाहेतोः मयूरकुक्कुटौ । यया इति विग्रहे सम्बुद्धौ-
 रूपम् । वाहिताभ्यादिष्विति वृत्तस्यपूर्वनिपातः । तथा महत्याः शक्तेः
 कासूनामायुधस्य महासामर्थ्ययुक्तस्यधरा धारणकर्त्री । तथा अनघे अघं
 पापं दुःखं च तद्रहिते । तथा कौमार्यरूपसंस्थानमाकृतिर्यस्याः । संस्थानं
 त्वाकृतिमृताविति हैमः । तथा नारे नरसमूहे अयनि कृतस्थाना
 अहङ्काराभिष्ठातृत्वाद्गुह्यस्य तच्छक्तिरपि तथा व्यपदिष्टा । पूर्वपदात्संज्ञा-
 यामिति णत्वम् हि नारायणि अहङ्काराभिष्ठात्रि ते तुभ्यं नमोऽस्तु । संस्था
 धारेऽस्थितौ मृतावित्यमरः । नागेशाद्यास्तु-मायूरं कुक्कुटं तत्पिच्छं-
 तेनयुते । कुक्कुटः ककुभे पिच्छे पुत्रे च चरणायुधे इति मेदिनी । मयूर-
 पिच्छध्वजवतीत्याह । तथा च ध्वजेन शिखिवर्हाणामुच्छिन्नेन समावृतेति ।
 हरिवंशोक्तेरित्याह । अद्यतनमेदिनीहरिवंशादिध्वन्वेषणे उक्तवाक्ययो-
 रलाभ इति विद्वद्भिर्ज्ञेयमिति ॥ १४ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।

प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १६ श्लो. १५

शंखेति । शङ्खं पाञ्चजन्यं । चक्रं सुदर्शनम् । गदा कौमोदकी ।

शाङ्गं धनुः चतुर्णां द्वन्द्वे सेनाङ्गत्वादेकवद्भावे शङ्खचक्रगदा शाङ्गं गृहीतं
शङ्खचक्रगदाशाङ्गं यया सा शङ्खचक्रगदाशाङ्गगृहीता । प्रहरणार्थभ्यः
परे निष्ठासप्तम्याविति गृहीतशब्दस्य पर निपातः । नन्वस्या-षड्भुजत्वेन
वर्णनत्वादायुधान्तरमपि शर खड्गरूपं पुराणान्तरवर्णितमप्यस्तीत्या-
शङ्कायामाह—परमायुधे इति । परा उत्कृष्टा मा शोभा ययोस्ते परमे
शरखड्गाख्ये आयुधे प्रहरणे यस्याः सा परमायुधा तत्सम्बुद्धौ । यच्च
वामनीये बाहुभ्यां गरुडारूढा शङ्खचक्रगदासिनी । शाङ्गबाणधराजाता
वैष्णवीरूपशालिनीति । बाहुभ्यामिति । कौशिकया बाहुभ्यां जातेति
शेषः । ततश्च शङ्खचक्रगदाशाङ्गगृहीताचासौ परमायुधा चेति गृहीत-
परमायुधा । पुंवत्कर्मधारयेति पुवद्भावाः । तथा विष्णोरियं वैष्णवी ।
वैष्णवीरूपं प्रयोगो यस्यास्तत्सम्बोधने । वैष्णवीरूपे वैष्णवीपदवाच्ये ।
हे नारायणि । नारायणः परमात्मा तस्मैयं प्राप्तिसाधनभूता नारायणी
ब्रह्मविद्या तत्स्वरूपे देवि ते तुभ्यं नमः । त्वं प्रसीद । प्रसन्ना भवेत्यन्वयः ।
सदेलोणमध्यम पुरुषैकवचने पाद्माध्वेति सीदादेशः ॥ १५ ॥

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे ।

वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १७ श्लो. १६

गृहीतेति । गृहीतमुग्रं रौद्रं महाचक्रं सुदर्शनाख्यमायुधं ययात-
त्सम्बुद्धौ गृहीतोग्रमहाचक्रे । तथा दृश्यते अनयोति दंष्ट्रा विषाणं । दंष्ट्रा
दशने । दाम्नीत्यादिना धृन् । तथा उद्धृता ऊर्ध्वं धृता, वसु द्रव्यं धारय-
तीति वसुन्धरा पृथिवी यया तत्सम्बुद्धौ हे दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरे । धृञ् धारण-
ण्यन्तः । संज्ञायां भृत्ञीति खच् । खचि ह्रस्वः । वसुधोर्वी वसुन्धरेत्य-
मरः । तथा वराहस्यसूकरावतारस्य विष्णोः रूपं आकारोऽस्त्यस्या इति
वराहरूपिणी । अतश्च नानावितीन्नाहन्नेभ्यो ङीप् । तथा शिवे सर्व-
मङ्गले । तथा हे नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ १६ ॥

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे ।

त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १८ श्लो. १७

नृसिंहरूपेणेति । उग्रेण उत्कटेन ना पुरुषः सिंह इव नृसिंहः ।
उपमितमितिसमासः । पुरुषसिंह सार्धकायत्वान्नृसिंहः विष्णोरवतार-
विशेषस्तस्य रूपेणाकारेण दैत्यान् हन्तुं कृतः उद्यमः । उद्योगो यया सा
तथाभूते हे देवि । तथा त्रयोलोकास्त्रैलोक्यम् । चतुर्वर्णादित्वात्स्वार्थं

प्यञ् । तस्य त्राणं रक्षणं । त्रैङ् पालने । नुदविदोन्दवेति निष्ठानत्वम् ।
त्रैलोक्यत्राणाय सहिते हिताभिः इष्टाभ्युदयवांछाशीलाभिः सह वर्तमाने ।
यद्वा हितैः इष्टाभ्युदयवांछाशीलैर्दैवैः सह वर्तमाने । हितं पथे गते धृते
इति हैमः । हे नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ १७ ॥

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।

वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. १९ श्लो. १८
किरीटिनीति । किरति कीर्यते अनेनेति वा किरीटं मुकुटं
तदस्त्यस्यास्तत्सम्बोधने । हे किरीटिनि मुकुटधारिणि । कृ विक्षेपे ।
कृतकृपेः कीटन् । मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकमित्यमरः । तथा महद्वज्रमायुधं
यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे महावज्रे । वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं
पविरित्यमरः । सहस्रं नयनानि समाहृतानीति सहस्रनयनम् । पात्रा-
दित्वान्डीबिन्धेधः । उच्चैर्ज्वलति प्रकाशते इत्युज्ज्वला दीप्ता ज्वल
दीप्तौ । पचाद्यच् । नतुज्वलतीतिणः । तत्रानुपसर्गादित्यनुवृत्तेः । सहस्र-
नयनेन उज्ज्वला इति विग्रहे तृतीया समासः । सहस्रनयनेनोज्ज्वला
प्रकाशत इत्यर्थः । उज्ज्वलस्तु विकाशिनि । शृङ्गारविषदेदीप्ते इति
हैमः । तथा वृत्रप्राणहरे । वृणोतीति । वृत्रवरणे । बाहुकात्क्वः । यद्वा ।
स्वरक्षणार्थंवृत्तास्त्रायते इति वृत्रः त्वष्टुः पुत्रोऽसुरः । त्रैङ् आतोऽनुप-
सर्गकः पृषोदरादिः । वृत्रो रिपो घने च्चान्ते शौलभेदे च दानवे इति
मेदिनी । वृत्रस्य प्राणान्हरतीति वृत्रप्राणहरा । हरतेरनुद्यमनेश्च ।
चोऽनुक्तसमुच्चयार्थः । तेन पाकान्तकेत्याद ज्ञेयम् । तथा ऐन्द्रि इन्द्र
शक्ते । तथा नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ १८ ॥

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।

घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. २० श्लो. १९

शिवदूतीति । शिवंदूतयति दूतं करोतीति शिवदूतीकौशिकीदेहो-
द्भवा शक्तिः । तत्करोतीति । ण्यन्ताद्दूतधातोः कर्मण्यणन्तान्डीप् ।
तस्याः स्वरूपेण आकारेण स्वभावेन वा करणेन हता दैत्या एव महा-
बलयो महान्ति पूजोपकरणानि बलित्वेन हता रक्तबीजाद्यावा यया सा
तत्सम्बुद्धौ हतदैत्यमहाबले । हतं दैत्यानां महाबलं यया सेति वा ।
करोपहारयोः पुंसि बलं प्राण्यङ्गजे स्त्रियामित्यभिधानात् । घोरं भयानकं
रूपमाकारो यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे घोररूपे । तथा महान् दीर्घः

आरावणमारावः शब्दो यस्याः अट्टहासकारित्वात्तत्सम्बुद्धौ हे महारावे हे नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ १६ ॥

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।

चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. २१ श्लो. २०

दंष्ट्रेति । दंष्ट्राभिः 'दाढ' इति भाषया प्रसिद्धाभिः करालं दन्तुरं रौद्रं वा वदनं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे दंष्ट्राकरालवदने । करालो रौद्र तुङ्गोरुघुणतैलेषु दन्तुरे । करालं तु कठोरे स्यादिति हैमः । तथा शिरसां माला स्रक् विशिष्टं भूषणं यस्याः सा तत्सम्बुद्धौ हे शिरोमालाविभूषणे । तथा हे चामुण्डे कालि । चामुण्डेति काल्याः संज्ञा । तथा हे मुण्डमथने । मथनातीति । मथे विलोडनेभ्वादिः नन्वादित्वात्ल्युः । मुण्डस्य-मथना मुण्डमथना तत्सम्बुद्धौ । न च 'मुण्डमथने' इत्युक्तत्वाच्चामुण्डापदे न पुनरुक्तिः । वा स्तुतो पीनरुक्तेरदोषावहः । हे नारायणि ते तुभ्यं नमोऽस्तुते ॥ २० ॥

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।

महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ म. २२ श्लो. २१

लक्ष्मीति । लक्षयति पश्यति नीतिज्ञमिति लक्ष्मीः विष्णुपत्नी सम्पच्च । लक्ष दर्शनाङ्कनयोः । लक्षेमुंद् चेति ईप्रत्ययस्तस्य च मुद् । लक्ष्मीः सम्पत्तिशोभयोः । ऋद्योषधी च पद्मायां चेति हैमः । तत्सम्बुद्धौ हे लक्ष्मि । अम्बार्थनद्योरिति ह्रस्वः । एतेन औणादिकप्रत्ययान्ततया सुलोपह्रस्वयोरभावं मन्यमानाः सम्बुद्धौ लक्ष्मीरिति पठन्त उपेक्षणीयाः । तथा लज्जनं लब्धा । कर्तव्याकरणनिमित्तमन्यतः स्वतो वा जनितलज्जनं सङ्कोचनं मनुष्यादिचित्तेषु लज्जेत्युच्यते । ओलस्जी व्रीडे । गुरोश्चहल इत्यप्रत्ययः । जश्त्वम् । स्त्रियामदन्ताट्टाप । हे लज्जे । तथा महाविद्ये । महद्ब्रह्म तत्प्राप्तिहेतुविद्या महाविद्या । उपनिषद्रूपेतियावत् । परमात्म-गोचरज्ञानरूपेति भावः । तथा श्रद्धे । श्रदित्यव्ययमास्तिक्ये वर्तते । श्रदास्तिक्यं तस्य धानं श्रद्धा । डुधात्र् धारणे । श्रच्छब्दस्योपसंख्यान-मित्युपसर्गसंज्ञा । आसश्चापसर्ग इति स्त्रियामङ् । तत्सम्बोधने श्रद्धे । तथा पुष्टिः, पोषणं पुष्टिरवयवोपचयः । पुरुषार्थसाधनसामर्थ्यं पुष्टिर्वा । स्वधा पितृहविर्दानमन्त्रः । पुष्टिसहिता स्वधा शाकपायिवादिः । हे पुष्टि-स्वधे । सम्बुद्धौ गुणाभावश्छान्दसइति वेति रामाश्रमः । तथा ध्रुवे ।

ध्रुवति स्थिरा भवतीति ध्रुवा । ध्रुव गतिस्थैर्ययोः । पचाद्यच् । कटादि-
त्वान्छित्वम् । स्थिरे नित्ये निश्चिते च ध्रुवं खेऽजस्रतर्कयोरिति हैमः ।
तथा महारात्रि । महतीरात्री महारात्रीन्न ह्यावसानरात्रिः । रात्रेश्चाजसौ
इति सूत्रेणङीबन्तो रात्रीणब्दः । अस्याः सम्बुद्धौ अम्बार्थं नद्यन्तत्वाद्-
ह्रस्वत्वम् । तथा महाविद्ये महती अविद्या महाविद्या । सा च अनित्या-
शुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरूपा । तस्या महत्त्वं सर्व-
जीवान्प्रति ब्रह्मस्वरूपावरणे सामर्थ्यस्य विद्यमानत्वात् । सर्वावरण-
सामर्थ्ययुक्तेति यावत् । हे नारायणि ते नमोऽस्तु ॥ २१ ॥

मेधे सरस्वति वरे भूति वाभ्रवि तामसि ।

नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तुते ॥ म. २३ श्लो. २२

मेधे इति । मेधते सङ्गच्छते सर्वमस्यामिति मेधा धारणावती
बुद्धिः । मेधृसङ्गमे । गुरोश्च हल इत्यः । अदन्तत्वाट्टाप् । सम्बोधने
मेधे । तथा सरस्वति । सरोऽस्त्यस्या इति सरस्वती भारती । सरस्
शब्दात्तदस्यास्तीति मतुप् । उगितश्चेतिङीप् । सरस्वती सरिङ्ङिदि
वाच्यापगायांस्त्रीरस्ते गोवाग्देवतयोरपीति हैमः । तथा वरे श्रेष्ठे ।
श्रेष्ठस्य विभूतिमत्त्वहेतुकत्वादिति भावः । यच्च स्मृतौ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं
भीमद्विजितमेव वा । तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽंशसम्भवमिति । तथा
हे भूति सत्त्वगुणस्वरूपे । कारणे कार्योपचारात्तद्योगाद्भूतिः । छान्दसो
गुणाभावः । अथवा संज्ञा पूर्वकविधेरनित्यत्वाद्भूतिरित्यत्रामन्त्रणे गुणा-
भावः । तथा वाभ्रवि । वभ्रुशब्दस्य कपिलवाचित्वात्कपिलस्य लोहित-
प्रधानत्वाज्जोहितवर्णस्य रज आत्मकतया राजसीत्यर्थः । वभ्रुः रजोगुण-
प्रधाना इयं वाभ्रवी । वभ्रुर्ना कपिले विष्णौ वभ्रुर्नकुलपिङ्गलाविति
विश्वः । तथा । तामसि निद्रारूपे तमोगुणरूपे वा । तथा नियते ।
नियम्यते अनयेति निर्यातः । क्तिन् । नियच्छतीति वा नियतिनिश्चयः ।
अवश्यम्भावो वा प्राचीनकर्मरूपत्वात् । यम उपरमे । क्तिच् । नियति-
नियमे दैवे इति विश्वः । तथा ईशे स्वामिनि । ईष्टे इतीद्या । ईश
ऐश्वर्यं । इगुपधेति कः । ऐश्वर्यवतीत्यर्थः । हे नारायणि त्वं प्रसीद प्रसन्ना
भव ते तुभ्यं नमोऽस्तु ॥ २२ ॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।

भवेभ्यस्नाहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ॥ म. २४ श्लो. २३

विश्वरूपतामैवाह—सर्वस्वरूपे इति । सर्वं व्यक्तिसमात्रं स्वं स्वकीयं रूपं यस्याः सा । सर्वं विश्वं स्वरूपं यस्याः सेति वा । तत्सम्बुद्धौ । तथा सर्वशे सर्वस्य प्रपञ्चजातस्य ईशे स्वामिति । तथा सर्वशक्तिसमन्विते सर्वाभिरखिलाभिः शक्तिभिः सामर्थ्यलक्षणाभिः ब्राह्मणादिमातृभिर्वा, युक्ते समन्विते । 'त्रा' इति पृथक् पदम् । हीति हेतावव्ययम् । हि यतः भयेभ्यः भयहेतुभ्यः शुम्भादिभ्यः नः अस्माकं । त्रायते इति त्रा । कर्तरि क्विप् । त्रायिका त्वं ततो देवि देवस्य पतिं पुनर्देवि विजिगीषाशीले । अथवा दुर्गं सङ्कटेऽपि देवि क्रीडाशीले अद्वितीयत्वात् । द्वितीयाद्वै भयं भवतीति श्रुतेः । ते तुभ्यं नमोऽस्तु । यद्वा त्राहीति क्रियापदम् । परस्मै-पदमार्थम् । पक्षे दुर्गे सङ्कटे भयेभ्यः नोऽस्मान्पाहि । प्रार्थनायां लोट् । केऽपि त्रायते इति त्रा क्विपि रूपम् । रक्षिकाइत्यर्थः । त्राइवाचर त्राहि । रक्षिके वाचर । आचारविवबन्ताल्लोणमध्यमपुरुषेकवचने रूपमिति वदन्ति । त्राहीति विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययमित्यर्थः । त्राहीति पृथग्विक्रिया-पदपक्षे क्रियाभेदाद्देवीति पुनश्चक्तिर्न दुष्यति । प्रसादने पुनश्चक्तिर्न दूषणापेत्यपि दूतसंवादाध्यायव्याख्याने स्पष्टम् । अर्थभेदोऽपि पुनश्चक्ति-दोषनाशकः ॥ २३ ॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।

पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तुते ॥ म. २५ श्लो. २४

एतदिति । हे कात्यायनि कतस्य मुनेर्गोत्रापत्यं स्त्रीति विग्रहे गर्गादित्वेनयत्रन्तात्कात्यशब्दात्सर्वत्रलोहितादिकतन्तेभ्य इतिष्फः । फस्यायनादेशः । षित्त्वान्छीष् । कात्यायना तत्सम्बोधने । सौम्यं सुन्दरं लोचनानां नेत्राणां त्रयेण भूषितमलंकृतम् एतदित्यङ्गुल्येव निर्देशः । ते तव कौशल्याः वदनं नः अस्मान् देवान् सर्वभीतिभ्यः सर्वाभ्यः कालत्रय-सम्बन्धिनीभ्यः भीतिभ्यः भयेभ्यः भयहेतुभ्योवा । पातु रक्षतु । यद्वा सर्वाः भियः यासुता सर्वभियः । सर्वभियश्च ता ईतयश्च सर्वभीतयः ताभ्यः सर्वभीतिभ्यः पात्विति । ईतयस्तु अतिवृष्टिरनावृष्टिर्भूषकाः शलभाः शुकाः । स्वचक्रं परचक्रं च षडेता ईतयः स्मृता इति । सर्वं भीतिभ्य ईतिभ्य इति भीतार्थानां भयहेतुरिति पञ्चमी ईतितो ऽप्योषध्य-भावादन्नानुपत्तेर्यज्ञविहितानां पशूनां यज्ञसाधननामभावापत्या यज्ञवृत्ते-राध्यायकपुरोडाशाद्यप्राप्तेर्यज्ञभागभुजां देवानामपीतिजभयस्य संभावना-हेतुरपि इति नवाभावः प्रार्थनीय इवेति बोध्यम् । ते तुभ्यं नमोऽस्त्विति

पूर्ववत् । सौम्यं स्यात्सुन्दरे सोमदेवताके बुधे ग्रहे इति हारावली ।
पात्विति प्रार्थनायां लोट् । भूतेभ्य इति दाक्षिणात्यपाठः । भूतेभ्यः
भूतविकारेभ्य इति नागेशः ॥ २४ ॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।

त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालिनमोऽस्तु ते ॥ म. २६ श्लो. २५

ज्वालेति । ज्वलन्तीति ज्वाला दीप्तयः । ज्वल दीप्तौ । ज्वलिति-
कसन्तेभ्यो णः । स्त्रियां टाप् । ज्वालाभिः करालं रौद्रं । यद्यपि वृत्ते-
र्द्वयोर्ज्वालकीलावित्यमरस्तथापि वृत्तेरिति प्रायोवादः । हेतिः स्यादायु-
धज्वालासूर्यतेजस्सु योषितीति दर्शनादिति निरूपितं प्राक् । अतितरा-
मुग्रं रौद्रं अशेषाणां समस्तानामसुराणां सूदते हिनस्तीति सूदनं । सूद
भक्षणे हिंसायां च । अनुदात्तेत् । नन्दादित्वाल्ल्युः । अनुदात्तेतश्च
ह्लादेरिति युच्प्रत्ययस्तु न भवति सूददीपदीक्षश्चेति तन्निषेधात् । ते
तव, त्र्यवयवं शूलं त्रिशूलं । शाकपार्थिवादिः । यद्वा त्रयः शूलाः शिखाः
यत्रेति त्रिशूलमायुधं नः अस्मान् भीतेः भयहेतोः भीजनकाया ईतेः वा
सकाशात्पातु रक्षतु । हे भद्रकालि भद्रं करोतीति भद्रकाली । कर्मण्यण् ।
रलयोरभेदाद्वा । अणन्तत्वान्डीप् । भद्रङ्करोति सा यस्माद्भद्रकाली
ततः स्मृतेति देवीपुराणात् । तत्सम्बुद्धौ हे भद्रकालि ते तुभ्यं
नमोऽस्तु ॥ २५ ॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।

सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव ॥ म. २७ श्लो. २६

हिनस्तीति । हे देवि क्रीडाशीले । तव या घण्टा प्रसिद्धा स्वनेन
नादेन करणेन जगत्कर्म लोकत्रयीं आपूर्य पूरयित्वा दैत्यतेजांसि हिनस्ति
नाशयति । सा ते घण्टा पापेभ्यो दुरितेभ्यः पापकारिभ्यो दैत्येभ्यो वा
नः अस्मान्पातु रक्षतु । जगदित्यावर्त्य शब्दाधिकाराश्रयणादुत्तरत्रापि
सम्बध्यते । किं केभ्यः कानिव । जगत्कर्तृलोकः अनः शकटेभ्यः सुतानिव
पुत्रानिव । यथा लोकः शकटेभ्यः चञ्चलान् तदधः पतिष्णुन्बालान्
रक्षति तथा घण्टा शब्दायमाना सती नः पात्वित्यर्थः । पुराणं पञ्चमो-
वेदः, वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमानित्यादिवचनभ्यः पुराणा-
नामपि वेदत्वावगमाच्छन्दस्त्व अनश्शब्दात्पञ्चम्या भ्यसः सुपांसुर्लुगि-
त्यादिना लुक् । यद्वा जनन्यां शकटेभ्यः । अनः पितरि शकटे चेति

विश्वः इत्यभिधानादनः पिता माता च यथा स्वान्स्वकीयान्मुतान् पुत्रान् पापेभ्यो दुरितेभ्यः पापहेतुभ्यः कर्मभ्यो वा यथा पाति रक्षति तथा घण्टापि रक्षत्वित्यर्थः । अनति चीत्करोतीत्यनः शकटं । अनति जीवयति पालनादपत्यमित्यनः पिता माता च । अन्तर्भावितण्यर्थोऽत्रानि । अत्र बहवोऽर्थाः बहुभिः प्रतिपादिताः शान्तनवीपुष्पाञ्जल्यादिषु द्रष्टव्याः ॥ २६ ॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।

शुभायखड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम् ॥ म. २८ श्लो. २७

असुरेति । असुराणां दैत्यानां असृक् रुधिरम् । वसति वस्ते वा वसा वपाख्यः शुद्धमांसस्नेहः । वस निवासे । वस आच्छादने वा । पचाद्यच् । हृन्मेदस्तु वपा वसेत्यमरः । पङ्क इव । पञ्चते दुःखमनेनेति पङ्कः । पचि व्यक्तीकरणे विस्तारे वा । करणे घञ् । कुत्वम् । पङ्कोऽधे कर्दमेऽपि चेति- हैमः । उपमितमिति समासः । तेन पङ्केन चर्चनं चर्चा स्नानं । चर्च अध्ययने । चिन्तिपूजिकथीत्यङ् । चर्चा स्याच्चर्म मुण्डायां चिन्तास्थास- कयोरपीति हैमः । चर्चा सञ्ज्ञाता अस्मेति चर्चितः । तारकादित्वादि- तच् । तथा कराः किरणाः तैरुज्ज्वलः दीप्तः । ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः इत्यस्य उपसर्गोपपदे अप्रवृत्तेः । पचाद्यच् । यद्वा करं हस्तमुज्ज्वलयतीति करोज्ज्वलः ज्वलेर्ण्यन्तात्कर्मण्यण् । बलि हस्तांशवः करा इत्यमरः । एवंभूतस्तेखड्गः नः जगतां वा शुभाय कल्याणार्थं भवतु । अस्त्विति प्रार्थनायां लोट् । हे चण्डिके शत्रुप्रति कोपवति हे देवि वयं त्वां नताः प्रणता भवाम इति शेषः । वयमित्युत्तरत्रोक्तेः । शुभमपि तेषामेव प्रार्थयित्यतः शुभायेत्यत्रास्माकमिति शेषः शुभायेति तादर्थ्यं चतुर्थी ॥ २७ ॥

इदानीमीश्वरभावमापन्नाया भगवत्याः कोपप्रसादयोरेवाभिमत- सुखानभिमतदुःखरूपफलप्रदाने हेतुत्वात्तदाराधनमेववर मित्युपदि- शन्ति—

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा

रुष्टातु कामान् सकलानभीष्टान् ।

त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां

त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ म. २९ श्लो. २८

रोगानिति । नृणन्ति नरन्ति वा नयेन व्यवहरन्तीति नराः । अनुल्लङ्घितस्वधमनुकूलव्यवहाराः । नृनये । पचाद्यच् । तेषां नराणां न्यायवर्तिनां तुष्टा आराधनेन सन्तुष्टा सती अशेषानखिलान् रुजन्तीति-रोगाः ज्वरादय उपद्रवाः । पदरुजविशस्पृश इतिष्ठन् । तानपहंसि नाशयसि । तु पुनः रुष्टा रोषसंयुता त्वं अभीष्टानतिप्रियान् सकलान्कामान्मनोरथानपहंसि नाशयसि । त्वां देवीमाश्रितानां नराणां विपत् इष्टनियोगादिलक्षणा आपत् न विद्यते इति शेषः । विशेषार्थः । हि हेतो स्यादेवार्थं पादपूरणेइत्यभिधानात् । हिर्विशेषार्थः । विषेषतो ये त्वामाश्रिताः आश्रितवन्तः नराः कर्तारः । आश्रीयन्ते इत्याश्रयाः श्रियः । कर्मण्येव । आश्रयणां भावः आश्रयता तां आश्रयतां अन्यैः सेव्यमानतां प्रयान्ति प्राप्नुवन्ति । अन्यैराश्रियमाणा यथा राजानो देवाश्च तथा तद्भावं त्वदाश्रिताः प्राप्नुवन्तीति भावः । नराणामित्यत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । अस्य द्वितीयपादे ददासि कामान्सकलानभीष्टानिति दाक्षिणात्याः पठन्ति । पुष्पासि कामानिति तदैकदेशिनः ॥ २८ ॥

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य

धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।

रूपैरनेकैर्वहुधात्ममूर्ति

कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ॥ म. ३० श्लो. २९

एतदिति । हे अम्बिके जगन्मातः । हे देवि व्यवहारणीले । अद्यास्मिन्नहनि अनेकैः रूपैः ब्राह्मणादिशक्तिरूपैः बहुधा बहुप्रकारमात्ममूर्तिं निजतनुं कृत्वा धर्मं ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत नित्यं सन्ध्यामुपासीतेश्यादिचोदनालक्षणार्थरूपं द्विषन्ति ते धर्मद्विषः । सत्सूद्विषेत्यादिना क्विप् । तेषां महासुराणां कदनं मारणं त्वयाकृतमनुष्ठितं यत् तत् तथाविधं धर्मद्विषां महासुराणां कदनमन्या त्वदितरा का देवता प्रकरोति कर्तुं शक्नोति । अपि तु न कापीत्यर्थः । तच्छब्दस्य तथाविधो-र्थः । प्रकरोतीत्यस्य कर्तुं शक्नोतीत्यर्थः । औपचारिको न वाच्यः देवीकृतशुम्भादिकदनादेर्भूतत्वादन्यथा शशशृङ्गायमानस्य तस्य कर्तुमशक्यत्वात्तत्सदृशे पर्यवसानमिति बोध्यम् । कदनमिति । कदि वैकल्ये-वलैव्ये वा । मित्त्वार्थं घटादौ पठ्यते । तत्र नन्दिमतेऽयमनिदिद्यदा कदेत्येवं पठितस्तदा कदेभवि ल्युट् । धातूनामनेकार्थत्वाद्वाक्यानामपि

मारणाख्या व्याख्या विशेषपर्यवसानाद्वामारणार्थमिधायकत्वम् । व्या-
पादनं विशसनं कदनं चेत्यभिधानात् । कदनं निहिसनमित्यर्थः । यद्यपि
चण्डादिशुम्भान्तदैत्यवधो बहुदिनकृत्यं तथापि, मासेन स्यादहोरात्रः
पैत्रो वर्षेण दैवत इत्युक्तदिव्यमानेन दिव्यं तस्य महत्त्वात्तदपेक्षया
अद्येत्युक्तम् । मूर्तिः काठिन्यकाययोरित्यमरः । रूपैरनेकैरिति प्रकृत्या-
दिभ्य इति तृतीया ॥ २६ ॥

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-

ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।

ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे

विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ॥ म. ३१ श्लो. ३०

विद्यास्त्विति । हे देवि विद्यासु आन्वीक्षिक्यादिषु ज्ञानोपाय-
साधनभूतासु इन्द्रजालादिलक्षणासु लोकस्य योगक्षेमविधायिनीषु वा ।
शास्त्रेषु मन्वादिस्मृतिषु प्रवृत्तिनिवृत्तिपरासु । न्यायादि षड्दर्शनशास्त्रेषु
वा । विवेकस्तत्त्वसाक्षात्कारः तं दीपयन्ति बोधयन्तीति विवेकदीपाः
वेदान्ताः । दीपेः कर्मण्यण् । तेषु आद्येषु वाक्येषु कर्मकाण्डेषु । तेषा-
मुपनिषद्भ्यः पूर्वकाण्डत्वात् । सर्वत्रानादरेसप्तमी । विद्यादिकमना-
दृत्येत्यर्थः । महान्धकारे महान्धकारस्तमो यत्र तथाविधे ममत्वं
गर्तइव पतनहेतुत्वात् । तस्मिन्ममत्वगर्ते । अथवा ममत्वस्यगर्तो ममत्वा-
श्रयः संसारः तस्मिन्महान्धकारे एतद्विश्वं कर्म त्वदन्याका विभ्रामयति ।
ममत्तयायोजयति । पुनः पुनः प्रवर्तयति । किन्तु त्वमेव विभ्रामयसी-
त्यर्थः । ममत्वगर्ते संसारे येषु विद्यादयः पदार्थाः तेषु वर्तमानमप्येतद्विश्वं
त्वदन्या का विभ्रामयतीत्यन्वयः । विभ्रामयतीति अमन्तत्वात्प्राप्तं
मित्वमाश्रित्य प्राप्तो मितान्ह्रस्व इतिह्रस्वो न भवति संज्ञापूर्वकविवे-
नित्यत्वादिति प्राचीनाः । नव्यास्तु भ्रमणं भ्रामः भावे घञ् । अतउप-
धाया वृद्धिः । भ्रामं करोति भ्रामयति तत्करोतीति ण्यन्ताद्भ्रामशब्दात्
सनाद्यन्ता धातव इत्यनेन कृतधातुसंज्ञाल्लटि रूपमित्याहुः । अन्य-
शब्दस्य शेषत्वात्प्रथमपुरुषः । त्वदन्यः को भुङ्क्ते इतिवत् ॥ ३० ॥

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा

यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।

दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये

तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ॥ म. ३२ श्लो. ३१

श्रीभगवत्या दयालुतां दर्शयति रक्षांसीति । यत्र देशे रक्षन्तेभ्य इति रक्षांसि निशाचराः । रक्ष पालने । सर्वधातुभ्योऽमुन् । यत्र देशे । वेदेष्टि कायमिति विषं गरलं । विष्ट व्याप्नो । विष विप्रयोगे वा । इगुपधेतिकः । उग्रमुत्कटं विषं येषां ते तथाविधा नागाः सन्तीति शेषः । यत्र देशे अरयः शत्रवः । यत्र देशे दस्यन्तीति दस्यवश्चौराः । दसुडपक्षये । यजिमनिशुन्धिदसिजनिभ्यो युच् । अननुनासिकपरत्वाभावादनादेशोन । दस्युश्चोरे रिपौ पुंसीति हैमः । तेषां बलानि सैन्याः सन्ति यत्र देशे । दवो वनं तस्यायं दावः वनसम्बन्धी सचासावनलश्च दावानलोऽस्तीति शेषः । दवदावो वनारण्यवह्नी । दवदावो वनानले इति हैमः । यत्र यत्र रक्षःप्रभृतयः सन्ति तत्र तत्र स्थितां वा व्यापकत्वात्त्वमुपद्रवप्रसंगे स्मृता सती विश्वं परिपासि परितो रक्षसि तथा तेनैव प्रकारेण अग्नेः समुद्रस्य मध्ये पोतस्थैः स्मृत्वा त्वं परिपासीत्यन्वयः । क्ष्वेडस्तु गरलं विषमित्यमरः । गरले विषमभसि । स्त्रियामतिविषयामित्यूष्मविवेकान्मृद्वन्यान्तो विषशब्दः ॥ ३१ ॥

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं

विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।

विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति

विश्वासश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ॥ म. ३३ श्लो. ३२

विश्वेश्वरीति । इतीति भिन्नक्रम सर्वत्र सम्बध्यते । तथाहि हे देवि त्वं विश्वस्य ईश्वरी राज्ञी विश्वव्यापिनी वा इति हेतोः विश्वं जगत्कर्म परिपासि । सम्बुद्धघन्तपाठे तु नेतिना सम्बन्धः । तथा त्वं विश्वमात्मा देहो यस्याः सा विश्वात्मिका इति हेतोः विश्वं धारयसि । तथा भवती त्वं विश्वशैर्ब्रह्मादिभिर्वन्द्या । अभिवादनीया स्तुत्या वर्तसे इति शेषः । इति हेतोः त्वयि विषये येषां भक्तिः श्रद्धातिशयः तया नम्राः गताहङ्कारादिदोषतया सर्वदा प्रणामपराः वर्तन्ते ते विश्वस्य जगतः आश्रयाः आधारभूताः जगतां धारयितारो भवन्तीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

देवी प्रसीद परिपालय नोरिभीते-

नित्यं यथा सुरवधादधुनैव सद्यः ।

पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु

उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान् ॥ म. ३४ श्लो. ३३

देवीति । हे देवि विजिगीषाशीले, त्वं प्रसीद प्रसन्ना भव । हे देवि अरिभीतेः शत्रुभयात् नित्यं ध्रुवं नः अस्मान्देवान् तथा तेन प्रकारेण परिपालय परितो रक्ष । प्रार्थनायां श्लोऽ । तथा कथं सद्यः द्रुतं सपदि असुरयोः शुम्भनिशुम्भयोर्वधात् हननाद्धेतुभूतान्नास्मान्देवान् अरिभीतेः शुम्भाद्यसुरभयादधुनैव इदानीमेव यथा पर्यपीपलस्त्वमिति शेषः अधुनेति निपातः । एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं यथेत्यमरः । तथा हे देवि सर्वजगतां सर्वेषां लोकानां पापानि दुरितानि प्रशमं शान्तिं आशु क्षीघ्रं नय प्रापय । नयतिद्विकर्मकः । हे देवि सर्वजगतां उत् उत्कर्षेण पातयति अधोनयतीत्युत्पातः अधर्मः । प्यन्तात्पतेरच् । उत्पातस्य अधर्मस्य पच्यते परिणम्यते अनेनेति पाकः । पचेर्हलश्चेति घञ् चजोरितिकुत्वम् । तेन जनितानुत्पातादीन् । तैः उत्पातैः उपसृज्यन्ते इत्युपसर्गाः उपद्रवाः उपकर्तरि च कारके संज्ञायामिति घञ् । उपसर्गः पुमान् रोगभेदोपप्लवयोरपीतिभेदिनी । विगतौ दुर्नये राहावुपसर्गोपद्रवे । प्रादौ रोगे च भेदे चेति हैमः । महान्तश्च ते उपसर्गाश्च महोपसर्गास्तान् ॥ ३३ ॥

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।

त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव ॥ म. ३५ श्लो. ३४

प्रणतानामिति । हे विश्वार्तिहारिणि, विश्वस्य जगतः अतिः पीडा तां हरति एवं क्षीले । हे देवि प्रणतानां भक्तिनम्राणां प्रसीद । हे त्रैलोक्यवासिनां लोकत्रयस्थानां ईड्ये स्तुत्ये । कृत्यानां कर्तरीति षष्ठी । त्वं लोकानां जनानां वरदा इष्टदा भवेत्यन्वयः । व्यत्ययेन चतुर्थ्यर्थ्य षष्ठीति प्राश्नः । वरो वृत्तौ, विटे जामातरि श्रेष्ठे देवतादेरभीप्सते इति हैमः ॥ ३४ ॥

देव्युवाच ॥ म० ३६ ॥

देवी कौशिकी देवस्तुतिं श्रुत्वा तां सफलयितुं

प्रसादोन्मुखी देवानुवाच—

वरदाहं सुरगणा वरं यं मनसेच्छथ ।

तं वृणुध्वं प्रयच्छामि देवानामुपकारकम् ॥ म. ३७ श्लो. ३५

वरदेति । उत्तरवाक्यार्थं द्वितीयं कर्म । हे सुरगणाः देवसमूहाः, यद्यस्माद्धेतोरहं वरदा तस्माद्यं वरमभीष्टं मनसा अन्तःकरणेन यूयमिच्छथ तं वरं वृणुष्वं प्रार्थयध्वं । प्रयच्छामि ददामि दास्यामीत्यर्थः । वर्तमान-सामीप्ये दाणो भविष्यति लट् । पाप्माधमेति दाणो यच्छः । कीदृशं वरम् । जगतां लोकानां उपकारकमिष्टसाधकमित्यर्थः । वृणुष्वमिति वृञ् वरणे स्वादिः । छोट आत्मनेपदमध्यमपुरुषैकवचने ध्वमो रूपम् । वृणुष्वमिति दाक्षिणात्याः पठन्ति ॥ ३५ ॥

देवाऊचुः ॥ म० ३८ ॥

प्रसादोन्मुखीं कौशिकीं प्रति वह्निपुरोगमा इन्द्रादयो

देवाः स्वाभीष्टं प्रकटयन्त ऊचुः—

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।

एवमेतत्त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ म० ३९ श्लो ३६

सर्वाबाधेति । हे अखिलेश्वरि सर्वव्यापिके, सर्वप्रपञ्चस्वामिनि वा सर्वाबाधेति द्वितीयदीर्घवर्णो गोडपाठः । त्रैलोक्यस्य सर्वाबाधाप्रशमनं आसमन्ताद्बाधनं आबाधा दुःखं । बाधु विलोडने आङ्पूर्वः । गुरो-इत्येति । आबाधा वेदना दुःखमिति हलायुधः । सर्वबाधेति ह्रस्व-द्वितीयवर्णोऽपि क्वचित् । तत्र बाधनं बाधा दुःखमेवार्थः । बाधा दुःख-निषेधयोरिति हैमः । त्रैलोक्यस्य सर्वजगतां सर्वाः आध्यात्मिकाधिदैवि-काधिभौतिकाः या आबाधाः पीडाः तासां सर्वाबाधानां सर्वदुःखानां प्रशमनं उपशमः अस्माकं, वीरस्य कर्म वैरं । युवादित्वाद्वैरमैथुनि-कयोरिति निर्देशाद्वाण् । वैरं विरोधोऽस्त्येषामिति वैरिणः शत्रवः दैत्याः तेषां विनश्यनं विनाशः वधः तं एवमीदृग्विधं एतत् अदः उपन्यस्तं सर्वाबाधाप्रशमनमस्मच्छत्रुविनाशनरूपं कर्म त्वया करणीयमिति प्रार्थ-नेयम् । कृञ् ऋहलोर्ण्यत् इति ण्यतिकार्यमिति रूपम् । यद्वा एतत्त्रैलो-क्यस्य उपकारकं एवं विधं शुम्भादिवधकार्यसदृशं त्वया कार्यं कर्तव्यम् । कीदृशसमेतत्कर्म सर्वाबाधाप्रशमनं सर्वासां बाधानां प्रकृष्टं शमनं यत्र तत् । एवमेव त्वया कार्यमिति दाक्षिणात्यपाठः । एवमेव शुम्भादिनाशन-वदेव शमयतीति शमनं, नन्द्यादित्वाल्त्युः । बाहुलकात्कर्तरि ल्युट्वा । तथा च सर्वबाधानां प्रशमनं नाशकमित्यर्थः ॥ ३६ ॥

देव्युवाच ॥ म० ४० ॥

एवं देवाभ्यर्थितमाकर्ण्य देवान्प्रीणयन्भविष्यद्भूयाभावं सूचयन्ती

देवी देवानाह—वैवस्वतेत्यादि चतुर्दशभिः श्लोकैः—

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।

शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ ॥ म. ४१ श्लो. ३७

भविष्यदसुरभयं सर्वज्ञतयैकद्यो गणयन्ती स्वकर्तृकं तत्तत्कालिक-
भयनिवर्तनं सप्रतिज्ञमाह—वैवस्वतेति । विविधं वस्ते आच्छादयतीति
विवः रश्मिः । विवोऽस्यास्तीति विवस्वान् सूर्यः । मनुष्यः । तसौमत्वर्थं
इति मत्वाद्मुत्वाभावः । विवस्वतः सूर्यस्यापत्यं वैवस्वतः श्राद्धदेवाख्यो
मनुः । तस्यापत्यमित्यण् । व्यत्ययेन षष्ठ्यर्थे सप्तमी । तेन वैवस्वतस्य
श्राद्धदेवाख्यस्य मनोः अन्तरे अवधावेत्यर्थः । अष्टाभिरधिका विंशतिः
अष्टाविंशतिः । अष्टनः संख्यायामिति दीर्घः । अष्टाविंशतेः पूरणं अष्टा-
विंशतितमं । तस्य पूरणे ङटिति ङट्प्रत्यये विंशत्यादिभ्यस्तमङन्यतर-
स्यामिति तमङागमः । अष्टाविंशतितमे इति वक्तव्ये पृषोदरादित्व-
माश्रित्य तलोपश्छन्दोऽनुरोधेन । तदुक्तं छन्दोपदर्शने क्वापि छन्दोभङ्ग-
भयात्क्वचित् । लिङ्गं विभक्तिलोपादि यथेष्टं परिकल्पयेदिति । एवमन्य-
त्रापि प्रयोगो दृश्यते । तत्र तद्व्याख्यातृभिरेवं व्याख्यातम् । यथाविष्णु-
भागवते प्रथमस्कन्धे तृतीयेऽध्याये-एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य
जन्मनी । रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भूमिति । अत्रैतद्व्याख्याने-
विंशतितम इति वक्तव्ये तकारलोपश्छन्दोऽनुरोधेनेति श्रीधरमाह ।
रामाश्रमस्तु-अष्टाविंशत्यामीयते इत्यष्टाविंशतितम इत्याह । नागेशस्तु
अष्टाविंशतिशब्दात् ङटो मङागमश्छान्दस इत्याह । युगे इति । युजिर-
योगे घञ् । चजोरिति । कुत्वं । संज्ञापूर्वकत्वादथयुगप्रासङ्गमिति
लिङ्गाद्वा गुणाभावः । युगं हस्तचतुष्के स्याद्रथाद्यंगे कृतादिके इति
हैमः । वैवस्वतमनोरेकसप्तति चतुर्युगी साम्रथा भोगकालः । तत्र अष्टा-
विंशतिमे युगे चतुर्युग्यां प्राप्ते सतीत्यर्थः । यौ मया सम्प्रति धूम्रलोचन-
चण्डमुण्डरक्तबीजादिसनापतिपुरस्कृता शुम्भनिशुम्भौ हतौ ताभ्या-
मन्यावेव शुम्भो निशुम्भश्च महासुरौ उत्पत्स्येते । अन्तरमवकाशावधि-
परिधानान्तर्द्विभेदतादर्थ्यं । छिद्रात्मीयविना बहिरवसरमध्येऽन्तरात्समनि
चेत्यमरः ॥ ३७ ॥

नन्दगोपगृहे जाता यशोदा गर्भसम्भवा ।

ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलानवासिनी ॥ म. ४२ श्लो. ३८

ननु अष्टविंशतितमचतुर्युग्मां कस्मिन्युगे कस्मिन्कुले सम्भूतौ निशुम्भशुम्भाख्यावन्यौ भाविनौ अन्यांश्च दैत्यान् हनिष्यसीत्याशङ्काया-
माह—नन्दगोपेति । टु णदि समृद्धौ । पचाद्यच् । नन्दति समृद्धो भवति
कृष्णकृपयेति नन्दः प्रसिद्धः । गाः धेनूः पाति रक्षतीति गोपः आभीर-
जातिविशेषः । नन्दान्ताः क्षत्रियाः स्मृता इति वचनप्रसिद्धक्षत्रियनन्द-
व्युदासार्थो गोपशब्दः । तस्य गृहे भवने जाता उत्पन्ना । कुलं जनपदे
गोत्रे सजातीयगणेष्वपि चेत्यभिधानात् । अश्नुते व्याप्नोतीति यशः
दानकलाद्याधिक्येन ख्यातिः । अशूव्याप्तौ । अशेर्देवने युटिचेत्यसुन् ।
यशोददाति स्वसम्बन्धिभ्यः सदयत्यप्रसूत्येति यशोदा नन्दपत्नी तस्या-
गर्भात्सम्भव उत्पत्तिर्यस्याः सा यशोदागर्भसम्भवा । ततः यशोदागर्भतः
स्वस्याः प्रादुर्भावादनन्तरं विद्ध्यते इति विन्ध्यः । इन्धीदीप्तौ । प्यत् ।
अन्तर्भावितण्यर्थः । शकन्ध्वादिः । विन्ध्या स्त्रियां लवल्यां स्यात्पुंसि
व्याधाद्भिभेदयोरिति हैमः । विन्ध्यनाम्निपर्वते निवसति तच्छीला ।
सुप्यजाताविति णिनिः । विन्ध्याचलनिवासिनी भूत्वा तौ शुम्भनिशुम्भा-
ख्यावन्यावसुरौ नाशयिष्यामि व्यापादयिष्यामीत्यन्वयः । एवं च हरि-
वंशादिपुराणप्रसिद्धवैवस्वतमन्वन्तरारम्भचतुर्युगीमारभ्य अष्टाविंशति-
तमचतुर्युगीमध्यपतितद्वापरसन्ध्याप्रान्ते कृष्णावतारस्य सकलपुराण-
सम्मतत्वादुपलक्षित देव्यवतार शुम्भनिशुम्भवधावपितात्कालिकाविति
निर्णीतोऽयमर्थः ॥ ३८ ॥

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।

अवतीर्यहनिष्यामिवैप्रचित्तांस्तु दानवान् ॥ म. ४३ श्लो. ३९

अपरं नन्दजा कृत्यमाह—पुनरिति । अतिरौद्रेण भयङ्करेण
रूपेण आकारेणोपलक्षिता । नन्दकुमारीरूपैवाहं विन्ध्यपृष्ठात्स्वस्थाना-
त्पृथिवीतले अवतीर्य आगत्य चेतनं चित्तिज्ञानं चित्ती संज्ञाने । भावे
स्त्रियां क्तिन् । तितुन्नतयसिसुसरकसेषु चेति नेट् । प्रकृष्टाचितिः प्रचितिः
प्रकृष्टं ज्ञानं । विरुद्धा प्रचितिः प्रकृष्टं ज्ञानं यस्यासौ विप्रचित्तिर्नाम-
कश्चिद्दानवः । कश्यपतृतीयपत्न्याः पुत्रः विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः
सुमहाबला इति हरिवंशे । विख्यातविप्रचित्तेर्दानवस्यापत्यानि वैप्र-
चित्ताः । विप्रचित्तेः पुत्राः हरिवंशे प्रसिद्धाः । सिंहिकायामथोत्पन्नाः
विप्रचित्तेः सुतास्तदा । दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः ।
सैहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः । व्यङ्ग्यः शल्यश्च बलिनो

नभश्चैव महाबलः । वातापिर्नमुचिश्चैव इत्वलः । खसृमस्तथा । आंजिको
नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च । राहुर्ज्येष्ठश्च तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रमर्दनः ।
तत्र राहुश्चिरस्थायी । वातापिरगस्त्येन भुक्तः । नमुचिरिन्द्रेण हतः ।
शेषान्वैप्रचित्तान् शुम्भनिशुम्भौ हत्वा पुनर्हन्तिष्यामि । तुरवधारणे ।
हनिष्याम्येवेत्यर्थः । यद्यपि विन्ध्यापृष्ठादित्यपादानपञ्चम्यन्तपदं मूले
नास्ति तथापि पूर्वश्लोके विन्ध्याचलनिवासिनीति विशेषणोपादाना-
दत्र च प्रादुर्भावार्थकावतरणस्य वामनपुराणवचनविरोधाद्वाधितत्वा-
दधः प्राप्तिरूपस्यार्थान्तरस्य चापादानसापेक्षत्वेन पूर्वत्र विन्ध्याचलनि-
वासिनीति विशेषणश्रवणात्तद्विशेषणानुकूलमपादानपञ्चम्यन्तमाधिक-
मत्रेति वेदितव्यम् । तुविशेषेऽवधारणेति हैमः । तुः स्याद्भेदेऽवधारणे
इत्यमरः । पुनरप्रथमे भेदे इत्यमरहेमचन्द्रौ । पुनरप्रथमे मतम् । अधि-
कारे च भेदे च तथा पक्षान्तरेऽपि चेति कोशान्तरम् । विन्ध्यवासिन्येव
वैप्रचित्तहन्त्रीति वामनपुराणे—भूयो भविष्यामि सुरारिमुत्तमं सम्भूय
नन्दस्य गृहे यशोदया । तान्वैप्रचित्तान्सगणांस्तथापरो शुम्भं निशुम्भं
दशनप्रहारिणीति । अनेन नन्दजा भगवती कर्तृकस्यैव शुम्भनिशुम्भवै-
प्रचित्तवधस्य प्रतिपादिततथात्रान्यावतारकल्पनाडम्बरं जल्पनमात्रम् ।
पुराणवाक्यविसंवादे कल्पान्तराश्रयणं युक्तं नान्यथेति । हनिष्यामीत्यत्र
ऋद्धनोः स्पेइतीडागमः ॥ ३६ ॥

देवी स्वनामान्तरमभिधित्सुस्तद्व्युत्पत्तये
तदनुकूलव्यापारमाह—

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्महासुरान् ।

रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः ॥ म. ४४श्लो. ४०

भक्षयन्त्या इति । उग्रान् रौद्रान् महतोऽसुरान्महासुरान् प्रसिद्धान्
वैप्रचित्तान् विप्रचित्तेः पुत्रान् भक्षयन्त्याः समेति शेषः दन्ताः दशनाः ।
दमेहंसिमृगिणवामिदमिलूपधूविभ्यस्तन् इति तन् । दलनं दालः । दल
विधारणे । भावे घञ् । दालेन निर्वृत्तो दाडिमः । भावप्रत्ययान्तादिमप् ।
डलयोरेकत्वम् । दाडिमस्तु त्रिलिङ्गः स्यादेलायां करके त्रिषु इति हेम-
मेदिन्यौ दाडिमी करकतदः । तस्य कुसुमं पुष्पम् । कुससंश्लेषणे ।
कुसेहम्भोमेदेता इत्युमप्रत्ययः । कुसुमं स्त्रीरजो नेत्रयोः फलपुष्पयोरिति
हैमः । दाडिमीकुसुममुपमानं येषां ते दाडिमीकुसुमोपमाः । रक्ताश्च

रक्ता एव भविष्यन्तीत्यन्वयः । रक्ता इति रञ्जन्तिस्मेति रक्ताः । रञ्ज रागे । रक्तः । रक्तं नील्यादि रञ्जते । कुङ्कुमेऽसृज्यनुरक्ते प्राचीनामल-
केऽरुणे इति हैमः । न च रक्तशब्दस्यारुणवाचित्वाद्दाडिमीकुसुमोपमा
इत्यनेन पीनरक्त्यं शङ्क्यम् । अत्राह—चेत्यन्यार्थसमाहारान्वाचयेषु
समुच्चये । हेतौ पक्षोत्तरे तुल्ययोगिता विनियोगयोः । पादपूरणेऽवधृता-
विति हैमाभिधानाच्चकारस्य हेत्वर्थताया आश्रयणात् । यतः रक्तं
रुधिरमस्त्येषु इत्यर्थाद्यजन्ततया रक्ता रुधिरवन्तः ततः कारणाद्दा-
डिमीकुसुमोपमा भविष्यन्तीत्यर्थाश्रयणे नासमञ्जसं स्यात् । रक्तशब्दस्य
नील्यादि साधारणरञ्जितेऽपि भाक्तेनारुणिम्नो निर्णयात् । दाडिमीकुसु-
मोपमा इतिलोहितवर्णनिर्णायकेन विशिष्टविशेषणेन सामान्यरञ्जिता-
र्थस्य रक्तपदस्य च सामान्यार्थाभिधायकस्य भिन्नार्थतयापुनरुक्त्यभा-
वाच्च, वर्णान्तरमिश्रितमप्यरुणं रक्तमेव व्यपदिश्यते अतस्तद्व्यावृत्तये
दाडिमीकुसुमोपमा इति विशेषणस्यावश्यकत्वमिति ॥ ४० ॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।

स्तुवन्तोऽव्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम् ॥ म. ४५ श्लो. ४१

तत इति । यतो हेतोः वैप्रचित्तासुरभक्षणान्मे रक्तादन्ता भवि-
ष्यन्ति ततो हेतोः मां स्तुवन्तो वाचा पूजयन्तः स्वर्गे देवा एव देवताः
देवात्स्वार्थं तत् । अयन्त इति मर्त्याः । हसि मृगुणिति तत् । मर्ता एव
मर्त्याः मनुष्याः । स्वार्थं यत् । तेषां लोके भुवने मनोः कश्यपपत्न्या
अपत्यानि मानवाः नराः । ब्राह्मणमानवेति ज्ञापकादपर्येऽण् । तस्येद-
मित्यणिति वा । रक्ता दन्ता यस्याः सा रक्तदन्तिका । शेषाद्विभाषेति
कप् । तन्नाम्नीं सततं निरन्तरं व्याहरिष्यन्ति वदिष्यन्तीत्यन्वयः ॥ ४१ ॥

अथ द्वितीयं स्वावतारमाह सार्द्धत्रिभिः श्लोकैः—

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।

मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा ॥ म. ४६ श्लो. ४२

भूय इति । शतं वर्षाणि परिमाणमस्या इति शतवार्षिकी । तदस्य
परिमाणमिति ठञ् । तद्वितार्थ इति समासः । वर्षस्या भविष्यतीत्युत्तर-
पदवृद्धिः । वर्षाल्लुक् चेति पाक्षिको लुक् । टिड्ढेति ङीप् । आसमन्ताद्-
वृष्टिरावृष्टिः । न आवृष्टिः अनावृष्टिः तस्यां । अवर्षणे इत्यर्थः । तस्यामना-
वृष्ट्यामीतौ सत्यां न अम्भो जल यस्यां सा अनम्भाः तस्यां नदीसरः

प्रभृतिष्वपि जलरहितायां भूमौ मुनिभिः लोकहितेप्सया संस्तुता अयो-
निजा च अयोनिजैवेत्यर्थः । संभविष्यामि प्रादुर्भविष्यामीत्यन्वयः
॥ ४२ ॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।

कीर्तयिष्यन्तिमनुजाः शताक्षीमितिमांततः ॥ म. ४७ श्लो. ४३

तत इति । मत्प्रादुर्भावानन्तरं नेत्राणां शतेन मुनीन् संस्तोतृन्
संस्मर्त्तुं वा निरीक्षिष्यामि द्रक्ष्यामि यद्यस्मात्ततो हेतोः मां देवीं मनुजाः
मनुष्याः । शतमक्षीणि यस्याः सा शताक्षी । बहुव्रीहौ शक्यक्षणोरिति
षच् । षित्वान्ङीप् । तां शताक्षीनाम्नी इति इत्यमनया व्युत्पत्त्या
कीर्तयिष्यन्ति कथयिष्यन्तीत्यन्वयः । अनुदात्तेत्बलक्षणादात्मनेपदस्या-
नियतत्वादीक्षतेः परस्मै पदम् । यद्वा । निरीक्षत इति निरीक्षा । पचा-
द्यच् । निरीक्षां करोतीति णिच् । सनाद्यन्ता इतिधातुत्वात्ष्टृन् इति-
शब्दस्य इत्यमित्याश्रयणात् शताक्षीमित्यनेनासम्बन्धात् । नारदइत्यबोधि
स इत्यादावव्ययेन कर्माभिधानाद्द्वितीयाविरह इव शताक्षीमित्यत्र
द्वितीयाया अभावो न शक्यः ॥ ४३ ॥

एकस्मिन्नेवावतारे एकं नाम प्रादुर्भाव्य द्वितीयनामाविर्भावमाह—

ततोहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।

भरिष्यामिसुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ॥ म. ४८ श्लो. ४४

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि ।

ततइति सार्द्धेन । ततः शताक्षीनामकीर्तनानन्तरं । अहं देवी
आत्मनः देहात्समुद्भव उत्पत्तिर्येषां तैः स्वदेहतः समुत्पाद्यमानैः प्राण-
धारकैः जीवयितृभिः । अखिलं समस्तलोकं भरिष्यामि पोषयिष्यामीत्य-
न्वयः । शाकाख्यः पत्रपुष्पादिः । तथा च स्मृतिः पत्रमूलकरीराग्रफल-
काण्डास्थिरूढकाः । त्वक्पुष्पं कवकं चेति । शाकं दशविधं स्मृतमिति ।
कवकं छत्राकम् । अत्र भृत्रः ऋद्धनोरितीडागमः भरिष्यामीति ।
शाकम्भरीति । तदा शाकैरखिललोकस्य भरणकाले भुवि शाकम्भरीति
विख्यातिं विशिष्टां ख्यातिं प्रसिद्धिमाख्यां वा अहं देवी यास्यामि
प्राप्स्यामीत्यन्वयः । शाकमिति मान्तं विभक्तिप्रतिरूपकमव्ययम् ।
विभर्तीतिभरिः । सर्वधातुभ्यङ् । कृदिकारादक्तिन् इतिङीप् । सुप्सु-

पेति समास इति प्राञ्चः । वैवस्वतमन्वन्तर एव चत्वारिंशत्तमे युगे शताक्षीशाकम्भर्योरवतारः । यच्च लक्ष्मीतन्त्रे—तस्मिन्नेवान्तरे शक्र चत्वारिंशत्तमे युगे इत्युपक्रम्य शाकम्भरीं स्तुवन्ध्यायञ्जक्र सम्पूजय-
त्रमन् । अक्षयामवन्तुते भूतिमन्नपानं भवान्तरे इति ॥ ४४ ॥

तत्रैवावतारे तृतीयं नाम तदुत्पत्तेरन्वर्थतां चाह—

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ॥ म. ४९ श्लो. ४५

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।

तत्रैवेति । तस्मिन्नेवावतारे इत्यर्थः । दुः दुस्तेन गम्यते प्राप्यते पुरोडाशादिभागोनेनेति दुर्गमः । गमेश्च पुंसि संज्ञायां घः प्रायेणेति घः । दुर्गम इति आख्या संज्ञा यस्य तं दुर्गं । दुर्गम इति च नामद्वयमेकै-
वासुरस्येतिदुर्गशब्दानुक्तैर्न्यूनतादूषणं न शङ्क्यमिति प्राञ्चः । दुर्गं कोटे दुर्गमे स्यादिति हैमाद्दुर्गदुर्गमयोः पर्यायत्वाद्दुर्ग एवदुर्गमः । स आख्या अभिधानं यस्येत्यर्थान्न दोष इति गोविन्दराजः । तं दुर्गनामानं महासुरं वधिष्यामीत्यर्थः । वध हिंसायां ततो लुटि वधिष्यामीति रूपम् । ततस्तस्माद्दुर्गवधाद्धेतोः विख्यातं प्रसिद्धं मे मम दुर्गा देवीति चतुरक्षरं नाम भविष्यति । दुर्गमसुरं आदेवयति रोदयति इति दुर्गा देवी । दिव्यु परि देवने । ततः कर्मण्यणन्तान्डीप् । अयं दुर्गमो रुरुपुत्रः पुरुषान्न मे मृतिरिति ब्रह्मणोलब्धवरः । तद्वधार्थमस्यावतारः । अत्र शाकम्भरीदेव्यवतारोऽष्टाविंशे कलियुगे इति ज्ञेयम् । वामनपुराणे यथा-
भूयः सुरास्तिष्ययुगे निराशिनी निरीक्ष्य मारीव गृहे शतक्रतोः । सम्भूय देव्यामितसत्यधामया सुरा भविष्यामि शाकम्भरीति इति भगवत्यैवानु-
ज्ञानात् ॥ ४५ ॥

तृतीयावतारमाह द्वाभ्यम्—

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ॥ म. ५० श्लो. ४६

रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात् ।

पुनरिति । यदा हिमाचले हिमाद्रौ बिभ्यत्यस्मादितिभीमंरमि-
त्यर्थः । भीमादयोऽपादाने इति निपातः । रूपमाकृतिं कृत्वा विरचय्य
रक्षोभ्यो भीतानां मुनीनां त्राणस्य रक्षणस्य कारणाद्धेतोः रक्षांसि
निशाचरान् अहं भक्षयिष्यामीति गौडपाठः । क्षययिष्यामीत्यन्तस्थय-
द्वयविशिष्टमिति दाक्षिणात्याः पठन्ति । अत्र पाठे क्षयं प्रापयिष्यामीत्यर्थः ।

प्रातिपदिकाद्वात्वर्थे बहुलमिष्टवच्चेति णिजन्तात्लट् ॥ ४६ ॥

तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ॥ म. ५१श्लो. ४७

भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति ।

तदेति । भीमरूपेण रक्षःक्षोभकाले सर्वे मुनयः मरीच्यादयः । आसमन्तान्नाम्नाः प्रह्वामूर्तयः कायायेषां ते आनम्रमूर्तयः सन्तः मां देवीं स्तोष्यन्ति वाचा पूजयिष्यन्ति । तत्तस्माद्धीमरूपेण निशाचरभक्षणाद्धेतोः विख्यातं प्रसिद्धं भीमेन रूपेण आसमन्तादीव्यति क्रीडते इति भीमा देवी इति मे नाम आख्या भविष्यति सम्पत्स्यते इत्यर्थः । भीमशब्देन आदेवीशब्दः समस्यते । तृतीया तत्कृतार्थेनेतिसूत्रे तृतीयेति योगविभागात् ॥ ४७ ॥

तुरीयावतारमाह युग्मेन—

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ॥ म. ५२श्लो. ४८

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वा सङ्ख्येयषट्पदम् ।

यदेति । द्वाभ्याम् । अरुणः इति आख्या नाम यस्य सः अरुणाख्यः कश्चिद्दानवः यदा यस्मिन्काले त्रैलोक्ये त्रिलोक्यां महाबाधां महतीं पीडां करिष्यति सम्पादयिष्यति । तदा तस्मिन्काले असंख्येयाः संख्यातुमशक्याः षट्पदाभ्रमरायत्र रूपे इत्यसंख्येयषट्पदम् । भ्रमराणां पुञ्जीभूतानामिदं भ्रामरं । तस्येदमित्यण् । रूपमाकारं कृत्वा सम्पाद्येत्यर्थः । अरुणाख्य इति प्रामाणिकः पाठः । यदाह वामनपुराणे यदारुणाख्यो भविता महासुरस्तदा भविष्यामि हिताय देवताः । महालिरूपेण विनष्टजीवितं कृत्वा समेष्यामि पुनस्त्रिविष्टपमिति । क्वचिदरुणाक्ष इति पाठः । तत्र ऋच्छते इत्यरुणः । अरुणे अव्यक्तरागे अक्षिणी नेत्रे यस्य सः अरुणाक्षः । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच् । अव्यक्तरागस्त्वरुण इत्यमरः ॥ ४८ ॥

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ॥ म. ५३श्लो. ४९

भ्रामरोति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ।

त्रैलोक्यस्येति । चतुर्वर्णादित्वात्स्वार्थं ष्यञि रूपम् । त्रयाणां लोकानां हितार्थाय । त्रैलोक्यस्य हितार्थायेति छान्दसी षष्ठी । अन्यथा हितयोगे चेति चतुर्थी स्यात् । महासुरमरुणाख्यं वधिष्यामि हनिष्यामि । ततः किमित्यसमाह—भ्रामरोति च पुनः तदा अरुणाख्यवधकाले

लोकाः जनाः सर्वतः सर्वत्रैत्यर्थः । सार्वविभक्तिकस्तसिः । भ्रमराणां
पुञ्जीभूतानां आकृत्या भ्रामरी असंख्यभ्रमरमयमूर्तित्वात् । तस्येद-
मित्यणन्ताद्विड्ढेतिङीप् । भ्रामरीनाम्ना स्तोष्यन्ति वाचा पूजयिष्यन्ति ।
भ्रामर्याः षष्ठितमचतुर्युगेऽवतार इति लक्ष्मीतन्त्रे ॥ ४६ ॥

देव्यवताराणामानन्त्यात्साकल्येन वक्तुमशक्यत्वात्स—

ङक्षिप्यावतारनिरूपणमुपसंहरति ।

इत्थं यदा यदा बाधादानवोत्थाभविष्यति ॥ म. ५४ श्लो. ५०

तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसङ्क्षयम् ॥ म. ५५

इत्थमिति । इत्थं शुम्भनिशुम्भप्रकारेण यदा यदा यस्मिन्यस्मिन्-
काले दानवेभ्यः दनोरपत्येभ्यः उत्तिष्ठति उत्थास्यति वेति दानवोत्था
मुपिस्थ इति कः । दानवेभ्यः समुद्भवेत्यर्थः । बाधा पीडा भविष्यति
जनिष्यते तदा तदा तस्मिस्तस्मिन्काले अवतीर्य प्रादुर्भूय अरीणां
शत्रूणां सङ्क्षयं नाशं करिष्यामीति प्रतिज्ञा । अत्र प्रतिज्ञातभाव्यवतार-
सूचके वामनपुराणीयपद्ये सङ्गृह्यते । भूयो भविष्याम्यसृगुच्छितानना
हराननस्वेदजलोद्भवा सुराः । अन्धासुरस्य प्रतिपेक्षणे रता नाम्ना
प्रसिद्धा भुवनेऽथ चर्चिका । भूयोऽरिपक्षपणाय विन्ध्ये देवाभविष्याम्य-
षिरक्षणार्थम् । दुर्वृत्तचेष्टान्विनिहत्य दैत्यान्भूयः समेष्ट्यामि सुरालयं
हीतिशिवम् ॥ ५० ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे
नारायणीस्तुत्यर्थसंग्रहोनामैकादशोविश्रामः ।

आदितः षोडशोविश्रामः ॥ १६ ॥

अथ द्वादशाध्यायारम्भः ॥

तत्र द्वादशाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

अष्टत्रिंशच्छ्लोकयुक्ते द्वादशे शृणु पार्वति । प्रथमो देव्युवाचेति
श्लोकामन्त्रास्ततः परम् ॥ १ ॥ अष्टाविंशतिसंख्यातास्ततो ह्यर्द्धात्मकः
पुनः । एवं त्रिंशत्तमश्चाथो ऋष्युक्तिश्च ततोऽर्द्धकम् ॥ २ ॥ ततो नव
श्लोकमन्त्राश्चत्वारिंशैकसंयुताः । सर्वे मन्त्राः कामदुधश्चण्डिकावाक्स्व-
रूपिण इति ॥ ३ ॥

देव्युवाच ॥ म. १ ॥

अथ स्तवेषु सकामनिष्कामभजनप्रवृत्तये भगवती स्वयमेव
तेषां स्तवानां चतुर्वर्गपूरकत्वमाशीर्मुखेनाचष्ट—

अत्र यद्यपि पूर्वाध्यायचरमश्लोकपर्यन्तं देवान्देव्येव तेषां भविष्य-
द्भूयनिवर्तनमाह, नान्यस्योक्तिस्तदन्तरास्तीत्यत्राध्यायादौ देव्युवाचेति-
पदाभ्यां न परोक्तिप्रस्तावा दिव्यावर्त्तनं क्रियते, तथापि मध्ये देवीस्तुति-
प्रतिपादकाध्यायपरिसमापनादेतत्पर्यन्तमेव देवी देवतासंवादइत्येता-
वच्छङ्कानिवृत्तये अप्रक्रान्तस्तव त्रयमाहात्म्यमभिधातुं पूर्वप्रक्रान्तदेव-
देवीसंवादस्मरणाय देव्युवाचेत्युक्तम् । यत्तु पूर्वं देवान्प्रत्येव देव्याउक्तिः
साम्प्रतं पुनरन्यान्प्रति सेति बोधयितुं पुनर्देव्युवाचेत्युक्तमेभिरित्यादि
साक्षाष्टाविंशतिश्लोकैः ।

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।

तस्याहं सकलां बाधां शमयिष्याम्यसंशयम् ॥ म. २ श्लो. १

एभिरिति । ननु साम्प्रतं युष्माभिः स्तुतयो याश्चेति पर्यालोचनया
देवानामेव सम्बोध्यत्वलाभात् । न हि युष्मच्छब्दार्थो देवान्यः तत्कर्तृक-
स्तुतेरत्रानिबन्धात् । यः नरः समाहितः एकाग्रचित्तः पूर्वमुद्दिष्टैर्मधुकैट-
भवधादिलक्षणेः एभिः त्रिभिः स्तवैः स्तोत्रैः च पुनः नित्यं सर्वकालं
अविकल्पितं वा यथास्यात्तथा मां चण्डिकां स्तोष्यते तस्य प्राणिनः
सकलामशेषां बाधां पीडां शमयिष्यामि नाशयिष्यामि । अस्मिन्नर्थे
असंशयं संशयाभावः । अर्थाभावेऽव्ययीभावः । क्रियाविशेषणं वा ।

स्तोष्यत इत्यत्र कर्तृगे फले स्तोत्रित्वादात्मनेपदम् समाहितः समाधिस्थे
श्रुतेऽपीति हैमः ॥ १ ॥

सामान्यवक्तव्यमर्थं विवेचयन्ती नित्यमित्यनेन सर्वकालप्राप्तं
स्तवकीर्तनमशक्तानामपि पर्वादिविशेषकालेऽपि
स्तवपाठं भगवत्यनुजानीते ॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ।

कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥ म. ३ श्लो. २

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।

श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ म. ४ श्लो. ३

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिदुष्कृतोत्था न चापदः ।

भविष्यति न दारिद्र्यं नचैवेष्टवियोजनम् ॥ म. ५ श्लो. ४

मधुकैटभेति द्वाभ्याम् । एतदारभ्य श्लोकत्रयमेकान्वयं द्रष्टव्यमिति
प्राञ्चः । एकमेकाग्रं एकस्मिन्वा वस्तुनि चेतो हृदयं येषां तथा विधाः
सन्तः मधुकैटभयोनशिो यस्मिन्ग्रन्थे तं मधुकैटभनाशं नाम प्रथमाध्याय-
रूपं स्तवं । च पुनरर्थे । तथा हननं घातः । हन्तेभवि घञ् । हो
हन्तेरिति कुत्वं हनतश्चेतितः । घातस्य करणं घातनम् । तत्करोतीति
प्यन्ताङ्गावे ल्युः । महिषासुरस्य घातनं यस्मिन्ग्रन्थे तन्महिषा-
सुरघातनं नाम महिषासुरसैन्यवधनिरूपकद्वितीयाध्यायमारभ्य शक्रादि-
स्तुतिनिरूपकचतुर्थाध्यायपर्यन्तमध्यायत्रयात्मकं स्तोत्रम् । तथा हननं
वधः हनो वधश्चेत्यवन्तः । वधोऽस्त्यस्मिन्ग्रन्थे प्रतिपाद्यत्वेनेति वधो
ग्रन्थः । अशंआदित्वादच् । शुम्भनिशुम्भयोःवधं नाम वधप्रतिपादकं
दुतसम्वादप्रतिपादकपञ्चमाध्यायमारभ्य तद्वधानुस्यूतदेवीदेवसम्वाद-
देव्यन्तद्विप्रतिपादकफलस्तुत्यध्यायपर्यन्तं स्तोत्रम् । सुरथसमाधिवरदान-
प्रतिपादकोऽध्यायस्तुस्तवत्रयरूपैकदेवीमालामन्त्रविषयस्तदङ्गभूतोवेदित-
व्यः । शुम्भनिशुम्भयोरिति । द्विवचनेन वधद्वयं सूच्यते । तेन वधानां
वैषम्यादष्टम्यादिदिनत्रयेण यथाक्रमकीर्तनसङ्कापि दूरीकृता । भक्त्या
श्रद्धातिशयेन । महान्तः आत्मानः अवतारशरीराणि यस्याः सा महात्मा
बह्ववतारा तस्याभावः कर्म वा माहात्म्यं । अष्टम्यां तिथौ चतुर्दश्यां
च तिथौ विशेषानुक्तेरुभयपक्षे ये कीर्तयिष्यन्ति पठिष्यन्ति । कृतसं-
खन्दने । अस्मालूट् । श्रोष्यन्ति च । वाचकग्राहणद्वारेतिभावः । तेषां

नराणां दुःखफलकं कर्मदुष्कृतम् । इगुपधेतिकः । न किञ्चित् न किमपी-
त्यर्थः । दुष्कृतात्पापादुत्तिष्ठन्त्याविर्भवन्तीति दुष्कृतोत्थाः । सुपिस्थ
इतिकः । आपदः विपक्षाश्च न भवन्तीति शेषः । दरिद्रातीति दरिद्रो-
ऽकिञ्चनः । दरिद्रा दुर्गता । पचाद्यच् । तस्य भावः दारिद्र्यम् निह्नन-
त्वम् । भावे ष्यञ् । न भविष्यतीति । तथैव तेनैव प्रकारेण इष्टैरभि-
लषितैर्वियोजनं विश्लेषो नैव भविष्यति ॥ २-४ ॥

फलान्तरमाह—

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ।

न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति ॥ म. ६ श्लो. ५

शत्रुत इति । तस्य एतन्मदीयमाहात्म्यं कीर्तयिष्यतः श्रोष्यतश्च
पुंसः शत्रुतः रिपुभ्यः दस्युतो वा चोरेभ्यश्च । समुच्चये वा शब्दः । भयं
कदाचित् कदापि न सम्भविष्यति नोत्पद्यते । एवं तस्य राजतः नृपेभ्यः
भयं न । तथा शस्त्रमायुधम् । अनलोऽग्निः । तोयौघो जलप्रवाहः । तेषां
समाहारः शस्त्रानलतोयौघम् । सर्वोऽपि द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवतीति
वचनादेकवद्भावः । यद्वा शाकपाथिवादिः । तस्माद्भूयं न कदाचिद्भवि-
ष्यतीति सर्वत्र योज्यम् । तस्येति गौडाः । तेषामिति दाक्षिणात्याः ।
भोत्रार्थानां भयहेतुप्रभृतीनामपादानता ॥ ५ ॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।

श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत् ॥ म. ७ श्लो. ६

तस्मादिति । हि तदिति गौडपाठः । महदिति दाक्षिणात्यपाठः ।
हि यस्मात्तदेतन्माहात्म्यं परं स्वस्त्ययनमस्ति तस्मात्समाहितैः पुंभिः
पठितव्यं श्रोतव्यं चेत्यन्वयः । वाञ्छितार्थसाधनत्वाद्धेतोः समाहितैरेकाग्र-
चित्तैः पुंभिः परं स्तवान्तरादुत्कृष्टं उत्कृष्टफलदं वा । यद्वा क्षेमपुण्यवाचि
स्वस्तीत्यव्ययम् । तथा च स्वस्तिकरमयनं स्वस्त्ययनम् । शाकपाथिवादिः ।
ऐहिकामुष्मिकफलसाधनभूतसरणिरित्यर्थः । मम देव्याः एतन्माहात्म्यं
माहात्म्यप्रतिपादकग्रन्थसन्दर्भरूपं भक्त्या श्रद्धातिशयेन मम सर्वकालमेव
पठनीयम् । तथा भक्त्या सदा ब्राह्मणद्वारा श्रोतव्यं चेत्यन्वयः । स्व-
स्त्याशीः क्षेमपुण्यादौ प्रकर्षं मङ्गलेऽप्यतीत्यमरः । अयनं वर्तमानागिध्व-
पन्थानः पदवी सृतिरित्यमरः । महदिति पाठे महत्पूजनीयं परमित्यस्य
विशेषणम् ॥ ६ ॥

उपसर्गानि शेषास्तु महामारीसमुद्भवान् ।

तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥ म. ८ श्लो. ७

उपसर्गानिति । मम देव्याः माहात्म्यं कर्तुं पठतां शृण्वतां च पुंसामिति प्रकरणतो लभ्यते । महामारी जनक्षयः । तस्याः सकाशात्समुद्भवउत्पत्तिर्येषां तान् उपसर्गानुपद्रवान् शमयेत् नाशयेत् । उपसर्जनमुपसर्गः । उपसृज्यते वा उपसर्गः । घञ् । उपसर्गः पुमान् रोगभेदोपप्लवयोरपीति विश्वः । तु पुनः तथा तेनैव प्रकारेण उत्पत्तनमुत्पातः । पठ् लृ गतौ । घञ् । उत्पत्ततीत्युत्पातः अशुभसूचको महाभूतविकारः ज्वरलूतादिः तं शमयेत् । कीदृशमुत्पातं त्रिविधं दिव्यान्तरिक्षभौमभेदात् । तत्र दिव्यः धूमकेत्वादिः दिविभवत्वात् । आन्तरिक्षः अनभ्रगर्जनविद्युन्निघातादिः अन्तरिक्षभवत्वात् । भौमः भूकम्पविवरादिः भूमिभवत्वात् । यद्यपि अशुभसूचको महाभूतविकारउत्पातस्तथापि शुभसूचकोत्पातस्यासमनीयत्वादशुभसूचकमहाभूतविकार एव महोत्पात इत्यवधेयम् । किञ्च भूकम्पादेरुत्पातस्याल्पकालावस्थायित्वात्तच्छमनं स्वत एव सिद्धमिति । सदन्तबालोत्पत्त्यादेरुत्पातस्य च दुर्गामाहात्म्यपठनश्रवणादिना तच्छमनमनन्वितं सन्मुख्यार्थबाधादुत्पातशब्देनोत्पत्तिर्जन्यमाणं रिष्टमुच्यते । तथा चोत्पातजन्यारिष्टं शमयेदित्यर्थः । कीदृशमुत्पातजन्यारिष्टं तिस्रोविधा आधिव्याधयः प्रकारा यस्य हेतावुत्पाते तत्रिविधं त्रिविधोत्पातजन्यं रिष्टम् । अपि च । अजन्यं क्लीबमुत्पात उपसर्गः समन्त्रयमित्यभिधानादुपसर्गणामप्युत्पातपदेनैव संग्रहः यद्यपि पृथगुक्तिरन्याय्या तथापि हैमाभिधानादुपद्रवार्थकोपसर्गग्रहणान्नैकार्थकतेति न पुनरुक्तिदोषः । अथवान्येषामुत्पातानां सदन्तबालोत्पत्त्यादीनामल्पविषयत्वान्महामार्युत्पातस्य सर्वजनविषयत्वात्पृथगुपन्यासः । यद्वा उत्पत्तयकस्मादित्युत्पातो दुःखं तस्य त्रिविध्यं आध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकभेदेन । तत्राध्यात्मिकं द्विविधं शारीरं मानसं च, शारीरं वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यनिमित्तं । मानसं कामक्रोधलोभमोहेर्ष्याविषाददर्शननिबन्धनम् । सर्वं चैतदान्तरोपायसाध्यत्वादाध्यात्मिकं दुःखम् । बाह्योपायसाध्यं दुःखं द्वेधा । आधिभौतिकमाधिदैविकं च । तत्राधिभौतिकं मानुषपशुपक्षिसरीसृपस्थावरनिमित्तं । आधिदैविकं यक्षराक्षसविनायकग्रहादिनिबन्धनमिति ॥ ७ ॥

यत्रै तत्पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम ।

सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ म. ९ श्लो. ८

यत्रेति । यत्र यस्मिन्मम आयतने अत्रेत्यायतनं यजनस्थानं अर्था-
देवगृहं । यती प्रयत्ने आङ् पूर्वः । अधिकरणे ल्युट् । ममआयतने
मदीययजनस्थाने । एतच्चरित्रत्रयरूपं दुर्गामाहात्म्यं लोकैः सम्यगनु-
नासिकोच्चारणाद्यष्टादशदोषराहित्येन अर्थावबोधपूर्वकं पठ्यते व्यक्त-
मुच्चार्यते अहं सदा सर्वस्मिन्काले तदायतनं न विमोक्ष्यामि न
त्यक्षामि । तत्र तस्मिन्नायतने मे मम सन्निधेर्भावः सान्निध्यनैकट्यं स्थितं
निश्चयेन स्थितिर्मदित्यर्थः । चैत्यमायतनं तुल्ये इत्यमरः । अष्टादशदोषाः
पाठक्रमे पाणिनीयशिक्षायां प्रसिद्धाः । षड्दोषास्तत्रावश्यतो हेयाः । ते
च गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः । अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च
षडेते पाठकाधमाः । माधुर्यमक्षरव्यक्तिः । पदच्छेदस्तु सुस्वरः । धैर्यं
लयसमर्थं च षडेते पाठकागुणाः । अष्टादशदोषा अपि तत्रैव शङ्कितं
भीतमुद्धृष्टमव्यक्तमनुनासिकम् । काकस्वरं शिरसिगं तथा स्थानविव-
जितम् । उपांशुदष्टं स्वरितं निरस्तं विलम्बितं गद्गदितं प्रगीतम् ।
निष्पीडितं चास्तपदाक्षरं च वदेन्न दीनं न तु सानुनास्यमिति ॥ ८ ॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ।

सर्वं ममेतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ म. १० श्लो. ९

बलिप्रदाने इति देवतायै उपहारीकृतो महिषच्छागादिर्बलिः ।
तस्यप्रदाने समर्पणे । यद्वा प्रदाने खण्डने ददातेत्येवात्युष्टिरूपम् । पूजायां
गन्धाद्युपचारसमर्पणे । अग्निकार्यं हवने, देवीमाहात्म्यरूपमालामन्त्र-
पुरश्चरणप्राप्तविहितहोमे वा । महोत्सवे पुत्रोत्पत्तिविवाहादौ । द्वादश-
मासकर्तृकमहोत्सवे वा । ते यथा—चैत्रे वसन्तोत्सवदमनार्चनादिः । वैशाखे
वारणपुष्पप्रचायिकरूपः । ज्येष्ठे जलक्रीडारूपः । आषाढे इन्द्रध्वजो
त्थापनरूपः । श्रावणे पवित्रार्पणदोलोत्सवरूपः । भाद्रे इन्द्रमणिधनु-
रर्चनोत्सवः । आश्विने शारदनवरात्रोत्सवः । मार्गशीर्षे मनूद्यो-
त्सवः । पौषे निधिपूजोत्सवः । माघे मेरुत्सवः । फाल्गुने गन्धर्वोत्सवः ।
एते धर्मशास्त्रपुराणादिषु प्रसिद्धाः । तस्मिन् बलिप्रदानादिमहोत्सवा-
न्तेषु सर्वेषु । सर्वं अन्यूनं मम देव्याः एतच्चरितं उच्चार्यं पठनीयं
एवकारो भिन्नक्रमः । उच्चार्यमित्यर्थः । श्राव्यं च अवश्यं श्रोतव्यं च ।
श्रुवः ओरावश्यके इति ण्यत् । उत्सवोऽमर्षे महेऽपि च । इच्छा प्रसर-
उत्सेके इति हैमः ॥ ९ ॥

जानताजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम् ।

प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या बह्निहोमं तथाकृतम् ॥ म. ११ श्लो. १०

जानतेति । तथा उपासनाकल्पोक्तेनेति कर्तव्यताप्रकारेण बलि-
पूजां बलिना पशुविशसतेन सहितां पूजाम् । शाकपार्थिवादिः । बलि
पूजोपलक्षितं क्रियाक्रमं जानता विधिज्ञेन पुंसा । बलिपूजामजानता
अविज्ञेन पुंसा कृतां सम्पादितां अर्थाद्बलिपूजामेव, तथा कृतं सम्पादितं
बह्निहोमं अग्नौ समन्त्रप्रक्षिप्तं त्रिमध्वादिहवनद्रव्यं च प्रीत्यादरेण अहं
देवी प्रतीच्छिष्यामि गृहीष्यामीत्यर्थः । इच्छां प्रतिगतः प्रतीच्छः ।
गोस्त्रियोश्चिति ह्रस्वः । तत् आचारे विवपि सनाद्यन्ता धातव इति
धातुत्वे प्रतीच्छधातोर्भविष्यति । काले लुडुत्तमपुरुषैकवचने स्यतासील्ल-
लुटोरिति स्यप्रत्यये अतोलोपे द्वडागमे षत्वे च रूपम् । नागेशस्तु ।
प्रतीच्छिष्याम्यङ्गीकरिष्यामि चवर्गमध्यः । धातुगणेबाहुलकोक्तेः प्रती-
च्छधातुः प्रतिग्रहणार्थ इत्याह । अन्येऽप्येवमाचख्युः । करोपहारयोः
पुंसि बलिः प्राण्यङ्गजे स्त्रियामित्यमरः । पूजामिति । पूजनं पूजा सत्कार-
विशेषः । पूज पूजायाम् । चुरादिः । षिद्धिदादिभ्योऽङ्इत्यङ् । कृतमिति
सिंहावलोकनन्यायेन बलिना सम्ब्रध्यते ॥ १० ॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ।

तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ म. १२ श्लो. ११

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।

मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ॥ म. १३ श्लो. १२

शरत्काले इति द्वाभ्याम् । या च प्रसिद्धा वर्षेण निवृत्ता वार्षिकी
सांवत्सरिकी । तेन निवृत्तमित्यधिकारे कालाठ्ठञ् टिड्ढेति ङीप् ।
महापूजा दुर्गोत्सवलक्षणा । शरत्काले आश्विनशुक्लप्रतिपदमारभ्य
नवमीपर्यन्तं लोकैः क्रियते केचित्तु या महापूजा शरत्काले क्रियते या च
वार्षिकी वर्षभवा वार्षिकी चैत्रशुक्लनवरात्रे महापूजा क्रियते तत्र वर्ष-
शब्देन द्वादशमासात्मकवत्सराभिधानात्समुदितेन तदभावान्मासावयव-
ग्रहणपर्यवसानं प्रथमत्यागे कारणाभावाच्चैत्रनवरात्रमपि संगृहीतं
भवति । वर्षेण भवा वार्षिकीतिव्युत्पत्तेरित्याहुः । तस्यां शरत्काल-
सम्बन्धिपूजायां वसन्तकालसम्बन्धिपूजायां च विषये ममदेध्याश्चरितत्रय-
लक्षणमेतन्माहात्म्यं सम्पूर्णं भक्त्या श्रद्धातिशयेन समन्वितो युक्तः मनोः

कश्यपतृतीयपत्न्या अपत्यं मनुष्यः । मनोजातिवृत्तौषुकं च । इति यत् । मनुष्यो नरः श्रुत्वा पठित्वा च मत्प्रसादेन मन्त्रिचत्तानुकूल्येन कृपया वा सर्वाभिरावाधाभिः पीडाभिः विनिर्मुक्तः त्यक्तः । आवाधा वेदना दुःखमिति हलायुधाभिधानात् पीडा बाधा व्यथा दुःखमित्यमराभिधानाच्च आवाधाशब्दस्य दुःखार्थावगतेः । धनं हिरण्यरौप्यादि । धान्यामष्टादशधा । सुताः पुत्राः तैरन्वितो भविष्यतीत्यन्वयः । अत्र सर्वाबाधाराहित्यादिफले संशयः । सन्देहो न कर्त्तव्य इति शेषः । शास्त्रप्रामाण्यकीर्तनमेतत् । सर्वबाधेति दाक्षिणात्यपाठः । धनधान्यसमन्वित इत्यपि दाक्षिणात्यपाठः ॥ ११-१२ ॥

श्रुत्वा ममेतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।

पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥ म. १४ श्लो. १३

श्रुत्वेति । मम देव्या एतन्माहात्म्यंचरित्रत्रयलक्षणं श्रुत्वा ब्राह्मणेन वाच्यमानमाकर्ण्य चात्पठित्वापि पुमान् युद्धेषु निर्भयोजायते तथा तस्मिन्स्त्वैव मम शुभाः जगद्धिताः उत्पत्तयः उत्पत्तीः अवतारान् श्रुत्वा युद्धेषु निर्भयो जायते । उत्पत्तयइति व्यत्ययाद्द्वितीयार्थे प्रथमा । तथा मम पराक्रमं नरः श्रुत्वा पुमान् युद्धेषु निर्भयो जायते इत्यन्वयः । युद्धेष्विति बहुवचनमर्थान्तरेष्वपि निर्भयत्वार्थम् । निष्क्रान्तो भयान्निर्भयः । निरादयः क्रान्ताद्यर्थे । निर्निश्चयनिषेधयोः शक्त्युद्योगौ पराक्रमौ । तयोत्पत्तीः शुभाः पृथगिति दाक्षिणात्यपाठः ॥ १३ ॥

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते ।

नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥ म. १५ श्लो. १४

रिपव इति । ममेति षष्ठ्यन्तप्रतिरूपकमव्ययम् । मम मत्सम्बन्धि माहात्म्यं यस्मिन्ग्रन्थे तत् मम माहात्म्यं मन्माहात्म्यप्रतिपादकं स्तोत्रं शृण्वतां पुंसां रिपवः शत्रवः संक्षयं नाशं यान्ति प्राप्नुवन्ति । च पुनः मम माहात्म्यं शृण्वतां पुंसां कल्याणं मङ्गलं उपपद्यते सिद्ध्यति । उप समीपं गच्छतीति वा । पद गतौ दिवादिरात्मनेपदी । च पुनः मम माहात्म्यं शृण्वतां पुंसां कुलं वंशो नन्दते वर्द्धते । दृ णदि समृद्धौ । आत्मनेपदमार्थम् । अन्ये तु नन्दते इत्यत्र अन्यस्य योग्या वृद्धि प्राप्नोति अर्थात्कर्त्तरि कर्म व्यतिहारे इति सूत्रेण क्रियाव्यतिहारे आत्मनेपदमिति रामाश्रमादयः । कुलं गृहे च वंशे चेति कोशान्तरम् ॥ १४ ॥

शान्ति कर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।

ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥ म. १६ श्लो. १५

शान्तीति । सर्वत्र अखिले उत्पातादिसूचितोपद्रवाणां शान्ति-
कर्मणि निवर्तनविषये तथा तेनैव प्रकारेण दुःस्वप्नस्य अनिष्टसूचक-
स्वप्नस्य दर्शने अनुभवे च पुनः उग्रासु तीव्रासु अनिष्टस्थानस्थितासु
गृह्णन्तीति ग्रहाः सूर्यादयः । विभाषाग्रह इति सूत्रेण तत्र व्यवस्थित-
विभाषाश्रयणाज्जलचरादेर्ग्रहणम् । अप्रत्यये ग्रहा इति रूपम् । तेभ्यः
जनितासु उत्पादितासु पीडासु दुःखेषु मम माहात्म्यं माहात्म्यप्रतिपादक-
मेतत्स्तोत्रं शृणुयादित्यन्वयः । ग्रहो ग्रहणनिर्वन्धानुग्रहेषु रणोद्यमे ।
उपरान्ते पूतनादावादित्यादौ विधुन्तु इति हैमः ॥ १५ ॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।

दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ म. १७ श्लो. १६

उपसर्गा इति । उपसर्गाः उत्पाताः अतिवृष्ट्यनावृष्ट्यादयः ते
शमं प्रकृति नाशं वा यान्ति । तदेतत् शान्तिकर्मणि देवीमाहात्म्यस्य
फलमुक्तम् । च पुनः दारुणास्तीव्राः अष्टमादिस्थानस्थितग्रहाणां कृताः
पीडाः शमं यान्तीत्यनेन ग्रहपीडासु मन्माहात्म्यश्रवणस्य फलमुक्तम् ।
अ पुनः नृभिः मानुषैः दृष्टं दुःस्वप्नं दृष्टोऽनिष्टसूचकः स्वप्नः सुस्वप्नमुप-
जायते । शोभनः स्वप्नो भवतीत्यनेन तथा दुःस्वप्नदर्शने मन्माहात्म्यं
शृणुयादित्यस्योत्तरमुक्तम् । दुःस्वप्नं सुस्वप्नमित्यत्र क्लीबत्वमार्षम् ।
न चायमर्द्धादिस्तत्र पाठाभावात् । नागेनस्तु । दुःस्वप्नसुस्वप्नशब्दौ
तत्फले इति नपुंसकत्वमाह । शान्तनुस्तु दुष्टः स्वप्नोयस्मिन्फले
तद्दुःस्वप्नं फलं शोभनः स्वप्नो यस्मिन्फले तत्सुस्वप्नं फलं उपजायते
सम्पद्यते । दुःस्वप्नं सूचितं यद्दृष्टं फलमेव तत्सुस्वप्नसूचितमेव फलं
सम्पद्यते । मणिमन्त्रौषधदेवताप्रभावस्यातर्कितप्राप्यफलत्वात् । एवं च
स्वापः संवेश इत्यभिधानाश्रित्य न पुंस्त्वोऽपि स्वप्नशब्दो बहुव्रीहौ फले
न्यपदार्थे क्लीबत्वेऽपि न क्षतिरित्याह । रामाश्रमादयोऽपि दुष्टः स्वप्नो
यस्मिन्ननिष्टे शोभनः स्वप्नो यस्मिन्नभिष्टे इति व्युत्पत्त्या नपुंसकेऽपि
प्रयोगसम्भवादित्याहुः । दुःस्वप्नश्च नृभिर्दृष्टः सुस्वप्न उपजायते इति
दाक्षिणात्यपाठः ॥ १६ ॥

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।

संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ म. १८ श्लो. १७

बालग्रहेति । बालग्रहाः पूतनादयः क्षुद्रग्रहाः, नियतं बालानामेव ग्रहाइति वा । तैरभिभूतानामाक्रान्तानां । बल्यन्ते इति बालाः । बल सञ्चलने । घञ् । ज्वालादिगणो वा । बालोऽज्ञेऽस्वेभपुच्छयोः । शिशो ह्रीविरकचयोर्बाला तु त्रुटियोषितोरिति हैमः । तेषां शान्तिकारकमुप-
शमनकारकम् । सर्वं समैतन्माहात्म्यं पठनादेवेत्युत्तरेणान्वयः । च पुनः
संहन्यते इति सङ्घातोभेलनम् । हन्तेर्घञ् । हनस्तोऽचिण्णलोः । होहन्ते-
रितिघः । सङ्घातः पुंसि घाते च संहतौ नरकान्तरे इति हैमः । नृणां
नराणां सङ्घातस्य मेलनस्य भेदे विघट्टने सति मेघतीति मित्त्रम् ।
त्रिमिदास्तेहने । अमिचिमिदिशसिभ्यः इतिक्त्रः । मित्त्रस्य भावः मैत्री ।
युधादित्वादण् । टिड्ढेतिडीप् । तस्याः करणं साधकतमम् । सर्वं समैत-
न्माहात्म्यं पठनादेवेत्युत्तरेणान्वयः ॥ १७ ॥

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।

रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥ म. १९ श्लो. १८

सर्वं समैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।

दुर्वृत्तानामिति । सार्द्धश्लोकेनान्वयः । अशेषाणामखिलानां दुर्दुष्टं
वृत्तं चरित्रं येषां ते दुर्वृत्ताः दुष्टकर्मणिः । तेषां परमुत्कृष्टं बलं समर्थ्यं
तस्य हानिं नाशं करोतीति हानिकरम् । सर्वं समैतन्माहात्म्यं पठना-
देवेत्यनेनान्वयः । वृत्तं पक्षे चरित्रे त्रिष्वतीते दृढनिस्तले इत्यभिधा-
नात् । हानिकरमित्यत्र कृजो हेतुताच्छील्यानुलोम्येविति हेतौ कृजष्टः ।
रक्षन्त्येभ्य इति रक्षांसि माल्यवदादयः । भूतिरस्त्येषामिति भूताः देव-
योनिविशेषाः । अशं आद्यच् । पिशितमश्नन्तीति पिशाचाः घण्टाकर्णा-
दयः । अशं भोजने क्रधादिः । कर्मण्यण् । पृषोदरादिः । एतेषां नाशन-
मदर्शनसाधनम् । सर्वं समैतन्माहात्म्यपठनादेवेत्यन्वयः । नन्वत्र मन्त्रा-
न्तरवत्पुरश्चरणाद्यपेक्षास्तीत्येवकारव्यंग्योऽर्थः । किं भूतं समैतन्मा-
हात्म्यं ममसन्निधेः नैकट्यस्य कारकम् । ममसानिध्यकारणमिति दाक्षि-
णात्यपाठः । तत्र सन्निधेर्भावः सान्निध्यं तस्य कारणं हेतुरिति ॥ १८ ॥

पशुपुष्पार्धधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ म. २० श्लो. १९

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणोयैरहन्निशम् ।

अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्दत्तसरेण या ॥ म. २१ श्लो. २०

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृत्सुचरिते श्रुते ।

पशुपुष्पावर्धधूपैरिति द्वाभ्याम् । पशवः छागमहिषाद्याः । पुष्पन्तीति पुष्पाणि कुसुमानि । करवीरजपाविष्णुकान्तादीनि । पुष्प विकसने । स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुममित्यमरः । अह्यंते पूज्यते अनेनेत्यर्घः । पूजाङ्गतया प्रसिद्धः । अर्हपूजायाम् । हलश्चेति घञ् । अर्घ इति धात्वन्तरं वा । मूल्येन पूजाविधावर्घ इत्यमरहैमौ । अर्घंश्चाष्टाङ्गः । यथा मन्त्रशास्त्रे-आपःक्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलानि च । यवाः सिद्धार्थकाश्चैव अष्टांगोऽर्घः प्रकीर्तित इति । धूपयन्ति सन्तापं भजन्त्यग्नि-संयोगेनेति धूपाः । धूपसाधनान्यगर्वादिद्रव्याणि । धूपसन्तापे । इगु-पधेतिकः । ते च पञ्चाङ्गदशाङ्गषोडशाङ्गादयो मन्त्रशास्त्रे प्रसिद्धाः । गन्धयतीति गन्ध आमोदः यक्षकर्दमादयः । गन्ध गन्धने । पचाद्यच् । गन्धो गन्धक आमोदे लेशसम्बन्धवर्गयोरिति विश्वः । गन्धोऽस्मिन्नस्तीति गन्धश्चन्दनादिद्रव्यम् । गुणवचनेभ्यो मनुपो लुविष्ट इति मनुपो लुप् । शुक्लः पट इतिवत् । दीपयन्तीति दीपाः । प्रसिद्धाः । तथा विशिष्टं प्रान्तीति विप्राः ब्राह्मणाः । प्रा पूरणे । आत इति कः । तेषां उत्तमैः संस्कृतैः भोजनैः षड्रसमयैः । होमैः विविधैर्हवनद्रव्यैः । प्रकृष्टमुक्षणं मन्त्र-पूर्वकं सेकः । याज्ञीयपशुवधश्च । उक्ष सेचने । ल्युट् । परंपराकं शसनं प्रोक्षणं च वधार्थकमित्यमरः । प्रोक्षणं सेकवधयोरिति हैमः । प्रोक्षणाय हिनाः प्रोक्षणीयाः यज्ञोपकल्पितपशवः । तस्मै हितमितिष्ठः । प्रोक्षणीयपदेनैव बलिभूतपशोर्ग्रहणे सिद्धे पशुग्रहणमन्त्रसम्यगर्थकमव्ययम् । यद्वा । प्रोक्षणीयैः पञ्चामृताभिषेकादिभिः । अत्र पशुशब्दो बल्यर्थः । तथा अन्यैश्चेति चकारः समुच्चयार्थः । विविधैर्मनोहारिभिर्नानाविधैः भोजनं भोगः धनानि पालनानि वा । भुज पालनाभ्यवहारयोः । घञ् । भोगः सुखे धने पुंसि शरीरफणकाययोः । पालनेभ्यवहारे च योषिदादिभृतावपीति विश्वः । विविधैरिति लक्षणया सुखसाधनैर्वस्त्रभूषणघृत-धेनुप्रधानैः प्रकृष्टैर्दानैः अह्नि च निशायां चेत्यह्निशमितिसम्बध्यते । अचतुरेति निपातः । एतैः प्रधानभूतैरन्यैरप्युपचारैरह्निशं सम्पाद्यमानैरिति शेषः । वत्सरेण वर्षेण या मे प्रीतिः हर्षः क्रियते सा प्रीतिः सुचरितं मुष्टुचरितं कमयस्मिन्निति सुचरितं तत्सकृदेकवारं श्रुते सति जायते इति शेषः । सहायं चैकवारं च सदार्थं वाव्ययं सकृदित्यभिधानात् । संवत्सरो वत्सरोऽब्दः । मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्ष इत्यमरः ॥१६-२०॥

श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ॥ म. २२ श्लो. २१

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।

श्रुतमिति । मे मम जन्मनामवताराणां चरितत्रयगोचराणां कीर्तनं कथनं श्रुतं सत्पापानि हरति नाशयति । तथा तेनैव प्रकारेण मम जन्मनां कीर्तनं न रोगोऽस्येत्यरोगः अरोगस्य भावः आरोग्यं नैरुज्यम् ब्राह्मणादित्वात्प्यत्र । प्रयच्छति ददाति श्रोतृभ्य इति शेषः । दाणः पाद्माध्मेति यच्छः । तथा भूतेभ्यः देवयोनिविशेषेभ्यः सकाशाद्रक्षां प्राणं करोति । श्रोतणामिति शेषः । भीत्रार्थानां भयहेतुरित्यनेन भूतेभ्य इति पञ्चमी ॥ २१ ॥

युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥ म. २३ श्लो. २२

तस्मिञ्छ्रुते वैरिभ्यो भयं पुंसां न जायते ।

युद्धेष्विति । संग्रामविषयेषु दुष्टाः रागद्वेषादिग्रस्ता ये दैत्यास्तेषां निवर्हणं मारणमेव कर्मपदं अभूदिति शेषः । तस्मिन् श्रुते सति युद्धेषु ततोऽन्यत्र वा वैरिभिः शत्रुभिः कृतं सम्पादितं भयं पुंसां नराणां न जायते । नोत्पद्यते इत्यन्वयः । निपूर्वाद्बर्हहिंसायामिति चौरादिकाद्वातोभवेत्युडिति निवर्हणमिति रूपम् । प्रसापणं निवर्हणं निकारणं विशारणम् । प्रवासनं परासनं निषूदनं निहंसनमित्यमरः ॥ २२ ॥

युष्माभिस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिःकृता ॥ म. २४ श्लो. २३

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ।

युष्माभिरिति । प्रकरणान्मदीयाः स्तुतयः युष्माभिर्द्वैः कृताः देव्या यया तत्तमिदमित्यादयः । याश्च मदीयाः स्तुतयः ब्रह्मर्षिभिः सुमेधसा कृताः । तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमाययेत्यादिरूपाः । पूजाख्यायां बहुवचनम् । याः स्तुतयः ब्रह्मणा सृष्टिकृता कृताः विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीमित्यादि रूपाः । ताः स्तुतयः शुभां रागाद्यनाविलां मतिं बुद्धिं प्रयच्छन्ति । पठद्भ्य इति शेषः । जनयन्तीत्यर्थाश्रयणे पठतामिति शेषः ॥ २३ ॥

अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः ॥ म. २५ श्लो. २४

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीता वापि शत्रुभिः ।

सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ म. २६ श्लो. २५

राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोपि वा ।

आघूर्णितोवा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ म. २७ श्लो. २६

पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे ।

सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपिवा ॥ म. २८ श्लो. २७

स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् ।

अरण्ये इत्यादिश्लोकचतुष्टयमेकान्वयि । अरण्ये वने वर्तमानः प्रकृष्टं अन्तरं प्रान्तरं तस्मिन् दूरशून्येऽध्वनि वापि वर्तमानो नरः मम देव्या एतानि चरितानि यत्रेत्येतच्चरितं देवीमाहात्म्याख्यं स्तवं पठन् सन् सङ्कटात्सङ्कीर्णान्मुच्येतेति तुरीयश्लोकेनान्वयः । दवो वनानलः । तस्यायं दावः दावेन वन्येनाग्निना परिवारितः परितो वेष्टितः दवदावी वनारण्यवह्नी इत्यमरः । वा शब्दः समुच्चये । दस्युभिश्चौरैर्वृतः वेष्टितः । शून्ये निर्जने देशे शत्रुभिर्वैरिभिर्गृहीतश्च ॥ २४ ॥ सिंहेति । सिंहेन केसरिणा व्याघ्रेण शार्दूलेन वा अनुयातः वने वनहस्तिभिररण्यसम्बन्धि-गजैर्वावृत इति पूर्वणान्वयः । सिंहव्याघ्रेत्येतावत्तु तृतीयान्तं पदमिति कस्यचिन्मते तु वने वनहस्तिभिर्वानुयात् इत्यन्वयः । तदा सिंहव्याघ्रे-णानुयात इति पाठः स्यात् क्रुद्धेन राज्ञा वध्यः वधार्योयमित्याज्ञप्तः । अव्ययानामनेकार्थत्वादित्यर्थं वा शब्दः । इतीत्यध्याह्नियते इति मते तु समुच्चये वा शब्दः । बन्धं बन्धनं गतः प्राप्तः निगडादिना बद्ध इत्यर्थः ॥ २५ ॥ आघूर्णित इति । वाशब्दः समुच्चये वातेन च आघूर्णितः । घूर्ण भ्रमणे । क्तान्तः । महार्णवे समुद्रे पोते जलयाने स्थितः । पुनाति पवते वा पोतः । हसिमृगिणितितन् । पोतः शिखौ वहिन्ने च गृहस्थाने च वाससीति विश्वः । भृशमत्यर्थं दारुणे संग्रामे शस्त्रेषु पतत्सु वा । वर्तमान इति शेषः ॥ २६ ॥ सर्वाबाधास्त्विति । घोरासु भीषणासु सर्वासु आबाधासु पीडासु । वर्तमान इति शेषः । वेदनया दुःखेन अभितः अर्दितः हिंसितो वापि । अत्र बाधावेदनयोरेकार्यतया पौनस्वत्येऽपि बाधाकादा-चित्कं दुःखं वेदना निरन्तरं दुःखमिति नासौदोषः । आबाधा वेदनादुःख-मिति हलायुधः । उक्तनानादुःखपरीतो नरः ममैतच्चरितं स्मरन्भावयन् सङ्कटात्सङ्कीर्णान्मुच्यते स्वयमेव । कर्मकर्तरि यगन्तान्मुचेस्तच्च आत्मने पदम् । सङ्कटेति सङ्कटतीति सङ्कटम् । कटे वर्षावरणयोः । अच् । सङ्कटं नातुसम्बाध इत्यमरः ॥ २७ ॥

ननु कान्तारादिभयनाशनं शब्दात्मके देवीमाहात्म्यरूपे
स्तवे कथं सङ्गच्छते इत्याशङ्क्यामाह—

मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा ॥ म. २९ श्लो. २८
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ म. ३०

ममेति । सिंहः आद्यो येषां ते सिंहाद्याः सिंहव्याघ्रवनहस्तिप्रभृ-
तयः पूर्वश्लोकोक्ताः । दस्यवस्तस्कराः वैरिणः शत्रवः । अरण्ये प्रान्तरे
इत्यादिश्लोकोक्ताः । तथा शब्देनान्येऽपि । मम चरितं कर्म स्मरतः पुंसः
सकाशात् दूरादेव दूरतएव पलायन्ते अपगच्छन्ति दूरीभवन्ति । कुतः
मम अचिन्त्यशक्तेः महामायायाः प्रभावात्सामर्थ्यात् । एतत्स्त्वस्मरणा-
दिना तुष्टा अहमेव सकलानर्थनिवृत्तिं करोमीत्यर्थः ॥ २८ ॥

ऋषिरुवाच ॥ म० ३१

एवं विस्तरेण देवीदेवसंवादमुपसंहरन्सुरथमृषिरुवाचेति ।

इत्युक्ता सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमः ॥ म. ३२ श्लो. २९
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ।

इत्युक्तेति । इतीत्यमुक्त्वा व्याहृत्य सा प्रसिद्धा भगवती ऐश्वर्यादि-
मती चण्डस्तीव्रः विक्रमः पराक्रमोयस्याः सा चण्डिका कौशिकी देवानां
पश्यतामित्यनादरे षष्ठी पश्यतो देवाननादृत्यैवेत्यर्थः । यत्रैव पुरोभागे
दृष्टा तत्रैव तस्मिन्नेव प्रदेशे अन्तरधीयत अदृश्यतामगात्स्वयमेवेत्यर्थः ।
यद्वा पश्यतां देवानां तत्रैव पश्यतो देवाननादृत्यैव देवेष्वेव तच्छरीरेष्वेव
स्वयमन्तरधीयतेत्यर्थः । अन्तः पूर्वाद्धातेः कर्मकर्त्तरि लङ् । चण्डस्तु
यमे दासंस्तिकोपने । तीव्रे दैत्यविशेषे चेति हैमः ॥ २९ ॥

ततोऽम्बायामन्तहितायां किञ्जातमित्याह—

तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान्यथापुरा ॥ म. ३३ श्लो. ३०

यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ।

तेऽपीति । ये शुम्भनिशुम्भहृताधिकाराः देवीं स्तुवन्तः स्थिताः
तेपि देव्या विनिहतारयः नाशितवैरिणः यथा पुरा पूर्वस्मिन्काले इव
आतङ्कनमातङ्कः शङ्का सन्तापश्च । तकि कृच्छ्रजीवने । भावे घञ्-
ह्रस्वचेति करणे वा घञ् । आतङ्कान्निर्गताः निरातङ्काः सन्तापरहिता-
इचेत्यर्थः । यज्ञेषु अग्निष्टोमादिषु भागान् अंशान् भुञ्जते इति यज्ञभाग-

भुजः । यज्ञभागान्भुञ्जानाः सन्तः देवाः यथा पुरा शुम्भनिशुम्भोदया-
त्प्रागिव स्वानात्मीयान् अधिकारान् व्यापारान् चक्रुरित्यन्वयः । आतङ्को
रुजि शङ्कायां सन्तापे मुरजध्वनाविति हैमः ॥ ३० ॥

दैत्याश्च देव्या निहतेशुम्भे देवरिपौ युधि ॥ म. ३४ श्लो. ३१

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन्महोद्रेऽतुलविक्रमे ।

निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ म. ३५ श्लो. ३२

दैत्या इति युधि युद्धे देव्या कौशिक्या तस्मिन्प्रसिद्धे जगन्ति
विध्वंसयति तच्छीले जगद्विध्वंसिनि । महोद्रे अतिरौद्रे अतुलविक्रमे
अनयशक्तौ देवानामिन्द्रादीनां रिपौ वैरिणि शुम्भे महावीर्ये महाप्रभावे
च निहते सति शेषाः युद्धावशिष्टाः दैत्याः पातालमधोभुवनमाययुः ।
जगद्विध्वंसिके इति दाक्षिणात्यपाठः ॥ ३१-३२ ॥

देवानां कार्यसिद्धयर्थमित्यादिना संक्षिप्योक्तमत्र चरितत्रय-

निरूपणेन विस्तरत उपवर्ण्यं सम्प्रत्युपसंहरति

एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ।

सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ म. ३६ श्लो. ३३

एवमिति । षड्भिः श्लोकैः । एवमित्थं सा भगवती ऐश्वर्यादि-
षडर्थवती । नित्यापि प्रागभावप्रध्वंसभावशून्यापि सा महामाया पुनः
पुनः सम्भूय आविर्भूय कायवतीभूत्वा जगतस्त्रैलोक्यस्य परिपालनं कुरुते
इत्यन्वयः ॥ ३३ ॥

तथैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ।

सायाचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ म. ३७ श्लो. ३४

तथेति । तया महामाया एतत्समीपतरर्वत्ति विश्वमस्त्रिल जीव-
जातं मोह्यते ममतालक्षणेनाविवेकेन योज्यते । दैवादिकान्मुद्गेः कर्मेणि
यक् । सैव महामाया कतृभूता विश्वं द्रवणुकादि कार्यं प्रसूयते जनयति ।
पूङ् प्राणिप्रसवे दिवादिः । सा देवी भक्त्येयाचिता सती विशिष्टं ज्ञानं
विज्ञानं विवेकपूर्वकं ज्ञानं मुक्तिसाधनं प्रयच्छति ददाति । तुष्टा आराधन-
प्रीता सता ऋद्धिं सम्पदं च प्रयच्छति ददाति । तुष्टा ऋद्धिमित्यत्र
वाक्येऽविवक्षितत्वात् संहिता । नह्यत्र प्रकृतिभावः । ऋत्यक इति
प्रकृतिभावेन रूपसिद्धिः । तेन हि एकः स्थाने ह्रस्वे च सति तुष्ट ऋद्धि-

मिति रूपापत्तेः । विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोरित्यमरः ॥ ३४ ॥

एवं विश्वस्य पालनादि देवी कर्तृकमुक्त्वा सम्प्रति

प्रलयकर्तृत्वमाह—

व्याप्तं तथैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ।

महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ म. ३८ श्लो. ३५

व्याप्तमिति । ओ मनुजेश्वर नरपते सुरथ, महेश्रासावकालश्च महाकालः अकालो नाम अनिष्टसमयः । सर्वभूतक्षयसमयत्वात्तस्मिन्काले, महाकालो मृत्युः तं कलयति प्रवर्तयतीति महाकालो कलेर्ण्यन्तात्कर्मणि टिड्ढेति ङीप् । तमोलक्षककृष्णवर्णवाचकात्तद्वतिवर्तमानान्ङीपि महाकाल्यास्तामस्यास्तमोगुणवत्याइत्यर्थः । महतो ब्रह्मादीनपि मारयतीति महामारी नाम कालरात्र्यपरपर्याया काचित्प्रलयकारिणी शक्तिः, सा स्वरूपं यस्याः सा महामारीस्वरूपा तया महामारीति लोकप्रसिद्धया तया महामायाया एतत् दृष्टिसमीपवर्तिब्रह्माणो हिरण्यगर्भादिति निःसरतीति ब्रह्माण्डं गोलाकृतिसकलसृष्टिरस्तसमुद्गकं लोकवेदप्रसिद्धं व्याप्तमित्यन्वयः । लोकोऽस्त्यस्मादित्यण्डं । अमगत्यादिषु अमन्ताड्डः । अण्डं पेशीकोशमुष्कयोः । पेशीकोशोद्विहीनं स्यादिति हैमामरी । तदुक्तमभियुक्तैः—महारात्रिर्महानिद्रा महाकाल्यतितामसी । सैव कालानलज्वाला सैवाविद्या तमःप्रसूः ॥ सैव मोहप्रसूमृत्युः सैव सर्वाधिदेवता । मृत्युजिह्वा महामारी जगत्संहारकारिणीति ॥ येषां मनुजानामहमीश्वरोऽस्मीति ते महाभिमानोऽस्ति ते मनुजास्त्वया सहैव सर्वोऽपिकालरूपायास्तस्याः संहार्यकोटावभिनिविशन्ते इति नरपतित्वाभिमानस्त्वया त्याज्य एवेति मनुजेश्वरसम्बोधनाभिप्रायः ॥ ३५ ॥

कालानुसारेण विगुणप्रपञ्चं पृथक्तया महामायैव करोतीत्याह—

सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ।

स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ म. ३९ श्लो. ३६

सैवेति । काले प्रलयसमये सैव देवी महामारी जनक्षयः । महती मारी महान् जनक्षयः । संहतिक्रिया तमोगुणवती सैव महामाया भवति । तथा काले उत्पत्तिसमये सैव महामाया अजा योनिहीना रजोगुणवती भूतानां सृष्टिः सर्जनव्यापारो भवति । तथा काले पालनकाले सनातनी

निश्चा सैव महामाया भूतानां स्थिति पालनव्यापारं करोतीत्यन्वयः
॥ ३६ ॥

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । एतस्यानन्तरं, संसार-
बन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरीति संक्षिप्तं पूर्वमर्थं विस्तरेण कथयति—

भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीवृद्धिप्रदा गृहे ।

सैवाभावे तथा लक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ म. ४० श्लो. ३७

भवकालेति द्वाभ्याम् । भवकाले सम्पत्समये नृणां गृहे वृद्धिप्रदा
सम्पदुपचयदात्री लक्ष्मीर्देवतारूपा उपजायते प्रादुर्भवति । अभावे
विपत्काले नृणां गृहे विनाशाय सम्पदभावार्थं अलक्ष्मीर्दारिद्र्यं तद-
धिष्ठातृदेवता सैव देवी उपजायते । प्रादुर्भवतीत्यन्वयः । प्रदेत्यत्र प्रेदाज्ञ
इति कः ॥ ३७ ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्गन्धधूपादिभिस्तथा ।

ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा शुभाम् ॥ म. ४१ श्लो. ३८

स्तुतेति । स्तुता वाचा पूजिता पुष्पैः जपाकरवीरविष्णुकान्ताभिः ।
गन्धैर्गन्धद्रव्यैः यक्षकर्मदादिभिः । धूपैः वह्निसन्तापेना मोदप्रकाशकैः
अगुरुपुरादिभिः । आदिपदाद्दीपैर्वासोऽलङ्कारादिभिः । सम्यगेकाग्रतया
पूजिता सती सैव देवी वित्तं धनं पुत्रांश्च ददाति । भक्तेभ्य इति शेषः ।
तथा शुभां अनाविलां धर्मे मतिं बुद्धिं ददातीत्यन्वयः । चशब्दाद्दीर्घा-
युष्यनैरुज्यादिकर्मत्वेन गृह्यते इति शिवम् ॥ ३८ ॥

इति श्रीसप्तमतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते मध्यभागे

द्वादशाध्यायार्थसंग्रहोनाम द्वादशो विश्रामः ।

आदितः सप्तदशो विश्रामः ॥ १७ ॥

अथत्रयोदशाध्यायारम्भः

तत्र त्रयोदशाध्यायमन्त्रविभागो यथा चिदम्बररहस्ये—

त्रयोदशे सार्धसप्तदशश्लोका वरानने । आद्यऋषिः श्लोकमन्त्राश्चत्वारस्तदनन्तरम् ॥१॥ तत्रान्त्योऽर्धश्लोकमन्त्रो मार्कण्डेयस्ततः परम् । ततोऽर्धश्लोकमन्त्रश्च पञ्च श्लोकास्ततोऽर्धकम् ॥२॥ देव्युक्तिः श्लोकमन्त्रश्च मार्कण्डेयः पुनस्ततः । श्लोकमन्त्रद्वयं देवी षडर्धश्लोकमन्त्रकाः ॥३॥ मार्कण्डेयस्ततःश्लोकद्वयं मन्त्रत्रयं शिवे । एकोनत्रिंशदेवं स्युर्नवः सर्वसिद्धिदाः ॥४॥ आवृत्यात्वधिको मन्त्रः सार्वणिर्भविता मनुः ॥ एवं त्रयोदशाध्यायमन्त्राः सप्तशतं प्रिये ॥५॥ इति अत्र आवृत्याधिक इति कथनेन सप्तशतमन्त्रात्मकस्तोत्रपाठावृत्येत्यर्थः । अथ च सार्वणिर्भविता मनुरित्यस्याध्यायान्ते आवृत्याधिककथनेन पुनरुक्तिर्जायते तन्निवृत्त्यर्थं तस्याश्च समाप्ति सूचकता प्रतिपादकं कात्यायनीतन्त्रवाक्यं (त्रयोदशाध्यायमन्त्रप्रकाशकं) संगृह्यते—तत्तस्त्रयोदशेऽध्याये ऋषिर्वाच इत्यर्थः । एतत्ते कथितं भूषेत्यादिसार्धत्रयं मनुः ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाचेति इति तस्य वचोदितः । श्लोकषट्कं ततो देवीवाक्यं स्यात्परमेश्वरि ॥२॥ यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप श्लोके नैकेन तोष कृत् । मार्कण्डेय उवाचेति ततो वज्रे मनुद्वयम् ॥३॥ देव्युवाच पुनश्चैव स्वल्पश्लोकत्रयेण वै । अर्द्धानामेव मन्त्रत्वाद्भूवन्त्यत्र षडाहुतिः ॥ ४ ॥ ततो मार्कण्डेयवच इति दत्त्वा तयोरिति । द्वौ मन्त्रौ पुनरुच्चार्यं सार्वणिर्भविता मनुः ॥५॥ एकोनत्रिंशत्संख्याकाहुतिरत्र विधीयते ॥ अत्र ततोमार्कण्डेयवच इति दत्त्वा तयोरित्यस्य पूर्वाचार्यकृतविवरणं संगृह्यते—मार्कण्डेय उवाच इत्येको मन्त्रः । इति दत्त्वा तयोरित्येको मन्त्रः । इति शब्दव्यवच्छेदाद्भज्यते । पुनरनन्तरं द्वौ मन्त्रौ । बभूवान्तर्हिता सद्य इत्येकश्लोकात्मक एको मन्त्रः । सूर्याज्जन्म समासाद्येत्यर्द्धश्लोकात्मकोऽपरो मन्त्रः । तौ द्वौ मन्त्रावुच्चार्यान्ते सार्वणिर्भवितामनुरित्येकपादात्मकं मन्त्रमन्ते पुनरावर्तयेदिति शेषः । तदावर्तनं ग्रन्थसमाप्ति सूचकं न त्वस्याहुतिरित्यर्थः । यदुक्तं कात्यायनीतन्त्रे—इतिदत्त्वेत्यर्द्धमन्त्रो वाञ्छितार्थप्रपूरणे इति । एवं त्रयोदशाध्याये होमत्तर्पण-

कर्मणि ॥ ६ ॥ शतानि सप्तसंख्यानि प्रोक्तानि तव शैलजे । मकारादि-
नुकारान्तो मनुः परमदुर्लभः ॥ ७ ॥ सत्सम्प्रदायविधिना ज्ञातव्यो मम
वल्लभे । अन्यथा विफलो मन्त्रः सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ८ ॥ इत्थं
सप्तशतीदेवी ज्वलद्वह्निर्न संशयः । सुरक्षिता सुखाय स्यादन्यथा गृहदाह-
कृदिति ॥ ९ ॥

ऋषिरुवाच ॥ म० १ ॥

श्रीमद्भगवत्याश्चरितत्रयरूपस्तोत्रसामर्थ्यं निजभक्तेषु कृपालुतां
तस्या एव वाक्यद्वारा समुपवर्ण्यं सुरथवैश्ययोरभीष्ट-
प्राप्तिकमुपदेशं व्यञ्जयन्भगवान्मुमेधाऋषिः सुरथं
राजानमुचितमुपदेश्यन्नुवाच—

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।

एवं प्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥ म. २ श्लो. १

एतदिति । हे भूप मया सुमेधसा एतच्चरित्रत्रयात्मकमुत्तमं श्रेष्ठं
पुरुषार्थचतुष्टयपूरकत्वात् । देव्याः चिच्छक्तेः माहात्म्यं ते तुभ्यं कथितं
यया देव्या इदं जगत् धार्यते अवस्थाप्यते आधारशक्तिरूपत्वात्सा देवी
महामाया, एवं उक्तः प्रभावो यस्याः सा एवंप्रभावा । अस्तीति शेषः ।
माहात्मनो महामूर्तेः भावः कर्म वेति माहात्म्यम् । ब्राह्मणादित्वात्
ष्यञ् । नस्तद्धिते इति टिलोपः । धार्यत इत्यत्र धृङ् अनवस्थाने निज-
न्तात्कर्मणि यक्यात्मनेपदम् लट् ॥ १ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ।

तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥ म. ३ श्लो. २

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ।

विद्येति सार्धश्लोकेन । ज्ञानमोहयोस्तमस्तेजसोरिव विरुद्धस्व-
भावयोरपि तत्प्रदत्तं महामायाया एवेति स्वातन्त्र्यम् । भगवती चासौ
विष्णुमायाचेतिकर्मधारयः । यद्वा भगवतः ऐश्वर्याधारस्य विष्णोः
माया तया । तथैव विद्वदुपसत्याद्युक्तप्रकारेणैव विद्याज्ञानं क्रियते
उत्पाद्यते । परमात्मज्ञानसाधने देव्येवोपनिषद्रूपेति भावः । यदुक्तं
पूर्वम्—सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनीति । तयेति तया
विष्णुमायया त्वं सुरथः एष वैश्यश्च सामान्यज्ञानेन विशेषज्ञानाभिमा-

निनी । तथैवान्ये विवेकिनः इति गौडपाठः । तथैवान्ये विवेकिन इति दाक्षिणात्याः । तथा तेनैव प्रकारेण अन्ये विवेकिनः विशिष्टज्ञानवन्तो वसिष्ठाद्याः वर्तमानकाले मोह्यन्ते । भूतकाले मोहिताः । अपरे विवेकि-
भित्ता अपि भविष्यकाले मोहमेव्यन्ति मोहं प्राप्स्यन्ति कालत्रयेऽपि मोहयित्री सैवेत्यर्थः । विद्या तथैव क्रियते इति दाक्षिणात्यपाठः ॥ २ ॥

देव्याश्चरित्रत्रयेण प्रभावमुपवर्ण्य त्वद्दुःखप्रहाणाय सैवेश्वरी

समर्थति राजानं मुनिरुपादिशति--

तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥ म. ४ श्लो. ३

आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ॥ म. ५

तामिति । उपैहीति ऐकारमध्यो गौडपाठः । उपैहीत्येकारमध्यो दाक्षिणात्यपाठः । हे महाराज सुरथ तां पूर्वप्रपञ्चितपराक्रमप्रसिद्धां परमामुत्कृष्टामीश्वरीं व्यापिकां ऐश्वर्यवतीं वा देवीं शरणं रक्षित्रीं उपैहि उपागच्छ । इण गतौ उपपूर्वः । ततो लोणमध्यमपुरुषैकवचने सेह्य-
पिच्चेति सेहिरादेशः । छन्दसि सर्वविधीनां वैकल्पिकत्वात्पाक्षिकं हेः पितृवमाश्रित्य गुणेकृते एतरेजादित्वसद्भवादेत्येधत्त्यूट्स्विति वृद्धौ रूपम् । उपैहीति वृद्धिश्छान्दसीति नागेशः । रामाश्रमस्तु छन्दसि । पितृव-
विकल्पाद्गुण इत्याह । अन्यथा 'उप इहि' इति स्थिते आद्गुण इत्यनेन गुणे जाते उपैहीति स्यादिति । आङ्पूर्वस्य तु 'उप आ इहि' इत्येवं दशायां आङ् इकारेणाद्गुणे एहीति निष्पत्तौ उप एहीतिस्थिते मध्ये-
पवादन्त्यायेन एङि पररूपमित्यस्यवाधादोमाङोश्चेति पररूपत्वे उपैही-
त्येवरूपम् । केचित्तु एहीति विभक्तिप्रतिरूपकमवययम् । वृद्धिरेचीति वृद्धिः । न चैङिपररूपम् । अवययस्य धातुसज्जाभावादित्याहुः । उपैहीति पाठे न कश्चिद्दोषः । ततः किमित्याह—आराधितेति । सैव देवी आरा-
धिता तपसा तोषिता सती नृणां पुंसां भोगं ऐहिकं सुखं । स्वर्गं पारत्रिकं सुखं । अपवर्गं कार्यद्वयापायं मोक्षं ददातीति भोगस्वर्गापवर्गदा भवतीति शेषः । रजकस्य वस्त्रं ददातीति वत्सम्बन्धसामान्ये नृणामिति षष्ठी । महाराज इति राजाहः सखिभ्य इति टच् । न पूजनादिति समासान्त-
निषेधस्तु न भवति स्वतिभ्यामेवेति नियमात् ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ म. ६ ॥

मार्कण्डेयनामा मुनिः क्रोष्टुकिनामानं स्वशिष्यं प्रति सुमेधो
राजसंवादमुपसंहरन्नुपवैश्योस्तदुत्तरचरितमुवाच—

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः ॥ म. ७ श्लो. ४
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ।

निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥ म. ८ श्लो. ५

जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ।

इतीति द्वाभ्याम् । हे महामुने क्रोष्टुके, तस्य सुमेधसः तामुपैहीति
वचः श्रुत्वा महाभागं । तथा शंसनं शंसा स्तुतिः शंसा सञ्जाता अस्येति
शंसितं स्तुतं तथाविधं शास्त्रोक्तं व्रतमुपवासादिनियमो यस्य । तमृषि
सुमेधसं प्रणिपत्य राज्याङ्गेष्वितिममत्वेन मदीयत्वाभिमानेन राज्यस्या-
पहरणेन शत्रुसाङ्घावेन च निर्विण्णः निर्वेदं प्राप्तः सन् स प्रसिद्धो नराणा-
मधिपः प्रभुः सुरथः सद्यः उपदेशसमनन्तरमेव तपसे तपश्चर्यां कर्तुं च
पुनः स वैश्यः जगामेत्यन्वयः । संशितमिति तालव्यमध्ये दाक्षिणात्य-
पाठः । तत्र सम्पूर्वात् शो तनूकरणे कर्मणि क्तः । शाच्छोरन्यतरस्या-
मित्यत्र व्रतविषये व्यवस्थितविभाषाश्रयणाश्रित्यमिकारः । निर्विण्णइति ।
विद्वल्लाभे विचारणे वेति धातोः क्ते निर्विण्णस्योपसंख्यानमिति निष्ठा-
नत्वम् । तपसे इत्यत्र क्रियार्थोपपदस्येति चतुर्थी ॥ ५ ॥

ततः किं जातमित्याशङ्क्यामाह—

संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ म. ९ श्लो. ६

स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ।

संदर्शनार्थमिति । अम्बायाः जगन्मातुः महामायायाः संदर्शनार्थं
प्रत्यक्षीकरणाय नद्याः कस्याश्चित्पुलिनं तत्कालत्यक्तजलस्थलं संस्थितः
आस्थितः स सुरथः वैश्यश्च समाधिरपि परं सर्वमनोरथप्रदत्वादुत्कृष्टं
देवीसूक्तं महामायास्तवमष्टश्रृङ्गात्मकमृगवेदप्रसिद्धम् । जपन् उपांशुं
पठन् तपः उपवासादिकं कर्म तेपे अर्जयामासेत्यन्वयः । उपवासादिरूपं
तपः कर्तुं राजानं वैश्यं च तताप दुःखयामास राजा वैश्यश्चागतिभूत्वा
स्ववाञ्छितराज्यज्ञानादिसिद्धयर्थं तपः कृच्छ्रादिलक्षणं तेपे उपार्जया-
मास । एवं च तपः तपः कर्मकस्यैवेतिवचनात्सकर्मकस्तपः कर्ताकर्म-
वद्भवति । तप सन्तापे लिटि रूपम् । अन्यकर्मवत्त्वे तु परस्मैपदमेव ।

तोयोज्झितं तत्पुलिनं सैकतं सिकतामयमित्यमरः । देवीसूक्तनिर्णयस्तु
पूर्वं पाठक्रमे निर्णीतत्वादत्र न निर्णीयते ॥ ६ ॥

देव्याः पूजनक्रममाह—

तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम् ॥ म. १० श्लो. ७

अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ।

ताविति । तौ सुरथसमाधी नद्यास्तस्मिन्पुलिने तटविशेषे तत्काल
तोयोज्झितस्थले देव्याः महीमयीं मृन्मयीं मूर्तिं प्रतिमां कृत्वा विरच्य ।
मयद्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोरिति विकारावयवाया मह्यमयट् ।
तस्याः देव्याः । पुष्पैः करवीरादिभिः । धूपैः अगुरुपूर्वादिभिरग्निनि-
क्षिप्तैः । अग्निभिरग्निकार्यैर्होमैः । तर्पणैरागमप्रसिद्धैः । अग्नितर्पण-
होमैर्वा । तस्याः देव्याः अर्हणां सपर्यां चक्रुरित्यन्वयः । मूर्तिः काठिन्य-
काययोः । पूजा नमस्यापचितिः सपर्यार्चाहिंणा । समाइत्यमरः ॥ ७ ॥

निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥ म. ११ श्लो. ८

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगान्नासृगुत्क्षितम् ।

निराहाराविति । निर्निषिद्धः हविष्यादिना निश्चितो वा
आहारः अशनं याभ्यां तौ निराहारौ । यतो नियमितो वन्यपुष्पफला-
दिना आहारो याभ्यां तौ यताहारौ । तस्यामेव मनो ययोस्तौ तन्म-
नस्कौ तद्वत्तत्त्वित्वावित्यर्थः । शेषाद्विभाषेतिकप् । समाहितौ निरस्त-
संशयो । निजानामात्मीयानां गन्नाणामवयवानां असृग्भिः रुधिरैः
सिक्तमेवान्नादिकं बलिं च ददतुरित्यर्थः । तपश्चरणकाले परहिंसापराङ्
मुखत्वात् स्वगान्नासृगुत्क्षितान्नादिभिर्बालदानं चक्रुरिति भावः ।
तदुक्तम्-तुण्डजं बाहुजं वापि रक्तमांसमयं बलिम् । भक्त्यावेशान्महा-
शूरोमहामायार्थमुत्सृजेदिति । निनिश्चयनिषेधयोः । निराहाराविति
विशेषणेन शरीरं पातयामि वा मन्त्रं साधयामीति हठयोगः सूचितः ।
पूर्वं यताहारौ पश्चान्निराहारावित्यत्र । विपरीते पाठक्रमादर्थक्रमस्य
बलवत्त्वम् ॥ ८ ॥

तयोनिष्प्रत्यूहं भगवती साक्षात्कारमाह—

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ म. १२ ॥ श्लो. ९

परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका ॥ म. १३

एवमिति । एवमुक्तविधया सम्यविध्यव्यभिचारेण आराधयतोः
पूजयतोः यतात्मनोः अवहितचेतसोः तयोः राजवैश्ययोः त्रिभिर्वर्णैः
परितुष्टा अतिप्रीता जगतां धात्री जनयित्री पोषयित्री च चण्डिका प्रत्यक्षं
यथास्यात्तथा प्राह प्रत्यक्षीभूयावादीदित्यर्थः । तयोस्तपस्तेजसा जगद-
पायशङ्कया द्रुतमेवाविर्भूता सती ताववादीदिति भावः ॥ ६ ॥

देव्युवाच ॥ म० १४ ॥

देवी चण्डिका सुप्रसन्ना वरदानोन्मुखी राजानं

वैश्यं च तपः फलं दातुमुवाच—

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ॥ श्लो. १०

मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत् ॥ म. १५

यत्प्रार्थ्यते इति । हे भूप त्वया तपःशीलेन, हेकुलनन्दन वैश्य
तथाविधेन त्वया यत्प्रार्थ्यते । तत्सर्वं मत्तः देवीसकाशात् प्राप्यतां लभतां
स्वीक्रियतां अहं परितुष्टास्मि तत्प्रार्थ्यमानं तुभ्यं ददामि । यतोऽसौ
कुलात्सकाशात् लक्ष्मीं न ग्रहीष्यति मोक्षमत्वाद्देराग्यभाक्त्वात्कुलनन्द-
नेति भावः ॥ १० ॥

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ म० १६ ॥

तयोर्वरदानमुपसंहरिष्यन्मृकण्डुपुत्रः स्वशिष्यं भागुरि

श्रीदेव्याः सुरथस्य राज्ञो वरप्राप्तिमाह—

ततो वद्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ॥ श्लो. ११

अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥ म. १७

ततो वद्रे इति । ततो देवीवाक्यानन्तरम् नृपः राजा सुरथः ।
अन्यजन्मनि एतस्मादग्रिमं भावि यज्जन्म तस्मिन् अविभ्रंशि विभ्रंशोऽधः
पतनं नाशः । न विभ्रंशोयद्वाज्यस्य तदविभ्रंशि रिपुकारितच्युतिहीनं
अविचलमित्यर्थः । राज्ञो भावः कर्म वा राज्यं । वद्रे वृत्तवान् प्रार्थयामा-
सेत्यर्थः । अथ अत्र च अस्मिन्वर्तमानजन्मनि बलादेव सामर्थ्यादेव तव
कृपाबलात् हतं बलं रिपुसैन्यं यत्र तं निजमात्मीयं राज्यं वद्रे वृत्तवानिति
॥ ११ ॥

अथ विरक्तस्य समाधेः प्रार्थ्यमाह—

सोऽपिवैश्यस्ततोऽज्ञानं वद्रे निर्विण्णमानसः ॥ श्लो. १२

ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ म. १८

सोऽपीति । ततः सुरथप्रार्थनानन्तरं स प्रसिद्धो वैश्यः समाधिः
ज्ञानं मोक्षबुद्धिं वव्रे वृत्तवान् । स किम्भूतः प्राज्ञः मोक्षकाङ्क्षित्वान्नितरां
बुद्धिमान् । तथा निर्विण्णं निर्वेदयुक्तं मानसमन्तःकरणं यस्य सः संसारा-
द्विरक्तचित्त इत्यर्थः । किम्भूतं ज्ञानं ममेति । अस्वीये स्वीयाभिमानः ।
अहमिति अनात्मन्यात्माभिमानः इत्येवं संसारापरपर्यायं मोहलक्षणं ।
तद्यथा ममायं पुत्रोऽहमस्य पिता । ममेदं धनमहं स्वामी तस्येत्याद्यध्या-
सजनितोयः सङ्गः तस्य विच्युतिः विलयः तस्याः नाशस्य कारकम् ।
हेतुभूतमित्यर्थः । ममत्वं नाम मोहः संसृतिरहन्ता च तद्विलयकारकं
ज्ञानमिति भावः समासः छान्दसः । अतस्मिन्तद्बुद्धिरध्यासः तेन
निःसङ्गस्यैवात्मनो ममत्वमहत्वं सर्वदुःखावहः सङ्गश्च सर्वात्मना भाव्यते
तस्य सङ्गस्य परमात्मस्वरूपब्रह्मज्ञानं विच्युतिकारकं भवति । ममता
चाहन्ता च सङ्गः संसर्गोपेक्षाबुद्धिः द्वैतज्ञानं भेदनिबन्धनं तस्य विच्युति-
कारकं विच्छेदजनकं मोक्षोपयोगि ज्ञानमिति ॥ १२ ॥

देव्युवाच ॥ म. १९ ॥

सुरथवैश्ययोः प्रार्थितमाकर्ण्य प्रसादोन्मुखी देवी वरं दातुं

राजानं वैश्यं चोवाच त्रिभिः श्लोकैः—

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ॥ म. २० श्लो. १३

हत्वा शिपून्स्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ म. २१

स्वल्पैरिति । हे नृपते राजन् सुरथ स्वल्पैः अहोभिर्दिवसैः ।
कतिपयवासरैः भवान् स्वं स्वकीयं परंपरागतं राज्यं प्राप्स्यते लप्स्यते
तत्र राज्ये तव अस्खलितं भविष्यति । किं कृत्वा शिपून्हत्वा । अस्खलित-
मिति स्खलसंचलने । भावे क्तः । अवलितमित्यर्थः । स्खलितं छलिते
श्रेवे इति हैमः ॥ १३ ॥

अथान्यजन्मनि राज्यलाभाय प्रार्थिता देव्युत्तरमाह—

मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्मदेवाद्विवस्वतः ॥ म. २२ श्लो. १४

सावणिको मनुर्नाम भवान्भुवि भविष्यति ॥ म. २३

मृतइति । हे सुरथ, आयुषोऽवसाने मृतस्यक्तसुरथाख्यदेहश्च भूयः
पुनरपि विवस्वतः सूर्यदेवात् सवर्णायाश्च तत्पत्न्याः जन्म उत्पत्तिं
सम्प्राप्य लब्ध्वा सावर्णिरेव सावर्णिकः स्वार्थं क्रः । मनुः साग्रेकसप्तति-

चतुर्युगकालपर्यन्तं धर्मप्रवर्तको भूत्वा मद्धक्ताग्रगण्यः भुवि भूमौ भवान्
भविष्यति नामेति प्रसिद्धौ ॥ १४ ॥

एवमभ्यर्थितं वरं राज्ञे दत्त्वा देवी वरं दातुं समाधिमग्न्याह—

वैश्यवर्यत्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ॥ म. २४ श्लो. १५

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ म. २५

वैश्यवर्यति । हे वैश्यवर्य वैश्यवंशश्रेष्ठ हे समाधे, त्वयाऽस्मत्तः
देवीतः यः वरः अभिवाञ्छितः लब्धुमिष्टः प्रार्थित इति यावत् । तं वरं
तवाभिलषितं तुभ्यं प्रयच्छामि ददामि संसिद्ध्यै परमात्मरूपसङ्गत्यै
मोक्षाय तादर्थ्यं चतुर्थी । तव वरप्रार्थयितुः ज्ञानं ब्रह्मसाक्षात्कारमोक्षधीः
भविष्यति । मोक्षधीर्ज्ञानमुच्यते । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति श्रुतेः । यद्वा
अस्मत्त इति पञ्चमी बहुवचनम् । स्वस्य सार्वभौम्यद्योतकमिति । अतश्चै-
कत्वाभावात्प्रत्ययोत्तरपदयोश्चेति मादेशाभावः । ननु अस्मत्तः इति
बहुवचनोपक्रमात्प्रयच्छाम इति बहुवचनेन भाव्यं तत्कथं प्रयच्छामीत्ये-
कवचनम् । एवं सति अस्मत्तः इतिच्छेदः । अमु क्षेपणे । अस्यति क्षिपति
संसारं निराकरोत्यस् किमपि रूपम् । वरस्य विशेषणम् । एकत्वान्मा-
देशः । अयस्मयादित्वाद्वत्वाभावः । यद्वा । व्यत्ययो बहुलं छन्दसीत्ये-
कवचनस्य बहुत्वम् । ततश्चास्मत्तइत्येव पाठः । वरणार्थो षर्यः । क्लीबे
प्रधानं प्रमुखप्रवेकानुत्तमोत्तमाः ॥ मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्हानवराद्धवत्
॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ म० २६ ॥

मार्कण्डेयमुनिराख्यानमुपसंहरन्स्वशिष्यं क्रोष्टुकिमुवाच—

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम् ॥ म. २७ श्लो. १६

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥

इतीति । हे क्रोष्टुके इतीत्यमुक्तप्रकारेण तयोः सुरथवैश्ययोः
अभिलषितं मनोरथमनतिक्रम्य इति यथाभिलषितं वाञ्छितं वरं दत्त्वा
सद्यः तत्क्षणमेव ताभ्यां लब्धवराभ्यां सुरथसमाधिभ्यां भक्त्या
प्रीतियुक्तभावेन अभिष्टुता वाचा पूजितासती अन्तर्हिता तिरोहिता
बभूवेत्यन्वयः ॥ १६ ॥

निःशेषं देवीचरितत्रयमुक्त्वा समाप्तिं

सूचयन्नाख्यानमुपसंहरति—

एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरयः क्षत्रियर्षभः ॥ म. २८ श्लो. १७

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः ॥ म. २९

सावर्णिर्भविता मनुः ॥ ॐ ॥

एवमिति । हे क्रोष्टुके, एवमुक्तप्रकारेण देव्याः सकाशाद्वरं स्वाभिमतमभीष्टं लब्ध्वा प्राप्य देव्या इत्यपादाने पञ्चमी । क्षत्रियेषु वरः श्रेष्ठः क्षत्रियर्षभः । इह राज्यमनुभूय ततस्तनुं त्यक्त्वा सावर्णिर्नाम मनुः राजा भुवि पृथिव्यां भविता । कर्त्तरि भविष्यदद्यतने लुट् । भविष्य-तीत्यर्थः । किंकृत्य सूर्यात् रवेर्जन्म सवर्णाया जननं प्राप्येत्यन्वयः ॥ २६ ॥

सावर्णिर्भविता मनुरिति पुनरावर्त्तितोऽन्तिमपादः समाप्तिसूचकः, नतु सप्तशतमन्त्रान्तर्गतः मन्त्रविभागे पार्थक्येन निर्णीतत्वात् । वेदावसानोपनिषदवसानवत्समाप्तिसूचकं पादावत्तनमिति शिवम् ॥ २६ ॥

सप्तशतीस्तोत्रप्रशंसा यथा लक्ष्मीतन्त्रे ।

सम्यग्गृहि स्थिता सेऽयं जन्यकर्मावलिस्तुतिः । एतां द्विजमुखा-ज्ज्ञात्वा अधीयानो नरः सदा । विधूय निखिलां मायां सम्यग्ज्ञानं समश्नुते ॥ सर्वसम्पदमाप्नोति धुनोति निखिलापद इति । सर्वेषां द्विजानां सप्तशतीपाठनिष्ठानां कामधुगेवेति शिवम् ॥ सप्तशत्याः प्रसादेन सप्तशत्यर्थसंग्रहः । टीकाषट्कात्समुद्धृत्य लिखितोयं यथामति ॥ १ ॥ पुष्पाञ्जलि शान्तनवो नागेशी च तथापराम् । रामाश्रमी गुप्तवती दंशोद्धारमशेषतः ॥ २ ॥ दुर्गाप्रदीपं तद्वच्च समालोडय मुहुर्मुहुः । यद्यत्सारं तत्तदत्र गृहीतोऽभ्यन्न किञ्चन ॥ ३ ॥ श्रमेणंतेन प्रीणानु त्रिगुणा निखिला-स्मिका । तत्प्रीतयेऽथ बालानां सुबोधाय महात्मनाम् ॥ ४ ॥ विनोदाय सदा भूयात्सप्तशत्यर्थसंग्रहः । वर्वर्तु कुशलं भूमौ यावद्धर्मस्थितिः सताम् ॥ ५ ॥ इत्यलम् ॥

इति सप्तशती समाप्ता ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे मध्यभागे सरयूप्रसादसंगृहीते

सप्तशतीस्तुतौ सुरयवैश्यवरप्रदानाध्यायार्थसंग्रहो

नाम त्रयोदशो विश्रामः । आदितोऽष्टादशो

विश्रामः ॥ १८ ॥

समाप्तोऽयं मध्यमो भागस्त्रयोदशविश्रामात्मकः ।

अथोत्तरभागआरभ्यते ॥

तत्र क्रमप्राप्तत्रयोदशाध्यायपाठान्ते नवार्णमन्त्रजपं ययासंख्याकं
विधायान्ते देवीसूक्तमावर्त्तयेदित्युक्तत्वात्पूर्वभागे पाठक्रमे
निर्णीतमुग्धेदप्रसिद्धं देवीसूक्तमष्टाष्टगात्मकं
सभाष्यमत्र संगृह्यते—

अथ देवीसूक्तम् ॥

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहममादित्यैस्तविश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नीअहमश्विनोभा ॥ १ ॥

अस्य सूक्तस्य सर्वं वै देवा देवीमुपतस्थुरिति देव्यवर्षशिरसि
देवीप्रतिपादकत्वेनोक्तत्वाद्देवीसूक्तमिति व्यवहारः । अहमित्यष्ट्वं त्रयोदशं
सूक्तम् । अम्भृणस्य महर्षर्द्धिता वाग्नाम्नी ब्रह्मविदुषी स्वात्मानमस्तौत् ।
अतः सा ऋषिः सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता तेन हि एषा
तादात्म्यमनुभवन्ती सर्वजगद्रूपेण सर्वाधिष्ठानत्वेन चाहमेव सर्वं
भवामीति स्वात्मानं स्तौति । द्वितीया जगती शेषाः सप्तत्रिंशदुभः तथा
चानुकान्तं अहमष्टौ वागाम्भृणी सुधावात्मानं द्वितीयाजगतीतिगती
विनियोगः । तत्र प्रथमा । अहं सूक्तस्य द्रष्ट्री वाक् आम्भृणी यद्ब्रह्म
जगत्कारणं तद्रूपा भवन्ती रुद्रेभिः रुद्रैः एकादशभिः । इत्यम्भावे
तृतीया । तदात्मना चरामि । एवं वसुभिरित्यादौ तत्तदात्मना चरामि ।
इन्द्राग्नी अप्यहमेव धारयामि । उभा उभौ अश्विना अश्विनौ अपि
अहमेव धारयामि । मयि हि सर्वं जगत् शुक्तौ रजतमिवाध्यस्तं सत्
दृश्यते माया च जगत्कारणे न विवर्त्तते । तादृश्या मायया आधारत्वेन
असङ्गस्यापि ब्रह्मणः उक्तस्य सर्वस्योत्पत्तिः । इति प्रथमा ॥ १ ॥

अहं सोम माहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुतपूषणं भगं ॥

अहं दधामिद्रविणंहविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥

आहनसं आहन्तव्यं अभिषोतव्यं सोमं यद्वा शत्रूणामाहन्तारं दिवि
वर्त्तमानं देवतात्मानं सोमं अहमेव विभर्मि । तथा त्वष्टारं उतापि च
पूषणं भगञ्च अहमेव विभर्मि । तथा हविष्मते हविर्भिर्युक्ताय सुप्राव्ये

शोभनं हविः देवानां प्रापयित्रे । अवतेस्तर्पणार्थादवितृप्तुतंतृभ्यः
ईरितिकारः प्रत्ययः । चतुर्थ्येकवचने यणि उदात्तस्वरितयोर्यणः ।
स्वरितेतोऽनुदात्तस्येतिस्वरितत्वं सुन्वते सोमाभिषवं कुर्वते । शतुरनुम-
इति चतुर्थ्याउदात्तत्वम् । ईदृशाय यजमानाय द्रविणं धनं योगरूपफलम्
अहमेव धारयामि । एतच्च ब्रह्मणः फलदातृत्वं फलमत उपपत्तेरित्य-
धिकरणे भगवता भाष्यकारेण समर्थितमिति । द्वितीया ॥ २ ॥

अहं राष्ट्रीसङ्गमनी वसूनां चिकितुषीप्रथमा यज्ञियानाम् ।

तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थानांभूर्या वेशयन्तीम् । ३ ।

अहं राष्ट्री ईश्वरनामैतत् । सर्वस्य जगत ईश्वरी तथा वसूनां
धनानां सङ्गमनी सङ्गमयित्री उपासकानां प्रापयित्री चिकितुषी
यत्साक्षात्कर्तव्यं परंब्रह्म तज्ज्ञानवती स्वात्मतया साक्षात्कृतवती
अतएव यज्ञियानां यज्ञाहर्णां प्रथमा मुख्या । यैवंगुणविशिष्टाहं तां मां
भूरिस्थानां । बहुभावेन प्रपञ्चात्मना अवतिष्ठमानां भूरि भूरीणि बहूनि
भूतजातानि आवेशयन्तीं ईदृशीं मां पुरुत्रा बहुदेशेषु व्यदधुः । देवाः
विदधति कुर्वन्ति उक्तप्रकारेण विश्वरूपेणावस्थानात् यद्यत्कुर्वन्ति तत्सर्वं
मामेव कुर्वन्तीत्यर्थः । इति तृतीया ॥ ३ ॥

मयासोअन्नमत्ति योपिपश्यति यः प्राणिति यई शृणोत्युक्तम् ।

अमन्तवो मान्त उपक्षियन्त श्रुधि श्रुत श्रद्धवन्ते वदामि ॥ ४ ॥

योऽन्नमत्ति सभोक्तृशक्तिरूपया मयैवान्नमत्ति यश्च विपश्यति
आलोकयतीत्यर्थः । यश्च प्राणिति श्वासोच्छ्वासादि व्यापारं करोति
सोऽपि मयैव यश्चोक्तं शृणोति । श्रु श्रवणे श्रुवः श्रुचेति श्रुधातोः
श्रुभावः । य ईदृशीं अन्तर्यामिरूपेण स्थितां मा जानन्ति ते अमन्तवः
अमन्यमाना अजानन्तः उपक्षियन्ति उपक्षीणाः संसारेण हीना भवन्ति ।
मनेरीणादिकः उप्रत्ययः । नञ् समासे व्यत्ययेनान्तादात्तत्वम् । यद्वा
भावे तु प्रत्ययः । ततो बहुव्रीहौ नञ्सुभ्यामित्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ।
माममन्तवः मद्विषयज्ञानरहिता इत्यर्थः । हे श्रुत विश्रुत सखे श्रुधि
मया वक्ष्यमाणं शृणु । छान्दसो विकरणस्य लुक् । श्रुशृणु पृकृवृभ्य इति
हेधिभावः । किन्तत् श्रोतव्यं श्रद्धिवं श्रद्धिः श्रद्धा तथा युक्तम् । श्रद्धा-
यत्नेन लभ्यमित्यर्थः । श्रद्धन्तरोरुपसर्गवद्बृत्तिरिष्यत इति श्रच्छब्दस्य
उपसर्गवद्बृत्तमानत्वात् उपसर्गबोः किरिति किप्रत्ययः । मत्वर्थीयो वः ।

ईदृशं ब्रह्मात्मकं वस्तु ते तुभ्यं वदामि उपदिशामि इति चतुर्थी ॥ ४ ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥ ५ ॥

अहं स्वयमेव इदं वस्तु ब्रह्मात्मकं वदामि उपदिशामि देवेभिः देवैरिन्द्रादिभिरपि जुष्टं सेवितमुतापि च मानुषेभिः मनुष्यैरपि जुष्टम् ईदृग्वस्त्वात्मिकाहं यं कामये यं पुरुषं रक्षितुमहं वाञ्छामि तं कं पुरुषमुग्रं कृणोमि सर्वभ्योऽधिकं करोमि । तमेव ब्रह्माणं स्रष्टारं करोमि । तमेव ऋषिमतीन्द्रियार्थदर्शिनं करोमि । तमेव सुमेधां शोभनप्रज्ञं च करोमि । इत्यष्टमस्य सप्तमे एकादशो वर्गः ॥ इति पञ्चमी ॥ ५ ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शर वेहन्त वाउ ।

अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥ ६ ॥

पुरा त्रिपुरविजयसमये रुद्राय रुद्रस्य । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । महादेवस्य धनुश्चापं अहं आतनोमि जयया आततं करोमि किमर्थं ब्रह्मद्विषे ब्राह्मणानां द्वेष्टारं शरवे शरं हिसकं त्रिपुरनिवासिनमसुरं हन्त वै हन्तुं हिसितुं । हन्तेस्तुमर्थं सेसनिति तवै प्रत्ययः । अन्तश्च युगपदित्याद्यन्तयो-युगपदुदात्तत्वम् । शृङ्गिषायां इत्यस्मात् श्रुस्वृस्तिहीत्यादिना उप्रत्ययः । क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी । उशब्दः पूरकः । अहमेव समदं समानं माद्यन्त्यस्मिन्नितिसमत् संग्रामः स्तोतृजनार्थं शत्रुभिः सह संग्राममहमेव कृणोमि करोमि । तथा द्यावापृथिवी दिवं च पृथिवीं चान्तर्यामितया अहमेव विवेश प्रविष्टवती । इति षष्ठी ॥ ६ ॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्द्धन्ममयोनिरप्स्वं १ तः समुद्रे ।

ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वो तामूंद्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥ ७ ॥

द्यौः पितेतिश्रुतेः । पितरं दिवं अहं सुवे प्रसुवे जनयामि । आत्मन आकाशः सम्भूत इतिश्रुतेः । कुत्रेति तदाह—अस्य परमात्मनः मूर्द्धन् मूर्द्धनि उपरि कारणभूते तस्मिन्नि वियदादिकार्यजातं सर्वं वर्तते । तंतुषुपट इव मम च योनिः कारणं समुद्रे समुद्रवन्त्यस्माद्भूतजातानीतिसमुद्रः परमात्मा तस्मिन् अप्सु व्यापनशीलासु धीवृत्तिषु अन्तर्मध्ये-यद्ब्रह्मचैतन्यं तन्ममकारणमित्यर्था । यत ईदृग्भूताहमस्मि ततो हेतो-विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि अनुप्रविश्यतिष्ठे विविधं व्याप्य तिष्ठामि । सनवप्रविश्यः स्थित्यात्मनेपदम् । उतापिच अमूंद्यां

विप्रकृष्टदेशेऽवस्थितं स्वर्गलोकमुपलक्षणमेतत् । एतदुपलक्षितं कृत्स्नं विकारजातं वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन मदीयेन देहेन उपस्पृशामि । यद्वा अस्य भूलोकस्य मूर्द्धन् मूर्द्धन्युपरि अहं पितरमाकाशं सुवे । समुद्रे जलधौ अप्सु उदकेषु अन्तर्मध्ये मम योनिः कारणभूतो अम्भृणारूप्यऋषिर्वर्तते यद्वा समुद्रे अन्तरिक्षे अप्सु अम्भयेषु देवक्षरीरेषु मम कारणं ब्रह्म चैतन्यं वर्तते ततोऽहंकारणात्मिका सती सर्वाणि भुवनानि व्याप्नोमि अन्यत्समानमिति सप्तमी ॥ ७ ॥

अहमेव वात इव प्रवाभ्यारभमाणा भुवनानि दिश्या ।

परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव ॥ ८ ॥

विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेणोत्पादयन्ती । अहमेव परेणाधिष्ठिता स्वयमेव प्रवामि प्रवर्ते । वातइव यथा वातः परेण अप्रेरितः सन् स्वेच्छयैव प्रवाति तद्वत् । उक्तं सर्वं निगमयति—परोदिवा परइति सकारान्तम् । परस्तादित्यर्थं वर्तते । यथा अधइति अधस्तादर्थं । तद्योगे तृतीया सर्वत्र दृश्यते । दिव आकाशस्य परस्तात् एनापृथिव्या । द्वितीयाटौस्वेन इत्येनादेशः । सुपां सुलुगिति द्वितीयाया अजादेशः । अस्याः पृथिव्याः परस्तात् । द्यावापृथिव्योत्पादनमुपलक्षणम् । एतदुपलक्षितात्सर्वस्माद्विकारजातात्परस्ताद्वर्त्तमानाम् । असङ्ख्योदासीनकूटस्थब्रह्मचैतन्यरूपाहम् । महिना महिम्ना एतावती सम्बभूव । एतच्छब्देनोक्तं सर्वं परामृश्यते । एतत्परिमाणमस्याः । यदेतेभ्यः परिमाणे वतुप् । आसर्वनाम्न इत्यात्वम् । सर्वजगदात्मना अहं सम्भूतास्मि । महच्छब्दादिमतिच् । टेरितिटिलोपः । ततस्तृतीयायाम् उदात्तनिवृत्तिस्वरेण तस्या उदात्तत्वम् छान्दसो मलोपः । इत्यष्टमी । इत्यष्टमस्य सप्तमे द्वादशो वर्गः ॥ ८ ॥

इति सायनीयग्वेदभाष्ये देवीसूक्तं समाप्तम् ।

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे उत्तरभागे सरूपप्रसादसंगृहीते
देवीसूक्तार्थसंग्रहो नाम प्रथमो विश्रामः ॥१॥ आदित
एकोनविंशतितमो विश्रामः ॥ १६ ॥

अथातः क्रमप्राप्तं देवीसूक्तान्ते रहस्यत्रयं जपेदित्यतो
रहस्यत्रयं नैलकण्ठीयव्याख्यासहितं संगृह्यते—

तत्रादौ प्राधानिकं नाम रहस्यम्

॥ अस्य श्लोकसंख्या चिदम्बरतन्त्रे ॥

सार्द्धत्रिंशत्समाख्याताः श्लोकास्त्वत्र तु संस्कृता इति ॥

॥ राजोवाच ॥

पूर्वं सुमेधसोक्तं चण्डिकाचरित्रत्रयं श्रुत्वा सन्दिहानस्तत्त्वतस्तां-
ज्ञातुं तमेव राजा सुरथ उवाच । प्रश्नङ्करोति स्म ।

भगवन्नवतारामे चण्डिकायास्त्वयोदिताः ।

एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि ॥ १

भगवन्निति । हे भगवन् पूजावन् । चण्डिकायाः कोपनशीलायाः ।
यद्भूयाद्वाति वातोयं सूर्यो भीत्या च गच्छति । इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्सा
देवी चण्डिका स्मृतेति भुवनेश्वरी संहितोक्तेश्चण्डभानुश्चण्डवातइत्यादी
भयजनने चण्डपदस्य प्रयोगाच्च भयजनककोपार्थक चण्डि कोपे इतिधातोः
पचाद्यचि गौरादित्वान्डीषि कृते चण्डीति रूपं भवति । तद्वशादेव
नमस्ते रुद्रमन्यव इत्यादिना प्रथमं मन्यव एव नमस्कारदर्शनात् । भीषा-
स्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः । भीषास्मादग्निश्चन्द्रश्च मृत्युर्धाविति
पञ्चम इत्यादिश्रुत्या वाय्वादिभयजनककोपस्यापि परब्रह्मलिङ्गत्वम-
क्षतमेव । अत एव महद्भूयं वज्रमुद्यतमिति श्रुतौ वज्रपदेनात्र ब्रह्म-
वोच्यते । नायुधविशेषो भयजनकत्वलिङ्गादित्युक्तमुत्तरमीमांसायां
कम्पनादित्यधिकरणे । तस्मात्सर्वभयजनकं सर्वशास्त्रपरं ब्रह्मैव चण्डी-
पदवाच्यम् । तस्याश्चिद्रूपायाश्चण्डिकायाः अवताराः त्वया मे मह्यं
कथिताः । परन्तु एतेषामवताराणां प्रकृतिं मूलभूतां प्रधानं मुख्यं रूपं
हे ब्रह्मन् वक्तुं कथितुमर्हसि । यन्मुख्यरूपस्य पूजया वृक्षस्य मूलसेकेन
शाखानां सेचनवदवतारानामपि पूजा भविष्यति तन्मुख्यं रूपं कथयेति
भावः ॥ १ ॥

आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज ।

विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे ॥ २

आराध्यमिति । हेद्विज येन विधिना यत्स्वरूपमाराध्यं तं विधिं तदाराध्यं च रूपं वदेत्यन्वयः । किमिति चेति सकलं सर्वं मे प्रणतस्य । सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । मां प्रणतं शिष्यं यथावद्भक्तियुताय शिष्याय गुरुणा सर्वं वक्तव्यमितिभावः ॥ २ ॥

॥ ऋषिस्त्वाच ॥

एवं सुरथप्रश्नमुपाकण्य ऋषिः सुमेधास्तत्प्रश्नोत्तरमुवाचेति ।

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते ।

भक्तोसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप ॥ ३

इदमिति । हे नराधिप राजन् त्वया यत्पृष्ठमिदं तत्परमं उत्कृष्टं रहस्यमस्ति । अत एवैतदनाख्येयं कस्याप्यकथनीयमिति प्रचक्षते महान्तः । यच्च तन्त्रे-एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः । तस्मान्नैव प्रकाशोऽस्य कर्तव्यः परमेश्वरीति । एवं सर्वथा रहस्यप्रकाशननिषेध-स्तथापि तत्रैव, नाभक्ताय प्रदातव्यं नाशिष्याय कथञ्चनेत्युक्तेः शिष्य-स्यानुमतिदर्शनात् । त्वं च राजन् भक्तोसीति तवावाच्यं मे किञ्चि-न्नैवास्ति । अतोयत्पृच्छयते तत्सावधानतः शृणु ॥ ३ ॥

सर्वत्र देवानां रूपद्वयं स्थूलं सूक्ष्मं चेति । सूक्ष्मं तत्तदुपाधिविशिष्टं चैतन्यरूपं मन्त्रवाच्यं स्थूलं तत्तु तत्तत्सूक्ष्मरूपोपासकभक्तानुग्रहार्थं तेनैव सूक्ष्मरूपेण स्वीकृतम् । करचरणादिविशिष्टं तद्विदां स्पष्टमेतत् । तदुभयं दर्शयति—

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी ।

लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ॥ ४ ॥

सर्वस्याद्यादिति । सर्वस्य कार्यप्रपञ्चस्य सर्वावितारस्य वा आद्या प्रथमा महालक्ष्मीर्भवति । तद्रूपमाह—त्रिगुणेति । त्रयोगुणाः सत्त्व-रजस्तमोरूपाः । साम्यावस्थापन्नाः यस्याः सा । अत एव कार्यप्रपञ्चस्य उद्भूतगुणस्य कारणत्वात्परमेश्वरी परमेश्वित्री । किञ्जडानेत्याह—लक्ष्यालक्ष्येति । लक्ष्यं लक्षणीयं मायारूपं । अलक्ष्यं ब्रह्मरूपं तदुभयस्वरूपा त्रिगुणा मायासबलब्रह्मरूपेत्यर्थः सा क्ववर्तते तत्राह-कृत्स्नं जग-

दृष्टाप्य व्यवस्थिता । अस्तीति शेषः । नहि घटादिकार्यं मृत्कारणाननु-
विद्धं क्वचिद् दृश्यते तथेदमपि जगत्कार्यं सच्चिदानन्दमायासबलब्रह्मा-
ननुविद्धं न क्वचिद्भासते । तदुक्तम्—अस्ति भाति प्रियं रूपं नामचेत्यं-
शपञ्चकम् । आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं मायारूपं ततोद्वयमिति ॥ ४ ॥

एवं सूक्ष्मरूपं सर्वकारणमुक्त्वावतारानामपि मूलभूतं
प्रधानं प्रथममवतारं स्थूलरूपात्मकं दर्शयति—

मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ।

नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृपमूर्द्धनि ॥ ५ ॥

मातुलिङ्गमिति । मातुलिङ्गं बीजपूराख्यं फलम् । गदा प्रसिद्धा
ताम् । खेटं चर्म । पानपात्रं चषकं प्रसिद्धम् । चः पादपूरणे । आयुध-
क्रमस्तु सहाद्विखण्डे रेणुकामाहात्म्ये-दक्षिणेश्वरः करे पात्रमूर्ध्वं कौमोदकीं
गदाम् । वामेश्वरः खेटकं धत्ते श्रीफलं तदधः करे । बिभ्रती मस्तके लिङ्गं
पूजनीया विभूतये इति । आयुधार्थस्तु भुवनेश्वरीसंहितायाम् । मातुलिङ्गं
कर्मवृन्दं क्रियाशक्त्यात्मिका गदा । ज्ञानशक्त्यात्मकं खेटं तुर्यवृत्तिस्तु
पानकम् । लिङ्गं पुरुष इत्युक्तो योनिस्तु प्रकृतिः स्मृता । नागः कालः
समाख्यातः सम्बन्धस्तु तयोर्द्वयोः । त्रयाणामप्यधिष्ठानं यतः स्यात्परमे-
श्वरी । नवार्णमन्त्रमध्यस्थमायाबीजस्वरूपिणीति । तथा च मातुलिङ्ग-
ग्रहणेन सर्वकर्मणां फलदात्र्यहमस्मीति बोध्यते । गदाधारणेन क्रियास्व-
रूपा विक्षेपशक्तिर्मय्यस्तीति बोधितम् । खेटधारणेन ज्ञानशक्तिसद्भाव-
दर्शनेनावरणाभावो बोधितः । पानपात्रेण निरन्तरमहं स्वात्मानन्दानु-
भवरसं पिबामीति बोध्यम् । द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोः सम्बन्धात्मको हि
कालः तथा च तेषां धारणेन तेषां प्रकृतिपुरुषकालानामधिष्ठानब्रह्म-
रूपिण्यहमस्मीति देव्या बोधितम् । नवार्णमन्त्रस्य मध्यस्थं यन्मायाबीजं
तदस्या मन्त्रोऽस्तीति पूर्ववचनेनायमर्थो बोधितः । इयमेव भुवनेश्वरीति
तन्त्रेषु धण्टाघोषः, भुवनेश्वरीमहालक्ष्म्योः सूक्ष्मरूपैकत्वेऽपि मायाबीज-
रूपमन्त्रैकत्वेऽपि स्थूलरूपेण पाशाकुशाभयवरायुधात्मकत्वेन मातु-
लिङ्गगदाखेटपानपात्रायुधात्मकत्वेन च भेदात् । ध्यानभेदेनैव न
भेदव्यवहारस्तत्त्वतो मन्तव्यः । सर्वं चेदं तन्त्रविदांस्पष्टम् ॥ ५ ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ।

शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा ॥ ६ ॥

तप्तकाञ्चनैति । महालक्ष्म्याः वणलिङ्कारानाह तप्तस्वर्णनिभारक्त-
वर्णेत्यर्थः । तथैव रक्तभूषणवती । शून्यमिति । शून्यं स्वतः सत्ताशून्यम् ।
जगत्स्वतेजसा स्वसत्तया पूरयामास पूरितवती । यद्वा । स्वतेजसा
स्वप्रतिबिम्बचिदाभासेन शून्यं जगत् तेन पूरितवतीत्यर्थः । अत्रेदं
बोध्यम् । नियतकालपरिपाकानां हि प्राणिकर्मणां मध्ये परिपाकानामुप-
भोगेन च क्षयादितरेषां चापरिपक्वानां भोगासम्भवेन तदर्थ्याः सृष्टेर-
नुपयोगाद्विरण्यगर्भः सर्वमेकीकृत्य सुषुप्त्यवस्थां प्रलयात्मिकां गतो
भवति । मायोदरे तदागर्भोभवत्सर्वप्रपञ्चरूपमण्डं तिष्ठति तदाग्रस्त-
समस्तप्रपञ्चा माया स्वप्रतिष्ठे निर्गुणे ब्रह्मणि विलीना सती यावदव-
शिष्टकर्मपरिपाकं तथैव तिष्ठति । तदुक्तं विष्णुपुराणे । जगत्प्रतिष्ठा देवर्षे
पृथिव्यप्सु प्रलीयते । तेजस्यापः प्रलीयन्ते तेजोवायौ प्रलीयते । वायुः
प्रलीयते व्योम्नि तदव्यक्ते प्रलीयते । अव्यक्तं पुरुषे ब्रह्मणिष्कले
संप्रलीयते इति । अव्यक्तं माया । अव्यक्तं प्रकृतिर्मायैति वायुपुराणात् ।
अवशिष्टैः प्राणिभिश्च तस्यां मायायां विलीयते एवं क्रमेण प्राप्तपरिपाकेः
परमेश्वर्या भगवत्याश्चिदात्मिकायाः सिसृक्षात्मिका मायावृत्तिरुत्पद्यते ।
सैषा मायावस्थेक्षणकामतपोविचिकीर्षादिशब्दैरभिधीयते । तदैक्षत
बहुस्यां प्रजायेयेति छान्दोग्ये । सऐक्षत लोकानुत्सृजा इत्यैतरीयके ।
सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेति तैत्तिरीये । वयसापचीयत ब्रह्मेति
मुण्डके । विचिकीर्षुर्धनीभूता क्वचिदभ्येति बिन्दुतामिति प्रपञ्चसारे ।
एवं सति प्रलये सृज्यमानप्राणिकर्मणामपरिपाकदशायां तादृशकर्म-
भिन्नमायावच्छिन्नं ब्रह्मधनीभूतमित्युच्यते । कालात्कर्मणां परिपाके सति
विनश्यदवस्थः परिपाकप्रागभावो विचिकीर्षेत्युच्यते । ततः परिपाक-
क्षणे मायावृत्तिरुत्पद्यते । तादृशपरिपक्वकर्मकारपरिणतमायाविशिष्टं
ब्रह्मबिन्दुः । तदिदमविभागावस्थमव्याकृतमित्युच्यते । अतएव तस्यो-
त्पत्तिः स्मर्यते-तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिविधं द्विजसत्तमेति । मायाया
अनुत्पन्नत्वेऽपि तादृशकारेणोत्पन्नत्वादुत्पन्नं व्यवहारः । तस्य चाव्य-
क्तस्य ब्रह्मणः अव्याकृताव्यक्तमायाशक्तिकारणबीजत्रिगुणपरा महामाया
प्रकृतिभुवनेश्वरीत्यादयः संज्ञाः । तन्मन्त्रस्य मायाबीजस्यापि एताएव
संज्ञास्तन्त्रेषु प्रसिद्धाः । इतरमन्त्रापेक्षया मायाबीजे प्रत्यासत्यतिशया-
न्मायाबीजमेव मुख्यत्वेनैतत्तस्य वाचकम् । अतएव मायाबीजस्य देवी-
प्रणवशक्तिप्रणवशक्तिबीजपराबीजत्रिगुणामायापराशक्तीत्यादि सामान्य-
शब्दैर्व्यवहारः । तन्त्रेषु प्रणवोऽप्यस्यैवतत्त्वस्य वाचकः । तदुक्तमाचार्यैः

प्रपञ्चसारे प्रथमपटले मायाबीजस्वरूपनिरूपणानन्तरम् । तदा तां तारमित्याहुरोमात्मेति बहुश्रुताः । तामेव शक्तिं ब्रुवते हरीमात्मेति चापर इति । तदेतदव्याकृतं द्विविधं अन्तर्मुखं बहिर्मुखं च । तत्रान्तर्मुखस्य तुरीयमिति संज्ञा । बहिर्मुखस्य कारणदेह इतिसंज्ञा । इमौ च द्वौ भेदौ तापनीये प्रसिद्धौ । तत्र बहिर्मुखात्तत्त्वादात्मन आकाशः सम्भूत-इत्यादिक्रमेण सूक्ष्मदेहस्थूलदेहयोरुत्पत्तिः सर्ववेदान्तसिद्धा । तथा च तुरीयकारणसूक्ष्मस्थूलमध्य एव सर्वत्र प्रपञ्चस्यान्तर्भावः । तत्र स्थूलदेहस्य समष्टिव्यष्ट्यात्मकस्य लिङ्गदेहस्य ज्ञानेन्द्रियान्तःकरणरूपस्य चाधिपतिर्ब्रह्मा सरस्वतीसहितः । क्रियाशक्त्यात्मकलिङ्गदेहस्याधिपतिर्लक्ष्मीसहितो विष्णुः । कारणदेहस्याभिमानो गौरीसहितोरुद्रः । तुरीयदेहस्य भुवनेश्वरीमहालक्ष्मीरूपे अभिमानिन्यौ देवते इति वस्तुस्थितिः सकलवेदतन्त्रपुराणप्रसिद्धेति ॥ ६ ॥

शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी ।

बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि ॥ ७ ॥

तत्र तुरीयरूपाधिष्ठात्र्या महालक्ष्म्याः सर्वावतारमूलभूतायाः स्वरूपमभिहितं संप्रत्यवतारान्तररूपमाह-शून्यमिति । परमेश्वरी सर्वस्याद्या महालक्ष्मीः अखिलं सम्पूर्णं जगत् लोकं शून्यं निरधिष्ठातारं विलोक्य दृष्ट्वा अधिष्ठातृभिः शून्यमित्यर्थः । केवलेन शुद्धेन तमसा तमोगुणेनोपाधिना अपरं परममुत्कृष्टं रूपं रूपान्तरं स्वस्मादन्यं बभार धारयामासेत्यन्वयः । अयं भावः मायाशबलब्रह्मणः सद्रूपत्वं चिद्रूपत्वमानन्दरूपत्वं चास्ति । गुणत्रयसाम्यावस्थात्मकत्वं च । तत्र प्राणिकर्मवशाद्यदागुणद्वयापेक्षया तमोगुणः किञ्चित्स्वस्थानाच्चलित इव जातस्तदा तेन केवलेन चलिततमोगुणेन विशिष्टं यत्तदेवाव्यक्तं तत्तद्रूपाभिमानित्वेन महाकाल्याख्यं रूपं धारितवतीत्यर्थः । महालक्ष्मीस्तु साम्यावस्थाभिमानिनीति पूर्वमेव स्थितम् ॥ ७ ॥

सा भिक्षाअनसङ्काशा दंष्ट्राङ्कितवरानना ।

विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा ॥ ८ ॥

तस्याः स्वरूपमाह—सेति । सा काली एवंभूता नारी बभूव कीदृशी भिक्षा मूलदेवीतः अभिषेति वा छेदस्तयोरभेदात् । यद्वा । भिक्षं स्फुटितं यदञ्जनमतिनीलं तत्सङ्काशा । उपरिगतमलापगमे मध्यभागस्य

नीलत्वात् । तथा दंष्ट्रा दाढसंज्ञया प्रसिद्धेन दन्तेन अङ्कितं लक्षितं वरं
श्रेष्ठमाननं यस्याः सा । तथा विशाले क्षोभायुक्ते विस्तीर्णे वा लोचने
यस्याः सा । तथा तनु सूक्ष्मं मध्यमं कटिभागं यस्या एवं भूतेत्यर्थः ।
विद्यच्छटं पृथु बृहद्विशालपृथुलं महदित्यमरः ॥ ८ ॥

खड्गपात्रशिरःखेटैरलंकृतचतुर्भुजा ॥

कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणाहिशिरःस्रजम् ॥ ९ ॥

खड्गेति । खड्गः प्रसिद्धः । पात्रं चषकम् । शिरः मुण्डं । दक्षिण-
काल्याध्याने तस्यैव सत्त्वात् । खेटयति त्रासयतीति खेटः । अस्त्रविशेषः ।
एतैरस्त्रविशेषैः अलंकृतचतुर्भुजा । तथा कबन्धाः शिरोहीनदेहाः तेषां
हारं मालामुरसेतिशेषः । हीति निश्चये । शिरसा शिरःस्रजं शिरोमालां
बिभ्राणा दधती । उरसि कबन्धमालां शिरसि शिरोमालां दधतीत्यर्थः ।
अत्र केचित् कबन्धहारमालां अहिशिरःस्रजमित्यनेन सर्पमस्तकमाला-
मित्याहुः । मूर्ध्नि सर्पसहस्राणां स्रजं वै सुन्दरी दधदिति यामलोक्ते ।
कबन्धहारमुरसेति पाठान्तरमपि तदा शिरसेत्यध्याहारः ॥ ९ ॥

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा ॥

नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमोनमः ॥ १० ॥

सेति । सैवमुत्पन्ना काली तामसी तमोगुणयुक्ता । चोऽप्यर्थः ।
तथापि प्रमदोत्तमा स्त्रीषूत्तमा स्त्रीरत्नगुणविशिष्टेत्यर्थः । तमःकार्य-
णान्तरस्पृष्टैवास्तीति ध्वनितम् । महालक्ष्मीं प्रोवाच । अनेनापि
मर्यादापरिपालनप्रकटीकरणेनास्पृष्टतमोगुणदोषेति ध्वनितम् । इच्छया
स्वीकृततमोगुणवतीत्वेन तदधीनत्वात् । किमुवाचेत्याह—हे मातः मे
मह्यं नाम ख्यातिः कर्म तदनुकूलं देहि ददस्वेति ते तुभ्यं नमोनमः वारं
वारमादरेण नमस्कुर्मः । गुरुषु नमस्कारएवोचितमित्यर्थः ॥ १० ॥

तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम् ॥

ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ ११ ॥

तामिति । तां प्रमदासु उत्तमां श्रेष्ठगुणवतीं तामसीं तमोगुणा-
धिष्ठात्रीं महालक्ष्मीः गुणत्रयसाम्यावस्थाभिमानिनी प्रोवाच तत्प्राथितो-
त्तरं वाक्यमूचे । यानि यादृशानि त्वया कर्तव्यानि कर्माणि ममाभिल-
षितानि तानि तादृशार्थवन्ति तव नामानि ते तुभ्यं ददामीत्यन्वयः ।

नामार्थानुरूपमेव कर्माणि कुर्वित्याशयः । अनेन कर्मोपदेशकरणेन कर्म मे देहीति प्रार्थनोत्तरं कर्मस्वरूपाकथनेन तस्या अद्यापि कर्माभावाद्यानि ते कर्माणीत्यनुपपन्नमेव स्यादिति ॥ ११ ॥

महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा ।

निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १२ ॥

महामायेति । तस्या नामान्याह—महतां ब्रह्मादीनामपि मोह-
कत्वात्तेषामेव कलनान्मरणाच्च महामायादिनामत्रयम् । क्षुधा तृषेत्यत्र
अर्श आद्यजन्ताट्ठाप् । सर्वाविद्याभक्षणेच्छावतीत्यर्थः । तथा सर्वाविद्या-
पानेच्छावतीत्यर्थः । निद्रा योगनिद्रा समाधिः तद्रूपा तदधिष्ठात्रीत्यर्थः ।
योगनिद्राहरेरुक्तेति वक्ष्यमाणत्वात् । तदधिष्ठातृत्वादेव तद्रूपत्वमिति
देवीपुराणे रात्रिसूक्तादिश्रुतिषु प्रसिद्धम् । तृष्णा भक्तकृतभक्तीच्छावती ।
यद्वा प्राणिमात्रेषु नानाभिलाषवती । अर्श आद्यजन्तत्वम् । चकारो
भिन्नक्रमे । एकवीरा । बाहुलकादेतद्रूपं सिद्धयति । एका एव वीरा
पराक्रमवती प्रपञ्चमध्ये इत्येकवीरा । कालनाशकत्वात्कालरात्रिः यस्याः
ध्वंसाभावः । सा एव दुरत्यया । इदं च सर्वतमोगुणकार्यकारित्वस्योप-
लक्षणम् । तमोगुणवत्त्वादेव कृष्णवर्णत्वमेवमुत्तरत्रापि ॥ १२ ॥

इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः ।

एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १३ ॥

इमानीति । इमानि प्रोक्तरूपाणि कर्मभिस्तदनुकूलैः प्रतिपाद्यानि
कथनीयानि तव नामानि यथाकालं भविष्यन्तीतिशेषः । ईदृशार्थज्ञान-
पुरःसरं नामकीर्तनं फलायोपकल्पते । एभिरिति । पूर्वोक्तरूपैः नामभिः ते
कर्माणि ज्ञात्वा यः अधीते सः सुखं त्रिविधदुःखाभावं अश्नुते प्राप्नोतीत्यर्थः
॥ १३ ॥

अनन्तप्राणिकर्मवशादेव यदा सत्त्वगुणस्य यत्किञ्चिच्चलनं तदा
तदभिमानित्वेनापि सैव लक्ष्मीर्महासरस्वतीरूपेण परिणतेत्याह—

तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप ।

सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १४ ॥

तामित्युक्तेति । नृपेति सुरथसम्बोधनम् । सा महालक्ष्मीः तां
प्रतिपादितां महाकालीं इति पूर्वोक्तरूपमुक्त्वा कथयित्वा अपरं एतद्धिन्नं

अतिशुद्धेन सत्त्वाख्येन तन्नाम्ना गुणेन इन्दुप्रभं चन्द्रकान्तिमत्स्वरूपं दधौ
धृतवतीत्यर्थः ॥ १४ ॥

अस्याः स्वरूपमाह—

अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी ।

सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यैव सा ददौ ॥ १४ ॥

अक्षमालेति । सा प्रसिद्धा महालक्ष्मीः शुद्धसत्त्वाशेन इन्दुप्रभरूपेणैव
वरा सर्वश्लाघ्यगुणवती तथा अक्षमालाङ्कुशधरा तथा वीणापुस्तक-
धारिणी एवं भूता नारी बभूव । अस्याः नामान्यपि कर्मानुरूपानि सा
महालक्ष्मीः ददावित्यन्वयः । अस्यैवेत्यत्र संधिरार्षः ॥ १५ ॥

अस्या नामान्याह—

महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती ।

आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्बीजगर्भा च धीश्वरी ॥ १६ ॥

महाविद्येति । महाविद्यादिवागन्तानामधिष्ठातृत्वादेव तत्तन्नाम-
त्वम् । अन्यानि नामानि प्रसिद्धकार्थान्येव । अत्रापि नामानुरूपमेव
कर्मापि सरस्वत्या ज्ञेयमनुक्तमपि पूर्ववत् । ननु यथा गुणत्रयोपाधिकस्य
ब्रह्मणोभिमानिरूपद्वयमुक्तं तथा रजोगुणोपाधिकस्यापि रूपान्तरं वक्तव्य-
मिति चेन्न । गुणत्रयस्य साम्यावस्थाभिमानिमहालक्ष्मीरूपस्यैव
रजोगुणाभिमानित्वस्यापि सम्भवेन तद्वक्तव्यत्वानुपयोगात् । नह्येकरूप-
मेकस्यैवाभिमानीति नियमे प्रमाणमस्ति नियमे वा भगवतीच्छायाः
सर्वतो बलवत्वाच्च रूपान्तरे भगवत्याइच्छेति न रूपान्तरं भगवत्या
स्वीकृतम् । किन्तु गुणत्रयसाम्यावस्थाभिमानिस्वरूपस्यैव रजोगुणाभि-
मानित्वमपि स्वीकृतमिति । अत एव महालक्ष्म्या मूलभूताया रजोगुणा-
भिमानित्वेन रक्तवर्णत्वम् । अत एव देवीभागवते प्रथमस्कन्धे ॥
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा । महाकाली महा-
लक्ष्मीमहासरस्वतीति ता इति । अत्र सूतित्रयमध्ये महालक्ष्म्या गणनं
कृत्वा यस्या एतास्त्रिविधाः शक्तयस्तस्या महालक्ष्म्या एव महता
प्रबन्धेन वर्णनं कृतं तृतीयस्कन्धे तच्चोभयोरैक्ये एवं सङ्गच्छते ।
एताश्चतस्रः शक्तयः पतिरहिताः स्वतन्त्राः विषयवासनारहिताः केवलं
स्वात्मानन्देनैवानन्दिताः सन्तीति ॥ १६ ॥

तयोर्नामिकर्मदानानन्तरं कृत्यमाह—

अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम् ।

युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः ॥ १७ ॥

अथेति । अथ नामिकर्मदानानन्तरं महालक्ष्मीः मूलदेवी महाकालीं सरस्वतीं च उवाच हे देव्यौ स्वानुरूपतः स्वस्वगुणानुरूपेण मिथुने स्त्रीपुंसौ युवां जनयतामुत्पादयेतामित्यर्थः ॥ १७ ॥

इयुक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम् ।

हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वेति । महालक्ष्मीः ते महाकाली महासरस्वत्यौ प्रति इति इत्थं प्रकारेणोक्त्वा प्रथमतः स्वयमेव मिथुनं पुंस्त्रीलक्षणं ससर्ज उत्पादितवती । पूर्ववत्स्वस्यापि गुणत्रयमूर्तिमध्यस्थत्वात् । हिरण्यगर्भौ हिरण्यवस्त्रिमलं ज्ञानं तद्गर्भे ययोस्ती । अतएव रुचिरौ रमणीयौ । तथा स्त्रीपुंसौ एका स्त्री अन्यः पुरुषः उभावपि कमलासनौ पद्मासनावित्यर्थः ॥ १८ ॥

अथ स्वजातयमलयोर्नामिकरणं देवी स्वयमकरोदित्याह—

ब्रह्मन्विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम् ।

श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम् ॥ १९ ॥

ब्रह्मन्निति । तयोर्माता तं स्वजातं नरं ब्रह्मन्नित्यादिनामचतुष्केण तन्नामानुरूपकर्माणि बोधयन् सम्बुद्ध्या चाह । चपुनः तां स्त्रियमपि श्रीरित्यादीनि नामान्याह सम्बुद्धयेति ॥ १९ ॥

मातुराज्ञया तदनन्तरं महाकालीमहासरस्वतीदेव्यावपि मिथुन-
द्वयमुत्पादितवत्यावित्याह—

महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह ।

एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते ॥ २० ॥

महाकालीति । महाकाली च पुनः भारती महासरस्वती सह साद्वं मिथुने स्त्रीपुंसौ पृथक् पृथक् सृजतः । उत्पादयामासतुः । साद्वं तु साकं सत्रा समं सहेत्यमरः । एतयोर्मलजातयोरपि रूपाणि नामानि च हेतुपेति सम्बोधनाध्याहारः । ते तुभ्यं वदामि कथयामीत्यन्वयः ॥ २० ॥

अथ कालीजातपुरुषरूपमाह—

नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम् ।

जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम् ॥ २१ ॥

नीलकण्ठमिति । नीलग्रीवं । तथा रक्तबाहुमरुणभुजं श्वेताङ्गं शुक्लदेहं चन्द्रशेखरं चन्द्रार्द्धाङ्कितमस्तकम् । एवंभूतं पुरुषं सितां शुक्लवर्णां स्त्रियमपि महाकाली जनयामास उत्पादयामासेत्यन्वयः । अत्र महाकाल्यामन्तर्हितः सत्त्वगुणोऽप्यस्ति यतः शुक्लवर्णां सृष्टिरिति बोध्यम् ॥ २१ ॥

कालीसृष्टमिथुनानामान्याह—

सरुद्रः शङ्करः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः ।

त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा ॥ २२ ॥

स इति । यत्तदोर्नित्यसम्बन्धत्वात् । पूर्वोक्तमिथुनयोर्मध्ये यः पुमान् स रुद्रः दुःखद्रावणात् । शङ्करः मोक्षप्रदत्वात् । स्थाणुः कालत्रया-
वाध्यत्वात् । कपर्दी जटालत्वात् । त्रिलोचनः तेजस्त्रयनेत्रत्वात् । त्रयोर्मध्ये या स्त्री सा त्रयी ऋग्यजुःसामरूपत्वात् । विद्या अज्ञाननिरा-
करणत्वात् । कामधेनुः सर्वाभीष्टप्रदत्वात् । भाषा आबालगोपादिमुख-
कुहरवर्तित्वात् । अक्षरा व्यञ्जनरूपेणानुच्चार्यमाणत्वात् । स्वरा षोडशस्वररूपेण स्वयमुच्चार्यमाणत्वादित्यादितयोर्नामावददित्यर्थः ॥ २२ ॥

अथ सरस्वतीजातमिथुनमाह—

सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप ।

जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते ॥ २३ ॥

सरस्वतीति । हे नृप सुरथ सरस्वती गौरीं गौरवर्णां स्त्रियं ।
च पुनः कृष्णं कृष्णवर्णं पुरुषं जनयामास उत्पादयामास । तयोः स्त्री-
पुंसयोजातयोः नामानि ते तुभ्यं वदामि कथयामि । अत्राप्यन्तर्हितस्त-
मोगुणोऽस्त्येवेति ॥ २३ ॥

सरस्वतीजन्यमिथुनयोर्नामान्याह—

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः ।

उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा ॥ २४ ॥

विष्णुरिति । विष्णुः प्रलये सर्वाधिष्ठानत्वात् । कृष्णः प्रलय-

करत्वात् । हृषीकेशः अन्तर्यामित्वात् । वासुदेवः प्राणाधीशत्वात् ।
जनादनः सर्वाह्लादकत्वात् । इति पुण्यक्तिनामानि । स्त्रीव्यक्तेस्तु उमा
शिवाद्धाङ्गत्वात् । गौरी गौरवर्णत्वात् । कृष्णवर्णेनोत्पन्ना पुनस्तपसा
सैवगौरवर्णत्वमापन्नेति कालीपुराणे वितता कथास्ति सती पतिव्रतासु
मूर्द्धन्यत्वात् । चण्डी सर्वेषां नियन्तृत्वात् । सर्वेष्वपि नियन्तृषु भयमेव
तत्कारणम् । भीषास्माद्वातः पवत इत्यादि श्रुतेः । चण्डादिप्रबलदैत्य-
ध्वंसनाद्वा । तथा सुन्दरी त्रैलोक्ये निरुपमरूपत्वात्सर्वसम्मोहनत्वाच्च ।
सुभगा अखण्डसौभाग्यत्वात् । शिवा सर्वमङ्गलप्रदत्वादिति ॥ २४ ॥

एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे ।

चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः ॥ २५ ॥

एवमिति । एवं पूर्वोक्तक्रमेण । पूर्वं पुरुषाभावेऽपि स्वयमेव पुरुष-
रूपा । अपि तिस्रो युवतयः शक्तयः पुरुषत्वं पुरुषभावं सद्यः शीघ्रं
प्रपेदिरे प्राप्ता इत्यर्थः । तदिदं रूपं चर्मचक्षुषामदृश्यमित्याह । चक्षुष्मन्त
इति ज्ञानस्यैव प्रचक्षुर्ध्वं न चर्मण इति । चक्षुष्मन्तो ज्ञानिनो नु पश्यन्ति
न तद्विद्वान्नाः इतरे अतद्विद इतिच्छेदः । अयं भावः । कथंस्त्रियः पुरुषत्वं
प्रपेदिरे नैतद्वुद्धिगम्यं भवतीति ये वदन्ति तान्प्रति कटाक्षेण मुनिराह-
सत्यं भवद्वुद्धिगम्यं नास्तीति । ज्ञानिनां तु मायाशक्तिसामर्थ्यविदां
नैतदाश्चर्यंभूतमिति ॥ २५ ॥

अनन्तरं कृत्यमाह—

ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मोनृपत्रयीम् ।

रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम् ॥ २६ ॥

ब्रह्मण इति । हे नृप महालक्ष्मीः त्रयीं त्रयीनाम्नीं सरस्वतीं पत्नीं
ब्रह्मणे । तथा रुद्राय वरदां गौरीनाम्नीं पत्नीं । च पुनः श्रियं लक्ष्मी-
नाम्नीं पत्नीं वासुदेवाय बिष्णवे प्रददावित्यन्वयः ॥ २६ ॥

इत्थं परस्परविवाहेजातेऽनन्तरं सृष्टिमाह—

स्वरया सह सम्भूय विरञ्चयोऽण्डमजीजनत् ।

विभेद भगवान्नुद्रस्तद्वगौर्या सह वीर्यवान् ॥ २७ ॥

स्वरयेति । इदं च मिथुनत्रयं कारणदेहसूक्ष्मदेहस्थूलदेहानाम-
भिमानोति तापनीयादौ स्पष्टम् । तत्र पूर्वकल्पे यो विरञ्चिः स स्वरया

सरस्वत्या शक्त्यासम्भूय युक्तः सन् प्रलयकाले सर्वप्राणिकमन्दं स्वा-
धिष्ठितमेकत्राण्डरूपं कृत्वा सुषुप्तौ संस्थाप्य स्वयं लीयते । इति पूर्वमुक्तं
तदभिप्रायेणाह-स्वरयेत्यनेन अजीजनत्पूर्वं कल्पे इत्यर्थः । तत्र सुषुप्तेर-
भिमानी गौरीसहितो रुद्रः सोऽस्मिन्कल्पे प्रलयचरमकाले तद्धीदमव्या-
कृतमासीत् । तन्नामरूपाभ्यामेव व्याक्रियत इति श्रुत्युक्तरीत्या नाम-
रूपविवेचनरूपभेदनेन सुषुप्तौ लीनं तदण्डं विभेदेत्यमुमर्थमाह विभेदेति ।
भगवान् रुद्रस्तत्पूर्वोक्तमण्डं गौर्यासह विभेद अत एव वीर्यवान् ॥ २७ ॥

अण्डमध्येकिमासीदित्याह—

अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप ।

महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ २८ ॥

अण्डमध्ये इति । हे नृप सुरथ अण्डमध्ये रुद्रभेदिताण्डमध्ये
प्रधानादि महत्तत्त्वादिकार्यजातं महाभूतात्मकं सर्वं स्थावरजङ्गमं जगत्
अभूदिति । सुषुप्तौ कस्यापि भानाभावेन लीनाण्डमध्ये प्रधानादिस्थिति-
र्युक्तेवेति भावः ॥ २८ ॥

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः ।

सञ्जहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः ॥ २९ ॥

पुपोषेति । यदेव पूर्वकल्पे नामरूपाभ्यां व्याकृतं जगत् लक्ष्म्या
सहितः केशवः सूक्ष्मदेहाभिमानी पुपोष तदेव पालितवान् । यथा वा पूर्वं
पुपोष तथैव पालयामासेत्यर्थः । तदेव पुनः संहारकाले गौर्यासह महेश्वरः
स्वसृष्टमेव जगत् सञ्जहार नाशितवानित्यन्वयः ॥ २९ ॥

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी ।

निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३० ॥

महालक्ष्मीरिति । तथा च पूर्वोक्तरीत्या श्रुतिस्मृत्युक्तसृष्ट्यादि
विषये एवास्य सुमेधसो मुनेरुपदेशरूपग्रन्थस्य तात्पर्यम् न गुण परिच्छि-
न्नरूपेभ्यो ब्रह्मादिदेवेभ्यः सृष्टिरित्यत्र उक्तसृष्ट्यादिश्रुति विरोधात् अत्र
ब्रह्मादिशब्देन च तदधिष्ठितं श्रुत्युक्तं सूक्ष्मं तत्त्वं मुच्यत इति न कोऽपि
दोषः । इत्थं यस्याः प्रभावः सर्वप्रपञ्चसर्जनरूपः तदधिष्ठातृ ब्रह्मादि-
सर्जनरूपश्च सा महालक्ष्मीः कियत्पर्यन्तं वर्णनीयेत्यभिप्रायेणाह—हे
महाराज सुरथ सा महालक्ष्मीः सर्वसत्त्वमयी तथा ईश्वरी सर्वसत्त्वाना-
मित्यर्थः । चकारोऽप्यर्थवाचकः । सा निराकारा निर्गुणापि साकारा

सगुणा विश्वविलासरूपेण सा एव नानाभिधानभृत् नानारूपनाम्ना स्थितवतीत्यर्थः । यदुक्तं देव्यथर्वशिरसि एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते अनेकेति ॥ ३० ॥

नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन कुत्रचित् ॥ ३१ ॥

इत्थमध्यारोपमुक्त्वापवादमाह नामान्तरैरिति । सगुणवाचकैः सत्यज्ञानचिन्महामायादिष्वद्वैतैः नामान्तरैः एषा पूर्वोक्तलक्षणा निरूप्या लक्षणीया । न तु स्वनाम्ना अन्येन वा केनचित् प्रत्यक्षादिना प्रमाणेन बोध्येति शेषः । तथा च श्रुतिः । ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी । यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तितेति । यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सहेति च ॥ ३१ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे उत्तरभागे सरयूप्रसादसंगृहीते प्राधानिकरहस्यार्थसंग्रहोनाम द्वितीयोविश्रामः ॥ २ ॥

आदितोविशतितमो विश्रामः ॥ २० ॥

अथ वैकृतिकरहस्यारम्भः ।

तस्य श्लोकसंख्या चिदम्बररहस्ये—

श्लोकाश्चैकोनचत्वारिंशत्संख्याः परिकीर्तिता इति

इदानीमेतासामेव मूर्तिनां ध्यानान्तराण्यप्याह—

ऋषिरुवाच ।

ऋषिः सुमेधाः पूर्ववर्णितत्रिगुणजातशक्तीनां ध्यानो-

पासनादिक्रममुपदिशन्नाजानं सुरथमुवाच—

त्रिगुणा तामसी देवी सात्विकी या त्रिधोदिता ।

सा शर्वा षण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते ॥ १ ॥

त्रिगुणेति । पूर्वोक्तरीत्या रजोगुणविशिष्टाया मूललक्ष्म्यास्त्रिगुणा-
त्मिकायाः भेदाभावेनोभयोर्महाकालीमहासरस्वत्योरपि ग्रहणं त्रिगुणा-
पदेनोच्यते । हे राजन् या त्रिगुणा तामस्यादिभेदनाम्ना पूर्वमुदिता
कथिता सा एव देवी शर्वस्यादि भगवतीत्यन्तैर्नामभिः ईर्यते कथ्यते
शर्वेत्यत्र शर्वाणीतिवक्तव्ये शर्वेत्युक्त्या पुंसम्बन्धाभावबोधनेन स्वा-
तन्त्र्यमासां दर्शितम् । त्रिविधापि सा वस्तुत एकैवेति । सैवानेकैर्नाम-
भिरीर्यते इत्यर्थः ॥ १ ॥

योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा ।

मधुकैटभनाशार्थं या तुष्टावाम्बुजासनः ॥ २ ॥

योगनिद्रेति । हे राजन् । या तमोगुणा तमोगुणप्रधानलक्षणा
वा हरेः विष्णोः योगनिद्रा कोऽर्थस्तदधिष्ठातृत्वेन मया पूर्वं उक्ता षण्णिता
यां कमलासनः ब्रह्मा मधुकैटभनाशार्थं तुष्टाव सा एव महाकाली महदा-
द्यन्तकालनशीलेत्यर्थः ॥ २ ॥

अस्याः स्वरूपमाह—

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा ।

विशालया राजमाना विशल्लोचनमालया ॥ ३ ॥

दशवक्त्रेति । दशवक्त्रा दशानना । तथा दशभुजा । पञ्चदक्षिण
हस्ता, पञ्चवामहस्ता । तथा दशपदा, पञ्चपञ्चदक्षवामभेदेन । तथा
अञ्जनप्रभा नीलाञ्जनकान्तिरिति । तथा विशालया त्रिशङ्खोचनमालया
राजमाना शोभमाना । प्रतिवक्त्रं नेत्रत्रयमित्यर्थः ॥ ३ ॥

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप ।

रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः ॥ ४ ॥

स्फुरद्दशनदंष्ट्रेति । हेभूमिप पृथ्वीनाथ । पुनः सा स्फुरद्दशनदंष्ट्रा
प्रकाशमानाः दशनाः दंष्ट्राश्च यस्याः अतएव भीमरूपा भयङ्करीत्यर्थः
अपीतिशङ्कायाम् । गर्हासमुच्चयप्रश्नश्चङ्कासम्भावनास्वपीत्यमरः । इत्थं
पूर्वोक्तरूपापि सा कथं शिवङ्करीत्याह—सा एव रूपसौभाग्यकान्तीनां
महाश्रियः प्रतिष्ठा प्राप्तिस्थानम् । अयमभिप्रायः—शत्रूणां भीमरूपापि
भक्तानां सौभाग्यदात्र्यस्त्ये वेत्यर्थः ॥ ४ ॥

खड्गबाणगदाशूलं चक्रपाशभुशुण्डिभृत् ।

परिधं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्गुधिरं दधौ ॥ ५ ॥

खड्गबाणेति । सैव महाकाली पूर्वोक्तरूपा दक्षिणाधः करमारभ्य
वामाधः करपर्यन्तं एतान्यस्त्राणि दधौ धृतवती । परिधं तन्नामानं ।
कार्मुकं धनुः । निश्च्योतद्गुधिरं शीर्षं सद्यः कृतं मुण्डमित्यर्थः ॥ ५ ॥

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया ।

आराधिता वशीकुर्यात्पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ६ ॥

एषेति । सा प्रसिद्धा पूर्वोक्तलक्षणा एषा वैष्णवी विष्णोर्व्यापन-
शीलस्य शक्तिः । तथा माया अघटितघटनापटीयसी । तथा महाकाली
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानां लयभूमिः । तथा दुरत्यया दुरधिगमा एवंभूतापि
सैवैषा आराधिता भक्तितः सेविता विधिनोपासिता सती पूजाकर्तुः
उपासितुः चराचरं निखिलं वशीकुर्यात् साधकाधीनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ६ ॥

एवं महाकालीस्वरूपमुक्त्वा महालक्ष्मीस्वरूपं निर्दिशति—

सर्वदेवशरीरेभ्यो याविर्भूताऽमितप्रभा ।

त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी ॥ ७ ॥

सर्वदेवेति । हे राजन्निति प्रकरणान्नभ्यते । या अमितप्रभा
निरुपमरूपा सर्व देवशरीरेभ्यः आविर्भूता प्रकटतां जाता सा एव साक्षा-

महालक्ष्मीः ननु लक्ष्म्यवतार इत्यर्थः । कीदृशी त्रिगुणा साम्यावस्था-
रूपिणी । मूलप्रकृतिरित्यर्थः । एषैव महिषमर्दिनी महिषासुरहन्त्रीति
॥ ७ ॥

महिषमर्दिन्याः स्वरूपमाह—

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला ।

रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुः उन्मदा ॥ ८ ॥

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा ।

चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी ॥ ९ ॥

अष्टादशभुजापूज्या सा सहस्रभुजा सती ।

श्वेताननेति सार्द्धद्वाभ्याम् । सहस्रशब्दोऽनन्तवाची । सा महा-
लक्ष्मीः अनन्तभुजा अपि अष्टादशभुजासती पूज्या पूजनीया ध्येया वा ।
किं भूता । श्वेतानना शिवांशजन्यत्वात् । नीलभुजा विष्णवंशजत्वात् ।
सुश्वेतस्तनमण्डला सौम्यांशजत्वात् पुनारक्तमध्या देवेन्द्रांशजत्वात् ।
रक्तपादा ब्रह्मांशजत्वात् । नीलजङ्घोरुः वाय्वांशजत्वात् । उन्मदा
प्राप्तयौवनत्वादपराजित्वाद्वा । तथा सुचित्रजघना । चित्रमाल्याम्बर-
विभूषणा । चित्रानुलेपना नानाविधकर्मविलेपनवती । पुनः कान्तिः
अङ्गप्रत्यङ्गशोभा । रूपं तदनुसारि । सौभाग्यं महिमातिशयः । एभि-
रुक्तलक्षणैः शालते शोभते या सेति निरूपमशोभावतीत्यर्थः ॥ ८-९ ॥

आयुधान्यत्रवक्ष्यन्ते दक्षिणाधः करक्रमात् ॥ १० ॥

अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा ।

चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः ॥ ११ ॥

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः ।

अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम् ॥ १२ ॥

सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप ।

पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥ १३ ॥

आयुधानीति सार्द्धान्निभिः । हेनृप ईदृशी या एषा महालक्ष्मी-
मया वर्णिता तामिमामीशां सर्वाधिष्ठात्रीं पूर्वोक्तलक्षणं सर्वं देवमयीं या
पूजयेत् स उपासकः सर्वलोकानां देवानां च प्रभुः स्वामी भवेत् । तां

किम्भूताम् । कमलासनां पद्मस्थितां पुनः एभिः पूर्वोक्तरूपैः आयुधैः
दक्षिणाधः करमारभ्य वामाधः करपर्यन्तं मालावदलंकृतभुजाम् । शोभित-
भुजामित्यर्थः । आयुधान्याह—दक्षमाला । कमलं । बाणः । अक्षिः ।
कुलिशं वज्रं । गदा । चक्रं । त्रिशूलं । परशुः । एतानि नवायुधानि अध
वारभ्योर्ध्वान्तानि दक्षे ध्येयानि । शङ्खः । घण्टा । पाशः । शक्तिः ।
दण्डः । चर्म । चापं धनुः । पानपात्रं । कमण्डलुः । एतानि नवायुधानि
वामे ऊर्ध्वमारभ्याधः पर्यन्तं ध्येयानि ॥ १०-१३ ॥

अथ महासरस्वतीध्यानमाह—

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया ।

साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १४ ॥

गौरीदेहादिति । या शुम्भासुरनिबर्हिणी मया पूर्वं प्रोक्ता कथिता
सा एव साक्षात्सरस्वती । कीदृशी । गौरीदेहात्समुद्भूता उत्पन्ना । पुनः
कीदृशी । सत्त्वं एकः गुणः आश्रयो यस्याः सा । सत्त्वगुणमयीत्यर्थः
॥ १४ ॥

सरस्वत्या आयुधान्याह—

दधौ चाष्टभुजा बाणमुशले शूलचक्रभृत् ।

शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप ॥ १५ ॥

दधाविति । हे वसुधाधिप पृथ्वीपते । सा पूर्वोक्तरूपा सरस्वती
अष्टभुजा सती । दक्षहस्ते बाणमुशले च पुनः शूलचक्रभृत् । चकारो-
न्नन्तरार्थं । अनन्तरं वामे शङ्खम् । घण्टां । लाङ्गलं हलम् । कार्मुकं
धनुः । दधती एवं दक्षोर्ध्वहस्ताद्वामोर्ध्वपर्यन्तं एतान्यायुधानि दधौ
धृतवतीत्यर्थः ॥ १५ ॥

सरस्वत्युपासनाफलमाह—

एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति ।

निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी ॥ १६ ॥

एषेति । एषा पूर्वनिर्दिष्टा देवी सरस्वती साधकैः भक्त्या
सम्पूजिता सम्यक्पूजिता सर्वभावेनार्चितासती सर्वज्ञत्वं त्रिकालज्ञत्वं
साधकैर्मयः प्रयच्छति ददातीत्यर्थः । कीदृशी एषा निशुम्भमथिनी ।
तथा शुम्भासुरनिबर्हिणी । निशुम्भशुम्भयोर्विध्वंसिनीत्यर्थः ॥ १६ ॥

प्रथमप्रश्नसमाधानमुपसंहरम् द्वितीयप्रश्नस्योत्तरं प्रतिजानीते—

इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्त्तीनां तव पार्थिव ।

उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय ॥ १७ ॥

इत्युक्तानीति । हे पार्थिव राजन् इतीत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण मूर्त्तीनां तिसृणां स्वरूपाणि ध्येयानीति मया उक्तानि कथितानि । अथानन्तरं जगन्मातुः तप्तकाञ्चनवर्णाभित्यनेनोक्ताया महालक्ष्म्याः उपासनं तथा आसां महाकाल्यादीनां तिसृणां पृथक् भिन्नं भिन्नमुपासनं निशामय आलोचयेत्यर्थः ॥ १७ ॥

अथावरणदेवस्थानान्याह—

महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती ।

दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम् ॥ १८ ॥

महालक्ष्मीरिति । यदा महालक्ष्मीः चतुर्भुजा तप्तकाञ्चनेतिध्या-
नोक्ता पूज्या तदा तां मध्ये स्थाने सम्पूज्य तस्या एव प्रत्यासत्या
दक्षिणोत्तरयोः भागयोः दक्षिणे भागे चतुर्भुजां महाकालीं । उत्तरे
वामभागे महासरस्वतीं चतुर्भुजां पूजयेत् । देवतान्नयमपि चतुर्भुजं
पूर्वोक्तायुधचतुष्टययुक्तमिति पूज्यम् पृष्ठ इति । एतासां पृष्ठभागे मिथुनत्रयं
पूजयेदित्यर्थः ॥ १८ ॥

महालक्ष्मीपृष्ठस्थितपूज्यदेवस्थानान्याह—

विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे ।

वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतान्नयम् ॥ १९ ॥

विरञ्चिरिति । मध्ये मध्यस्थमहालक्ष्म्याः पृष्ठभागे स्वरा सरस्वती
तयासह विरञ्चिः मध्ये पूज्यः । दक्षिणे विरञ्चिर्दक्षिणे कोऽर्थः महाकाल्याः
पृष्ठभागे गौर्या सह रुद्रः पूज्यः । वामे विरञ्चेर्वामभागे सरस्वत्याः
पृष्ठभागे लक्ष्म्या सह हृषीकेशो विष्णुः पूज्यः । पुरत इति मध्यस्थदेवी-
न्नयस्य पुरतो देवतानां वक्ष्यमाणानां त्रयं पूजयेदित्यर्थः ॥ १९ ॥

अथ तदेव देवतान्नयपूजनमाह—

अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना ।

दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत् ॥ २० ॥

अष्टादशेति । मध्ये मध्यस्थाया महालक्ष्म्याः सम्मुखे अष्टादशभुजा

लक्ष्मीः पूज्या । अस्या अष्टादशभुजाया वामे महाकाली सम्मुखे दशानना प्रथमचरित्राधिष्ठात्री पूज्या । अस्या अष्टादशभुजाया दक्षिणे मध्यस्थायाः सरस्वत्या अग्रे अष्टभुजा सरस्वती उत्तरचरित्राधिष्ठात्री पूज्या । लक्ष्मीमंहतीत्यत्र द्वितीयाभावः । इति शब्देन कर्मत्वस्याभिधानात् । इत्थं चतुर्भुजमहालक्ष्म्याः पूजयेदित्यर्थः । अत्र चतुर्भुजमहाकाल्या-श्चतुर्भुजमहासरस्वत्याश्च स्वातन्त्र्येण पूजा नास्ति । चतुर्भुजमहालक्ष्म्य-पेक्षया तयोः स्वातन्त्र्याभावात् । तयोरस्यां पूजायां स्थितत्वादेवं पूजयैव तयोरपि पूजा सिद्धेति । तयोर्रूपासकेनापि तथैव पूजा कर्तव्येति । तदुक्तं लक्ष्मीतन्त्रे-इत्यमेवार्चना प्रोक्ता तयोः शक्त्योर्नराधिपेति । तदयं निर्गलितोऽर्थः भूर्जस्वर्णादिपत्रे स्थण्डिलादौ वा नवकोष्ठात्मकं यन्त्रं विधाय तत्र प्रथमपङ्क्तावीशानकोणादग्निकोणपर्यन्तं क्रमेण रुद्रगौयौ । विरिञ्चिसरस्वत्यौ । विष्णुलक्ष्म्यौ पूजयेत् । मध्यपङ्क्ती एवं क्रमेणोत्तर-कोष्ठादिदक्षिणान्तं महाकाली महालक्ष्मीमहासरस्वतीत्रयं पूजयेत् । तृतीयपङ्क्तौ वायुकोणान्निर्ऋति कोणपर्यन्तं दशाननाष्टादशभुजाष्टभुजाः पूजयेदिति ॥ २० ॥

अधुना केवलाष्टादशभुजादशाननाष्टभुजानामव-
ताराणामेव पृथक्पूजामाह—

अष्टादशभुजा चैषा या पूज्या नराधिप ।

दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा ॥ २१ ॥

कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये ॥

अष्टादशभुजेति साहचर्यान्वयः । चः जानन्तर्यं हे नराधिप यदा च एषा पूर्वोक्तलक्षणा अष्टादशभुजा मदालक्ष्मीः पूज्या भवति । अथवा दशानना अष्टभुजा वा यदा पूज्या भवति तदा एतासां देवीनां दक्षिणोत्तरयोः दक्षिणवामभागयोः प्रधानादन्यौ कालमृत्यू च सम्पूज्यौ । अत्रायं भावः—यथा यदा मध्ये अष्टादशभुजा तदा दक्षे दशानना वामे अष्टभुजा । एवं यदा मध्ये दशानना तदा दक्षे अष्टादशभुजा वामे-
ष्टभुजा । यदा मध्ये अष्टभुजा तदा दक्षे अष्टादशभुजा वामे दशाननेति-
नियमः । एवं मध्यसंस्थायादेव्याः दक्षिणभागे कालं वामभागे मृत्युं च सर्वारिष्टप्रशान्तये पूजयेदिति शेषः ॥ २१ ॥

अथाष्टभुजापूजायां विशेषमाह—

यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिवर्हिणी ॥ २२ ॥

नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तथा रुद्रविनायकौ ।

यदेति । यदा च तासां मध्ये शुम्भासुरनिवर्हिणी अष्टभुजा महा-
सरस्वती पूज्या स्यात् तदा अस्या नव शक्तयः पूज्याः । तथा अस्या
दक्षिणोत्तरयोः रुद्रविनायकौ पूज्यौ दक्षिणे रुद्रः वामे विनायकश्च पूज्यः ।
नवशक्तयस्तु नारायणीस्तुतावुक्ताः । ब्राह्मी । माहेश्वरी । कौमारी ।
वैष्णवी । वाराही । नारसिंही । ऐन्द्री । शिवदूती । चामुण्डेतिनव ।
अत्र केचित् शैलपुत्र्याद्याः ब्रह्मकवचपठिताः शक्तयः कल्पयन्ति । तत्र
मूलं तएव जानन्तु । मूले तु नवास्याः शक्तयः पूज्या इति पाठः । अस्याः
सरस्वत्याः देहोद्धृत्वा नवशक्तयो ब्राह्म्याद्याश्चामुण्डान्ता रक्तबीजवधे
वणिताः ता एव शुम्भवधे अहं विभूत्येत्यादिवाक्यान्तेऽस्या देहेऽन्तर्हिताः
एवात्र गृहीतुमुचिता इति ॥ २२ ॥

अथासां स्तुतिनिर्णयमाह—

नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ २३ ॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः ।

नमोदेव्याइति । एवं पूर्वोक्तक्रमेण सम्पूज्य नमो देव्या इति स्तोत्रैः
इत्यादिस्तुतिरूपमन्त्रैः महालक्ष्मीं सम्यक् प्रकारेण अर्चयेद्वाचा पूजयेत् ।
स्तुतोतेत्यर्थः । स्तोत्रैरिति बहुवचनेन चरित्रत्रयान्तर्गतस्तोत्रैरपि
प्रथमपूजायां स्तुतिः कर्तव्येति । अवतारत्रयेति पृथगवतारत्रयपूजा त्रये
तु तत्तदवतारपूजने तत्तदवतारचरित्रस्तोत्रेणैव स्तुतिः कर्तव्येतिभावः
॥ २३ ॥

अवतारत्रयेऽपि महालक्ष्मीपूजयैवेतरयोः पूजयोगंतार्थत्वमाह—

अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी ॥ २४ ॥

महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती ।

ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी ॥ २५ ॥

अष्टादशेति सार्द्धं । यतः महालक्ष्म्याः पूजनेनोभयोः काली-
सरस्वतीपूजनयोर्गतार्थता भवति । तदा एषा महिषमर्दिनी अष्टादश-
भुजा पूज्येति । चो निश्चयार्थः । निश्चयेनैषा पूज्येत्यर्थः । चःपादपूरणे
पक्षान्तरे हेती विनिश्चये इति त्रिकाण्डशेषः । तदेव दृढयति कुत एषैव

पूजयेत्यत आह । यतः सैवाष्टादशभुजा महालक्ष्मीरपरपर्याया महाकाली महासरस्वतीति सूक्ष्मदर्शिभिः प्रोक्ता कथिता । सा कीदृशी । पुण्यपापानामीश्वरी स्वामिनी । पुण्यपापयोर्वहुत्वाद्वहुवचनम् । तथा सैव सर्वेषां लोकानां महेश्वरी महाराज्ञी नियन्त्रीति ॥ २५ ॥

श्रीमहालक्ष्म्या मूलप्रकृत्या सह प्रत्यासत्याधिक्यात्तदुपासनेनैव सर्वार्थाविगमात्तदाराधनक्रमं तत्फलञ्चोपदिशति सार्द्धं त्रिभिः ।

महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।

पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ २६ ॥

तत्रादावाराधनस्यात्युत्कृष्टफलमाह—महिषान्तकरीति । हे नृप येन भाग्यवता साधकेन तैस्तेर्वक्ष्यमाणैः सपर्याभिः पूजाभिः महिषान्तकरी महालक्ष्मीः पूजिता भक्त्या आराधिता स एवं जगतां प्रभुः स्वामी नान्यः । अतो हेतोः जगतां सर्वलोकानां ब्रह्माण्डान्तर्वर्तिनां धात्रीं प्रसवित्रीं पोषयित्रीं वा । तथा भक्तवत्सलां साधकानुग्रहवतीं चण्डिकां पूजयेत्सम्यगाराधयेदित्यर्थः ॥ २६ ॥

अथोपचारानाह—

अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः ।

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः ॥ २७ ॥

अर्घ्यादिभिरिति । एतैरुपचारैर्भक्तवत्सलां पूजयेदिति पूर्वोक्ताध्याहारः । एभिः । कैः । अर्घ्यमादिर्येषामुपचाराणां तैः । आदिशब्देन पाद्यार्घ्यमधुपर्काचमनीयानां सङ्ग्रहः । उपचारेष्वावश्यकत्वात् । पाद्यं पादाम्बुजे । पाद्यं श्यामाकदूर्वाब्जविष्णुकान्ताभिरीरितमिति अर्घ्यं शिरसि । गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिल सर्पपाः । अष्टाङ्गाध्यंमिति प्रोक्तमम्बुना शिरसि स्मृतमिति । आचमनीयं तु । जातीलवङ्गकक्कोलैराचमनीयमिति स्मृतमिति । मधुपर्कन्तु । आज्यं दधिमधून्मिश्रं मधुपर्कं विदुर्बुधा इति । तथा अलङ्कारैः अङ्गप्रत्यङ्गाभरणवासोभिः । यदाह भृगुः । शिरस्त्रं मुकुटं हारः कुण्डलं चाङ्गदं तथा । कङ्कणं बालिकं चैव मेललाष्टाविति क्रमात् । सर्वालङ्करणेष्वेव प्रधानमिहकीर्तितमिति । गन्धस्तु । गन्धश्चन्दनकर्पूरकालागुरुभिरीरितमिति । अथगन्धः पञ्चधा । चूर्णीकृतोवा घृष्टोवा दाहाकर्षित एव वा । रससम्पदंजोवापि प्राण्यङ्गोद्धव एव वा । गन्धः पञ्चविधः प्रोक्तो देवानां प्रीतिकारक इति ।

पुष्पैः करवीरविष्णुक्रान्ताजपाभिः । तथा अक्षतैर्लाजाभिः अक्षण्ड-
निस्तुषतण्डुलैर्वा । लाजाः पुंभूमिं चाक्षता इत्यमरः धूपैः । सगुग्मुत्त्व-
गुरुशीरक्षकंरामधुचन्दनैः । धूपयेदाज्यसंमिश्रेणैतैर्देवस्य साधक इति ।
दीपैः वर्त्यकिर्पूरगभिण्या सपिषा तिलजेन वा । आरोप्य दर्शयेद्दीपानुच्चैः
सौरभशालिन इति । चः पुनरर्थे । नानाभक्ष्यसमन्वितैः नैवेद्यैः पूजयेदिति
॥ २७ ॥

पुनरवशिष्टोपचारानाह—

रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप ।

प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥ २८ ॥

सकपूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः ।

रुधिराक्तेनेति साद्धेन । हे नृप पुनरेतेनैतैश्च श्रीचण्डिकायजेदिति
पूर्वसम्बन्धः । एतैः कैः तदाह । रुधिराक्तेन रुधिरमिश्रितेन बलिनाग्नेन ।
पुनः मांसेन विहितपशुपलेन । पुनः सुरया गौडीमाध्वीसंज्ञासवेन पुनः
प्रणमनेन साष्टांगादिना । पुनः आचमनीयेन आचमनीययोग्यजलेन ।
कीदृशेन चन्दनेन चन्दनादि परिमलयुक्तेन अतएव सुगन्धिना सुगन्ध-
युक्तेन । चपुनः सकपूरैः कर्पूरयुक्तैस्ताम्बूलैः । एतैः कीदृशैः । भक्ति-
भावसमन्वितैः । भक्त्याभावेनच युक्तैः । जगद्धात्रीं पूजयेदिति ॥ २८ ॥

अथ देवीपूजनानन्तरं तदङ्गभूतं महिषपूजनमाह—

वामभागेऽग्रतोदेव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम् ॥ २९ ॥

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।

वामभागे इति । पुनः हे नृप, देव्याः अग्रतः वामभागे महिषं
तन्नामासुरं पूजयेत् । साधक इति शेषः । कीदृशं छिन्नशीर्षं । पुनः किंभूतं
महासुरं सर्वासुरज्येष्ठं पूज्यं च । येन महिषेण ईशया ईश्वरीकृपया
सायुज्यं प्राप्तम् ॥ २९ ॥

पुनः सिंहपूजनमाह—

दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३० ॥

वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम् ।

दक्षिण इति । श्री देव्याः पुरतः अग्रभागादक्षिणे वाहनं देव्या

वाहनं सिंहं पूजयेत् । कीदृशं समग्रं धर्मं निःशेषं धर्मरूपम् । तथा
ईश्वरम् अष्टैश्वर्यमयम् । येन निःशेषमयेन सिंहापरपर्यायेण हरिणा
चराचरं विराटरूपं धृतमित्यर्थः । यदुक्तं कालिकापुराणे एकोनषष्ठि-
मेऽध्याये । ब्रह्मविष्णुशिवादेर्वैध्रियते सा जगन्मयी । सितः प्रेतो महादेवो
ब्रह्मा लोहितपङ्कजम् । हरिर्हरिस्तु विज्ञेयो वाहनानि महौजसः । स्व-
मूर्त्या वाहनत्वं तु तेषां यस्मान्न युज्यते । तस्मान्मूर्त्यन्तरं गत्वा वाह-
नत्वं गतास्त्रयः । यस्मिन्मस्मिन्महामाया प्रीणति सततं शिवा । तेन
तेनैव रूपेण आसनाभ्यभवंस्त्रयः । सिंहस्योपरिस्थितं पद्मं रक्तं तस्योर्ध्वगः
शवः । तस्योपरिमहामाया वरदाभयदायिनी । एवं रूपेण यो ध्यात्वा
पूजयेत्सततं शिवाम् । ब्रह्मविष्णुशिवास्तेन पूजिताः स्युर्न संशय इति ।
अमुमेवामिप्रायमाश्रित्य सिंहध्यानं सर्वमयत्वमुक्तं देवीपुराणे । श्रीवायां
मधुसूदनोऽस्य शिरसि श्रीनीलकण्ठः स्थितः श्रीदेवीगिरिजा ललाटफलके
वक्षःस्थले शारदा । षड्वक्त्रोमणिवन्धसन्धिषु तथा नागाश्च पार्श्व-
स्थिताः । कर्णौ यस्य तु चाश्विनौ सभगवान्सिंहो ममास्त्वष्टदः ॥ १ ॥
यन्नेत्रे शशिभास्करो वसुकुलं दन्तेषु यस्यस्थितं जिह्वायां वरुणस्तु
हंक्रुतिरियं श्री चचिका चण्डिका । गण्डौ यक्षयमौ तथोष्ठयुगलं सन्ध्या-
द्वयं पृष्ठके वज्री यस्य विराजते सभगवान्सिंहो ममास्त्वष्टदः ॥ २ ॥
श्रीवा सन्धिषु सप्तविंशतिमितान्यृक्षाणि साध्याहृदि प्रोढा निर्घृणता
तमोऽस्यस्तु महाक्रीर्यं महापूतनाः । प्राणे यस्य तु मातरः पितृकुलं यस्या-
स्त्यपानात्मकं रूपे श्रीकमला कचेषु विमलास्ते स्यू रवेरश्मयः ॥ ३ ॥
मेरुः स्याद्रूपेणोऽन्धयस्तु जनने स्वेदस्थिता निम्नगा लांगूले सह दैवतैर्वि-
लसिता वेदा बलं वीर्यकम् । श्रीविष्णोः सकलाः सुरा अपि यथास्थानं
स्थिता यस्य तु श्रीसिंहोऽखिलदेवतामयवपुर्देवीप्रियः पातु माम् ॥ ४ ॥
योबालग्रहपूतनादिभयहृद्यः पुत्रलक्ष्मीप्रदो यः स्वप्नज्वरोगराजिभय-
हृद्योऽमङ्गले मङ्गलः । सर्वत्रोत्तमवर्णनेषु कविभिर्यस्योपमा दीयते देव्या-
वाहनमेव रोगभयहृत्सिंहो ममास्त्वष्टदइति ॥ ५ ॥ ३० ॥

एवं सपर्यामुपवर्ण्यं स्तुतिक्रममाह—

कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः ॥ ३१ ॥

ततः कृताञ्जलिभूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ।

कुर्यादिति । ततोऽङ्गदेवतापूजनानन्तरं धीमान्साधकः । प्राशस्त्ये
मनुष्ये । एतेनाविकलपाठाचरणयोग्यता सूच्यते । एकाग्रमेकतानं मानसं

मनो यस्य सः । व्यापारान्तराकुञ्चितमनोवृत्तिरित्यर्थः । एतेन योगश्चित्तवृत्तिनिरोध इति सूत्रोक्तयोगशालित्वमुच्यते । तेन द्रुतमेवाभिमतार्थसिद्धिर्व्यज्यते । कृतो विरचितः अञ्जलि कमलमुकुलाकारः करोयेन सः कृताञ्जलिः बद्धाञ्जलिरित्यर्थः । तादृशोभूत्वा इमैः प्रथम मध्यमोत्तररूपैः त्रिभिश्चरितैः तस्या विख्यातप्रभावत्वात्प्रसिद्धायाः भगवत्याः महालक्ष्म्याः स्तवनं कीर्तनं कुर्यात् विदध्यात् । परार्थमितिभावः । अतएव पठनरूपक्रियाफलस्य परगामित्वात्कुर्यादितिपरस्मैपदम् । यतो द्वादशाध्याये पठनाच्छ्रवणे फलाधिक्यमिति । च पुनःपूर्वोक्तैरिमैश्चरितैः देवीं स्तुवीत वचनविपरिणामेनान्वयः । स्वार्थं पाठं कुर्वीतेति भावः । अतएव क्रियाफलस्यात्मगामित्वादात्मनेपदम् । षट्श्रुं स्तुतो उभयपदी सकर्मकः । अस्मात्कर्तरि लिङ् । एवं स्वार्थं परार्थं वा समुपास्यमाना भगवती समीहितसिद्धये कल्प्यते ॥ ३१ ॥

अथ चरित्रत्रयपाठे नियममाह—

एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥ ३२ ॥

चरितार्द्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात् ।

एकेनेति । यः साधकः वा पक्षान्तरे चरित्रत्रयमध्ये यदा एकेन चरित्रेण भगवतीं स्तोतुमिच्छति स तदा मध्यमेन मध्यमचरित्रेण स्तुवीत । इह सप्तशतीस्तोत्रे इतरयोः आद्यन्तचरित्रयोर्मध्ये एकेन न स्तुवीत । तु पुनः चरितार्द्धमपि न जपेत् । जपन् निश्चयेन छिद्रं फलाभावरूपं विघ्नं अवाप्नुयात्प्राप्नुयात् । तुः स्याद्भेदेवधारणे इत्यमरः । तुरत्र निश्चये । अत्र पूर्वपूर्वासम्भवे उत्तरोत्तरपक्षो व्यवस्थितः ॥ ३२ ॥

अथ स्तुत्यनन्तरं कृत्यमाह—

प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ ३३ ॥

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ।

प्रदक्षिणेति । एवं पूर्वोक्तक्रमेण पाठं समाप्य अतन्द्रितः साधकः जगद्धात्रीं चण्डिकां मूर्ध्नि कृताञ्जलिः बद्धाञ्जलिः सन् मुहुर्मुहुः वारं वारं क्षमापयेत् । किंकृत्वा प्रदक्षिणानमस्कारान्कृत्वा ॥ ३३ ॥

तदनन्तरंकृत्यमाह—

प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिणा ॥ ३४ ॥

जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः ।

प्रतिश्लोकमिति । अत्र श्लोकशब्दस्तु मन्त्रवाचकः । श्लोकं श्लोकं प्रतीति
प्रतिश्लोकं प्रतिमन्त्रमित्यर्थः । 'ॐ मार्कण्डेय उवाच स्वाहा' एवं रूप-
मिति । तिलसर्पिषा सह पायसं जुहुयात् । अत्रमन्त्रस्तु सप्तमविभाग-
रूपः कात्यायनीचिदम्बरतन्त्रादिप्रोक्तइति । इह केचित्कवचादित्रयस्य
रहस्यादित्रयस्य च प्रतिश्लोकस्य होममनुतिष्ठन्ति तत्र कवचांशे होमो न
युक्तः । तन्त्रान्तरे निषेधात् । चण्डीस्तवे प्रतिश्लोकमेकैकाहुतिरिष्यते ।
रक्षाकवचगैर्मन्त्रैर्होमन्तत्र न कारयेत् । मौख्यात्कवचगैर्मन्त्रैः प्रतिश्लोकं
जुहोति यः । स्याद्देहपतनं तस्य नरकं प्रतिपद्यते । अन्धकाख्यो महा-
दैत्यो दुर्गाहोमपरायणः । कवचाहुतिजात्पापान्महेशेन निपातित इति ।
एतावदशक्तस्य पक्षान्तरमाह । वाइति पक्षान्तरे । पक्षे एवं करणाशक्तः
चण्डिकायै शुभं शुभकृत् हविः पायसां सतिलसर्पिषं स्तोत्रमन्त्रैः महा-
लक्ष्म्याः स्तोत्रमन्त्रैः देव्या ययाततभित्यादिभिः । त्वं स्वाहा त्वं स्व-
धेत्यादिरूपैः । देवि प्रपन्नातिहरे प्रसीदेति । देवा ऊचुः, नमो देव्यै महा-
देव्यै इत्यादि देवीसूक्तरूपैः । जुहुयादिति ॥ ३४ ॥

होमानन्तरकृत्यमाह—

भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः ॥ ३५ ॥

प्रयतः प्राञ्जलिः प्रहः प्रणम्यारोप्य चात्मनि ।

सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत् ॥ ३६ ॥

भूयइति । होमानन्तरं । सुसमाहितः तन्मयः साधकः नामपदैः
नाममन्त्रैः देवीं महालक्ष्मीं भूयः बहु पूजयेत् । महत्या सपर्यया देवीं
बहुवारं पूजयेत् । पुरुहूः पुरु भूयिष्ठं स्फारं भूयश्च भूरि चेत्यमरः । पुनः
प्रयतः यतचित्तः प्राञ्जलिः कृताञ्जलिः प्रहः नम्रः आत्मनि बुद्धौ देवीं
आरोप्य विसृज्य पुनः प्रणम्य सुचिरं ईशां सर्वेश्वरीं चण्डिकां भावयेत्
चिन्तयेत् येन तन्मयस्तदाकारो भवेत् ॥ ३५-३६ ॥

अथोपासनाफलमाह—

एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ।

भुक्त्वा कामान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ॥ ३७ ॥

एवमिति । यः साधकः एवमुक्तप्रकारेण प्रत्यहं नित्यशः भक्त्या

परमेश्वरीं पूजयेत् स यथाकामं यथाभिलाषं कामान्मनोऽभीष्टान् भुक्त्वा
अन्ते देवीसायुज्यं प्राप्नुयादिति ॥ ३७ ॥

अथोपासनाविमुखं निराकरोति—

यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।

भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी ॥ ३८ ॥

य इति । हे राजन्, यः भोगमोक्षाभिलाषी भक्तवत्सलां भक्तानु-
ग्रहवतीं चण्डिकां परब्रह्ममहिषीं न पूजयते नाराधयते अस्य भ्रान्तचित्त-
स्य अम्बाराधनविमुखस्य कृतानि पुण्यानि भस्मीकृत्य फलानमिव्यञ्ज-
केन विफलीकृत्य परमेश्वरी तमपि निर्दहेत् यावज्जीवं शोकाग्निना
भस्मीकुर्यादिति ॥ ३८ ॥

अथोपसंहरति—

तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम् ।

यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि ॥ ३९ ॥

तस्मादिति । हे भूपाल सुरय, यस्मादनुपासितुः पुण्यानि भस्मी-
कृत्य तं निर्दहेत् तस्माद्यथोक्तेन विधानेन सर्वलोकमहेश्वरीं चण्डिकां
पूजय तदुपासनां कुरु तेनैव सुखं ऐहिकामुष्मिकानन्दं आप्स्यसी प्राप्स्य-
सीति शिवम् ॥ ३९ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे उत्तरभागे सरयूप्रसादसंग्रहीते

वैकृतिकरहस्यार्थसंग्रहो नाम तृतीयो विश्रामः ॥

आदित एकविंशतितमो विश्रामः ॥ २१ ॥

अथ मूर्तिरहस्यारम्भः

अथ श्लोकसंख्या यथा चिदम्बररहस्ये—

पञ्चविंशति सङ्ख्यास्तु श्लोका अत्र प्रकीर्तिता इति ।

ऋषिरुवाच—

ऋषिः सुमेधाः सुरथंप्रति मूलदेव्या उपासनामुक्त्वा तस्याः
षडङ्गदेव्युपासनां तत्फलं च सूचयन्नुवाच—

नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा ।

सा स्तुता पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥

नन्देति । हे राज्ञिति प्रकरणाद्भवति । या नन्दजा नन्दाब्जाता
कलिद्वारसन्धौ नन्दानाम् भगवती भविष्यति सा भक्त्या पूजिता
अर्चिता वाचा स्तुता पूजिता जगतांत्रयं वशीकुर्यात् पूजकाधीनं कुर्या-
दित्यर्थः ॥ १ ॥

अथ नन्दायाः स्वरूपमाह—

कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा ।

देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा ॥ २ ॥

कनकोत्तमेति । सा प्रसिद्धा नन्दा भगवती कनकोत्तमस्य जाम्बू-
नदस्य कान्तिरिव कान्तिः तद्वर्णवती । तथा सुकान्तिकनकाम्बरा
स्वर्णाभवसनवती । तथा देवी प्रकाशवती । तथा कनकवर्णवदाभा
देहकान्तिर्यस्याः । तथा कनकोत्तमभूषणा । जाम्बूनद भूषणवती ॥ २ ॥

अथास्या आयुधानि नामान्याह—

कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा ।

इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्रीरुक्माभुजासना ॥ ३ ॥

कमलेति । सा नन्दा कीदृशीत्याह । कमलं प्रसिद्धम् । अङ्कुशः
शृणिः । पाशः बन्धनास्त्रविशेषः । अब्जः शङ्खः । एतैः अलङ्कृत-

चतुर्भुजा । दक्षहस्ताधः कमलं । तदुर्ध्वं कुणः । वामोर्ध्वपाशः । तदधः
शङ्खः । अथास्याः नामान्तराण्याह । सा नन्दा इन्दिरा कमला लक्ष्मीः
श्रीः रुक्माम्बुजासना स्वर्णभक्तमलासनेति कथ्यते । विद्वद्भिरितिशेषः ।
अस्याः प्रादुर्भवः शैशिरे नवरात्रे इति यामले प्रसिद्धः । इति प्रथमाङ्ग-
देवी ॥ ३ ॥

या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ ।

तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम् ॥ ४ ॥

या इति । हे अनघ निष्पाप मया सुमेधसा या रक्तदन्तिका नाम
देवी प्रोक्ता कथिता तस्याः देव्याः सर्वभयापहं सर्वभय नाशकं स्वरूपं
वक्ष्यामि कथयामि शृणुत्वमिति ॥ ४ ॥

रक्तदन्तिकास्वरूपमाहवाभ्याम्—

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा ।

रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ॥ ५ ॥

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका ।

पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम् ॥ ६ ॥

रक्ताम्बरेति । ईदृशी पूर्वोक्तलक्षणा रक्तदन्तिका देवी भक्तं
भजमानं निजोपासकं जनं अनुरक्ता जातानुरागा नारीव धर्मपत्नी पति-
मिव भजेत्सेवयेदित्यर्थः । अत्रानुरागांशे पतिं नारीवेति दृष्टान्तः । सा
कीदृशी रक्ताम्बरा रक्तवस्त्रा । तथा रक्तवर्णा रक्ताङ्गी । तथा रक्त-
सर्वाङ्गभूषणा । रक्ताङ्गप्रभया सर्वाङ्गभूषणमप्यारक्तमिति यावत् ।
रक्तायुधा देहप्रतिबिम्बफलनात् । तथा रक्तनेत्रा । प्राप्तायौवनत्वात् ।
तथा रक्तकेशा अरुणकेशवती । अतएव अतिभीषणा सर्वेषां भयङ्करी ।
तथा रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना । अत एव रक्तदन्तिकानाम्नी प्रसिद्धेति
॥ ५-६ ॥

पुनरपि तस्याः स्वरूपं वात्सल्यं चाह—

वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी ।

दीर्घा लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ ॥ ७ ॥

कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी ।

भक्तान्संपाययेद्देवी सर्वकामदुघौस्तनौ ॥ ८ ॥

वसुधेति । पुनः सा पूर्वोक्तलक्षणा रक्तदन्तिका कीदृशी । वसुधेव
 पृथिवी व विशाला विस्तारवती । तथा सुमेधवत् युगलौस्तनौ यस्याः
 सा । अथ स्तनयोः स्वरूपं सप्रयोजनमाह । देवी रक्तदन्तिका । एवमुक्त-
 लक्षणौ तौ स्तनौ भक्तान् स्वकीयभजनेऽनुशक्तान् सम्पादयेत् पाययति
 स्मेति । अनेन विशेषणेन पतिं नारीवानुरक्तेति पूर्वोक्तेन च भक्तजने-
 ष्वस्या अत्यन्तानुकम्पितादर्शिता । कीदृशी स्तनौ सर्वकामदुघौ सर्वा-
 भिलाषपूरकौ । तथा दीर्घौ अतिवृहत्तमौ । तथा लम्बौ लम्बायमानौ ।
 अत्र तिर्यग्लम्बायमानतैव गृह्यते, नत्वधः पतनम् अग्रिमविशेषणविरो-
 धात् । तथा अतिस्थूलौ । तथा अतिमनोहरौ रमणीयतमौ । तथा
 कर्कशौ कठोरौ दुःस्पर्शौ वा । स्यात्कर्कशः साहसिकः कठोरामसृणावपी-
 त्यमरः । एवमपि तावत्तिकान्तौ शोभायमानौ । पुनः सर्वानन्दपयो-
 निधी । आनन्दसमुद्रौ अनन्तगुणत्वादगाधत्वं तयोरिति ॥ ७-८ ॥

अथास्या अस्त्राणि नामान्तराण्यपि निर्दिशति—

खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च विभर्ति सा ।

आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगीश्वरीति च ॥ ९ ॥

खड्गमिति । सा प्रसिद्धा रक्तदन्तिका दक्षोर्ध्वं खड्गं वामोर्ध्वं
 पानपात्रं । तथा दक्षाधो मुसलं वामाधोहलं क्रमेण चतुर्भिः करैर्विभर्ति ।
 एषैव देवी रक्तचामुण्डा । चःपुनरर्थः । योगीश्वरी योगिनां योगफलदा-
 तृत्वादीश्वरी आख्याता कथिता । ज्ञानिभिरिति ॥ ९ ॥

अस्याः पूजाफलमाह—

अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।

इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम् ॥ १० ॥

अनयेति । यतः अनया योगेश्वर्या अखिलं समस्तं स्थावरजङ्गमं
 जगत् विश्वं व्याप्तं पूर्णं ततः यः साधकः इमां पूर्वोक्तरूपां पूजयेत् सः
 चराचरं व्याप्नोति । यद्यसा ब्रह्मसाक्षात्कारेण च तत्समं यातीत्यर्थः ॥ १० ॥

अथास्याः स्तुतिफलमपूर्ववात्सत्यं च दर्शयति—

अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम् ।

तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना ॥ ११ ॥

अधीते इति । यः साधकः इमं रक्तदन्त्याः वपुषः स्तवं नित्यं

अविरतं अधीते पठति तं साधकं साप्रसिद्धा देवी परिचरेत् परिचर्या
सेवारूपारक्षां कुर्यात् । का कमिव । अङ्गना सधर्मिणी पतिव्रता प्रियं
पतिमिवेति । प्रेममात्रे दृष्टान्तः । इति द्वितीयाङ्गदेवी ॥ ११ ॥

अथ तृतीयामङ्गदेवीं शाकम्भरीमाह—

शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना ।

गम्भीरनाभिस्त्रिवली विभूषित तनूदरी ॥ १२ ॥

सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीन घनस्तनी ।

मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ १३ ॥

पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।

काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृणमृत्युज्वरापहम् ॥ १४ ॥

कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति विभ्रती परमेश्वरी ।

शाकम्भरीत्यादि सादृष्टिभिरवतारद्वयमाह । हे नृपेति पूर्व-
सम्बन्धः । ईदृशी शाकम्भरी देवी ज्ञेया किभूता नीलवर्णा । तथा
नीलोत्पलमिन्दीवरं तद्वद्विलोचने नेत्रे यस्याः सा । तथा गम्भीरा निम्ना
नाभिर्यस्याः सा । निम्नं गभीरं गम्भीरमित्यमरः । तथा त्रिवल्या
विभूषितं तनुं सूक्ष्ममुदरं मध्यभागं यस्याः सा । सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं
तनुइत्यमरः ॥ १२ ॥ पुनः किभूता । सुकर्कशावत्यन्तकठोरो समो तुल्यो
उत्तुङ्गावुच्चो वृत्तो वत्तुलो पीनो पीवरो घनो निरन्तरौ स्तनौ यस्याः
सा । पुनः किभूता । कमलालया कमलमालयो निवासस्थानं यस्याः
सा । पुनः किभूता परमेश्वरी । पुनः किभूता । मुष्टिं दक्षाधोमुष्टिं
शिलीमुखाः बाणाः तैरापूर्णं तथा दक्षोर्ध्वं कमलं तथा वामोर्ध्वं शाक-
सञ्चयं । तर्किभूतं । पुष्पपल्लवमूलादि फलैराढ्यं युक्तं । आदिशब्दे नैते
गृह्यन्ते । पत्रमूलकरीराग्रफलकाण्डास्थिरूढकाः । त्वक्पुष्पं कवकं चेति
शाकं दशविधं स्मृतमिति । पुनः किभूतं तत् । काम्यानन्तरसैः वाञ्छित-
नानारसैर्युक्तं । पुनः क्षुत्तृणमृत्युज्वरापहं । एतेषां नाशकं । चः पुनरर्थः ।
स्फुरत्कान्ति प्रकाशमानं । धनुः वामाधोहस्ते विभ्रती धारयन्ती इति
सर्वत्र सम्बध्यते ॥ १३-१४ ॥

अस्या नामान्याह सादृष्ट्योकेन—

शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥

विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।

उमा गौरी सती चण्डी कालिका सापि पार्वती ॥ १६ ॥

शाकम्भरीति । सा पूर्वोक्तरूपा शाकम्भर्येव शताक्षी । सा एव दुर्गा प्रकीर्तिता कथिता । सैव भक्तानां शोकनाशनाद्विशोका । तथा दुष्टानां दमनाप्राशनाद्दुष्टदमनी । तथा दुरितापदां दुष्कृतविपत्तीनां शमनी निर्मूलिनी सैव । सैवोमा शिवाद्वाङ्मत्वात् । गौरी गौरवर्णत्वात् । सती पातिव्रत्यपालनात् । चण्डकर्मकर्तृत्वाच्चण्डी । सर्वेषां कलनात्कृष्णवर्णत्वाच्च कालिका । साप्येव पार्वती प्रकीर्तिता सद्भिरिति ॥ १५ ॥ १६ ॥

अथास्या उपासनाफलमाह—

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायन् जपन्सम्पूजयन्नमन् ।

अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ १७ ॥

शाकम्भरीमिति । हेराजन् शाकम्भरीं स्तुवन्वाचा पूजयन् ध्यायन् मनोविषयी कुर्वन् जपन् तन्मन्त्रमावर्तयन् सम्पूजयन् सम्यक्कल्पोक्तविधिना पूजयन् अर्चयन् नमन्प्रणामं कुर्वन् शीघ्रं अन्नपानामृतं एतद्रूपं फलं अक्षय्यमखण्डमश्नुते प्राप्नोतीत्यर्थः । अमृतं मोक्षं भुक्तिमुक्तिं द्वावपीत्यर्थः । इति तृतीया चतुर्थी शाकम्भरी दुर्गाङ्गदेव्यौ ॥ १७ ॥

अथ पञ्चमी भीमाङ्गदेवी—

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रा दशनभासुरा ।

विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ १८ ॥

भीमेति । एवंभूता भीमापि ध्येयेति शेषः । किभूता सा । नीलवर्णा कृष्णवर्णा । तथा दंष्ट्रा दशनेन च भासुरा शोभितमुखी । तथा विशाललोचना दीर्घनेत्रा । नारी स्त्रीविग्रहवती । तथा वृत्तौ वृत्तुलो पीनो पीवरौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः सेति ॥ १८ ॥

अथास्या अस्त्राणि नामान्तराणि चोपदिशति—

चन्द्रहासं च डमरं पानपात्रं च विभ्रती ॥

एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता ॥ १९ ॥

चन्द्रहासमिति । सा भीमा चन्द्रहासं, च पुनः डमरं वाद्यविशेषं, पानपात्रं कपालं, चषकं, चकारात् खड्गसम्बन्धेन चर्मापि गृह्यते । अत्रायं क्रमः । दक्षहस्तोर्ध्वं खड्गं तदधः डमरं । वामाधः कपालचषकं

तदूर्ध्वं चर्मति विभ्रती धारयन्ती । करैरितिशेषः । अथ नामानि । या इमान्यस्त्राणि विभ्रती सैव एकवीरा । तथा कालरात्रिः । सा एषा स्तुता वाचा पूजिता सती कामदा । सर्वाभीष्टप्रदेत्यर्थः । इति श्रीमा पञ्चम्यङ्ग-देवी ॥ १६ ॥

अथ भ्रामरी षष्ठ्यङ्गदेवी—

तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ।

चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता ॥ २० ॥

चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीतिगीयते ।

साङ्ख्येन भ्रामरीस्वरूपमाह । तेजोमण्डलेति । या देवी एवरूपा सा भ्रामरी इति गीयते । सङ्घुरितिशेषः । सा किरूपेत्याह । तेजो-मण्डलेन दुर्धर्षा धर्षयितुमशक्या । दुर्निरीक्ष्येत्यर्थः । तथा चित्रकान्ति विभ्रतीति चित्रकान्तिभृत् । अद्भुतकान्तिमतीत्यर्थः । विस्मयोद्भुत-माश्चर्यं चित्रमितिकोशात् । तथा चित्रानुलेपना चित्रं नानाविधमनुलेपनं यस्याः सा । तथा चित्राभरणेनाद्भुतभूषणेन भूषिता शोभितवती । तथा चित्रभ्रमरपाणिः । चित्रः अनेकवर्णविशिष्टो भ्रमरः पाणौ हस्ते यस्याः सा । स च भ्रमरो जीवरूपः । तेन च सर्वे जीवा मदधीनाः सन्तीति बोधितम् । तदुक्तं भुवनेश्वरीसंहितायाम् । द्विरेफा जीवरूपाः स्युर्यया हस्ते सदा धृताः । जीवाधीना ततः प्रोक्ता भ्रामरी लोक-सुन्दरीति । एवरूपा यादेवी सैव महामारी नाम्ना गीयते इति ॥ २० ॥

अथाख्यानमुपसंहरति—

इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप ॥ २१ ॥

जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।

इत्येता इति । हे वसुधाधिप मुरय । देव्याः या एताः मूर्तयः ख्याता वर्णिताः । शास्त्रैर्विवृतिशेषः । चण्डिकायाः गुणत्रयात्मिकायाः जगन्मातुः ताः एताः कामधेनवः कामदुघाः सर्वाभिलाषपूरयित्र्यः कीर्तिताः कथिता इति ॥ २१ ॥

अथास्यरहस्यतां निरूपयति—

इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया ॥ २२ ॥

आख्यानं दिव्यमूर्तिनामभीष्टफलदायकम् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम् ॥ २३ ॥

इदमिति । इदं दिव्यमूर्त्तीनां षडङ्गदेवीनां आख्यानं कथानकं यस्मात्परमं रहस्यं गोपनीयं तस्मात्त्वया सुरथेन कस्यचिन्न वाच्यं । किंभूतमिदं अभीष्टफलस्य दायकं दातारमिति । यस्मादिदमभीष्टप्रदं तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वायासेन निरन्तरमनवच्छिन्नं यस्या अभीष्टप्रदमाख्यानं तां देवीं जप । आराधनपरो भवेत्यर्थः ॥ २३ ॥

सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि ।

पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २४ ॥

सप्तजन्मार्जितैरिति । नन्वन्तरायहतानामस्माकमाराधनेन किमिति शङ्कां निराकुर्वन्नाह । मन्त्राणां सप्तशतमन्त्राणां पाठमात्रेण ब्रह्महत्यासमैः तुल्यैः घोरैरपि सर्वकिल्बिषैः पापसमूहैः मुच्यते मुक्तोभवति । किंभूतैः सर्वकिल्बिषैः । सप्तजन्मार्जितैः । सप्तजन्मभिः अर्जितैरेकीकृतैः । सञ्चितैरित्यर्थः ॥ २४ ॥

देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं महत् ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम् ॥ २५ ॥

हे राजन् । यस्मात्कारणान्मया सुमेधसा गुह्याद्गोप्यादपि गुह्यतरं गोप्यतरं देव्याः ध्यानं आख्यातं कथितं प्रकटितमिति । तस्मात्प्रकट-रूपाद्ध्यानात्सर्वप्रयत्नेन विधिना क्रियमाणेन तद्देव्या ध्यानं सर्वेषां कामानामभिलषितानां फलप्रदं सर्वाभीष्टप्रदमिति शिवम् ॥ २५ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते उत्तरभागे

मूर्त्तिरयस्यार्थसंग्रहो नाम चतुर्थो विश्रामः ॥४॥

आदितो द्वाविंशतितमो विश्रामः ॥ २२ ॥

अथ रहस्योत्तरं खिलमार्कण्डेयोक्तः

श्रीचण्डिकाराधनक्रमः संगृह्यते

राजोवाच ।

सुमेधसं प्रति सुरथराज्ञः प्रश्नः ।

पुनस्त्वां परिपृच्छामि चण्डिकापूजनं शुभम् ।

नित्यचण्डिकादिजाप्यस्य विधानं च द्विजोत्तम ॥ १ ॥

ऋषिरुवाच ।

परिपृच्छसि भोराजंश्चण्डिकापूजनं च यत् । तदहन्ते प्रवक्ष्यामि
यथावदनुपूर्वशः ॥ २ ॥ क्षादौ नत्वा महालक्ष्मीं कर्त्रीं हर्त्रीं सदोदिताम् ॥
यन्मस्कारतोयज्ञा भवन्ति सुकृताः सकृत् ॥ ३ ॥ त्रैलोक्यदामरं मन्त्रं
शृणु भूप नवाक्षरम् ॥ यस्या विज्ञानमात्रेण परमैश्वर्यवाप्तरा ॥ ४ ॥
वाग्बीजमादीन्दुसमानदीप्तं ह्रीमर्कतेजोद्युतिमद्वितीयम् ॥ कामश्च
वैश्वानरतुल्यरूपं तृतीय मानन्त्यसुखाय चिन्त्यम् ॥ ५ ॥ चाशुद्धजाम्बूनद-
काग्निरूपं मुपञ्चमं रक्ततरं प्रकल्प्यम् ॥ डाषष्ठमुप्रातिहरं सुनीलं यै
सप्तमं कृष्णतरं रिपुघ्नम् ॥ ६ ॥ विपाण्डुरं चाष्टममष्टसिद्धये च धूम्रवर्णं
नवमं विशालम् ॥ एतानि बीजानि नवाक्षरस्य जप्तुः प्रदद्युः सकलार्थ-
सिद्धिम् ॥ ७ ॥ नवबीजनिबद्धोऽयं मन्त्रस्त्रैलोक्यपावनः ॥ एवं जपति यो
मन्त्री फलं तस्य वदाम्यहम् ॥ ८ ॥ वश्या भवन्ति कामिन्यो राजनो-
ऽनुचरा इव ॥ नहस्ति सर्पदावाग्निचौरशत्रुभयं भवेत् ॥ ९ ॥ सर्वाः
समृद्धयस्तस्य जायन्ते चण्डिकाज्ञया ॥ नश्यन्ति दारुणारोगाः सत्यं सत्यं
न संशयः ॥ १० ॥ सहस्रमस्य मन्त्रस्य नवबीजस्य योजले । नाभिमात्रे
जपेत्सम्यक् कवित्वं लभते ध्रुवम् ॥ ११ ॥ अयुतं नवबीजस्य राजबन्धन-
सङ्कटे ॥ जपेत्तदाशु मुच्येत योमन्त्री चण्डिकाज्ञया ॥ १२ ॥ अस्मिन्नवाक्षरे
मन्त्रे महालक्ष्मीर्व्यवस्थिता ॥ तस्मात्सुसिद्धिः सर्वेषां सर्वदिक्षु प्रदीपकः
॥ १३ ॥ मन्त्राणां पञ्चवोवासो मन्त्राणां प्रणवः शिरः । शिरः पञ्चवसंयुक्तो

मन्त्रः कामदुघः स्मृतः ॥ १४ ॥ न्यासं विना भवेन्मूकः सुप्तः स्यादासनं
विना ॥ पल्लवेन विना मन्त्रो नग्नः संपरिकीर्तितः ॥ १५ ॥ शिरोहीनो
मृतः प्रोक्तो वृथा मन्त्रो गुरुं विना ॥ हतो दुष्टाय दत्तो योनिवीर्य-
श्चाधिकाक्षरः ॥ १६ ॥ अन्तरन्येन बीजेन व्याप्तः कीलित उच्यते ॥ यस्य
जाप्यं शृणोत्यन्यः स मन्त्रः शून्य उच्यते ॥ १७ ॥ ऋषिदेवतच्छन्दोभिः
परित्यक्तो भुजङ्गमः ॥ मूकः सुप्तो मृतो नग्नः शिरोहीनो वृथोदितः
॥ १८ ॥ भुजङ्गः कीलितः शून्यो हृतमन्त्रो वृथाफलः ॥ यत्नाद्विष्वज्ये-
न्मन्त्री यदि तत्सिद्धिमिच्छति ॥ १९ ॥ नमोऽन्तः शान्तिके पुष्टौ प्रणिपाते
च कीर्तितः ॥ वक्ष्याकर्षणहोमेषु स्वाहान्तः सिद्धिदायकः ॥ २० ॥ वीषट्
पल्लवसंयुक्तो मन्त्रः पुष्ट्यादिसाधकः ॥ हुङ्कारपल्लवोपेतो मारणे ब्राह्मणं
विना ॥ २१ ॥ यन्त्रभञ्जनकार्येषु सुघोरभयनाशने ॥ वषडन्तो महाकाल-
ग्रहव्यालादिनाशनः ॥ २२ ॥ खण्डनीच्छाटने बन्धे मन्त्रः षट् पल्लवान्वितः ॥
ॐकारमुखरो मन्त्रो वेदागमसमुद्भूवो ॥ २३ ॥ पल्लवस्त्वागमे मन्त्रे
वैदिके नास्ति पल्लवः ॥ पल्लवेन विना जाप्यो मन्त्रो वेदसमुद्भूवः ॥ २४ ॥
न नग्नः कीर्त्यते यस्मादेश्वर्यपरिधानवान् ॥ नद्यादौ विधिवत्स्नात्वा
नाभिमात्रे जले स्थितः ॥ २५ ॥ दशाञ्जलिभिरात्मानं नवबीजेन
पावयेत् ॥ कृत्वा सन्ध्यादिकं सर्वमुदकान्ते समाहितः ॥ २६ ॥ तर्पणाय
महालक्ष्म्याः षडङ्गन्यासमाचरेत् ॥ माया बीजं चण्डिकायै हृदयादि
नमोऽन्तकम् ॥ २७ ॥ एवं न्यासक्रियां कृत्वा ध्यात्वा महिषमर्दिनीम् ॥
चण्डिकां त्रिजगद्धात्रीं ब्रह्माद्यमरवन्दिताम् ॥ २८ ॥ नवबीजस्य मन्त्रान्ते
चण्डिका तृप्यतामिति ॥ अञ्जलीनामष्टशतं सुगन्धकुसुमान्वितम् ॥ २९ ॥
सेक्तव्यं च तदद्वेन तदद्वेनाथवान्वहम् ॥ महालक्ष्मीं तर्पयित्वा कर्त्ता
कामानवाप्नुयात् ॥ ३० ॥ प्रविश्य देवतागारं वितानोपरिशोभितम् ॥
पुष्पप्रकरशोभाढ्यं पूजाद्रव्यैः प्रपूरितम् ॥ ३१ ॥ बहुदीपप्रकाशाढ्यं
दिव्यैर्धूपैः सुधूपितम् ॥ तत्रोक्तविधिना राजन्पूजयित्वा हरीश्वरौ ॥ ३२ ॥
उपविश्यासने मन्त्री प्राङ्मुखो धृतवान् क्षमी ॥ कामक्रोधमहालोभमोहा-
ज्ञानविवर्जितः ॥ ३३ ॥ मौनी बद्धासनो ध्यानी ज्ञानी निश्चलमानसः ॥
चतुरस्रे समे गुह्ये सर्वदोषविवर्जिते ॥ ३४ ॥ लिखेदष्टदलं पद्मं चन्दनागर-
कुंकुमैः ॥ पद्ममध्ये लिखेच्चक्रं षट्कोणं चण्डिकामयम् ॥ ३५ ॥ षट्कोण-
चक्रमध्यस्थमाद्यं बीजत्रयं न्यसेत् ॥ अनेन षट्कोणाष्टदलभूपुरात्मकं यन्त्रं
भवति ॥ विलिख्य यन्त्रमेवन्तु सम्यगाराधनं चरेत् ॥ ३६ ॥ वामपादोपरि
न्यस्य दक्षिणं चरणं दृढम् ॥ एतत्पद्मासनं नाम जरामरणवर्जितम् ॥ ३७ ॥

मौनी बद्धासनो मन्त्री ज्ञानी निश्चलमानसः ॥ गुदमेढान्तरस्थानं पाद-
मूलेन पीडय तम् ॥ ३८ ॥ स्वाधिष्ठानं क्रमेणैव मणिपूरं समानयेत् ॥
अनाहतविशुद्धाज्ञा भेदयित्वा क्रमं क्रमम् ॥ ३९ ॥ स्वक्षरीराद्विनिर्गत्य
सूक्ष्मरूपध्वंमार्गतः ॥ तमोनदीं समुत्तीर्य स्थित्वा स्वकरसम्पुटे ॥ ४० ॥
शोधयेत्पञ्चभूतानि ज्ञात्वा वर्णक्रमं पृथक् ॥ पृथिव्यापोनलो वायुःखं
भूतानामयं क्रमः ॥ ४१ ॥ पृथ्वी पीतासितं वारि रक्तवर्णं हुताशनः ।
तेषां कृष्णतरोवायुराकाशं निर्मलं सदा ॥ ४२ ॥ मनसा शोधयेद्बुद्धिं
बुद्ध्या संशोधयेन्मनः ॥ तद्रूपं परमं शुद्धमात्मानं सम्यगीरितम् ॥ ४३ ॥
स्वदेहं ब्रह्ममार्गेण योगयुक्त्या समाविशेत् ॥ सुषुम्णाग्रं समाश्रित्य
तिष्ठमान अनाहते ॥ ४४ ॥ आदौ संशोधयेत्पृथ्वीं शोषदाहप्लवामृतैः ॥
पुनर्वारि पुनस्तेजः पुनर्वायुं सुपावयेत् ॥ ४५ ॥ बीजैश्चतुर्विधैर्वायोरग्नेर्वरुण-
शक्रयोः ॥ यमिदं शोषकं बीजं रमिदं दाहनं भवेत् ॥ ४६ ॥ यमाप्लावनबीजं
चलमैन्द्रममृतात्मकम् । एवं शुद्धानि भूतानि भवन्ति नृपनन्दन ॥ ४७ ॥
व्योमन्येतच्छोधनं नास्ति यतस्तन्निर्मलं शिवम् । करालयात्स्वकं देहं
प्रविश्यात्माविशोधनम् ॥ ४८ ॥ कर्तव्यं योगमाश्रित्य सर्वकामविजि-
तम् । भूतशुद्धिमिमां कृत्वा यः कुर्याच्चण्डिकार्चनम् ॥ ४९ ॥ तस्याचिरेण
कालेन महालक्ष्मीः प्रसीदति । निकुञ्चनादधःशक्तेरुर्ध्वशक्तेर्निपात-
नात् ॥ ५० ॥ मध्यशक्तेः प्रबोधाच्च प्राणायामपरो भवेत् । प्राणायाम-
परोमन्त्री सर्वकमेफलं लभेत् ॥ ५१ ॥ निकुञ्चनादिति । अधः शक्तेः
मूलाधारस्थानलकुण्डलिन्याः निकुञ्चनादूर्ध्वगमनात् । ऊर्ध्वशक्तेः ब्रह्म-
रन्ध्रस्थामृतकुण्डलिन्यानिपातनात् । अधः पातनात् । मध्यशक्तेरनाहत-
चक्रस्थार्ककुण्डलिन्याः प्रबोधनात् । अनलामृतकुण्डल्योः संयोगात्
ह्लादनात् । इत्यादिक्रमस्त्वारोध्य चरणादवगन्तव्यइति । ऋषिरुवाच ।
पूजानां जपहोमानां सर्वमङ्गलकर्मणाम् । न्यासं ब्रवीमि भूपाल सर्वेश्वर्य-
समृद्धिदम् ॥ ५२ ॥ स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहङ्कारनिर्ममः । स्व-
गुरोश्चरणौ नत्वा महालक्ष्मीं च पूर्ववत् ॥ ५३ ॥ ध्यानपूर्णं मनः कृत्वा
ततो न्यासं समाचरेत् । क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा न्यसेद्वर्णं बिन्दुनोपरि भूषितम्
॥ ५४ ॥ मातृकान्यासविज्ञानी शिरः प्रथमपल्लवम् । प्रथमं विन्यसेन्मूढिन
ललाटे तत्परं न्यसेत् ॥ ५५ ॥ नेत्रयोर्द्वितये भूप द्वयमन्यत्कपोलयोः ।
श्रुत्योः स्वरद्वयं न्यस्य द्वयं नासापुटद्वये ॥ ५६ ॥ ओष्ठयोर्विन्यसेद्द्वन्द्वं
द्वन्द्वं दशनलेखयोः । जिह्वायां विन्यसेदेकं तालुस्थाने च तत्परम् ॥ ५७ ॥

विन्यसेत्प्रथमं वर्गं भूपते दक्षिणेकरे । वामेऽपरं न्यसेद्वर्गं तृतीयं दक्षिणे
 पदे ॥ ५८ ॥ चतुर्थं वामपादे च पञ्चमं हृदये न्यसेत् । शेषाक्षराणां नवकं
 विन्यसेत्सर्वधातुषु ॥ ५९ ॥ त्वचि रक्ते च मांसे च स्नायुष्वस्थिषु
 पञ्चमम् । मज्जामेदस्सु पूयेषु द्वितयं तत्परं न्यसेत् ॥ ६० ॥ अयन्तु
 मातृकान्यासः प्रथमः परिकीर्तितः । साङ्गवेदसमोभाति भूषितो येन
 मान्त्रिकः ॥ ६१ ॥ पूजानामित्यादिभिर्मान्त्रिकमित्यन्तैः श्लोकैर्मातृका-
 न्यासः । सच तन्त्रप्रसिद्धमातृकान्यासतः किञ्चिद्विलक्षणोऽप्यस्मिन्विषये-
 ऽप्ययमेव ग्राह्यः । क्षिप्वेति । वर्णानां प्रथममादौ शिरः प्रणवं अन्ते पञ्चवं
 सर्वपञ्चवप्राथम्यात्तम इति । अनयोः शिरः पञ्चवयोर्मध्ये । उपरिशिरसि
 बिन्दुनानुस्वारेण भूषितं वर्णं क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा प्रोक्तस्थानेन्यसेदित्यर्थः ।
 यथा ॐ अंनमः मूर्ध्नि इत्यादि । एवं सर्वत्र ज्ञेयमिति । अथ सारस्वतो-
 न्यासो द्वितीयस्ते प्रकथ्यते । उक्तमन्त्रस्य सर्वस्य बीजानां देवतार्चने
 ॥ ६२ ॥ आद्यं बीजत्रयं कृत्वा प्रणवादिनमोऽस्तकम् । कनिष्ठादिषु सर्वासु
 पञ्चस्वंगुलिषु न्यसेत् ॥ ६३ ॥ करमध्ये च पृष्ठे च तथैव मणिबन्धयोः ।
 हृदि मूर्ध्नि शिखायां च कवचे चक्षुरस्त्रयोः ॥ ६४ ॥ बन्धेषु संप्रयोक्तव्यं
 सर्वदिक्षु पृथक् पृथक् । भृशं सारस्वते न्यासे महत्यस्मिन्कृते सकृत् ॥ ६५ ॥
 त्वरितं विलयं याति जाड्यः प्राक्पापसम्भवः । तृतीयन्ते प्रवक्ष्यामि
 न्यासं मातृगणान्वितम् ॥ ६६ ॥ मायाबीजेन संयुक्ता ब्रह्माणी पातु
 पूर्वतः । एवमीशानपर्यन्तमष्टौ मातृः प्रयोजयेत् ॥ ६७ ॥ ब्राह्मी माहेश्वरी
 चैव कौमारी वैष्णवी तथा । शाराही नारसिंहोन्द्री चामुण्डा चाष्टमा-
 तृकाः ॥ ६८ ॥ सर्वं व्योमेश्वरी पातु सप्तद्वीपेश्वरी भुवि । नागेश्वरी च
 पाताले न्यसेत्कर्त्ता सुनिर्भयः ॥ ६९ ॥ जायते त्रिषु लोकेषु सर्वदेवप्रियो
 जनः । षड्देवीनां पुनर्न्यासं चतुर्थं चैव भूमिप ॥ ७० ॥ पूर्वाङ्गं नन्दजा
 पातु कमलाङ्कुशमण्डिता । खड्गपात्रकरा पातु दक्षिणे रक्तदन्तिका
 ॥ ७१ ॥ पुष्पपञ्चमूलादिहस्ता शाकम्भरी परम् । धनुर्बाणधरा दुर्गा
 वामं दुर्गातिहारिणी ॥ ७२ ॥ शिरः पात्रकरा भीमा मस्तकाचरणावधि ।
 चरणाच्च शिरोयावद्भ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ॥ ७३ ॥ अनेन न्यासयोगेन
 जरामरणवर्जितः । निर्भयश्चाग्निवारिभ्यां मान्त्रिकस्तत्क्षणाद्भवेत्
 ॥ ७४ ॥ पादाभ्यां नाभिपर्यन्तं ब्रह्मा पातु सनातनः । नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तं
 पातु नित्यं जनार्दनः ॥ ७५ ॥ विशुद्धेस्तु शिखां यावत्पातु रुद्रस्त्रिलोचनः ।
 हंसः पादद्वयं पातु वैनतेयः करद्वयम् ॥ ७६ ॥ चक्षुषी वृषभः पातु
 सर्वाङ्गानि जनार्दनः । परात्परतरः पातु सर्वानन्दमयोहरिः ॥ ७७ ॥

अभैद्यः पञ्चमो न्यासः कर्तुं कामदुघः स्मृतः । मध्यं पातु महालक्ष्मीरष्टा
दशभुजा सती ॥ ७८ ॥ ऊर्ध्वं सरस्वती पातु भुजैरष्टाभिरुजिता । अधः
पातु महाकाली त्रिशङ्खोचनमण्डिता ॥ ७९ ॥ सिंहोहस्तद्वयं पातु पर-
हंसोऽक्षिमण्डलम् । महिषेण समायुक्तः प्रेतः पातु पदद्वयम् ॥ ८० ॥
सर्वाङ्गानि महेशानश्रण्डिका च परस्परम् । वैकुण्ठसुखकन्यासः षष्ठः
कष्टोपशान्तये ॥ ८१ ॥ उक्तमन्त्रस्य बीजानि प्रणवाद्यं पृथक्पृथक् ।
ब्रह्मतः पायुपर्यन्तं नवद्वारेषु विन्यसेत् ॥ ८२ ॥ ब्रह्मरन्ध्रं तथा नेत्रं श्रोत्रं
नासाद्वयं तथा । मुखं चैव गुदं चैव नवस्थानं प्रकीर्तितम् ॥ ८३ ॥
पायुतो ब्रह्मपर्यन्तं विन्यसेत्तानि पूर्ववत् । न्यासद्वयमिदं प्रोक्तं सुगुप्तं सप्त-
माष्टमम् ॥ ८४ ॥ महाभयमहाव्याधिशत्रुचौरविघातकम् । महाचौर-
गणानां च कल्पान्ताग्निसमो भवेत् ॥ ८५ ॥ ब्रह्मतः ब्रह्मरन्ध्रात् पायु-
पर्यन्तो नवमो येषामेवं सप्तमन्यासः । पायुतः ब्रह्मरन्ध्रं नवमो येषामेव-
मष्टमन्यासः । एवं न्यासद्वयं भवति । पूर्वाङ्गं विन्यसेन्मन्त्रं मस्तकान्च-
रणावधि । दक्षिणे पृष्ठतो वामे तथा लोमविलोमयोः ॥ ८६ ॥ अस्मि-
न्यासे कृते राजन्नवमे देववद्भवेत् । पूर्वाङ्गेत्यादिना सार्द्धं श्लोकेन समस्त-
मन्त्रन्यासमाह-लोमानुलोमस्तु मस्तकात्पादान्तं पादाच्छिरोऽन्तमिति
क्रमः । हन्मस्तकशिखास्वेनं कवचे लोचनद्वये ॥ ८७ ॥ अस्त्रे सर्वासु
काष्ठासु पृथङ्मन्त्रं विनिर्दिशेत् । नमोऽन्तं प्रथमं प्रोक्तं स्वाहान्तं तद-
नन्तरम् ॥ ८८ ॥ वषट्कन्तं हुमन्तं च वीषडन्तं फडन्तकम् । पूज्यस्त्रेलो-
क्यदेवानां दशमेऽस्मिन्कृते कृती ॥ ८९ ॥ दशन्यासप्रविष्टो वै यद्भुदेतत्तथा-
भवेत् । यत्पश्यति यया दृष्ट्या तद्भुवेत्तादृशं किल ॥ ९० ॥ तेन सार्द्धं
महालक्ष्मीः स्वयं वदति तत्फलम् । भविष्यमभविष्यं वा तं पालयति
पुत्रवत् ॥ ९१ ॥ ब्रह्मविष्णुशिवास्त्वेनं पालयन्त्यात्मवत्सदा । त्रिषु
लोकेषु पश्यन्ति न तस्मादधिकं क्वचित् ॥ ९२ ॥ दशन्यासे कृते पापं
दशजन्मार्जितं क्षणात् । सुतीव्रं विलयं याति तमिस्रं रविणा यथा ॥ ९३ ॥
संनद्धो दशभिर्न्यासैश्चण्डीं सप्तशतीं जपेत् । असाध्यं साधयत्याशु कार्यं
लोकत्रयेऽपियत् ॥ ९४ ॥ माधवे मासि मध्याह्ने तपते निर्मलं रविः ।
दिवाब्धास्तं न पश्यन्ति सर्वदा सर्वथा यथा ॥ ९५ ॥ चण्डी सप्तशती
जाप्ये दशन्यासैः समुज्ज्वलन् । त्रैलोक्ये सर्वदुष्टास्तं न पश्यन्ति सदा
तथा ॥ ९६ ॥ हृत्त्रैत्र्यादितथेत्यन्तैः श्लोकैः समस्तमन्त्रेण षडङ्गन्यास-
उक्तः । तत्र नवार्णं मन्त्रं नमोऽन्तं हृदयायेति चतुर्थ्यन्तं पदपूर्वकमित्यर्थः ।

एवमग्रेऽप्यूह्यम् । षण्डी सप्तशती जाप्ये सरहस्ये नृपोत्तम । न्यासन्ते सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मविष्णुशिवोदितम् ॥ ६७ ॥ अङ्गेषु सर्वसिद्धयर्थं वज्रा-
मृतमनःसुखम् । अस्मिन्यासे दशश्लोका ब्रह्मविष्णुशिवोदिताः ॥ ६८ ॥
खड्गिनी शूलिनी श्लोकमाद्यं कृष्णतरं न्यसेत् । नाभ्यादिचरणान्तं तु
न्यासं शत्रुविनाशनम् ॥ ६९ ॥ शूलेन पाहि नो देवि पुनः श्लोकचतुष्ट-
यम् । बालार्कसदृशं न्यासे चिन्तनीयं महत्तरम् ॥ १०० ॥ तद्विशुद्ध्यादि-
पर्यन्तं न्यासं तिमिरनाशनम् । सर्वस्वरूप इत्यादिश्लोकानां पञ्चकं पुनः
॥ १०१ ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशं न्यासं त्रैलोक्यकामदम् । मूर्धनोर्विशुद्धि-
पर्यन्तं श्लोकानां पञ्चकं न्यसेत् ॥ १०२ ॥ अयमेकादशन्यासो दशन्यास-
समोभवेत् । दशन्यासे कृते यत्तु कर्त्ता न्यासफलं लभेत् ॥ १०३ ॥
तत्फलं लभते सर्वमस्मिन्नेकादशेकृते । नवाक्षरस्य मन्त्रस्य जाप्ये सर्वफल-
प्रदे ॥ १०४ ॥ एते न्यासाः प्रकर्त्तव्याश्चण्डी सप्तशतीजपे । एवं न्यास-
विधिं कृत्वा सृष्टिमुद्रां विलोकयेत् ॥ १०५ ॥ तस्या विलोकने राजन्कृत-
न्यासः स्थिरोभवेत् । सृष्टिमुद्रायोनिमुद्रेति । अर्घ्यपात्रं प्रतिष्ठाप्य पूरये-
च्छुभवारिणा ॥ १०६ ॥ गन्धपुष्पाक्षतांस्तत्र विन्यस्य नृपनन्दन । ध्यात्वा
सर्वाणि तीर्थानि हस्तौ दत्त्वाभिमन्त्रयेत् ॥ १०७ ॥ रक्षार्थं तत्र कर्त्तव्या
चक्रमुद्रास्त्रसंयुता ॥ १०८ ॥ तलपृष्ठोद्धृत्वा मुद्रां कृत्वास्त्रेणावगुण्ठयेत् ।
अर्घोदकेन संस्कारं पूजाद्रव्यस्य पूर्ववत् ॥ १०९ ॥ परिष्वेत्तु पूजार्थं
द्रव्याणि नवबीजतः । कृत्वा लोमविलोमाभ्यामात्मानं सम्यगर्चयेत्
॥ ११० ॥ प्रत्यर्थं सम्प्रतिष्ठाप्य मध्ये पीठार्घ्यपात्रयोः । अर्घ्यपात्रमित्या-
दिभिः पूजोपकरणप्रोक्षणार्थं पूजार्थं चार्घ्यपात्रस्थापनमाह । आत्मपूजापि
विधेया । तलपृष्ठोद्धृत्वा मुद्रां मत्स्यमुद्रेति । अनुलोमविलोमाभ्यां
मूर्द्धादिपादान्तं पादादिशिरोऽन्तं ध्यानमानसपूजान्ते व्यापकत्वेन मूल-
मुच्चार्य विधेयम् । षट्कोणचक्रमध्यस्थमध्यबीजे व्यवस्थिताम् ॥ ११ ॥
महाकाल्या सरस्वत्यालंकृतां दक्षिणान्ययाः । संयुक्तां दक्षिणे वामे सिंहेन
महिषेण च ॥ १२ ॥ अष्टादशभुजां ध्यात्वा महालक्ष्मीं प्रणम्य च ।
पीठादि पूजनं कुर्यात्स्वबीजेन पृथक्पृथक् ॥ १३ ॥ ॐकारं बिन्दुमध्यस्थ
नामधेयाद्यमक्षरम् । देवता नां स्वबीजं च पूजायामृद्धिसिद्धिदम् ॥ १४ ॥
ॐकारेति । नामधेयाद्यमक्षरमिति । ॐकारानन्तरं पीठादि तत्तन्नामा-
द्यक्षरं सबिन्दुकमुच्चार्य तदनु चतुर्थीनमोऽन्तेन तत्तन्नाममन्त्रेण पूजये-
दित्यर्थः । ॐकारं प्रथमं पीठं पूर्णपीठमनन्तरम् । तृतीयं कामपीठं च
पूजयेत्सम्प्रदायतः ॥ १५ ॥ पूर्वादिदिक्षु पीठस्य गणद्यादिचतुष्टयम् ।

गणेशक्षेत्रपाली च पादुके वटुकस्तथा ॥ १६ ॥ आग्नेयादि चतुर्दिक्षु
 पूज्यं देवीचतुष्टयम् । आद्या तत्र जया प्रोक्ता द्वितीया विजया स्मृता
 ॥ १७ ॥ जयन्ती तत्परा भूप चतुर्थी चापराजिता । पूज्या नामपदैर्देव्यः
 पीठपङ्कजमध्यगाः ॥ १८ ॥ प्रागादिक्रमयोगेन पञ्च षट् षट् षडादिकाः
 प्रथमा विष्णुमाया च द्वितीया चेतना स्मृता ॥ १९ ॥ बुद्धिनिद्रा क्षुधा
 छाया शक्तिस्तृष्णाष्टमी भवेत् । क्षान्तिर्जातिस्ततो लब्धा शान्तिः श्रद्धा
 त्रयोदशी ॥ २० ॥ कान्तिलक्ष्मीर्धृतिर्वृत्तिः स्मृतिश्चैव दया स्मृता ।
 तुष्टिः पुष्टिश्च माता च भ्रान्तिरेवं पदक्रमः ॥ २१ ॥ त्रयोविंशतिसंख्याता
 ब्रह्मणा पूजिता पुरा । नालमूले च सम्पूज्यमाधारादिचतुष्टयम् ॥ २२ ॥
 आधारः कूर्मशेषो च चतुर्थी पृथिवी नृप । ततो नालं समभ्यर्च्य पद्मं
 सम्पूज्य यत्नतः ॥ २३ ॥ जानामृतसुतृमात्मा मण्डलार्चनमारभेत् ।
 अर्घोदकाद्भिरासिच्य मण्डलं सौम्यदृष्टिमान् ॥ २४ ॥ पूर्वपत्रादितः पूज्यं
 मातृणां मण्डलं शिवम् । रहस्यकथितैर्बीजैः स्वबीजेनाथवा नृप ॥ २५ ॥
 रहस्यकथितैर्बीजैः वाग्भवमायाकामैरिति । स्वबीजेन स्वस्वनामाद्यक्षरेण
 सविन्दुकेनेति । आद्ये पत्रे समभ्यर्च्य ब्रह्मणी हंसवाहिनी । माहेश्वरी
 वृषारूढा पूज्याथ हुतभुग्दले ॥ २६ ॥ मयूरवाहनापूज्या कौमारी दक्षिणे-
 दले । नैर्ऋत्ये वैष्णवी पूज्या गरुडोपरिसंस्थिता ॥ २७ ॥ पश्चिमे यज्ञ-
 वाराही दंष्ट्रोद्धूतवसुन्धरा ॥ समीरणदले पूज्या नारसिंही महास्वना
 ॥ २८ ॥ गजराजसमारूढा पूज्यैन्द्री सौम्यदिग्दले । गणनाथपरिवारा
 सदा रुद्रेण संयुता ॥ २९ ॥ ईशपत्रे समभ्यर्च्य चामुण्डा मुण्डमण्डिता ।
 ब्रह्मणीकर्णिकामध्ये क्रमात्षट्कोणपूजनम् ॥ ३० ॥ ब्रह्मणीति । आद्य-
 पत्रस्पर्शिकोणमारभ्य दक्षावर्तेन कोणपूजा । अत्र पूज्यपूजकमध्ये
 प्राची । यष्टुरभिमुखादेव देवाभिमुखतोदश । प्राच्यादि हरितोज्ञेयाः
 पूजाहोमादिकर्मस्विति कुलमूलावतारः । पूज्यपूजकयोर्मध्यं पूर्वमित्य-
 भिधीयते ॥ तदादि परिवाराणां । प्रादक्षिण्येन पूजनमिति दक्षिणामूर्ति-
 संहितायाम् । अथ षट्कोणार्चा । नन्दजा हेमगर्भाभा सुरक्ता रक्त-
 दन्तिका । नीला शाकम्भरी दुर्गा सर्वदुःखार्तिहारिणी ॥ ३१ ॥ दंष्ट्रा-
 चितमुखी भीमा नला पात्रशिरोधरा । तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी
 वरदाचिता ॥ ३२ ॥ आद्ये बीजे महाकालीं ध्यानपूर्वा समर्चयेत् । द्वितीये-
 ष्ठादशभुजां महालक्ष्मीं समर्चयेत् ॥ ३३ ॥ तृतीयेष्टभुजां ध्यात्वा
 समभ्यर्च्य सरस्वतीम् । ततः पृथक्पृथक् पूजां कृत्वा महिषसिंहयोः

॥ ३४ ॥ मध्यबीजे चिरं ध्यात्वा महालक्ष्मीं महामनाः । आह्वानपूर्वकं
दद्यादासनं मणिभूषितम् ॥ ३५ ॥ मण्डलस्था तु या देवी पीठस्था
सर्वशस्तदा । महालक्ष्म्या सहैक्येन चिन्तयेद्योगमुद्रया ॥ ३६ ॥ एकाकारं
महालक्ष्म्या रूपं ध्यात्वा परावरम् । मुद्रा भुजायुधाकाराश्चण्डिकायै
प्रदर्शयेत् ॥ ३७ ॥ अष्टादशाक्षमालाद्यास्ततः पाद्यं समर्पयेत् । वारिपुष्पा-
क्षतैर्युक्तं चन्दनेन प्रमोदितम् ॥ ३८ ॥ अर्घं दत्त्वा महालक्ष्म्यै धेनुमुद्रां
प्रदर्शयेत् । सङ्कल्प्याचमनं भूप स्नानं पुण्याभिषेचनम् ॥ ३९ ॥ विदध्या-
च्छ्रेयसीं मुद्रां यया माता प्रतुष्यति । महार्हे चित्रिते वस्त्रे चित्राण्या-
भरणानि च ॥ १४० ॥ श्रेयसीं मुद्रां योनिमुद्रां । कस्तूरीकुङ्कुमोपेतं
कर्पूरागरुचन्दनम् । सुरभीणि च पुष्पाणि बिल्वपत्राक्षतांस्तथा ॥ ४१ ॥
निवेद्य चण्डिकां भूप दिव्यैर्धूपैः सुधूपयेत् । ज्वलन्मणिशिखाकारैर्दीपै-
र्नीराजयेच्छुचिः ॥ ४२ ॥ यथा वर्णक्रमोपेतैर्नैवेद्यैः पायसादिभिः ।
अनेकरसपक्वान्नैर्महालक्ष्मीं प्रतोषयेत् ॥ ४३ ॥ यथावर्णं क्रमोपेतैरित्यनेन
त्रैवर्णिकैः सिद्धानं शूद्रैरामात्रं फलादि वा देयं । यच्चान्यत्र दृश्यते । वर्ण-
त्रयेण दातव्यं श्रीदेव्यै पाकभोजनम् । खण्डाज्यादिकृतं पाकं नदूष्ये-
च्छूद्रजन्मन इति प्रणम्याचमनं दत्त्वा चन्दनं मुखवासनम् । सकर्पूरं च
ताम्बूलं भक्तिभावसमन्वितः ॥ ४४ ॥ प्राणानायम्य पूर्वोक्तं न्यासं संस्मृत्य
चात्मवान् । प्रथमं चरितं प्रोक्तं मधुकैटभघातनम् ॥ ४५ ॥ महिषासुर-
निर्नाशं चरितं विद्धि मध्यमम् । चरितं चोत्तरं विद्धि निशुम्भाधिवधा-
श्रितम् ॥ ४६ ॥ चरितानि जपेत्त्रीणि सरहस्यान्यतन्द्रितः । चरितं
मध्यमं चैषां जपेद्वा चण्डिकामयम् ॥ ४७ ॥ जपेन्नवाक्षरं मन्त्रमथवाष्टोत्तरं
ष्टतम् । हुनेज्जपदण्डांशेन पायसं तिलसर्पिषा ॥ ४८ ॥ नवाक्षरेण मन्त्रेण
स्मर्त्तार्गनौ नृपनन्दन । नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ॥ ४९ ॥
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् । अनेन श्लोकमन्त्रेण
जुहुयाद्वा शुभं हविः ॥ ५० ॥ उद्धृतः प्रोक्षितो मन्त्रैः पात्रानीतः समु-
ज्ज्वलः । संस्कृतायां भुवि स्थाप्यः स्मार्त्ताग्निः सम्प्रकीर्तितः ॥ ५१ ॥
देवतार्चनजाप्यस्य भूमेः संस्करणं तथा । कृत्वा संस्थापयेद्वाग्निं नान्यदा-
सादनं मतम् ॥ ५२ ॥ शृतं हि पायसं होमे हुनेत्स्मार्तहुताशने । तदभावे
समित्सर्पिस्तिलानां हवनं भवेत् ॥ ५३ ॥ जुहुयाच्च महालक्ष्म्यै ऋतुकाल-
भवैः फलैः । सजपं होममावेद्य महालक्ष्मीं प्रणम्य च ॥ ५४ ॥ शूलेन
पाहिनो देवीत्येतैः श्लोकैः प्रदक्षिणम् । कृत्वा वै सुस्थिरो भूत्वा चण्डिका-

ध्यानतत्परः ॥ ५५ ॥ नमोदेव्या इति श्लोकैः पञ्चभिः पञ्चवारतः । कृत्वा
पञ्च नमस्कारानुपविश्यासने शुभे ॥ ५६ ॥ सर्वस्वरूप इत्यादिषड्भिः
श्लोकैः कृताञ्जलिः । प्रार्थयेन्नगतां धात्रीं प्रणतात्मा हृदीप्सितम् ॥ ५७ ॥
स्वशरीरे समारोप्य दद्यादस्यै विसर्जनम् । अनेन विविधा भूप यः
कुर्याच्चण्डिकार्चनम् ॥ ५८ ॥ तस्य तुष्टा जगद्धात्री यद्दाति शृणुष्व
तत् । महदैश्वर्यमतुलं त्रैलोक्ये तस्य जायते ॥ ५९ ॥ धर्मराज्यसमायुक्तं
पुत्रपौत्रसमाकुलम् । तं करोति महालक्ष्मीर्ब्रह्मविष्णुशिवापमम् ॥ ६० ॥
रिपवः प्रलयं यान्ति तत्स्थानाच्छतयोजनम् । तेनैक्येन वसन्तोऽपि न
तं पश्यन्ति दस्यवः ॥ ६१ ॥ तस्य स्मरणमात्रेण विघ्नानां जायते क्षयः ।
त्रिषु लोकेषु यत्किञ्चित्ससुरासुरदुर्लभम् ॥ ६२ ॥ तत्सर्वं तं समायाति
महालक्ष्मीप्रसादतः । यः कुर्यात्परया भक्त्या महालक्ष्म्यास्तु पूजनम्
॥ ६३ ॥ स नरोलभते सत्यं पूजाफलमनुत्तमम् । चण्डी सप्तशतीस्तोत्र
आद्यस्य चरितस्य तु ॥ ६४ ॥ ऋषिर्ब्रह्मा समुद्दिष्टो गायत्रीच्छन्द ईरितम् ।
महाकाली देवतास्याद्बीजं च रक्तदन्तिका ॥ ६५ ॥ नन्दाशक्तिः समा-
ख्याता अग्निस्तत्त्वमुदाहृतम् । विनियोगस्तु धर्मार्थकाममोक्षाप्तये नृप
॥ ६६ ॥ मध्यमस्य चरित्रस्य ऋषिर्विष्णुरुदाहृतः । उष्णिक् छन्दः समा-
ख्यातं महालक्ष्मीश्च देवता ॥ ६७ ॥ दुर्गा बीजमितिख्यातं शक्तिः
शाकम्भरी मता । वायुस्तत्त्वमिति प्रोक्तं विनियोगस्तु पूर्ववत् ॥ ६८ ॥
उत्तरस्य चरित्रस्य ऋषीन्द्रः समीरितः । अनुष्टुप्छन्द इत्युक्तं देवता
च सरस्वती ॥ ६९ ॥ भ्रामरीबीजमित्युक्तं भीमाशक्तिर्नृपोत्तम । सूर्य-
स्तत्त्वमिति प्रोक्तं विनियोगस्तु पूर्ववत् ॥ ७० ॥ नवाक्षरस्य ऋषयो
ब्रह्मविष्णुशिवाः स्मृताः । गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च छन्दांसि नृपसत्तम
॥ ७१ ॥ काली लक्ष्मी सरस्वत्यो महापूर्वाश्च देवताः । बीजं परशिवं
लिङ्गं शेषाः शक्तय ईरिताः ॥ ७२ ॥ अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च तत्त्वान्युक्तानि
भूपते । विनियोगः पुरोक्तश्च सर्वाभीष्टप्रकाशकः ॥ ७३ ॥ एतद्गाप्यतरं
सर्वं वेदागमसमुद्भवं । ब्रह्मणा गुरवे दत्तं गुरुणा मम शसितम् ॥ ७४ ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्रिषु लोकेषु साधनम् । अनेन सदृश नास्ति सत्यं
सत्यं न संशयः ॥ ७५ ॥

इति श्रीनवार्णकल्पे खिलमार्कण्डेये पूजापटलम् ॥

अथैतत्प्रयोगसरणिः प्रकाशयते--

तत्र श्रीमान्साधकः प्राप्तनवार्णदीक्षः सप्तशतीदीक्षितो वा गुरु-
दक्षितक्रियाकलापः सिद्धक्षेत्रे गिरी रम्ये अथवा क्वचित्पुण्यभूमौ वाता-
तपसहां कुटीं निर्माय साधयेत् । अथ श्रीमान्साधको ब्राह्मे मुहूर्ते समु-
त्थाय कृतावश्यकः प्रक्षालितकरचरणः शुद्धः शुद्धाम्बरधरः शुद्धासने
समुपविश्य ब्रह्मरन्ध्रगतशुक्लसहस्रारमध्यकर्णिकास्थं स्फटिकाभं ध्यान-
मुद्राधरं वराभयकरं द्विभुजं शुक्लाम्बरालेखविभूषणं श्रीगुरुं ध्यात्वा
मानसोपचारैः सम्पूज्य । ॐ अखण्डमण्डलाकारं ॥ १ ॥ अज्ञानतिमि-
रान्धस्य । गुरुब्रह्मा । इत्यादित्रिभिर्मन्त्रैः स्तुत्वा दण्डवत्प्रणम्य
तदाज्ञां गृहीत्वा हृत्पद्मे गुरूपदिष्टरूपामिष्टदेवतां ध्यात्वा मानसैः सम्पूज्य
ऋष्यादिपूर्वकं दशधा जपं विधाय श्रीदेव्यै समर्प्य सर्वस्वरूपे इत्यादि
मन्त्रैः स्तुत्वा प्राणायामं विधाय बद्धाञ्जलिः प्रार्थ्य भूमिं प्रणम्य शौचा-
द्यावश्यकं निवर्त्य नद्यादौ गत्वा विहितदिने विहितकाष्ठेन । ॐ क्लीं
कामदेवसर्वजनप्रियाय नमः । इतिदन्तान्विशोधय जिह्वाशुद्धिं च विधाय
जिह्वायां कनिष्ठया वाग्बीजमुत्तिष्ठय यथेष्टगण्डूषैर्मुखशुद्धिं विधाय
मूलाभिर्मन्त्रितजलेन मुखं प्रक्षाल्य नाभिमात्रेऽम्भसि इमं मे गङ्गे इत्यादि
मन्त्रान्पठित्वा स्मात्तक्रमेण स्नात्वा नवार्णमन्त्रेण कुम्भमुद्रया स्वशिरः
सिञ्च्य बहिर्धौते वाससी परिधाय स्वशाखोक्तां वैदिकीं सन्ध्यामुपास्य
तर्पणञ्च विधाय । ॐ ह्रीं चण्डिकायै हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं चण्डिकायै
शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रीं चण्डिकायै शिखायै वषट् । ॐ ह्रीं चण्डिकायै
कवचाय हुं । ॐ ह्रीं चण्डिकायै नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ ह्रीं चण्डिकायै
अस्त्राय फट् । इति षडङ्गन्यासं विधाय ध्यानक्रमेण श्रीदेवीं ध्यात्वा
मूलान्ते श्रीचण्डिका तृप्यतामित्यष्टोत्तरशतं तदद्वंद्वमष्टाविंशतिवारं
सुगन्धिपुष्पमिश्रजलेन श्रीदेवीं सन्तर्प्य । ॐ कात्यायन्यै विद्महे कत्य-
कुमारि धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात् । इति गायत्रीं यथाशक्ति जपित्वा
प्राणायामपूर्वकं जपं श्रीदेव्यै समर्प्य जलकुम्भं गृहीत्वा पूजास्थानमागत्य
बहिः करचरणौ प्रक्षाल्य गन्धाक्षतपुष्पबिल्वपत्रधूपदीपनैर्देद्यादिपूजो-
पस्करं सम्पाद्य द्वारपूजां कुर्यात् । तद्यथा बहिर्द्वारि आसनमास्तीर्थं भूमौ

जलेन त्रिकोणवृत्तचतुरस्रं मण्डलमालिख्य तन्मण्डलं गन्धाक्षतपुष्पैः ॐ
 ह्रीं द्वारार्घ्यमण्डलाय नमः इति पूजास्त्रक्षालितं साधारं पात्रं संस्थाप्य
 तस्मिन्सगन्धं जलमापूर्य तत्रांकुशमुद्रया तीर्थमावाह्य गङ्गेतिमन्त्रेण
 धेनुमुद्रया मृतीकृत्य मूलेनाष्टाभिमन्त्र्य तज्जलेन तत्त्वत्रयैराचम्य द्वारस्यो
 ध्वंशाखायां दक्षे ॐ धात्रे नमः । वामे विधात्रे नमः । अधः शाखायां
 दक्षे ॐ गङ्गायै नमः । वामे ॐ यमुनायै नमः । ऊर्ध्वोदुम्बरे ॐ द्वार-
 श्रियेनमः । अधः ॐ देहल्यै नमः । इति सम्पूज्य । वामाङ्गसङ्कोचेनान्तः
 प्रविश्य । नैर्ऋत्यकोणे । ॐ वास्तुपुरुषायनमः । इति गन्धाक्षतैः सम्पू-
 ज्य । आसनभूमी रक्तचन्दनेन चतुरस्रं विलिख्य तत्र पृं पृथिव्यै नमः
 इति मण्डलं गन्धादिभिः सम्पूज्य तत्रासनमास्तीर्य पृथ्वीतिमन्त्रेण तत्र
 प्रार्थ्योपविश्य शिखां बध्वा प्राणायामं सङ्कल्पं च विधाय । तत्त्वत्रयेणा-
 चमेत् । ॐ आत्मतत्त्वाय स्वाहा । ॐ विद्यातत्त्वाय स्वाहा । ॐ शिव-
 तत्त्वाय स्वाहा । इत्याचम्य । दक्षे हरि । वामे ईश्वरं प्रणवादि नमोन्त-
 नाममन्त्रेण सम्पूज्य । प्राङ्मुखः शुद्धचित्तः क्वचिन्निर्मले पीठे चन्दनाग-
 रुकुंकुमैः षट्कोणाष्टदलभूपुरात्मकं यन्त्रं निर्माय षट्कोणमध्ये ऐं ह्रीं
 क्लीं इति क्रमेण बीजान्यालिख्य भूतशुद्धिं कुर्यात् । अथ च पद्मासनं
 बध्वा मौनी मूलाधारपद्मे जीवकलां सूक्ष्मां सोमसूर्याग्निरूपिणीं विस-
 तन्तुनिभां कुण्डलिनीं ध्यात्वा षट्चक्राणि भित्त्वा सहस्रारं ब्रह्मावल-
 मानीय तथा चतुर्विंशतितत्त्वानि स्वे स्वे मूलकारणे लीनानि विभाव्य
 प्राणायामक्रमेण यमिति वायुबीजेन षोडशवारजप्तेन कृष्णवर्णेन वायु-
 मापूर्वं तस्यैव चतुःषष्टिजपेन कुम्भयित्वा दक्षनासाध्वना द्वात्रिंशता
 रेचयेत् । एवं भूतानि देहगतानि शुष्काणि विभाव्य पुनस्तथैव पिगलया
 रमिति वह्निबीजं रक्तं ध्यायन् षोडशभिः पूरकं तेनैव चतुःषष्ट्या
 कुम्भकं द्वात्रिंशता रेचकमारचय्य शुष्कभूतानि संदह्य पुनस्तथैवेडया
 वमिति वरुणबीजं शुक्लवर्णध्यायन् पूर्ववत्षोडशवारजपेन पूरकं विधाय
 तेनोत्थामृतेन शरीरमाप्लाव्य चितः भूतानि तत्सम्बन्धीनि चतुर्विंशति-
 तत्त्वानि च यथा क्रमेणोत्पाद्य लमिति भूबीजेन पीतवर्णेन चतुःषष्ट्या
 कुम्भकं विधाय तथैव पिङ्गलया रेचयेत् । पुनः कुण्डलिनीं मूलाधार-
 मानयेत् । इत्थं भूतशुद्धिं विधाय निरस्तसकलभ्रमः । वामे श्रीगुरुं ।
 दक्षे श्रीगणेशं । मध्ये श्रीमहालक्ष्मीं ध्यात्वा प्रणम्य एकादशन्यासान्कु-
 र्यात् । तत्रादौ मातृकान्यासः । ॐ अं नमः सूँधन । ॐ आं नमः

ललाटे । ॐ इं नमः दक्षनेत्रे । ॐ ई नमः वामनेत्रे । ॐ उं नमः दक्ष-
 कपोले । ॐ ऊं नमः वामकपोले । ॐ ऋं नमः दक्षश्रुतौ । ॐ ॠं नमः
 वामश्रुतौ । ॐ ॡं नमः दक्षनासायाम् । ॐ ॢं नमः वामनासायाम् ।
 ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे । ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे । ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ
 ॐ औं नमः अधोदन्तपंक्तौ । ॐ अं नमः जिह्वायाम् । ॐ अः
 नमः तालुनि । ॐ कं नमः दक्षबाहौ । ॐ खं नमः दक्षकूर्परे । ॐ गं
 नमः दक्षमणिवन्धे । ॐ घं नमः दक्षांगुलिमूले । ॐ ङं नमः दक्षांगुल्यग्रे ।
 ॐ चं नमः वामबाहुमूले । ॐ छं नमः तत्कूर्परे । ॐ जं नमः तन्म-
 णिवन्धे । ॐ झं नमः तदंगुलिमूले । ॐ ञं नमः । तदंगुल्यग्रे । ॐ
 टं नमः दक्षोरूमूले । ॐ ठं नमः दक्षजानुनि । ॐ डं नमः दक्षगुल्फे ।
 ॐ ढं नमः दक्षपादांगुलिमूले । ॐ णं नमः तत्पादांगुल्यग्रे । ॐ तं नमः
 वामपादोरूमूले । ॐ थं नमः वामजानुनि । ॐ दं नमः वामगुल्फे । ॐ
 धं नमः तत्पादांगुलिमूले । ॐ नं नमः तत्पादांगुल्यग्रे । ॐ पं नमः
 दक्षपार्श्वे । ॐ फं नमः वामपार्श्वे । ॐ बं नमः पृष्ठे । ॐ भं नमः नाभौ ।
 ॐ मं नमः जठरे । ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदये । ॐ रं असृगात्मने
 नमः दक्षांसे । ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि । ॐ वं स्नाय्वात्मने नमः
 वामांसे । ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादिदक्षहस्तान्तम् । ॐ षं मज्जा-
 त्मने नमः हृदयादि वामहस्तान्तम् । ॐ सं मेदआत्मने नमः हृदयादक्ष-
 पादान्तम् । ॐ हं पूयात्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम् । ॐ ॠं प्राणा-
 त्मने नमः पादादिहृदयान्तम् । ॐ ॡं जीवात्मने नमः हृदयादिशिरो
 ऽन्तम् । इतिमातृकान्यासः प्रथमः ॥ १ ॥ अथ सारस्वतन्यासः ॐ ऐं ह्रीं
 क्लीं नमः कनिष्ठयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः अनामिकयोः । ॐ ऐं ह्रीं
 क्लीं नमः मध्यमयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः तर्जन्योः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं
 नमः अंगुष्ठयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः करतलयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः
 करपृष्ठयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः मणिवन्धयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः
 हृदये । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिरसि । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिखा-
 याम् । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः कवचे । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः नेत्रयोः ।
 ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः करतलकरपृष्ठयोः । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः पूर्वं ।
 ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः आग्नेये । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः दक्षिणे । ॐ
 ऐं ह्रीं क्लीं नमः नैऋत्ये । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः पश्चिमे । ॐ ऐं
 ह्रीं क्लीं नमः वायव्ये । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः उत्तरे । ॐ ऐं ह्रीं
 क्लीं नमः ईशाने । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः ऊर्ध्वे । ॐ ऐं ह्रीं क्लीं

नमः अधः । इति द्वितीयः सारस्वतो न्यासः । अथ तृतीयो मातृगणन्यासः । ॐ ह्रीं ब्रह्माणीपूर्वतः पातु । ॐ ह्रीं माहेश्वरी आग्नेय्यां पातु । ॐ ह्रीं कौमारी दक्षिणे पातु । ॐ ह्रीं वैष्णवी नैऋती पातु । ॐ ह्रीं यज्ञवाराही पश्चिमे पातु । ॐ ह्रीं नारसिंही वायव्ये पातु । ॐ ह्रीं ऐन्द्री उत्तरे पातु । ॐ ह्रीं चामुण्डा ईशाने पातु । ॐ ह्रीं व्योमेश्वरी ऊर्ध्वे पातु । ॐ ह्रीं नागेश्वरी पाताले पातु । इति तृतीयो मातृगणन्यासः । अथ चतुर्थः षड्देवीन्यासः । ॐ कमलांकुश-मण्डिता नन्दजा पूर्वाङ्गे पातु ॥ ॐ खड्गपात्रधरा रक्तदन्तिका दक्षिणाङ्गे पातु । ॐ पुष्पपल्लवमूलादिहस्ता शाकम्भरी पश्चिमाङ्गे पातु । ॐ धनुर्वाणधरा दुर्गातिहारिणी दुर्गा वामाङ्गे पातु । ॐ शिरःपात्रकरा भीमा मस्तकाच्चरणपर्यन्तं पातु । ॐ चित्रकान्तिभृद्भ्रामरीचरणाभ्यां शिरःपर्यन्तं पातु । इति चतुर्थः षड्देवीन्यासः । अथ पञ्चमो ब्रह्मा-दिन्यासः । ॐ ब्रह्मा सनातनः पादादिनाभिपर्यन्तं पातु । ॐ जनार्दनः नाभेर्विशुद्धिपर्यन्तं नित्यं पातु । ॐ रुद्रस्त्रिलोचनः विशुद्धेः शिखापर्यन्तं पातु । ॐ हंसः पादद्वयं पातु । ॐ वैनतेयः करद्वयं पातु । ॐ वृषभश्च-क्षुषी पातु । ॐ जनार्दनः परात्परतराः सर्वानन्दमयोहरिः सर्वाङ्गानि पातु । इति पञ्चमः ब्रह्मादिन्यासः । अथ षष्ठोलक्ष्म्यादिन्यासः । ॐ अष्टादशभुजा सती महालक्ष्मीर्मध्यं पातु । ॐ अष्टभुजासरस्वती ऊर्ध्वं पातु । ॐ त्रिशूलोचनमण्डिता महाकाली अधः पातु । ॐ सिंहोहस्तद्वयं पातु । ॐ परहंसः अक्षिमण्डलं पातु । ॐ महिषेण समायुक्तः प्रेतः पादद्वयं पातु । ॐ महेशानश्चण्डिका च सर्वाङ्गानि पातु । इति षष्ठ-न्यासः । अथ मन्त्रबीजन्यासः सप्तमः । ॐ ऐं नमः ब्रह्मरन्ध्रे । ॐ ह्रीं नमः दक्षनेत्रे । ॐ क्लीं नमः वामनेत्रे । ॐ चां नमः वक्षकर्णे । ॐ मुं नमः वामकर्णे । ॐ डां नमः दक्षनासापुटे । ॐ यें नमः वामनासापुटे । ॐ विं नमः मुखे । ॐ ह्रीं नमः गुदे । इति बीजन्यासः सप्तमः । अथाष्टमन्यासः । ॐ ऐं नमः गुदे । ॐ ह्रीं नमः मुखे । ॐ क्लीं नमः दक्षनासापुटे । ॐ चां नमः दक्षनासापुटे । ॐ मुं नमः वामकर्णे । ॐ डां नमः दक्षकर्णे । ॐ यें नमः वामनेत्रे । ॐ विं नमः दक्षनेत्रे । ॐ ह्रीं नमः ब्रह्मरन्ध्रे । इत्यष्टमो बीजन्यासः । अथ नवमो मन्त्रन्यासः । ॐ मूलं ६ नमः मस्तकाच्चरणपर्यन्तं पूर्वाङ्गे । ॐ मू० ६ नमः मस्तकाच्चरणावधि दक्षिणाङ्गे । ॐ मू० ६ नमः मस्तकाच्चरणावधिपृष्ठे । ॐ मू० ६ नमः मस्तकाच्चरणावधि वामाङ्गे । ॐ मू० ६ नमः मस्तकात्पादान्तम् ।

मू० ६ नमः पादादिशिरोऽन्तम् । इति नवमोमन्त्रन्यासः । अथ दशमः
 षडङ्गन्यासः । ॐ मू० ६ नमः हृदयाय नमः । ॐ मू० ६ नमः शिरसे
 स्वाहा । ॐ मू० ६ नमः शिखायै वषट् । ॐ मू० ६ नमः कवचाय
 हुम् । ॐ मू० ६ नमः नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ मू० ६ नमः अस्त्राय फट् ।
 इति षडङ्गन्यासः दशमः । अथैकादशन्यासः । ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा
 इत्येकं मन्त्रं पठित्वा कृष्णवर्णं ध्यायन् नाभ्यादि चरणान्तं व्यापकमुद्रया
 न्यसेत् । पुनर्वालाकंसदृशं ध्यायन् ॐ शूलेन पाहि नोदेवीति श्लोकचतुष्टयं
 पठित्वा कण्ठादि नाभ्यन्तं पूर्ववन्त्यसेत् । पुनः शुद्धस्फटिकसङ्काशं ॐ
 सर्वस्वरूपे सर्वेशे इत्यादिश्लोकपञ्चकं ध्यात्वा पठन्मूर्द्धादिकण्ठान्तं न्यसेत् ।
 इत्येकादशन्यासः । एवमेकादशन्यासान्विधाय योनिमुद्रां बध्वा स्वात्मानं
 देवीरूपं ध्यात्वा स्वहृदये वक्ष्यमाणं पूजापीठं विभाव्य तन्मध्ये वक्ष्य-
 माणमूलमन्त्रस्य बीजत्रयं ध्यात्वा तत्र मध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मीं सर्वदेव-
 शरीरतेजसोद्भूतां रहस्योक्तध्यानेन श्वेतानना नीलभुजेत्यादि ।
 अलंकृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनामित्यन्तेन ध्यात्वा स्वात्मैक्येन
 विभाव्य तस्या दक्षिणे प्रथमबीजे श्रीमहाकालीं दशवक्त्रा दशभुजेत्यादि
 निश्च्योतद्रुधिरं दधावित्यन्तेन रहस्योक्तेन ध्यात्वा । श्रीमहालक्ष्म्या
 वामे तृतीयबीजे श्रीमहासरस्वतीं दधौ चाष्टभुजा बाणानित्यादि शङ्खं
 षण्ढं लाङ्गलं वसुधाधिपेत्यन्तं रहस्योक्तक्रमेण ध्यात्वा । अत्रायुधध्यानं
 दक्षिणाधः करमारभ्य वामाधः करपर्यन्तं । इति श्रीमहासरस्वतीं स्व-
 हृत्पद्मे ध्यात्वा वक्ष्यमाणपीठपूजापुरःसरं श्रीमहालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां
 मानसोपचारैः सम्पूज्य । मूलाधारे आत्मान्तरात्मपरमात्मज्ञानात्मस्वरूपं
 चतुरस्रं कुण्डं कुण्डल्यग्निप्रज्वलितं ध्यात्वा मूलमन्त्रमुच्चार्यन्ते अहन्तां
 जुहोमि स्वाहा । एवं अहन्ता असत्य पैशुन्य काम क्रोध लोभ मोह
 मदमात्सर्याणि सुषुम्णा सुगुप्तमनः स्रुवेण पृथक् पृथक् हुत्वा निर्दग्ध-
 निखिलवैरिगणः स्थिरचित्तः मूलमन्त्रं यथाशक्ति जपित्वा जपं श्रीदेव्यै
 समर्प्य बाह्यपूजां कुर्यात् । तद्यथा । स्वदक्षे भूमौ रक्तचन्दनाम्भसा
 त्रिकोणवृत्तचतुरस्राणि विधाय गन्धाक्षतपुष्पैः ऐं ह्रीं व्यापकमण्डलाय
 नमः । इति मण्डलं सम्पूज्य । तत्रास्रक्षालितमाधारं संस्थाप्य । मं
 बल्लिमण्डलाय दशकलात्मने नमः । इति त्रिपादीं सम्पूज्य ततोऽर्घ्यपात्र-
 मस्त्रेण प्रक्षाल्याधारोपरि संस्थाप्य । अं अकंमण्डलाय द्वादशकलात्मने
 नमः । इत्यर्घ्यपात्रं गन्धादिभिः सम्पूज्य । मूलं आदिक्षान्तां मातृकां
 चोच्चरन् तं शुद्धोदकेनापूर्य तत्र गन्धाक्षतान्नक्षिप्य । ॐ सोम-

मण्डलाय षोडशकलात्मने नमः इति जले सोममण्डलं विभाव्य सम्पूज्य
सूर्यमण्डलादंकुशमुद्रया । ॐ ब्रह्माण्डोदरतीर्थानीति मन्त्रेण तीर्थान्या-
वाह्य धेनुमुद्रया ॐ गङ्गे च यमुने चैव इति मन्त्रेण तज्जलममृतीकृत्य
हुमित्यवगुण्ठ्य । चक्रमुदां प्रदर्श्य । अस्त्रमुद्रया संरक्ष्य । मस्त्यमुद्रया
मूलेनाष्टधाभिमन्त्र्य । पुनरस्त्रेण संरक्ष्य । कवचेनावगुण्ठ्य । मूल-
मुच्चरंस्तेनोदकेनात्मानं पूजाद्रव्यं चाभिविच्य । आत्मानं गन्धादिभिर-
लंकृत्य देवताभेदेवात्मानं ध्यायन्पीठपूजामारभेत् । तथा च ।
पूर्वलिखितं यन्त्रं क्वचिन्मनोहरे पीठे संस्थाप्य अर्घोदकेनाभ्युक्ष्य ।
षट्कोणे । ॐ ॐकारपीठायनमः । अष्टदले । ॐ पूं पूर्णागिरिपीठाय
नमः । चतुरस्रे ॐ कां कामरूपपीठायनमः । इति संपूज्य । पूजापीठस्य
बहिश्चतुर्दिक्षु स्वाग्रमारभ्य प्रादक्षिण्येन । पूर्वे ॐ गंगणेशाय नमः ।
दक्षिणे ॐ क्षां क्षेत्रपालाय नमः । पश्चिमे ॐ पां पादुकाभ्यो नमः ।
उत्तरे ॐ वं वटुकाय नमः । पीठस्य बहिराग्नेयादिकोणेषु । आग्नेये
ॐ जं जायायै नमः । नैऋत्ये ॐ विं विजयायै नमः । वायव्ये ॐ जं
जयन्त्यै नमः । ईशाने ॐ अं अपराजितायै नमः । इति सम्पूज्य ।
पीठस्य चतुर्दिक्षु क्रमेण पूर्वादि प्रादक्षिण्येनैताः पूजयेत् । तत्र पूर्वं । ॐ
विं विष्णुमायायै नमः । ॐ चं चेतनायै नमः । ॐ बुं बुद्धये नमः ।
ॐ निं निद्रायै नमः । ॐ क्षुं क्षुधायै नमः । इति पञ्चशक्तीः सम्पूज्य ।
दक्षिणे ॐ छायायै नमः । ॐ शं शक्त्यै नमः । ॐ तृं तृष्णायै नमः ।
ॐ क्षां क्षान्त्यै नमः । ॐ जां जात्यै नमः । ॐ लं लज्जायै नमः । इति
षट्शक्तीः सम्पूज्य । पश्चिमे ॐ शां शान्त्यै नमः । ॐ श्रं श्रद्धायै नमः ।
ॐ कां कान्त्यै नमः । ॐ लं लक्ष्म्यै नमः । ॐ घृं घृत्यै नमः । ॐ वृं
वृत्यै नमः । इति षट्शक्तीः सम्पूज्य । उत्तरे ॐ स्मृ स्मृत्यै नमः । ॐ
दं दयायै नमः । ॐ तुं तुष्ट्यै नमः । ॐ पुं पुष्ट्यै नमः । ॐ मां मात्रे
नमः । ॐ भ्रां भ्रान्त्यै नमः । इति षट् शक्तीः सम्पूज्य । नालमूले
आधारादिचतुष्टयं पूजयेत् । ऊर्ध्वोर्ध्वक्रमेण । ॐ आ आधाराय नमः ।
ॐ कूं कूमाय नमः । ॐ शैं शेषाय नमः । ॐ पृं पृथिव्यै नमः । ॐ नां
नालाय नमः । ॐ पं पद्माय नमः । इति सम्पूज्य ज्ञानामृतसुतुमात्मा
मण्डलान्चनमारभेत् । तत्राष्टपत्रे पूर्वादीशानान्ता पूजा । पूर्वदले ॐ ब्रं
ब्रह्माण्यै हंसवाहनायै नमः । आग्नेयदले ॐ मां माहेश्वर्यै वृषभाख्यै
नमः । दक्षिणदले । ॐ कौं कौमार्यै मयूरवाहनायै नमः । नैऋत्ये ॐ

वं वैष्णव्यै गरुडोपरिसंस्थितायै नमः । पश्चिमे ॐ यं यज्ञवाराह्यं दंष्ट्रो-
 ज्जतवसुन्धरायै नमः । वायव्ये ॐ नां नारसिंह्यै महास्वनायै नमः ।
 उत्तरे ॐ ऐं ऐन्द्र्यै गजराजसमारूढायै नमः । ईशाने ॐ चां चामुण्डायै
 गणनाथपरिवारायै सदारुद्रेण संयुतायै मुण्डमाण्डितायै नमः । एताः
 सम्पूज्य षट्कोणदेवीः ब्रह्माणी कर्णिकास्पर्शिकोणमारभ्य दक्षावर्तेन
 पूजयेत् । अग्रकोणे ॐ नं नन्दजायै हेमगर्भायै नमः । आग्नेयकोणे ॐ रं
 रक्तदन्तिकायै सुरक्तायै नमः । नैऋत्ये ॐ शां शाकम्भयै नीलायै नमः ।
 पश्चिमे ॐ हुं दुर्गायै सर्वदुःखहारिण्यै नमः । वायव्ये ॐ भीं भीमायै
 दंष्ट्राश्चित्तमुखायै नीलायै पात्रशिरोधरायै नमः । ईशाने आं भ्रामर्यै
 तेजोमण्डलदुर्ध्वायै वरदायै नमः । इति सम्पूज्य । स पुष्पाञ्जलिः
 षट्कोणकर्णिकामध्यगत प्रथमबीजे । श्री महाकालीं रहस्योक्तध्यानरूपां
 दशवक्त्रां दशभुजां दशपादामञ्जनप्रभां त्रिशङ्खोचनमालया राजमानां
 दक्षिणाधःकरमारभ्य वामाधःकरपर्यन्तं खड्गबाणगदाशूलचक्रपाशभु-
 शुण्डीपरिष्कार्मुकमुण्डानि धारयन्तीं ध्यात्वा ऐं महाकाल्यै नमः । इति
 श्रीमहाकालीं यथालाभोपचारैः सम्पूज्य । मध्यबीजे श्रीमहालक्ष्मीं
 मायाबीजे रहस्योक्तरूपां ध्यायेत् । श्वेताननां नीलभुजां सुश्वेतस्तन-
 मण्डलाम् । रक्तमध्यारक्तपादां नीलजङ्घारूपयौवनोन्मदां सुचित्रजघनां
 चित्रमाल्यांबरविलेपां अष्टादशभुजां दक्षिणाधःकरमारभ्य वामाधः
 करपर्यन्तं अक्षमालाकमलबाणासिकुलिशगदाचक्रत्रिशूलपरशुखड्गघण्टा-
 पाशशक्तिदण्डचमंचापानपात्रकमण्डलून् दधतीं ध्यात्वा ॐ ह्रीं महा-
 लक्ष्म्यै नमः इति यथालाभोपचारैः सम्पूज्य कामबीजे श्रीमहासरस्वतीं-
 शुक्लवर्णां शुक्लमाल्यानुलेपनविभूषणवस्त्रवतीमष्टभुजां दक्षाधःकरमार-
 भ्य वामाधःकरपर्यन्तं बाणमुशलशूलचक्रखड्गघण्टालाङ्गलधनुषि विभ्रतीं
 ध्यात्वा ॐ क्लीं सरस्वत्यै नमः इति यथा लाभोपचारैः सम्पूज्य श्रीमहा-
 लक्ष्म्या वामभागे छिन्नशीर्षं महिषं ध्यात्वा ॐ मं महिषाय नमः इति
 गन्धादिनैवेद्यान्तोपचारैः सम्पूज्य । श्रीमहालक्ष्मीदक्षभागे सिंहं ध्यात्वा
 ॐ सिं सिंहाय नमः इति यथा लाभोपचारैः सम्पूज्य । संतर्प्य यन्त्राग्रे
 सर्वोत्तमं पीठं संस्थाप्य तत्र रक्तवस्त्रतूलिकादिसमास्तीर्य तन्मध्ये पुष्पं
 दत्त्वा योगमुद्रया श्रीमहालक्ष्मीं मध्यबीजे चिरं ध्यात्वा तया मण्डल-
 स्य सर्वशक्तिभ्य ऐक्यं विभाव्य मण्डलात्पीठे समाह्वयेत् । मूलं महालक्ष्मि
 एहोहि आगच्छ २ सन्निधिकुरु २ ॐ महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्द-
 विग्रहे । सर्वभूतहिते मातरे ह्येहि परमेश्वरि । इति पाठत्वा मूलमुच्चार्य

पीठे पुष्पाञ्जलिक्षिपेत् । तत आवहनीं मुद्रां प्रदर्श्य । ॐ देवेभि भक्ति-
सुलभे सर्वावरणसंयुते । यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।
इति प्रार्थ्य मूलमुच्चार्य श्रीमहालक्ष्मि इहतिष्ठ तिष्ठेति स्थापनीं मुद्रां
प्रदर्श्य । मूलं श्रीमहालक्ष्मि इहसन्निधेहि सन्निधेहि इति सन्निधापनमुद्रया
सन्निधाय । मूलं श्रीमहालक्ष्मि इह सन्निहृदाभव २ इति सन्निरोधन-
मुद्रया सन्निरोध्य । मूलं श्रीमहालक्ष्मि इह सम्मुखीभव २ । इति
सम्मुखीकरणमुद्रया सम्मुखीकृत्य । मूलं श्रीमहालक्ष्मि इहावगुण्ठिताभव
२ । इत्यवगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठ्य । श्रीदेव्यङ्गे षडङ्गानि विन्यस्य मूलमुच्चार्य
श्रीमहालक्ष्मि सकलीकृताभवेत्युक्त्वा । पुनर्मूलं श्रीभगवत्यमृतीकृता-
भवेति देव्याः शिरसि धेनुमुद्रां प्रदर्शयन्मृतवृष्टिं सन्निन्य । पुनर्मूलं
श्रीभगवति परमीकृता भवेति परमीकरणमुद्रां बध्वा परमामृतमयीं
भावयेदिति नवमुद्राः प्रदर्श्य अर्घोदकेन देवीं सम्प्रोक्ष्य लेलिहानमुद्रया ।
आं ह्रीं क्रौं श्रीमहालक्ष्म्याः प्राणाः इह प्राणाः ३ श्रीमहालक्ष्म्याः जीवइह
स्थितः ३ श्रीमहालक्ष्म्याः सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि ३ श्रीमहालक्ष्म्याः
वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।
इति श्रीदेव्याः प्राणान्प्रतिष्ठाप्य । अक्षमाला, कमल, नाग, खड्ग, वज्र,
गदा, चक्र, त्रिशूल, परशु, बाहु, घण्टा, पाश, चाक्ति, दण्ड, चर्म, चाप,
पानपात्र, कमण्डलु, इत्यष्टादशमुद्राः प्रदर्श्य । मूलं श्रीमहालक्ष्म्यै
एतत्पाद्यं नमः । इतिश्यामाकदूर्वाब्जविष्णुक्रान्ताभि पाद्यं पादयोर्दद्यात् ।
मूलं इदमर्घ्यं स्वाहा । इति पुष्पाक्षतचन्दनयुतजलेनार्घ्यं शिरसि ।
इत्यर्घ्यं दत्त्वा धेनुमुद्रां प्रदर्श्य । मूलं इदमाचमनीयं श्रीमहालक्ष्म्यैवं ।
इतिजातीलवज्ज कक्कोलैराचमनीयं मुखे । मूलं एषमधुपर्कः श्रीमहा-
लक्ष्म्यैवं । इत्याज्यदधिमध्वात्मकमधुपर्कं मुखे । पुनराचमनीयं पूर्ववत् ।
मूलं श्रीमहालक्ष्मि इदं स्नानीयं नमः । इति सर्वाणि सुगन्धतैले नाभ्यज्य
सुगन्धामलकादिनोदृत्य शुद्धजलैः स्नापयित्वा पञ्चामृतैरभिषिच्य
पुनर्नानातीर्थजलैरभिषिच्य प्राग्बदाचमनीयं दत्त्वा योनिमुद्रां प्रदर्श्य मूलं
एतानि वस्त्राभरणानि श्रीमहालक्ष्म्यै निवेदयामि नमः । इति चित्रे
वाससी परिधाय प्राग्बदाचमनीयं दत्त्वा । मूलं श्रीमहालक्ष्मि एष ते
गन्धो नमः । इति चन्दनकर्पूरकालागर्वात्मकं गन्धं मध्यमानामांगुष्ठैः
शिरसि दद्यात् । मूलं श्री महालक्ष्मि इमानि वौषट् । इति पुष्पाणि ।
शिरसि । ततः मूलेन उत्तमाङ्गहृदाधारपादसर्वाङ्गेषु पञ्चपुष्पाञ्जली-

दत्त्वा । तथैव पुष्पमालामपि समर्प्य तथैव वित्त्वपत्राणि गन्धालोडि-
 तानक्षतांश्च समर्प्य धूपदीपौ दद्यात् । यथा । धूपभाजनमस्त्रेण प्रोक्ष्य
 नम इत्यभ्यर्च्य मूलान्ते श्रीमहालक्ष्मि एष ते धूपो नमः । इत्युत्सृत्य
 ॐ जयध्वनि मन्त्रमातः स्वाहा इति वामभागस्थितां घण्टां सम्पूज्य तां
 वामहस्तेन वादयन् मूलं गायत्रीं चोच्चरन् त्रिधोत्तोत्प श्रीदेवीं धूपयित्वा
 देव्या वामे स्थापयेत् । एवं मूलं श्रीभगवति एष ते दीपो नमः । इति
 दीपं समर्प्य देव्या दक्षिणे स्थापयेत् । उत्सर्गस्तु सर्वेषामर्घोदकेन कार्यः ।
 अथ नैवेद्यं यथा देव्याः पुरतस्त्रिकोणवृत्तचतुरस्रं मण्डलं कृत्वा ह्रीं
 आधारशक्तये नमः इत्याधारशक्ति सम्पूज्य तदुपरि नैवेद्यपुरितं पात्रं
 संस्थाप्य अस्त्रेण संरक्ष्य चक्रमुद्रया यमित्यस्य दशवारजपेन तद्दोषान्सं-
 शोष्य रमित्यस्य दशवारजपेन दोषान्संदह्य वमित्यस्य दशवारजपेन
 धेनुमुद्रया मृतीकृत्य मूलेनाभिमन्त्र्य नम इति तत्र पुष्पं दत्त्वा मूलान्ते इदं
 नैवेद्यं श्रीमहालक्ष्म्यै निवेदयामि । इति निवेद्य । ॐ अमृतोपस्तरणमसि
 स्वाहा । इत्यापोषानं दत्त्वा । वामहस्तेन ग्रासमुद्रां बध्वा दक्षिणहस्तेन
 प्राणादिपञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् । ॐ प्राणाय स्वाहा । इति कनिष्ठानामां-
 गुष्ठेन । ॐ अपानाय स्वाहा । इति तर्जनीमध्यमांगुष्ठेन । ॐ व्यानाय
 स्वाहा । इति मध्यमानामांगुष्ठेन । ॐ उदानाय स्वाहा । इति तर्जनी-
 मध्यमानामांगुष्ठेन । ॐ समानाय स्वाहा । इति सर्वांगुलीभिरंगुष्ठेन
 स्पृशेत् । ततः सुशीतलं जलं दत्त्वा देवीं तृप्तां विभाव्य । ॐ अमृता-
 पिधानमसि स्वाहा । इत्यापोषानं दत्त्वा । हस्तास्यक्षालनमाचमनीयं च
 दत्त्वा । तांबूलममृतीकृत्य मूलेनाभिमन्त्र्य तदुपरिपुष्पं दत्त्वा वामहस्त-
 तत्त्वमुद्रया स्पृशन् दक्षिणेनार्घोदकेन । मूलं इदं तांबूलं श्रीमहालक्ष्म्यै
 निवेदयामि । इति निवेद्य श्री देवीं सुप्रसन्नां विभाव्य । प्रणवेन प्राणायामं
 नवार्णमन्त्रस्य ऋष्यादीन्स्मृत्वा यथा सङ्कल्पं जपं विधाय सरहस्यत्रयेण
 श्रीचण्डिकां सप्तशतमन्त्रेण स्तुत्वा पुनर्मूलमष्टोत्तरशतं जपित्वा पायसेन
 तिलसर्पिषा च दशांशं हुत्वा नवार्णनापि हुत्वा अन्ते श्रीदेवीं ॐ नमो
 देव्यै महादेव्यै इति श्लोकमन्त्रेणापि हुत्वा ऋतुभवैः फलैरपि हुत्वा तज्जपं
 होमं च श्रीदेव्यै समर्प्य श्रीमहालक्ष्म्यै प्रणम्य । शूलेन पाहिनो देवीत्यादि
 चतुर्भिर्मन्त्रैः प्रदक्षिणां विधाय श्रीचण्डिकाध्यानतत्परः आसने स्थित्वा
 कृताञ्जलिः । ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे इत्यादि । लोकानां वरदाभवेत्येतै-
 र्मन्त्रैः प्रणतः सम्प्रार्थ्य मनोवाञ्छितं श्रीदेव्यै निवेद्य संहारमुद्रयां श्रीदेवीं
 स्वहृदयकमलमानयेत् । तत अर्घ्यपात्रमुत्थाप्य । ॐ गच्छ गच्छ परं

स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि । यत्र ब्रह्मादयो देवाः न विदुः परमं पदम् ।
इत्युच्चार्य विसृजेत् । निर्माल्यं पवित्रदेशे निक्षिप्य सुखं विहरेदिति
शिवम् । अनेन क्रमेण नवार्णं सप्तशतीस्तोत्रं वा संसाध्य यथार्थफल-
भागभवेदिति । इति खिलमार्कण्डेयक्रमेण श्रीचण्डिकापूजापद्धतिः ॥

अथ काम्यपूजा क्रमो यथा खिलमार्कण्डेये-

ऋषिरुवाच—

नित्यचण्ड्यादि जापस्य विधानं ते वदाम्यहम् । क्रमेण सर्व-
कार्याणां सिद्धये सर्वपुण्यदम् ॥ १ ॥ पूर्वोक्तविधिना कृत्वा चण्डिका-
तर्पणादिकम् । शुक्लभूतामवष्टभ्य मासं प्रतिदिनं जपेत् ॥ २ ॥
सकृद्ब्रह्मसंयुक्तं चण्डिकाचरितत्रयम् । दशांशहोमसहितं सोच्यते नित्य-
चण्डिका ॥ ३ ॥ धनपुत्रयशोदात्री महाव्याधिविनाशिनी महाभयमहा-
दुःखहन्त्री सौख्यप्रदायिनी ॥ ५ ॥ इति ।

अथैतत्पूजापद्धतिः

तत्र श्रीमान्साधकः पूर्वोक्तविधिना कृतनित्यक्रियः पूजास्थानं
प्रविश्य पूर्वाभिमुखः स्वासने समुपविश्य कुशहस्तः प्राणानायम्य स्वेष्ट-
देवतां स्मृत्वा सङ्कल्पं कुर्यात् । ॐ तत्सदद्यामुकमास इत्यादि अमुक-
राशिगते सवितरि शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ विशेषक्षेत्रे चेदमुकक्षेत्रे
अमुकगोत्रोऽमुकशर्माहममुकफलावाप्तये अद्यारभ्य मासमात्रं नित्यचण्डी-
जपं करिष्ये । इति सङ्कल्प्य प्राग्वत्पूजादिकं कृत्वा प्राग्वन्मूलमन्त्रं
जपित्वा देव्यग्रे चरित्रयं सरहस्यं ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासपूर्वकं सकृ-
त्पठेत् ॥ तत्र । देवीमाहात्म्यस्यादिचरितस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः
श्रीमहाकाली देवता रक्तदन्तिकाबीजं नन्दाशक्तिरग्निस्तत्त्वं प्रथम-
चरितजपे विनियोगः ॥ मध्यमचरितस्य विष्णुऋषिरष्टिछन्दः श्रीमहा-
लक्ष्मीदेवता दुर्गाबीजं शाकम्भरीशक्तिर्वायुस्तत्त्वं मध्यमचरितजपे
विनियोगः ॥ उत्तरचरितस्य रुद्रऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमहासरस्वतीदेवता
भ्रामरीबीजं भीमाशक्तिः सूर्यस्तत्त्वमुत्तरचरितजपे विनियोगः ॥ इति-
ऋष्यादिकं तत्तच्चरितपाठारम्भे यथाविधि विन्यस्य चरितत्रयं सरहस्यं
पठेत् । ततो मासान्तरं वक्ष्यमाणविधिना कुण्डस्थण्डिलादार्वाग्निं संस्थाप्य
पायसघृततिलैः मूलमन्त्रजपदशांशसंख्यहोमपुरःसरं वक्ष्यमाणविधिना

हुत्वा तर्पणमार्जनान्ते ब्राह्मणान्कुमारिकाः सुवासिनीश्च सम्पूज्य भोज-
यित्वा ताम्बूलदक्षिणाभिः परितोष्य प्रणम्य । विसृजेत् । स्वयमेवं
कर्तुमशक्तश्चण्डिकापाठनिरतं ब्राह्मणं वस्त्रालङ्कारादिभिर्यथाविधि
सम्पूज्य तद्द्वारा यथोक्तविधानेन चण्डीजपविधिं यथावत्कारयित्वा
यथाशक्तिदक्षिणाभिः परितोषयेदिति । एवंकृते सर्वाभीष्टं लभते इति
शिवम् ॥

इतिश्रीनित्यचण्डीविधिःसमाप्तः ॥

अथ नवदुर्गाविधिस्तत्रैव

शुक्लाष्टमीमथारभ्य यावत्कृष्णा च नन्दिनी । नवदुर्गा विधा-
तव्या सर्वाभीष्टफलार्थिना ॥ १ ॥ सम्पूज्य विधिवद्देवीं चण्डिकां कृत-
तर्पणम् । कलशं पञ्चरत्नाढ्यं सहकारदलान्वितम् ॥ २ ॥ सवस्त्रं
सम्प्रतिष्ठाप्य चण्डिकाग्रेऽम्भसा भृतम् । समन्तात्पूजयेद्दिक्षु दिशापाला-
न्यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ चन्दनेन विलिप्ताङ्गः सखी न्यासपरायणः । नवाहं
भूप एकैकं मौनी बद्धासनो जपेत् ॥ ४ ॥ प्रणवादि रहस्यान्तं चण्डिका-
चरितत्रयम् । नवदुर्गेति विख्याता पापतापप्रणाशिनी ॥ ५ ॥ सर्वैश्वर्यप्रदा
भूप कुर्वतामविलम्बितम् । पञ्चरत्नमिति । वज्रं मुक्ताफलं नीलं पद्मरागं
तथैवच । मारकतेन संयुक्तं पञ्चरत्नमिदं विदुरिति ॥ ६ ॥

अथैतत्प्रयोगपद्धतिः

अथ श्रीमान्साधकः कृतनित्यक्रियः प्राग्बलिध्याद्युल्लेखनं कृत्वा
नवदुर्गाविधानमहङ्करिष्य इति सङ्कल्प्य प्राग्बलिध्यां सम्पूज्य देव्यग्रे
शालिपुञ्जोपरि सलक्षणं स्वर्णादिचरितं नवतन्तुवेष्टितं चन्दनादिचर्चितं
सुधूपितं पञ्चरत्नयुतं कलशं आजिघ्न कलशं मथ्यात्वा विशन्तिवन्दवः
समुद्रमिव सिन्धवः सामासहस्र आभर प्रजयासुभिः सह पुनर्माविशता-
इयिः । इति मन्त्रेण संस्थाप्य । इमं मे वरुण शुधीहवमद्याचमृडयत्वा-
मवस्युराचके । तत्त्वायामि ब्रह्मणावन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो
हविर्भिः । अहेडमानो वरुणोहवोऽप्युहसंसमान आयुः प्रमोषीः । इति
मन्त्रेण शुद्धजलैरापूर्य । तत्र कुंकुमकपूरचन्दनपङ्कं कुसुमानि च निःक्षिप्य
—तस्य मुखे आभ्रपल्लवं दत्वा तदुपरि पूगफलसहितं कलशसजातीय-
पात्रं सतन्दुलं निधाय तं कुम्भमारक्तवस्त्रद्वयेन सम्बेष्ट्य कुम्भस्य

दशदिक्षु पूर्वादिक्रमेण इन्द्रादिदशदिक्पालान्सम्पूज्य स्वयं कुंकुमादि-
गन्धविलिप्ताङ्गः सुवस्त्रमाल्याद्यलङ्कृतः कृतन्यासः प्राग्वत्सरहस्यं
चण्डिकाचरितत्रयं मूलमन्त्रजपपुरःसरं मौनी ध्यानपरायणः प्रत्यहमेकै-
कामावृत्तिं पठित्वा एवं नवदिनपर्यन्तं नियमं समाप्य दशमे दिने
वक्ष्यमाणविधिना कुण्डादावग्निं संस्थाप्य प्राग्वद्धोमं विधाय ब्राह्मणा-
न्कुमारिकाः सुवासिनीश्च सम्पूज्य भोजनताम्बूलदक्षिणादिभिः परितोष्य
प्रणम्य विसृजेत् । अत्रापि स्वयमशक्तः प्राग्वद्ब्राह्मणद्वारा यथोक्तविधिना
जपादिकं कारयित्वा तं दक्षिणादिभिः परितोष्य विसर्जयेदिति । एवं
कृते सर्वाभीष्टसिद्धिः । एतस्यैव विधानस्य कृष्णपक्षेक्रियमाणस्यकाल-
रात्रिरिति नामान्तरमुक्तं तत्रैव । कृष्णपक्षे यदा भूप्रारम्भश्चैव
जायते । यद्ययं क्रियते जाप्यः कालरात्रिरुदीरिता ॥ १ ॥ महाकालोद्भवं
दुःखं कालरात्रिर्व्यपोहति । नवदुर्गाविधानेऽस्मिन् यत्फलं परिकीर्तितम्
॥ २ ॥ कालरात्रिविधानेऽपि तत्फलं परिकीर्तितम् । एतत्त्रिगुणितं सर्वं
नवदुर्गा जपे फलम् ॥ ३ ॥ कथितं तदवाप्नोति नित्यचण्डी जपे कृते ।
इति श्रीनवदुर्गाकालरात्रिविधी समाप्ते ।

अथ नवचण्डीमहोत्सवः खिलमार्कण्डेये—

ऋषिरुवाच—

शरदृताविवे मासि शुक्लपक्षे नृपोत्तम । प्रतिपत्तिथिमारभ्य नव-
चण्डीं समापयेत् ॥ १ ॥ तोरणाढ्ये शुभे स्थाने सुवितानाद्यलङ्कृते ।
पूर्वादिक्रमयोगेन दिग्देवीभ्यो बलिं हरेत् ॥ २ ॥ गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपै-
श्चरुभिरुत्तमैः । कादम्बरीगजारूढा पुन रक्ताजपृष्ठगा ॥ ३ ॥ कराली
महिषारूढा रक्ताक्षी प्रेतसंस्थिता । श्वेतकुम्भीरगा श्वेता हरिता मृग-
वाहना ॥ ४ ॥ यक्षिणी सिंहपृष्ठस्था कङ्काली वृषवाहना । हंसपृष्ठे
सुरज्येष्ठा सर्पराश्यहिवाहना ॥ ५ ॥ अनेन विधिना दत्त्वा दिग्देवी-
भ्यो बलिं जपी । नवग्रहांल्लोकपालान्दिशापालान्श्रवणयेत् ॥ ६ ॥
विनायकस्तथा दुर्गा वायुराकाशमेव च । अश्विनौ च महात्मानौ लोक-
पालाः प्रकीर्तिताः ॥ ७ ॥ कलशं पञ्चरत्नाढ्यं हेमवस्त्रादिकान्वितम् ।
सम्प्रतिष्ठाप्य सम्पूज्य चण्डिकार्चनमारभेत् ॥ ८ ॥ पूर्वोक्तेन विधानेन
गन्धपुष्पैरनुत्तमैः । वस्त्रालङ्कारकस्तूरीसिन्दूरागरुकुंकुमैः ॥ ९ ॥ धूपै-

बहुविधैर्दीपैर्नवेद्यैर्वर्णसंख्यया । कृत्वान्यत्पूर्ववत्सर्वं जपेदेकाग्रमानसः ॥ १० ॥ सकृद्रहस्यसंगुक्तं चण्डिकाचरितत्रयम् । कुमारीविप्रमुख्यांश्च भोजयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥ यदाद्यदिवसे कुर्याच्चण्डिकापूजनादिकम् । द्विगुणं तद्वितीयेह्नि त्रिगुणं तत्परेऽहनि ॥ १२ ॥ नवमीतिथिपर्यन्तं वृद्ध्या पूजाजपादिकम् । एकाहारव्रती कुर्यात्सत्यादिनियमैर्युतः ॥ १३ ॥ कृत्वा होमादिकं सर्वं नवदुर्गाविधानवत् । वित्ताशयं परित्यज्य कुर्यादाचार्यतोषणम् ॥ १४ ॥ वस्त्रांगुलीयभूधेनुवाजिहेमप्रदानतः । अशक्तौ निष्कमेकं तु देयमस्मै प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ विदधीतविधानेन य एनां नवचण्डिकाम् । शृणुष्वस्य फलं भूप यो हि कश्चिदनेन वै ॥ १६ ॥ ऐन्द्रब्राह्मादयोभोगास्तमायान्ति प्रसेवितुम् । अपुत्रो लभते पुत्रानधनः सधनो भवेत् ॥ १७ ॥ व्याधयः संख्यं यान्ति शत्रवश्च सुदारुणाः । न तस्यास्ति भयं किञ्चिद्वाजचोराग्निवारिजमिति ॥ १८ ॥

अथैतत्पूजापद्धतिः

अथाश्विनशुक्लप्रतिपदि साधकः कृतनित्यक्रियः सुसम्भूते शुभे स्थाने सुरम्ये गृहे तोरणवित्तानाद्यलंकृते धूपधूपिते दीपप्रकरशोभिते । तत्र स्वासने प्राङ्मुखः समुपविश्य प्राग्वत्तिथ्युल्लेखानन्तरं अमुककामनया चण्डीविधानमहङ्करिष्ये । इतिसङ्कल्प्य । पूजागृहे पूर्वस्यां दिशि कादम्बरीं गजवाहनाध्यात्वा । ॐ कादम्बरि देवि इह आगच्छ २ इति क्वचित्पीठे आवाह्य संस्थाप्य । ॐ श्री कादम्बरि एष ते गन्धो नमः । एवं इमानि ते पुष्पाणि वौषट् । एष ते धूपो नमः । एष ते दीपो नमः । इति सम्पूज्य तदग्रे पात्रान्तरे घृतशर्करासहितं पायसं नानाव्यञ्जनसहितमन्नं च निधाय । ॐ श्री कादम्बरि एष ते बलिनमः इति बलिमुत्सृज्य क्षमस्वेति प्रणमेत् । एवमाग्नेय्यामुल्कामजवाहनां सम्पूज्य बलि प्राग्वद्द्यात् । एवं दक्षिणे महिषारूढां करालीं । नैऋत्ये प्रेतवाहनां रक्ताक्षीं । पश्चिमे मकरवाहनां श्वेतां । वायव्ये मृगवाहनां हरिताम् । उत्तरे सिंहवाहनां यक्षिणीं । ईशाने वृषवाहनां कङ्कालीम् । इन्द्रेशानयोर्मध्ये हंसवाहनां सुरज्येष्ठाम् । निऋतिवरुणयोर्मध्ये अहिवाहनां सर्पराज्ञीम् । स्वस्वस्थाने पृथक्पृथक् सम्पूज्य बलि दत्त्वा । सूर्यादिनवग्रहान् । विनायकं । दुर्गां । वायुं । आकाशं । अश्विन्यो च सम्पूज्य । स्वस्वादिक्षु यथा क्रमेणन्द्रादिदिवपालानपि सम्पूज्य प्राग्वन्मध्ये

कुम्भं संस्थाप्य द्वारपूजादिपुरस्सरं तत्र कुम्भे महालक्ष्मीं समावाह्य
नानाविधैरुपचारैरभ्यर्च्य तदग्रे प्राग्बत्सरहस्यं देवीमाहात्म्यं चरितत्रयरूपं
पठित्वा कुमारिकामेकामेकं ब्राह्मणं च सम्पूज्य भोजयित्वा ताम्बूल-
दक्षिणानमस्कारैः सन्तोषयेदिति । एवं द्वितीयायां द्विगुणं तृतीयायां
त्रिगुणमिति क्रमेण नवम्यन्तं नवगुणं यथा भवति तथा पूजा चण्डीपाठ-
कुमारीब्राह्मणभोजनादिकं च यथा विभवविस्तरं नवम्यन्तं महोत्सवं
कुर्यादिति । अत्राप्येकाहारव्रतिको नियमः कर्त्तव्यः । ततो नवमे दिने
कृतचण्डिकापाठदशांशतः प्रागुक्तद्रव्यैर्होमं कृत्वा सर्वं विधिवत्समापयेत् ।
यद्याचार्यद्वारा कारयति तदा तस्मै वित्तशाठ्यरहितां दक्षिणां दत्त्वा
प्रणम्य समापयेदिति एवं कृते सर्वकामाः प्रपद्यन्ते ॥

इति श्रीनवचण्डीमहोत्सवविधिः ॥

अथ शतचण्डीविधानं खिलमार्कण्डेये ।

शतचण्डीविधानं ते यथावत्कथयाम्यहम् । सुघोरायामनावृष्ट्यां
भूकम्पे च सुदारुणे ॥ १ ॥ परचक्रभये तीव्रे क्षयरोग उपस्थिते । राज्या-
वाप्यादिकार्येषु स्वायुष्यसुतजन्मनि ॥ २ ॥ महोपघातनाशाय पञ्चविंशति-
योजने । देशे सर्वत्र शान्त्यर्थं शतचण्डीमखं चरेत् ॥ ३ ॥ शिवाभ्यासे
समे देशे चतुर्द्वारं सतोरणम् । पातकासंस्कृतं कुर्यान्मण्डपं वेदिभूषितम्
॥ ४ ॥ तत्र कुण्डं प्रकर्त्तव्यमुक्तलक्षणसंयुतम् । सदाचाराः कुलीना ये
श्रीमन्तः सत्यवादिनः ॥ ५ ॥ चण्डिकापाठसम्पूर्णा दयावन्तोजितेन्द्रियाः ।
ईदृग्लक्षणसंयुक्ता दम्भमोहविर्वजिताः ॥ ६ ॥ दश विप्राः समभ्यर्च्य
महालक्ष्मीस्वरूपिणः । मधुपर्कविधानेन यथावत्तद्वदाम्यहम् ॥ ७ ॥
श्रीपर्णिवृक्षपीठानि हस्तमानानि मानतः । अष्टांगुलसमुच्छ्राय सहितानि
समानि च ॥ ८ ॥ सुवः सुचा समायुक्तः खादिरो लक्षणान्वितः ।
सप्तविंशतिदर्भाणां वेण्यग्रग्रन्थिभूषिता ॥ ९ ॥ विष्टरे सर्वयज्ञेषु लक्षणं
परिकीर्त्तितम् । शुद्धोष्णोदकसम्पूर्णाः पाद्याश्च ताम्रगण्डुकाः ॥ १० ॥
शङ्खा अर्घ्यप्रदानाय गन्धपुष्पजलान्विताः । दूर्वोदकसमायुक्ताः
स्थापनीयाः पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥ सुताम्रस्य कमण्डलव आचमनोदक-
पूरिताः । सम्पुटा मधुपर्कार्थाः कांश्यादध्यादिपूरिताः ॥ १२ ॥ महान्त्य-
र्घ्याणि वस्त्राणि मुद्रिकाद्यं सुभूषणम् । मयूरपत्रच्छत्राणि सोष्णीषाणि
समाहरेत् ॥ १३ ॥ पादुकाश्चाहरेत्तत्र ताम्रभूषणभूषिताः । अन्यत्सर्वं

यदस्त्युक्तं मधुपर्कस्य पूजने ॥ १४ ॥ शतचण्डीमखेकर्ता प्रयत्नेन समाहरेत् ।
 स्मार्ताक्तविधिना सम्यङ् मधुपर्कस्य पूजनम् ॥ १५ ॥ कृत्वा फलमवा-
 प्रोति महायज्ञार्णवोपमम् । अन्येभ्यो मधुपर्कस्य विप्रेभ्यः पूजनं समम् ॥ १६ ॥
 विद्यात्तद्विगुणं दद्यादाचार्याय सुभक्तिमान् । अन्यैर्द्विजैः समं
 यत्र भवेद्देशिकपूजनम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्यज्ञे फलं स्वल्पमनावृष्टौ यथाक्षितौ ।
 अचितास्ते द्विजश्रेष्ठाः सन्तुष्टाः पूर्णमानसाः ॥ १८ ॥ यजमानं सपत्नीकं
 सुतबन्धुसमन्वितम् । उपवेश्यासने कुण्डं कलशाग्रविभूषितम् ॥ १९ ॥
 वेदमन्त्राक्षतैः पूर्णं कुर्वन्ति स्वस्तिवाचनम् । कृतस्वस्त्ययनैर्विप्रैर्वेदवा-
 दित्रनिस्वनैः ॥ २० ॥ चण्डिकामण्डपं यायात्परिवारविभूषितः । पश्चिम-
 द्वारमार्गेण प्रविश्य क्रतुमण्डपम् ॥ २१ ॥ ददाति पूजने ऽनुज्ञादेशि-
 काय कृताञ्जलिः । देशिकः सर्वमन्त्रज्ञो नवभिर्ब्राह्मणैः सह ॥ २२ ॥
 दिग्देवता ग्रहांश्चैव लोकपालसमन्वितान् । दिशापालांश्च सम्पूज्य कलशं
 स्थाप्य पूज्य च ॥ २३ ॥ मण्डपस्य चतुर्दिक्षु दत्त्वा भूतबलिं बहिः ।
 मण्डपे कलशौ द्वौ द्वौ द्वारे द्वारे निवेशयेत् ॥ २४ ॥ गालितोदकसम्पूर्णा-
 वाग्नपल्लवशोभितौ । उपस्पृश्योदकं ध्यात्वा चण्डिकां देववन्दिताम् ॥ २५ ॥
 उपविश्यासने वेद्यां बध्वा पद्यासनं दृढम् । प्राणायामविशुद्धात्मा
 दशकन्यास भूषितः ॥ २६ ॥ चण्डिका पूजनं कुर्याद्विशेषेण समन्वितम् ।
 विशेषस्तु वक्ष्यमाणानुलेपनादिः । कस्तूरी कुंकुमं जातयं सकर्पूरञ्च
 चन्दनम् ॥ २७ ॥ पलद्वयं तु सम्पूर्णमनुलेपनमाहरेत् । दिव्यवस्त्रमलङ्कारं
 हेमगद्यानकत्रयम् ॥ २८ ॥ लक्षपुष्पचतुर्थांशं गुग्गुलस्य पलत्रयम् ।
 दीपानां विंशतिः श्रेष्ठं मण्डपे जपसाधनम् ॥ २९ ॥ कुडवौ द्वौ हविष्यान्नं
 नैवेद्यंसरसं शुचि । ताम्बूलानां सकर्पूरं शतद्वयमनुत्तमम् ॥ ३० ॥
 नवचण्डीविधानोक्तं महालक्ष्म्याः प्रपूजनम् । नवभिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं
 कृत्वाचार्यो द्विजोत्तमः ॥ ३१ ॥ ददाति नव विप्रेभ्य आचार्यश्चण्डि-
 कामयः । कार्यं जाप्यप्रसिद्धार्थमतुलमानपूर्वकम् ॥ ३२ ॥ ततोऽनुज्ञामनु-
 प्राप्य वेद्यामाचार्यसन्निधौ । सुखासने सुसन्तुष्टा उपविष्टाः सुनिश्चलाः
 ॥ ३३ ॥ न्यासध्यानसमायुक्ता नासाग्रमवलोकिनः । सुगन्धपुष्पमालाढ्या-
 श्चण्डिकाचरितत्रयम् ॥ ३४ ॥ सरहस्यमृषिश्छन्दो देवताशक्तिसंयुतम् ।
 बीजतत्त्वसमायुक्तमुपांशुगुणसंयुतम् ॥ ३५ ॥ जपेयूरूपमेकैकं मौनिनात्यक्त-
 मत्सराः । समुत्थाय ततः कुर्युः सर्वदेव्याः प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥ चण्डिकां तु
 नमस्कारैः परितोष्य पुनः पुनः । उपविश्यासने पूतश्लोकैः सर्वाथं साधकैः

॥ ३७ ॥ प्रार्थयेयुः प्रार्थ्यफलं महालक्ष्मीं दृढव्रताः । कुमार्यो दश
सम्भोज्या विप्रा भोज्या दशोत्तमाः ॥ ३८ ॥ महाकाल्याश्च लक्ष्म्याश्च
सरस्वत्या जपं जपन् । भोजयेत्परया भक्त्या देशिकादिदशद्विजान् ॥ ३९ ॥
ततो भक्तिसमायुक्तो भुञ्जीयाद्यज्ञकृत्पुमान् । सत्कथाभिः सुगीतैश्च
सर्ववादित्रनिस्वनैः ॥ ४० ॥ पूजनैः प्राक्षणीयैश्च वेदपाठैर्निशां नयेत् ।
द्वितीये दिवसे स्नात्वा विधिषत्ते द्विजा दश ॥ ४१ ॥ चण्डिकातर्पणं कुर्युः
सम्पूर्णं ध्यानतत्पराः । सर्वं पृथक् पृथक् कृत्वा दिग्देवीपूजनादिकम् ॥ ४२ ॥
बहिर्भूतबालं दत्त्वा कृत्वा देवीप्रदक्षिणम् । पुष्पागारे महारम्ये स्वे स्वे
च स्वासने स्थिताः ॥ ४३ ॥ जपन्ति जयचण्डीति यावद्दुर्गाप्रपूजनम् ।
पूर्वस्मात्पूजनात्कुर्याद्द्विगुणं पूजनं क्रमात् ॥ ४४ ॥ आचार्यः सुस्थिरः
शान्तश्चण्डिकायाः प्रतोषणम् । सुकृते पूजने विप्रा जपेयुर्द्विगुणं जपम्
॥ ४५ ॥ द्विगुणं च प्रकृतं च कुमारी द्विजतोषणम् । कार्यं जागरणं
रात्रावुक्तैः सर्वमर्होत्सवैः ॥ ४६ ॥ चण्डिकापूजनं जाप्यं कुमारी द्विज-
पूजनम् । तृतीयेऽहनि कर्त्तव्यं त्रिगुणं च सजागरम् ॥ ४७ ॥ चतुर्थे दिवसे
सर्वं सम्यक्कुर्याच्चतुर्गुणम् । महाजागरणोपेतं होमः स्यात्पञ्चमेऽहनि ॥ ४८ ॥
पायसं सपिषा युक्तं तिलैः शुक्लैर्विमिश्रितम् । जुहुयादुक्तविधिना दशांशेन
नृपोत्तम ॥ ४९ ॥ रुद्राध्याये यथाहोमं मन्त्रेणैकेन साधयेत् । तथा
स्तोत्रजपे होमं श्लोकैर्नैकेन साधयेत् ॥ ५० ॥ चण्डोत्पन्नशतीजापे होम-
मन्त्रो नवाक्षरः । कथितः पूजनाध्याये तस्माद्धोमे भवेदसौ ॥ ५१ ॥
नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः । नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः
प्रणताः स्म ताम् ॥ ५२ ॥ अथवा यं भवेद्धोमे श्लोकः स्तोत्रनिरूपितः ।
जपहोमे सुसम्पूर्णं दिग्देवीनां शतं शतम् ॥ ५३ ॥ होतव्यं नाममन्त्रेश्च
हविस्पात्रेण सादरम् । शतं शतं क्रमादयं समिदाज्यचरुंस्तिलान् ॥ ५४ ॥
ग्रहेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैः फलं पुष्पं शतं शतम् । लोकपालदिशापालहोमे
सपिश्चरुस्तिलाः ॥ ५५ ॥ आचार्यादिद्विजाः सर्वे जुहुयुश्च शतं शतम् ।
होमे सम्पूर्णतां प्राप्ते नमस्कृत्वेष्टदेवताम् ॥ ५६ ॥ चण्डिकां देवदेवाना-
मृषीणां वन्दितां पराम् । स्तम्भद्वये स्तुचं कृत्वा यजमानः स्वलङ्कृतः
॥ ५७ ॥ घृतकुम्भदशांशेन दद्यात्पूणाहुतिं स्वयम् । सूधानमन्त्रपाठेन
नवाक्षरजपेनवा ॥ ५८ ॥ प्राशनं मार्जनाद्य च नवदुर्गाविधानवत् । जपं
हुतं समावेद्य चण्डिकायै मनोरथम् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मणे निष्कषट्काढ्यं
दद्याद्गोमिथुनद्वयम् । यस्याः प्रभावमतुलं श्लोकमुक्त्वा कृताञ्जलिः

॥ ६० ॥ दद्याद्गोमिथुनान्यष्टावाचायाय सुभक्तिमान् । चतुर्विंशति-
 संख्याकैर्हम निस्कैः सहान्वितम् ॥ ६१ ॥ एकैकमष्टविप्रेभ्यो दद्याद्गोमिथुनं
 स्वयम् । निष्कत्रयसमायुक्तं वस्त्रालंकारभूषितम् ॥ ६२ ॥ सुस्थितं
 स्वासने शान्तं यजमानं महोत्सवम् । कुंकुमाक्ताक्षतान् दूर्वाः सुगन्धं
 चन्दनं दधि ॥ ६३ ॥ आदाय दीयते विप्र आचार्यादि सुपूजितः ।
 स्तोत्राणां च चतुर्णां च महालक्ष्मीपरायणः ॥ ६४ ॥ एकैकं श्लोकमुच्चार्य
 दद्याद्राशिषमुत्तमम् । सभार्यः ससुतः पूर्णो लब्धाशीर्वादमङ्गलः ॥ ६५ ॥
 रक्तपुष्पाञ्जलिदद्याच्चण्डिकायै विसर्जनम् । रत्नपुष्पाञ्जलिमिति वा ।
 भूरिदानं ततो दद्यात्पुण्यवादित्रनिःस्वनैः ॥ ६६ ॥ प्रविशेच्छान्तिपाठेश्च
 तोरणाढ्यं स्वमालयम् । शतचण्डीविधानेन कृतेन सुकृतेन हि ॥ ६७ ॥
 महालक्ष्मीर्ददात्यस्मै त्रैलोक्यसुखमुत्तमम् । यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते
 शतचण्डिका ॥ ६८ ॥ तत्तत्तस्य महालक्ष्मीः स्वयमाशु प्रयच्छति ।
 चरितत्रयजाप्यस्य चण्डिकायानृपोत्तम ॥ ६९ ॥ सरहस्यस्यनामानि
 ब्रह्मोक्तानि वदाम्यहम् । महाविद्या महामन्त्रश्चण्डीसप्तशतीति च ॥ ७० ॥
 मृतसञ्जीवनी नाम चतुर्थं परिकीर्तितम् । पञ्चमं च महाचण्डी चतुःषष्टि-
 पदी परा ॥ ७१ ॥ रूपचण्डी परा दुर्गा कथिता वेदपारगैः । महाविद्या
 सप्तशती सर्वतन्त्रेषु गोपिता ॥ ७२ ॥ आद्यन्तमध्यचरितं महामन्त्र-
 मुदीरितम् । आदिमध्यान्तचरितं क्रमाच्चण्डीमहामनुः ॥ ७३ ॥ मध्य-
 माद्यन्तचरितं क्रमात्सप्तशती स्मृता । मध्यमाद्यन्तचरितं मृतसञ्जीवनी
 स्मृता ॥ ७४ ॥ अन्त्यादिमध्यचरितं महाचण्डीति कथ्यते । योगिनीनां
 चतुःषष्टियोगात्सप्तशतीमनोः ॥ ७५ ॥ चतुःषष्टिपदी प्रोक्ता योगसिद्धि-
 प्रदायिनी । रूपं देहीति योगेन रूपचण्डीति सा स्मृता ॥ ७६ ॥ पराबीज-
 समायोगात्परचण्डीति कथ्यते । एतानि यो विजानाति नामानि
 नृपनन्दन ॥ ७७ ॥ जपं विना भवेच्चण्डी वरदास्यात्तु सर्वदा । पाठभेद-
 फलं राजञ्शृणु वक्ष्याम्यनुक्रमात् ॥ ७८ ॥ महाविद्यां च शान्त्यर्थं पठेच्च
 सततं नरः । चण्डीपाठं हि राजेन्द्र पुष्ट्यर्थं च सदा जपेत् ॥ ७९ ॥
 मोहनार्थं सप्तशतीपाठं भवति सिद्धिदम् । विषरोगाल्पमृत्युघ्नपाठे
 सञ्जीवनीत्रयः ॥ ८० ॥ स्तम्भने च महाचण्डी सततं सिद्धिदायिनी ।
 तथैव मारणे ज्ञेया महाचण्डी च चण्डिका ॥ ८१ ॥ उच्चाटने च विद्वेषे
 कृत्याशान्त्यादिकर्मणि । रूपचण्डी शुभकरी पराचण्डी च मोक्षदा ॥ ८२ ॥
 शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवाक्षरम् । चण्डीं सप्तशतीं मध्ये
 सम्पुटोऽयमुदाहृतः ॥ ८३ ॥ सकामः सम्पुटो जाप्यो निष्कामः सम्पुटं

विना । एतद्गोप्यतरं तत्त्वं चण्डिकाजपसिद्धिदमिति ।

इति श्रीखिलमार्कण्डेये शतचण्डीपाठक्रमः ।

अथैतत्पद्धतिः--

तत्र अनावृष्ट्याद्यखिलदुरितोपशान्त्यर्थं राज्यावाप्त्यादिसकलकामनासिद्धयर्थं च उक्तलक्षणसम्पन्नो यजमानः शिवालय समीपे समे भूतले यथोक्तलक्षणं मण्डपं विधाय तन्मध्ये यथोक्तलक्षणां वेदीं निर्माय तस्या ईशानकोणे यथोक्तलक्षणं चतुरस्रं कुण्डं विरच्य । तथा यथोक्तलक्षणा-
नवब्राह्मणान्दशममाचार्यं सर्वलक्षणसम्पन्नमिति दशविप्रान्प्रमाणोक्त-
मधुपर्कविधानेनाचार्यब्रह्मर्षिगणैकत्वेन वरणपूर्वकमर्चयित्वा आचार्येतर-
ब्राह्मणापेक्षया द्विगुणं वरणसामग्रीं दत्त्वा तदनुज्ञया शुभासने समुपविष्टः
सपत्नीकः तैः कृतस्वस्त्ययनः सुतबन्धुसुहृद्वृत्तो वेदघोषनानावादित्र-
स्वनपूर्वकं ब्राह्मणैः सह चण्डिकामण्डपं गत्वा प्राग्बद्धद्वारपूजां कृत्वा
पश्चिमद्वारेण मण्डपं प्रविश्य कृताञ्जलिराचार्याय चण्डिकापूजार्थमनुज्ञां
दद्यात् । तत आचार्यः प्राप्तानुज्ञः प्रायुक्तपूजाप्रकरणोक्तक्रमेण स्नानादि-
चण्डिकातर्पणान्तं कर्म विधायाम्बुप्राणायामं संकल्पं च विधाय
प्रागुक्तनवचण्डिकाविधानवद्दिग्देवीः सम्पूज्य बलिं दत्त्वा मण्डपे कस्मि-
श्चित्पीठे ग्रहमण्डलं निर्माय तत्र स्वशाखोक्तविधिना नवग्रहान्सम्पूज्य
तत्तद्वेदिकमन्त्रैर्लोकपालान्दिकपालांश्च सम्पूज्य वेद्यां प्रागुक्ताविधिना
प्रधानकुम्भं संस्थाप्य मण्डपस्य बहिः पूर्वादितो नित्यपूजाप्रकरणोक्त-
प्रकारेण चतुर्दिक्षु बलिं भूतादिभ्यो दत्त्वा मण्डपस्य पूर्वाद्वारचतुष्टये
प्रतिद्वारं पूर्वोक्तविधिना द्वौ द्वौ कुम्भौ गालितोदकपूर्णौ संस्थाप्याचम्य
वेद्यां स्वासनमास्तीर्य तत्सम्पूज्योपविश्य बद्धपद्मासनश्चण्डिकां ध्यात्वा
पूजाप्रकरणोक्तक्रमेण भूतशुद्ध्यादिकं विधाय मूलेन प्राणायामत्रयं कृत्वा
मूलमन्त्रस्यैवाद्यखिलं न्यासजातं विधाय प्रधानकुम्भे पीठपूजापुरःसरं
चण्डिकामावाह्यं स चक्रां साङ्गां सावरणां ध्यात्वा नित्यपूजाप्रकरणोक्तविधिना-
ध्यादिस्थापनपूर्वकं सम्यक्सम्पूज्य परितोषयेत् । अत्र पूजासामग्री तु
अशीतिगुञ्जामिति कस्तूरो । तावन्मानं कुंकुमम् । तावज्जातीफलम् ।
तावान्कपूरः । एतच्चतुष्टयं पलमात्रचन्दनेन वर्षयेत् । तेन पलद्वयमनुलेपनं
भवति । पलं तु विशत्युत्तरत्रिंशद्गुञ्जामितम् । अत्युत्कृष्टं वस्त्रं तु माना-
नुक्तेः स्त्रीजनपरिधानयोग्यं ग्राह्यम् । गद्याणकत्रयहेमनिर्मितमलङ्करणं

तत्तु स्त्रीजनोचितम् । गद्याणकमानं तु लौकिकतोलकाद्धम् । पञ्चविंशति-
 सहस्राणि पुष्पाणि । पलद्वयं गुग्गुलुः । विंशतिर्दीपा घृतपूरिताः ।
 कुडवद्वयमात्रं हविष्यान्नं नैवेद्यम् । शतद्वयं नागवल्लीदलम् । तदनुरूपं
 पूगफलं कर्पूरं खदिरसारादिग्राह्यम् । इत्थं पूजासामग्रीं सम्पाद्य नवभि-
 ब्राह्मणैः सह महालक्ष्मीं साङ्गां सावरणां सम्पूज्य आचार्यो ब्राह्मणेभ्यो
 बहुमानपुरःसरं सप्तशतीपाठार्थमाज्ञादद्यात् । अत्र यावच्छ्री देव्याः पूजनं
 तावत्सर्वं ब्राह्मणाः जयचण्डीतिब्रुवन्तस्तां ध्यायेयुः । ततस्ते ब्रह्मादयो
 विप्रा वेद्यामाचार्यसन्निधौ पूजिते स्वे स्वे आसने समुपविश्य भूतशुद्धबाद्य-
 खिलं न्यासजातं विधाय सुसंहृष्टमनसश्चण्डिकाध्यानपूर्वकं विधिव-
 च्चरितत्रयं सरहस्यं जपित्वा तथा श्रीमहालक्ष्मीं प्रदक्षिणनमस्कारैः पुनः
 पुनः परितोष्यासने समुपविश्य प्रार्थनाश्लोकान्पठित्वा यजमानस्येष्टानि
 फलानि पुनः पुनः प्रार्थयेयुः । ततो यजमानो भक्तियुक्तः सुलक्षणाः दश
 कुमारीर्वक्ष्यमाणक्रमेण सम्पूज्य सम्भोज्य अत्युत्तमान्दशविप्रांश्च पञ्चामृतैः
 सम्भोज्य ताम्बूलदक्षिणाभिः परितोष्य पञ्चादतिभक्तिपूर्वकमाचार्यादि-
 दशविप्रांस्तथैव भोजयित्वा बन्धुभिः साद्धं स्वयमपिभुक्त्वा नृत्यगीतवा-
 दित्रनिःस्वनैर्वेदघोषैः सत्कथाभिश्च निशां नयेत् । ततो द्वितीयदिवसे
 आचार्यादयः स्नात्वा नित्यक्रियां निवर्त्य ध्यान पूर्वकं सर्वं चण्डिका-
 तर्पणादिकं कृत्वा दिग्देवीपूजनं च कृत्वा बहिर्भूतबलिं दत्त्वा श्रीदेवीं
 प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य अतिमनोहरे पूजामण्डपे स्वे स्वे चासने समुपविश्य
 'जय चण्डि, इति जपन्तो यावद्दुर्गापूजनं भवति तावत्तिष्ठेयुः ।
 आचार्योऽपि पूर्वदिवसापेक्षया यजमानेन सम्पादितैर्द्विगुणवस्त्राभरण-
 गन्धपुष्पादिसमस्तपूजा द्रव्यैर्विशेषतः पूजां कृत्वा द्विगुणं परितोषणं
 भगवत्याः कुर्यात् । ततः साचार्या ब्राह्मणा द्विगुणं जपं पाठं च कुर्युः ।
 ततोयजमानः द्विगुणं कुमारी ब्राह्मणभोजनं च कारयित्वा पूर्ववद्वात्री
 जागरणमपि कुर्यात् । एवं तृतीयेऽहनि त्रिगुणा पूजा जपपाठकुमारी-
 ब्राह्मणभोजनादिविधेयम् । एवमेव चतुर्थेऽहनि चतुर्गुणं सर्वं कुर्यात् ।
 ततः पञ्चमे दिवसे वक्ष्यमाणविधिनाग्निं संस्थाप्य तत्र घृततिलसहित-
 पायसेन जपदशांशेन चरितत्रयस्य सरहस्यस्य प्रतिश्लोकेन नमो देव्यै
 महादेव्यै इति श्लोकेन वा पूजा प्रकरणोक्तेन नवाक्षरमन्त्रेण वा होमं
 कृत्वा दिग्देवीनां नाममन्त्रेण प्रत्येकं शतशतसंख्याया पायसेन
 तत्तन्नाम्ना हुत्वा नवग्रहाणां वेदोक्ततत्तन्मन्त्रेण तस्यतस्योक्तसमिद्धिर्घृ-
 तैश्चरुभिस्तिलैश्च प्रतिद्रव्येण शतं शतमेकैकस्य हुत्वा वैदिकमन्त्रैस्तैरेव-

द्रव्यैः शतं शतमाचार्यादयो द्विजा जुहुवुः । इत्थं होमं सम्पाद्य श्रीदेवीं
प्रणम्य यजमानस्तम्भद्वये स्तुचं निधाय घृतकुम्भदशांशेन घृतेन मूर्द्धनिं
दिवो अरमिति वैदिकमन्त्रेण अच्छिन्नधारया पूर्णाहुतिं जुहुयात् । अथवा
नवाक्षरमन्त्रेण पूर्णाहुतिं दद्यात् । ततो वक्ष्यमाणविधिना संस्वप्राशनं
प्रणीताभार्जनं च कृत्वा जपं हुतं च श्रीमहालक्ष्म्यै निवेद्य मनोरथं
प्रार्थयित्वा यजमानो ब्राह्मणाय निष्कषट्कहेमसमेतं वस्त्रालङ्कारयुक्तं
गोमिथुनद्वयं दत्त्वा यस्याः प्रभावमिति श्लोकं कृताञ्जलिः पठित्वा
आचार्यं प्रणम्योक्तलणं गोमिथुनाष्टकं तस्मै दत्त्वा । अष्टविंशत्यक्षरैकैकं-
गोमिथुनमेकैकमुक्तलक्षणं दद्यात् । अत्र साष्टशते सुवर्णानां हेम्युरोभूषणे
पले । दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्रीत्यमरोक्तेनिष्कषट्कदस्यबह्वर्थत्वात्तन्निश्च-
यस्तु । द्वे कृष्णलेख्यमाषो धरणं षोडशैव ते । शतमानन्तु दशभिर्द्वं-
रणैः पलमेव तु । निष्कं सुवर्णाश्चत्वारइति याज्ञवल्क्यवचनात् । अत्र
रूप्यनिष्कनिरूपणे स्वर्णपदोपादानं तु सौवर्णमाषप्राप्त्यर्थं । हेमप्रमाण-
भूतचतुःसुवर्णमानोन्मितं रजतं निष्कइत्यर्थः । यत्र सौवर्णं निष्कं दद्या-
दित्युक्तं भवति तत्र चतुर्वर्णोन्मितं हेम दद्यादिति च मतान्तरं वा ।
सुवर्णसप्ततिसप्तमो भागो रूपक उच्यते । दीनारो रूपकैरष्टाविंशत्या परि-
कीर्तितः । इति दीनारलक्षणं पूर्वोक्तामरसिंहवचनेन दीनारस्यापि
निष्कत्वाद्हरिद्रैरश्वत्थैरयं वा निष्को ग्राह्यः । ततो यजमानं शान्तचित्तं
सुखासने समुपवेश्य आचार्यो ऋत्विजश्च कुंकुमाक्षतदूर्वाचन्दनदधी-
न्यादाय चतुर्णां स्तोत्राणां श्लोकमेकमेकं चोच्चार्याशीर्वादं दद्युः । ततो
यजमानः सभायः सपुत्रः कृताशीर्वादमङ्गलः श्रीमहालक्ष्मीपरायणो
रत्नपुष्पाञ्जलिं देव्यै दत्त्वा श्रीदेवीं विसृज्य ब्राह्मणेभ्यो भूरिदानं दत्त्वा
मङ्गलघोषशान्तिपाठादिवेदघोषं कुर्वन्निः सह ब्राह्मणैर्बन्धुभिर्भृत्य-
वर्गैरिष्टमुहूर्द्धिः साढं तोरणाद्यलं कृतं स्वगृहं प्रविशेदिति शिवम् ।

इति शतचण्डीयज्ञाविधिः ।

अथ सहस्रचण्डीयज्ञाविधिस्तत्रैव

सहस्रचण्डी विधिवच्छृणु राजन्महामते । राज्यभ्रंशो ह्यकस्माच्चे-
ज्जनमारेमहाभये ॥ १ ॥ गजमारेऽश्वमारे च परचक्रभये तथा । इत्यादि-
विविधे दुःखे क्षयरोगादिजे भये ॥ २ ॥ सहस्रचण्डिकापाठं कुर्याद्वा
कारयेत वा । जापकास्तु शतं प्रोक्ता विशदस्तश्च मण्डपः ॥ ३ ॥ भोज्याः

सहस्रं विप्रेन्द्रा गोशतं दक्षिणां दिशेत् । गुरवे द्विगुणं देयं शय्यादानं
तथैव च ॥ ४ ॥ सप्तधान्यं च भूदानं श्वेताश्वश्च मनोहरम् । पञ्चनिष्क-
मिता मूर्तिः कर्तव्यावर्द्धमानतः ॥ ५ ॥ अष्टादशभुजां देवीं सर्वाग्रुध-
विभूषिताम् । अन्नं वारि च दातव्यं सहस्रं प्रत्यहं विभो ॥ ६ ॥ शतं वा
नियताहारः पयोमानेन वर्तयेत् । एवं यः चण्डिकापाठं सहस्रं तु समा-
चरेत् ॥ ७ ॥ तस्य स्यात्कार्यसिद्धिस्तु नात्रकार्या विचारणेति । अत्र
सहस्रचण्डीयज्ञस्यापि शतचण्डीवत्सर्वं ज्ञेयम् । विशेषस्त्वेतावान् जपकर्तारो
ब्राह्मणाः शतं । मण्डपो विशद्वस्तात्मकः । कुमारीणां शतं अन्यत्सर्वं समान-
मिति शिवम् ।

इति श्री खिलमार्कण्डेयसहस्रचण्डीविधिः समाप्तः ।

अथ कुमारीपूजनं खिलमार्कण्डेये ॥

ऋषिरुवाच ॥

सर्वयज्ञोत्तमं भूप कुमारीपूजनं शृणु । कृते यस्मिन्महालक्ष्मीरचि-
रेण प्रसीदति ॥ १ ॥ आमन्त्रयेद्दिने पूर्वं कुमारीं भक्तिपूर्वकम् । पूजा-
दिने समाहूय कुमारीमाद्यदेवताम् ॥ २ ॥ मण्डपे चरणौ तस्याः क्षालये-
दुष्णवारिणा । अर्चयेद्देमपात्रेण वारि पुष्पाक्षतैः समम् ॥ ३ ॥ सुविताने
शुभे स्थाने पङ्कजोपरिपीठके । उपवेश्य कुमारीं तां स्वानि न्यासं समा-
चरेत् ॥ ४ ॥ आत्मानं विधिवत्पूज्य क्रोधदर्पं विवर्जितः । अथ ध्यात्वा
कुमारीं तां महालक्ष्मीस्वरूपिणीम् ॥ ५ ॥ मातुलुङ्गं गदां खेटं पात्रं
पीयूषपूरितम् । दक्षिणाधः क्रमाद्वस्तेविभ्रतीं सर्वमङ्गलाम् ॥ ६ ॥ सु-
तप्तह्रैमवर्णाङ्गीमाद्यामाद्यैः सुपूजिताम् । नवाक्षरेण मन्त्रेण सुसिद्धेन
समर्चयेत् ॥ ७ ॥ दद्यादाचमनं तथैव दद्याद्वस्त्रं सकञ्चकम् । सकङ्क-
णांगुलीयानि कर्णालङ्कारणे शुभे ॥ ८ ॥ ग्रैवेयकं प्रदत्त्वा तु चन्दनेन
विलेपयेत् । पूजयेत्पुष्पमालाभिदिव्यैर्धूपैः सुधूपयेत् ॥ ९ ॥ कुर्यादारात्रिकं
राजसुदुत्यं वाच्यां मुहुः । भोजयेद्भक्तिभावेन पायसं शर्कराघृतम् ॥ १० ॥
सुपक्वान्नानि चान्यानि सर्वक्षोभविभ्रजितः । फलेक्षुस्वादुचान्यच्च दद्या-
तस्यै पुनः पुनः ॥ ११ ॥ यावत्सा भोजनं कुर्यात्तावान्मन्त्रं जपेत्सुधीः ।
दद्यादाचमनं तस्यै ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥ १२ ॥ तोषयेद्देमदानेन कुमारीं
प्रणतः सकृत् । प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः ॥ १३ ॥

विसर्जयेत्कुमारीं तां स्वगृहं हर्षनिर्भरः । अनेन विधिना भक्त्या कुमारीं
योगिपूजयेत् ॥ १४ ॥ स पृथ्वी राज्यमासाद्य शिवसायुज्यतां व्रजेत् ।
यं यं प्रार्थयते कामं देवानामपि दुर्लभम् ॥ १५ ॥ कुमारी पूजनं कृत्वा
तं तं प्राप्नोत्यसंशयम् । ब्रह्मविष्णुमहेशानां कुमारी परमात्मता ॥ १६ ॥
तत्पूजनेन राजेन्द्र त्रैलोक्यं स्यात्सुपूजितम् । सम्यक्कृतफलं तस्य यः
कुमारीं प्रपूजयेत् ॥ १७ ॥ तस्मात्पूजय भूपाल कुमारीं यतमानसः । स्वं
राज्यं प्राप्स्यसेऽवश्यं मा तेऽभूस्त्वत्र संशयः ॥ १८ ॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये कुमारीपूजासमाप्ता ॥

अथैतत्पद्धतिः

तत्र साधकः कृतनित्यक्रियः पूजादिनात्पूर्वदिने कुमारीगृहं गत्वा
गन्धाक्षतादिभिर्मूलमन्त्रेण भगवति कुमारीपूजार्थं त्वं मया निमित्ति-
तासि । मां कृतार्थय । इति निमित्त्य पूजादिने तां समाहूय अभ्यङ्ग-
स्नानादिना परिस्कृतां समलंकृतां च पूजागृहं नीत्वा अष्टदलपद्मोपरि
मृद्वसनास्तृतपाठे समुपवेश्य । तस्याः पादावुष्णजलेन मण्डलोपरि
प्रक्षाल्य सूक्ष्मवस्त्रेण च प्रोक्ष्य स्वस्तिकासनेनोपविष्टां तां श्रीमहालक्ष्मी-
स्वरूपां ध्यायन्स्वशरीरे पूर्वपूजाप्रकरणोक्तविधिना न्यासजालं विधाय
आत्मपूजां कृत्वा तस्यां । ॐ मन्त्राक्षरमयीं लक्ष्मीं मातृणां रूपधारिणीम् ।
नवदुर्गात्मिकां साक्षात्कन्यामावाहयाम्यहम् । इत्यावाह्य । आवाहनादि-
परमीकरणान्तं तत्तन्मुद्रया विधाय तां प्रमाणोक्तरूपां ध्यात्वा नवाक्षर-
मन्त्रेण अष्टपाद्यादिभिः पूजाप्रकरणोक्तविधिना सम्पूज्य दीपान्ते
षड्रसोपेतं पञ्चविधमन्नं नैवेद्यं समर्प्य यावत्सा भोजनं करोति तावन्मौनी
ध्यानी मूलमन्त्रं नवाक्षरं जपेत् । ततो भुक्तवत्यां तस्यां करोद्व्रतं
करक्षालनादिकं च दत्त्वाचमनं समर्प्य सकूर्पूरं ताम्बूलं तस्यै निवेद्य
आरात्रिकं विधाय प्रदक्षिणनमस्कारैः पुनः पुनः प्रतोष्य मस्तके न्यस्ता-
ञ्जलिः सुवर्णादिविशिष्टदक्षिणां दत्त्वा सहर्षस्तां तद्गृहं विसृजेदिति
शिवम् ।

अथकुमारीलक्षणम्

अरोगिणीं सुपुष्टाङ्गीं सुरूपां व्रणवर्जिताम् । एकवंशसमुद्भूतां
कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत् ॥ १९ ॥ हीनाधिकाङ्गीं कुष्ठीं च विशीलकुलसम्भ-

वाम् । जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां तनुलोमशाम् ॥ २० ॥ संत्यजे-
द्रोगिणीं कन्यां दासीगर्भसमुद्भवाम् । ब्राह्मणीं सर्वकार्येषु जयार्थे क्षत्रियो-
द्भवाम् ॥ २१ ॥ लाभार्थे वैश्यसम्भूतां सुतार्थे शूद्रवंशजाम् । दारुणे
चान्त्यजातीयां पूजयेद्विधिना नरः ॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये कुमारीपूजनम् ॥

अथ श्रीचण्डीहोमविधिः खिलमार्कण्डेये

चतुरस्रे समे कुण्डे समन्ताद्वस्तमात्रके । एकावरणसंयुक्ते योनिमण्डल-
मण्डिते ॥ १ ॥ दशांशविधिना होममुक्तद्रव्येण साधयेत् । नवदुर्गामखे
कुण्डमेवं जानीहि भूपते ॥ २ ॥ नित्यचण्डीविधानेऽपि कुण्डमीदृक् प्रकी-
र्तितम् । नवचण्डीमखे कुण्डमीदृग्लक्षणमुच्यते ॥ ३ ॥ एतद्विगुणितं कुण्डं
शतचण्ड्यां प्रकीर्तितम् । संस्कारैरष्टभिः कुण्डं संस्कृत्याग्निं प्रतिष्ठयेत्
॥ ४ ॥ मायावीजसमायोगं कुर्यात्तन्मन्त्रसाधकः । कुण्डमध्ये भुवं दर्भैः
परिमाज्योपलेपयेत् ॥ ५ ॥ प्रागग्राः स्रुवमूलेन रेखास्तिस्रः समुल्लिखेत् ।
पांशुमुद्धृत्य रेखाणामभ्युक्षणमतः परम् ॥ ६ ॥ कुण्डस्य पूजनं षष्ठं सप्तमं
चक्रमुद्रया । अस्त्रावगुण्ठनं कुण्डे संस्कारश्चाष्टमः स्मृतः ॥ ७ ॥ शतमङ्गल-
नामानं कुण्डेऽग्निं सम्प्रतिष्ठयेत् । मणिजं वारणेयं वा श्रोत्रियावसथो-
द्भवम् ॥ ८ ॥ आत्मनोऽभिमुखं मध्ये भूर्भुवः सुवरोमिति । चण्डिका-
पाठसम्पूर्णं ब्रह्माणं दक्षिणे द्विजम् ॥ ९ ॥ ततस्तत्साग्निकं कुण्डं नव-
सूत्रेण वेष्टयेत् । कुण्डस्योत्तरतः स्थाप्या प्रणीता वारिपूरिता ॥ १० ॥
प्रणीतापात्रता दक्ष उत्तरे वैश्वदेवतः । स्थापयेत्प्रोक्षणीपात्रं प्रणीतोदक-
पूरितम् ॥ ११ ॥ प्रणीतापात्रतः पूर्वं स्थाप्यः पात्रगणः क्रमात् । आज्य-
स्थालीं चरुस्थालीं गव्यक्षीरसमन्विताम् ॥ १२ ॥ स्रुवस्रुवौ च घृतं गव्यं
तन्दुलाः कुशपूलकाः । पालाशसमिधस्तिस्रः पूर्णपात्रमतः परम् ॥ १३ ॥
सप्तद्वीपेश्वरीं ध्यात्वा गृहीत्वा कुशपूलकम् । निःक्षिपेत्प्रोक्षणीपात्रे
वारुणं बीजमुच्चरन् ॥ १४ ॥ तेन दर्भसमूहेन शतसंख्येन संस्थितम् ।
क्रमात्पात्रगणं प्रोक्षेत्प्रोक्षणीपात्रवारिणा ॥ १५ ॥ आज्यपात्रं चरुस्थाल्यां
निःक्षिपेद्घृततन्दुलान् । यथाक्रमेण कर्त्तव्यं ततोऽधिश्रयणं तयोः ॥ १६ ॥
अभ्युक्ष्य पायसं कार्यं पर्यग्निकरणं तयोः । सव्यपालाशकाष्ठेन त्रिभि-
र्दर्भैश्च सोज्ज्वले ॥ १७ ॥ स्रुवयोस्तपनं कार्यं प्रणीतोदकसिन्धनम् । पुनः
प्रतपनं कृत्वा दक्षिणे स्थापनं स्मृतम् ॥ १८ ॥ उद्वास्य प्रथमं पूर्वादानी-

याग्नैः प्रदक्षिणम् । कुण्डाचार्यान्तरे स्थाप्यं स्वबीजजपगौरवात् ॥ १९ ॥
 अभिधार्याज्यमार्गेण वायव्ये स्थापयेच्चरम् । स्वबीजजपसंस्कारो धेनुमुद्रा
 तयोर्भवेत् ॥ २० ॥ तिष्ठन्पालाशसमिधो मौनी वैश्वानरे क्षिपेत् । कुश-
 पूलकयुक्ताभिः प्रोक्षण्यद्भिः प्रदक्षिणम् ॥ २१ ॥ पर्युक्षाग्निं प्रणीतायां
 निक्षिपेत्कुशपूलकम् । निधाय दक्षिणं जानुं भूमावग्निमुखे हुनेत् ॥ २२ ॥
 अन्वारब्धे स्रुवे साज्यं निदर्धमे हव्यवाहने । प्रजापतिर्महाकाली महालक्ष्मी
 सरस्वती ॥ २३ ॥ एतदग्निं मुखं प्रोक्तं मायाबीजपुरःसरम् । संस्त्रावं
 प्रोक्षणीपात्रे निःक्षिपेच्चक्रसाधनम् ॥ २४ ॥ विदध्यात्कल्पितं होमयुक्तेन
 हविषा हनैः । ततः स्विष्टकृते दद्याद्विषा प्रोज्ज्वलेऽनले ॥ २५ ॥ माया-
 बीजं ब्रह्माणी माहेश्वरी कौमारी वैष्णवी वाराही नारसिंही ऐन्द्री
 चामुण्डायै विच्चे स्विष्टकृते स्वाहा । एष प्रोक्तो महाराज प्रोक्तस्विष्ट-
 कृदाहुतेः । आज्यस्य नवकं दद्यान्मायाबीजादिनामभिः ॥ २६ ॥ तत्र
 नन्दा भगवती द्वितीया रक्तदन्तिका । शाकम्भरी तृतीया च दुर्गा भीमा
 च तत्परम् ॥ २७ ॥ भ्रामरी कालिका चैव शिवदूती प्रजापतिः । गन्ध-
 पुष्पफलोपेतां कृत्वा यज्ञात्मिकां स्रुचम् ॥ २८ ॥ ततः पूर्णाहुतिं दद्याद्-
 घृतेनाच्छिन्नधारया । नवाक्षरेण मन्त्रेण महालक्ष्मीपरायणः ॥ २९ ॥
 ॥ २९ ॥ ध्यात्वा यज्ञपुरोडाशममृतं देवदुर्लभम् । प्रोक्षणीपात्रमध्यस्था-
 न्मन्त्रेणाग्नन्ति सप्तवान् ॥ ३० ॥ यस्माद्यज्ञरसात्पूतो यज्वानो ब्रह्म-
 रूपिणः । संस्त्रावं तत्पुरोडाशं प्राश्नामि सुखपुण्यदम् ॥ ३१ ॥ सलिलेन
 प्रणीतायाः तीर्थध्यानपरायणः । करोति मार्जनं दर्भशतेन श्लोकपाठकः
 ॥ ३२ ॥ याः शिवाः शक्तयो याश्च याभिश्चैव विना सह । या आपः
 ससन्दधानास्तामे कृण्वन्तु भेषजम् ॥ ३३ ॥ सिमृक्षोर्निखिलं विश्वं मुहुः
 शुक्रं प्रजापतेः । मातरः सर्वभूतानामापो देव्यः पुनन्तु माम् ॥ ३४ ॥
 अलक्ष्मीमलरूपा या सर्वभूतेषु सस्थिता । क्षालयन्ति निजस्पर्शादापो
 देव्यः पुनन्तु माम् ॥ ३५ ॥ अभिसिञ्चेदयात्मानं चतुर्भिश्चण्डिकास्तवैः ।
 दानं दद्याद्विधानेन हेमधेन्वम्बराणि चेति ॥ ३६ ॥

इति श्रीखिलमार्कण्डेये होमक्रमः समाप्तः ॥

अथैतत्प्रयोगपद्धतिः

तज्ञादो कुण्डमध्यभूमिं दर्भमुष्टिना मायाबीजेन सम्साज्यं माया-
 बीजेनैव गोमयेनोपलिप्य स्रुवमूलेन प्रागग्रास्तिष्ठो रेखा दक्षिणमध्यो-

तरेषु मायाबीजेन विलिख्य मायाबीजेनैव रेखामध्यात्पांशुमुद्धृत्यबहि-
 निरस्य मायाबीजेनैव कुण्डमभ्युक्ष्य मायाबीजमुच्चर्य अमुककुण्डायनमः ।
 इति कुण्डं गन्धादिभिः सम्पूज्यास्त्रमन्त्रेणास्त्रमुद्रया कुण्डं संरक्ष्य कवच-
 बीजेनावगुण्ठनमुद्रयावगुण्ठनं कुर्यादित्यष्टभिः संस्कारैः कुण्डं संस्कृत्य
 तत्रारणिभवं सूर्यकान्तादिसम्भूतं श्रोत्रियागारानीतं वा अग्नि भूर्भुवः
 स्वरोमिति स्वाभिमुखं कुण्डमध्ये संस्थाप्य प्रज्वालय चण्डिकापाठनिरतं
 ब्राह्मणं स्वदक्षिणभागे कुशासने समुपवेश्य तं यथाविधि सम्पूज्य अस्मि-
 न्होमकर्मणि कृताकृतावेक्षणत्वेन त्वं ब्रह्मा भवेति वस्त्रालङ्कारादिभिवृणु-
 यात् । ततः वृत्तोऽस्मीतितेन प्रतिवचने दत्ते कुण्डं नवगुणेन सूत्रेण संवेष्ट्य
 कुण्डस्योत्तरभागे प्राग्गान् दर्भानास्तीर्य तेषु प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे आज्य-
 स्थाली स्रुक्स्रुवौ कुशपूलकं पालाशमयं परिधित्रयं द्वात्रिंशत्पलनिमित्तं
 तान्नमयं पूर्णपात्रं चेति पात्रगणमधोमुखं संस्थाप्य कुशजलैः सम्प्रोक्ष्य
 तानि पात्राण्युत्तानीकृत्य पुनः प्रोक्ष्य प्रणीतापात्रं प्रक्षाल्य स्वपुरतः
 कुशास्तरे निधाय प्रादेशमात्रं दर्भद्वयं मध्ये ब्रह्मन्प्रिययुतं पवित्रं कृत्वा
 तत्प्रणीतापात्रे उत्तराग्रं निधाय प्रणीतापात्रं शुद्धजलैरापूर्य तत्र गन्ध-
 पुष्पाक्षतान्निःक्षिप्य हस्तद्वयांगुष्ठानामिकाभ्यां पवित्रमूलाग्रे कृत्वा माया-
 बीजमुच्चरन् पवित्रमध्येन प्रणीतापात्राद्बिन्दुत्रयं भूमौ निःक्षिप्य
 सपवित्रं तत्पात्रं कराभ्यामामस्तकमुद्धृत्य कुण्डस्योत्तरभागे कुशास्तरे
 निधाय प्रोक्षणीपात्रं प्रक्षाल्य स्वपुरतः कुशास्तरे निधाय प्राग्वत्तन्मध्ये
 पवित्रं जलं च निःक्षिप्य तथैवोत्पवनं कृत्वा तत्पात्रं प्रणीतापात्रकुण्डयो-
 मध्ये कुशास्तरे निधाय श्रीमहालक्ष्मीं ध्यात्वा कुशपूलकंगृहीत्वा प्रोक्षणी-
 पात्रोपरि निःक्षिप्य पुनस्तत्कुशपूलकमादाय तेन वां बीजमुच्चरन् प्रोक्षणी-
 पात्रजलेन समस्तं पात्रगणं होमसाधनं च प्रोक्ष्य कुशपूलकं प्रोक्षणीपात्रो-
 परि निधाय आज्यस्थालीं प्रक्षाल्य तस्यां पवित्रं सुगन्धिं गाधृतं च
 निःक्षिप्य कुण्डादङ्गारानुद्धृत्य वायव्यकोणे क्वचित्पात्रे निधाय
 तदुपर्याज्यस्थालीं निधाय दर्भद्वयं प्रज्वालय तदुपरि मायाबीजेन त्रिःप्र-
 दक्षिणं भ्रामयित्वा दग्धशेषमग्नौ निःक्षिप्य आज्यस्थालीमङ्गारेभ्य
 उत्ताप्य उत्तरतो निधाय अङ्गारान्कुण्डे निःक्षिप्य जलं स्पृष्ट्वा आज्य-
 स्थालीं कुण्डं प्रदक्षिणं कारयन् आनीय स्वपुरतोनिधाय वं इति धेनुमुद्रां
 प्रदक्ष्यमायाबीजेनाष्टवारमभिमन्त्र्य चरुस्थालीं प्रक्षाल्य तत्र गोदुग्धं
 तण्डुलांश्च निःक्षिप्य तस्मिन्नग्नौ चरुस्थालीं निधाय मूलमन्त्रं स्मरन्
 पालाशकाष्ठेन प्रदक्षिणमवघट्टयन् चरुं श्रपयित्वा स्विन्ने तस्मिन्

ज्वलितेन पलाशकाष्ठेन प्रदक्षिणं त्रिःपर्यग्निकरणं मायाबीजेन कृत्वा
मूलमन्त्रेण सुवेणघृतैरभिधार्योत्तार्यं प्राग्वत्प्रदक्षिणमानीय वायव्ये
निधाय धेनुमुद्रां प्रदर्श्य मायाबीजेनाभिमन्त्र्य सुक्लुवावधोमुखी वह्नौ
प्रताप्य प्रणीताजलेन प्रोक्ष्य पुनः प्रताप्य स्वदक्षिणाग्रे कुशास्तरे निधाय ।
पालाशसमित्त्रयमादाय घृतप्लुतंतिष्ठंस्तूष्णीं वह्नौ निक्षिप्य कुशपूलक-
हस्तः प्रोक्षणीजलेन प्रदक्षिणमग्निं परिषिच्य कुशपूलकं प्रणीतापात्रोपरि
निधाय सुवमादाय दक्षिणजानुना भूमिं स्पृशन् वामहस्तेन आज्यस्थालीं
स्पृशन् सुवेणाज्यमादाय मायाबीजमुच्चार्यं प्रजापतये स्वाहा प्रजापतये
इदं न मम पुनर्माया महाकाल्यै स्वाहा इदं न मम । पुनर्माया महालक्ष्म्यै
स्वाहा इदं न मम । पुनर्माया महासरस्वत्यै स्वाहा इदं न मम ।
इतिहुत्वा तत्तन्नामोद्देशत्यागमुक्तयुक्त्या कुर्यात् । अत्र प्रत्याहुतिशेषं
सुवलग्नं घृतं प्रोक्षणीपात्रे निक्षिपेदित्यग्निमुखहोमं कल्पितपायसाद्युक्त-
द्रव्यैरुद्दिष्टसंख्यं हुत्वा मायाबीजमुच्चार्यं । ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी,
वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री चामुण्डायै विच्चे स्विष्टकृते
स्वाहेति, तेनैव हविषा सकृद्धृत्वा मायाबीजं नन्दजायै स्वाहा नन्दजायै
इदं न मम, एवं । रक्त दान्तिकायै । शक्रम्भय्यै । दुर्गायै । भ्रामर्यै ।
कालिकायै । शिवदूत्यै, प्रजापतये । इत्याज्येनैकैकामाहुतिं दत्त्वा
तत्तन्नामोद्देशेनत्यागं विधाय गन्धपुष्पफलोपेतां सुचं घृतैरापूर्यतिष्ठन्
स्वाहान्तेन नवाक्षरेण श्रीमहालक्ष्मीं ध्यायन्नच्छिन्नघृतधारया पूर्णाहुतिं
दद्यात् । शतचण्डीमखे तु तत्रोक्तविधिना पूर्णाहुतिं दद्यात् । इत्थं
पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रोक्षणीपात्रस्थं संस्रवघृतं गृहीत्वा । यस्माद्यज्ञरसात्पूता
यज्वानो ब्रह्मरूपिणः । तं संस्रवत्पुरोडाशं प्राश्नामि सुखपुण्यदमिति
मन्त्रेण तं घृतं प्राश्य आचम्य प्रणीतापात्रमुत्थाप्य स्वपुरतः कुशेषु निधाय
तीर्थध्यानपरो दर्भपूलकेन याः शिवाः शक्तय इतिश्लोकेन शूलेन पाहि
नो देवीत्यादिभिश्चतुर्भिः श्लोकैश्च स्वात्मानमभिषिच्य ब्राह्मणान्भोजना-
च्छादनादिभिस्तोषयेदिति शिवम् ।

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे सरयूप्रसादसंगृहीते उत्तरभागेखिलमा-
र्कण्डेयोक्तोपासनादिकाम्यप्रयोगान्तसंग्रहो नाम पञ्चमो
विश्रामः ॥५॥ आदितस्त्रयोविंशतितमो विश्रामः ॥२३॥

अथ श्रीसप्तशत्यास्तंत्रप्रयोगाः संगृह्यन्ते



तथा च रुद्रयामले । शूलेन सर्वतश्चान्ते कवचं सर्वसिद्धिदम् ।
 सर्वस्वरूपे श्लोकादि वयमन्तार्गलास्तुतिः ॥ १ ॥ त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी-
 श्लोकावायुधान्ते च कीलकः । विश्वेश्वरीं करोत्वन्ते साम्प्रतं नमस्यते
 ॥ २ ॥ करोतु च पुनः प्रोक्तो या च स्मृता करोतु नः सर्वावाधाश्लोककेन
 करोतु च पुनर्भवेत् ॥ ३ ॥ सर्वमङ्गलसृष्टिस्थितिशरणागतइत्यपि ।
 सर्वस्वरूपे च नव स्तवइत्युक्तमीरितम् ॥ ४ ॥ या चण्डीप्रार्थना चैका
 दुर्गेस्मृता क्षमापनम् । विश्वेश्वरीं समारभ्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥ ५ ॥
 रात्रिसूक्तमिति ख्यातं देवीसूक्तं ब्रवीमि ते । नमो देव्यै समारभ्य
 मूर्तिभिश्चान्तमीरितम् ॥ ६ ॥ देवीसूक्तमिति ख्यातं भुक्तिमुक्तिकरं सदा ।

अथ सार्द्धनवप्रयोगो यथा वाराहीतन्त्रे

रुद्रयामले च

नवसार्द्धं जपेद्यस्तु मुच्येत्प्राणान्तकाद्भूयात् । राज्यं श्रीः सर्व-
 सम्पत्तिः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १ ॥ प्रयोगोऽयं महागुह्यो देवानामपि
 दुर्लभः । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सावधानावधारया ॥ २ ॥ मधुकैटभनाशं
 च महिषासुरघातनम् । शक्रादिस्तुतिरेवातो देवीसूक्तं पुनस्तथा ॥ ३ ॥
 नारायणीस्तुतिश्चैव फलानुकीर्तनन्तथा । ततो वरप्रदानं च ह्यर्द्धपाठो-
 ऽयमुच्यते ॥ ४ ॥ अर्द्धपाठस्त्वयं प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः । अर्द्धपाठेन रहितं
 नवपाठफलं नहि ॥ ५ ॥ अत्रार्द्धपाठे पञ्चमाध्याये देवाऊचुः नमोदेव्यै
 इत्यारभ्य ऋषिरुवाचेति पर्यन्तमिति । ब्राह्मणास्त्वत्रैकादश । तेषु नव
 ब्राह्मणाः पूर्णत्रयोदशाध्यायपाठकर्तारः । एकोऽर्द्धपाठकर्ता । एको
 यजुर्वेदीयषडङ्गाष्टाध्यायपाठकः । एवमेकादशब्राह्मणा प्रयोगकर्तार
 इति ।

अथ प्रयोगपद्धतिः ।

तत्र चन्द्रतारानुकूले शुभे मुहूर्ते अथवा कृष्णाष्टमीनवमीचतु-
र्दशीनामन्यतमदिने कुमारीं यथोक्तलक्षणामानीय यजमानः सुस्नातः
श्वेताम्बरधरः सपत्नीकः सुप्रक्षालितपाणिपादः तां सम्पूज्य सम्भोज्य
दक्षिणादानेन तां सन्तोष्य तस्याज्ञां गृहीत्वा गोमयोपलिप्तायां भूमी
स्वासने समुपविष्टः प्राङ्मुखउदङ्मुखो वा स्वेष्टदेवं संस्मृत्य आचम्य
स्वस्तिवाचनं कारयित्वा कस्मिंश्चित्पीठे विघ्नविघातार्थं श्रीगणेशमावाह्य
गन्धाक्षतपुष्पमालाधूपदीपमोदकनैवेद्यताम्बूलदक्षिणाप्रार्थनान्तैः सम्पूज्य
सम्प्रार्थ्य सङ्कल्पं कुर्यात् । ॐ तत्सदद्येत्यादि देशकालौ सङ्कीर्त्य अमुक-
गोत्रोऽहममुकशर्मा श्रीभवानीशङ्करप्रसन्नतापूर्वकसमवेतासमवेतनिखिल-
पातकोपपातकनिरसनोत्तरकालिकराजतो व्यवहारतश्च सप्रतिष्ठश्रीवृद्धि-
कामः सकुटुम्बस्यात्मनः शरीरारोग्यकामश्च एकादशब्राह्मणद्वारा यजु-
र्वेदीयवाजसनेयिसंहितान्तर्गतैकषडङ्गपाठसहितमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतच-
ण्डीचरित्रस्य श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदैवतिकस्य साद्वर्नवक-
रूपपुरश्चरणमहं कारयिष्ये । इति सङ्कल्प्य गन्धाक्षतपुष्पकोसुम्भसूत्र-
वासोरूपां वरणसम्भृतिमादाय तत्पात्रं करद्वयोपरि निधाय सङ्कल्पं
कुर्यात् । ॐ तत्सदद्येत्यादि अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा पूर्वप्रतिज्ञातार्थसिद्धि-
कामः एभिर्वरणद्रव्यैरेकषडङ्गसहितसाद्वर्नवकपाठान्कतुमेकादशब्राह्मणा-
न्ययानामगोत्रानहंवृणे । इति सङ्कल्प्य जलं भूमी निःक्षिप्य प्रदक्षिण-
क्रमेण प्रत्येकं ब्राह्मणं वृणुयात् । तत आचार्यः यथाविधि कलशं संस्थाप्य
तत्र श्रीभवानीशङ्करावावाह्य स्नान, वस्त्र, गन्धाक्षत, पुष्प, बिल्वपत्र,
माला, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणान्तोपचारैर्वक्ष्यमाणक्रमेण
सम्पूज्य देवीं ध्यात्वा नमस्कृत्य पुस्तकं पूजयेत् । अथ पुस्तकपूजनम् ।
तत्र पाद्यादिभिः षडङ्गपाठाधिष्ठातृदेवतां सम्पूजयेत् । यथा एतानि
पाद्यानि श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः । एषगन्धः श्रीभवानीशङ्कराभ्यां
नमः इमे अक्षताः श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः । इमानि पुष्पाणि
श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः । एष धूपः श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः । एष
दीपः श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः । इदं नैवेद्यं श्रीभवानीशङ्कराभ्यां
नमः । एष नमस्कारः श्रीभवानीशङ्कराभ्यां नमः इति । षडङ्गपुस्तकं

सम्पूज्य । सप्तशतीपुस्तकमप्येवमेव पूजयेत् । ततः पाठार्थमनुज्ञां ब्राह्मणे-
भ्यो दद्यात् । ते ब्राह्मणाः पृथक् पृथक् स्वस्वपाठसङ्कल्पं कुर्युः । तत्र
क्रमः । ॐ तत्सदद्यदेशकालौ सङ्कीर्त्यं अमुकगोत्रोऽहममुकशर्मा अमुकगोत्र-
स्यामुकनाम्नोयजमानस्य मनोऽभीष्टसिद्धयर्थं आद्यन्ताष्टोत्तरशतनवाणं-
जपपूर्वकचण्डीचरित्रस्यैकपाठमहं करिष्यामि । एवं नवभिर्ब्राह्मणैः ।
दशमने च चण्डीचरित्रस्यार्द्धपाठमहङ्करिष्यामि । एकादशेन च षडङ्ग-
पाठं करिष्यामि । इतिसङ्कल्प्य स्वं स्वं पाठं यथाविधिनिवर्त्यन्ति
नवार्णजपं विधाय श्रीदेव्यै समर्प्यं होमविधिसंस्कृते बह्वौ घृतपायसतिलैः
पाठैकेन होमं विधाय तदन्ते मूलमन्त्रेण तर्पणमार्जनादिकं विधाय
ब्राह्मणान्भोजयेत् । यथा ॐ तत्सदद्यअमुकगोत्रोऽमुकशर्मा श्रीभवानी-
शङ्करप्रीत्येकारितषडङ्गैकपाठसहितसार्द्धनवचण्डीपाठाङ्गत्वेनपायसाद्य-
न्नेन सोपकरणेन यथानामगोत्रान्ब्राह्मणानहं सम्भोजये । इतिसङ्कल्प्य ।
नानाविधव्यञ्जनैस्तान्सम्भोज्य ताम्बूलं भोजनदक्षिणां च दद्यात् । ॐ
तत्सदद्य अमुकगोत्रोऽमुकशर्मा श्रीभवानीशङ्करप्रीत्यर्थं कारितब्राह्मण-
भोजनसांगतासिद्धयर्थं इदं दक्षिणाद्रव्यं यथानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो-
दातुमहमुत्सृजे । इति सङ्कल्प्य भोजनदक्षिणां दत्त्वा पाठदक्षिणां दद्यात् ।
ॐ तत्सदद्येत्याद्युक्त्वाअमुकगोत्रोऽमुकशर्मा प्रतिज्ञातार्थसिद्धयर्थं श्री-
भवानीशङ्करप्रीत्यर्थं षडङ्गसार्द्धनवपाठसाङ्गत्वसिद्धये इदं दक्षिणा-
द्रव्यं तन्मूल्योपकल्पितं हिरण्यमग्निदैवतं रजतं चन्द्रदैवतं यथा नाम-
गोत्रेभ्यो यथाभागमाचार्याय द्विगुणं दातुमहमुत्सृजे । इति पाठकर्तृभ्यो
यथाभागमाचार्याय च द्विगुणं दत्त्वा ॐ यतो यतः समीहसे इत्यादि
पठित्वा पुष्पाक्षतयुतमाशीर्वादं यजमानाय दत्त्वा श्रीदेवीं विसृज्य
विहरेदिति शिवम् ।

इति श्रीसार्द्धनवदुर्गापाठविधिः ।

अथ सप्तशतीदीपदानविधिश्चिदम्बररहस्ये

सर्वेप्सितफलावाप्त्यै प्रयोगं शृणु सादरम् । एकान्ते विजने रम्ये
स्थण्डिलं रचयेच्छुभम् ॥ १ ॥ हस्तमात्रं तु विस्तारं चतुरङ्गुलमुन्नतम् ।
रजोभिः पञ्चभिश्चित्रं कृत्वा तत्र क्रमेण तु ॥ २ ॥ त्रयोदशैव पात्राणि
स्थापयेत्त्रिवलीर्यथा । एकत्रिनवयोगेन चरित्राध्यायसंख्यया ॥ ३ ॥
गोघृतेन समापूर्य स्थापयेद्बुधवर्त्तिकान् । दीपान्प्रज्वालय मूलेन तत्तदध्याय-

देवताम् ॥ ४ ॥ तत्तद्दीपे समावाह्य आसनाद्युपचारकैः । रक्तचामुण्डि-
मन्त्रेण पुष्पपूजां विशेषतः ॥ ५ ॥ वक्ष्यमाणनवश्लोकैरर्पयेत्परमेश्वरीम् ।
तत्राध्यायं पठित्वा तु नवभिश्च पुनर्यजेत् ॥ ६ ॥ द्रुपदीपौ निवेद्याथ
पायसान्नं निवेदयेत् । ताम्बूलादि समर्प्याथ ब्राह्मणं च सुवासिनीम् ॥ ७ ॥
कुमारीं वटुकं चापि भोजयेच्च विशेषतः । ततोद्वितीयाध्यायस्य देवतां
पूर्ववद्यजेत् ॥ ८ ॥ एवं पृथक् पृथक् सर्वा ध्यात्वा देवीः प्रपूज्य च ।
सर्वान्ते महतीं पूजां नवार्णविधिना चरेत् ॥ ९ ॥ अनुग्रहे तु पूर्वाल्ले
निग्रहे चापराङ्मुखे । महत्कार्ये तु एकोनपञ्चाशद्दिनमाचरेत् ॥ १० ॥ मध्ये
चतुर्विंशतिश्च अल्पे द्वादशसंख्यकाः । त्रयः प्रयोगकर्तारो महत्यल्पेक
एव हि ॥ ११ ॥ धनार्थं बिल्वपत्रस्तु वक्ष्यार्थं करवीरकैः । जपापुष्पैर्मोह-
नार्थं पुत्रार्थं तुलसीदलैः ॥ १२ ॥ पुष्ट्यर्थं पङ्कजैर्देवि नवश्लोकैः प्रपूजयेत् ।
मूर्तिप्रमाणं महति माषैः षोडशभिः शिवे ॥ १३ ॥ तदद्धनं तदद्धनं
कार्यलाघवगौरवात् । पूजामन्त्रं नवश्लोकाः शृणु वक्ष्यामि भामिनि
॥ १४ ॥ तारं मायां रक्तपदं चामुण्डायै तु रुद्रयम् । अमुकं वश पदं
मानयान्तेऽनलाङ्गना ॥ १५ ॥ पूजामन्त्रोयमीशानि श्लोकान्वक्ष्यामि
ताञ्जशृणु । विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं द्वितीयं तु सुरासुरैः ॥ १६ ॥ या साम्प्रतं
तृतीयं स्याच्चतुर्थं तु महेश्वरि । या च स्मृता तत्क्षणेति पञ्चमं षष्ठकं शृणु
॥ १७ ॥ सर्वाबाधाप्रशमनं सर्वमङ्गलसंज्ञकम् । सृष्टिस्थितिविनाशानां
सप्तमं त्वष्टमं शृणु ॥ १८ ॥ शरणागतदीनातं नवमं शृणु सुन्दरि । सर्वस्वरूपे
सर्वेशे एभिः पूजां च कारयेत् ॥ १९ ॥ सर्वान्ते मन्त्रमयुतं जपेत्तत्संख्यया-
हुनेत् । कटुतैलयुतेनाथ रक्तचन्दनराजिकाः ॥ २० ॥ सहस्राहुतिमात्रेण
राजानं वशमानयेत् । मधुचाशोकपुष्पं च रात्रौ हुत्वा च पूर्ववत् ॥ २१ ॥
चक्रवर्ती भवेद्वक्ष्यश्चण्डीमन्त्रप्रभावतः । अन्ते शतं ब्राह्मणांश्च सुवासिन्यश्च
भोजयेत् ॥ २२ ॥ प्रयोगोऽयं महादेवि देवानामपि दुर्लभः । गुह्यं च मम
सर्वस्वं कलाविष्टार्थसिद्धिदम् ॥ २३ ॥

इति श्रीचिदम्बररहस्ये श्रीचण्डीदीपदानप्रयोगः ।

अथदीपदानपद्धतिः ॥

तत्रादौ साधकः कृतनित्यक्रियः यागमण्डपे कदलीस्तम्भतोरण-
पताकादीपाद्यलंकृते गोमयोपलिप्ते समे शुद्धभूमौ स्वासनमास्तीर्य तत्रो-
पविश्य आचमनप्राणायामादिपूजाप्रकरणोक्तभूतशुद्ध्यादि प्राणप्रतिष्ठान्त-

मार्तिकावहिर्मार्तिकाद्येकादशान्यासान्विधाय सुपवित्रमृदा हस्तमात्रां चतु-
 रक्षां चतुरंगुलान्नतां सुश्लक्ष्णां वेदीं निर्माय तथैव तदग्रे अन्यामपि वेदीं
 निर्माय एवं वेदीद्वयं विधाय प्रथमवेदिकायां नवार्णोपासनोक्तक्रमेण
 कस्मिंश्चिन्मनोहरे पीठे कलशोपरि कार्यानुसारेण यथोक्तमानमितां
 मूर्तिं संस्थाप्य भक्त्या सम्पूज्य तदाज्ञामादाय यथाकामं संकल्पं कृत्वा
 द्वितीयवेदिकायां पञ्चवर्णरजश्चित्रितायां ऊर्ध्वमध्याधःक्रमेण पंक्ति-
 त्रयं प्रकल्प्य प्रथमपंक्तिमध्ये एकं द्वितीयपंक्तौ त्रयं तृतीयपंक्तौ नव । एवं
 क्रमेण दीपस्थानं कल्पयित्वा तत्र स्वर्णरजतताम्राद्यन्यतमं पात्रं बुद्ध-
 गोघृतपूरितं रुद्रवर्तियुक्तं त्रयोदशसंख्यं दीपं सम्पाद्य । दीपस्थले प्रथम-
 पंक्तिक्रमेण मूलोच्चारपूर्वकं दीपं प्रज्वालय तस्मिन्दीपे प्रथमाध्यायादि
 तत्तदध्यायदेवतामावाह्य आसनाद्युपचारैः । ॐ ह्रीं रक्तचामुण्डायै तुरु
 तुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा इति रक्तचामुण्डामन्त्रेण दीपे अध्याय-
 देवतां सम्पूज्य नवभिः क्लोकैः पुष्पाञ्जलिं दद्यात् । ते मन्वाश्च । विश्वे-
 श्वरीं जगद्धात्रीं० ॥ १ ॥ स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रयात्० ॥ २ ॥ या
 साम्प्रतंचोद्धतदैत्यतापितैः० करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी० ॥ ३ ॥ या
 च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः० करोतु सा नः० ॥ ४ ॥ सर्वावाधा
 प्रशमनं० ॥ ५ ॥ सर्वमङ्गलमङ्गल्ये० ॥ ६ ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानां०
 ॥ ७ ॥ शरणागतदीनार्तां० ॥ ८ ॥ सर्वस्वरूपे० ॥ ९ ॥ एभिर्नवभिर्मन्त्रैः
 यथा कामनया प्रकरणोक्तकरवीरजपातुलसीबिल्वदलपङ्कजाद्यन्यतमैः
 पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा आद्यन्ते नवार्णं जपपूर्वकं प्रथमाध्यायक्रमेणाध्यायपाठं
 विधाय पुनर्मूलमन्त्रं जपित्वा पूर्ववन्नवभिर्मन्त्रैः पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा धूप-
 दीपो निवेद्य पायसान्नं नैवेद्यं दत्त्वाचमनीयं ताम्बूलं च दत्त्वा ब्राह्मणं
 सुवासिनीं कुमारीं वटुकं चापि सम्पूज्य सम्भोज्य दक्षिणां दत्त्वा समाप्य
 ततोद्वितीयाध्यायदेवतां सम्पूज्य पुष्पाञ्जलिदानादिवटुकपूजनान्तं पूर्व-
 वत्समाप्य एवं त्रयोदशाध्यायदेवीः पृथक् पृथक् सम्पूज्य त्रयोदशाध्या-
 यान्पृथक्पृथक् दीपाग्रे पठित्वा ब्राह्मणसुवासिनीकुमारीवटुकांश्च सम्भोज्य
 सन्तोष्यान्ते नवार्णोपासनक्रमेण महतीं पूजां विधाय अनुग्रहे पूर्वाह्णे
 निग्रहे पराह्णे समापयेत् । महत्कार्ये एकोनपञ्चाशद्दिनम् । मध्यकार्ये
 चतुर्विंशतिदिनम् । अल्पे द्वादशदिनं कार्यमिति । महति कार्ये त्रयो-
 ब्राह्मणाः प्रयोगकर्तारोह्यल्पे एक एवेति । एवं कृते सर्वं मनोरथाः
 सिद्ध्यन्तीति शिवम् । इति श्रीचिदम्बरसंहितोक्तदीपदानप्रयोगः ।

अथ रुद्रयामलोक्तचण्डिकादीपदानम्

अथ शुद्धासने समुपविश्य आचम्य प्राणायामभूतशुद्ध्यादि एका-
दशन्यासान्तं कर्म समाप्य पूर्वकल्पितवेदिकायां सिद्धरजसा त्रिकोण-
षट्कोणाष्टदलचतुरस्रं यन्त्रं निर्माय । यथा कामनया सङ्कल्पं कृत्वा ।
स्वर्णरजतताम्राद्यन्यतमं पात्रं गोघृतादिपूरितं रक्तवर्त्तिकं संस्थाप्य
यन्त्रपूजामारभेत् । भूपुराद्वहिः पूर्वादिवामावर्त्तनं । ॐ ह्रीं ग्लां ग्लीं ग्लूं
गणपतये नमः । उत्तरे ॐ ह्रीं क्षां क्षीं क्षं क्षेत्रपालाय नमः । पश्चिमे
ॐ ह्रीं तीक्ष्णसिंहाय महिषाय नमः । दक्षिणे ॐ ह्रीं वनस्पतिपुत्राय
सिंहाय नमः इति पूर्वादिदक्षिणान्तं वामावर्त्तनं पूजयेत् । ॐ ह्रीं
समस्तगुरुपादुकाभ्यो नमः । इति स्वाग्रे पुष्पाक्षतादिभिः सम्पूज्य ।
त्रिकोणाग्रकोणे ॐ ह्रीं विष्णुलक्ष्मीभ्यां नमः । दक्षकोणे ॐ ह्रीं
रुद्रगौरीभ्यां नमः । वामकोणे ॐ ह्रीं ब्रह्मवागीश्वरीभ्यां नमः इति
सम्पूज्य । षट्कोणे अग्रकोणमारभ्य दक्षावर्त्तनं । ॐ ह्रीं नन्दायै नमः ।
ॐ ह्रीं रक्तदन्तिकायै नमः । ॐ ह्रीं शाकम्भर्यै नमः । ॐ ह्रीं भीमायै
नमः । ॐ ह्रीं भ्रामर्यै नमः । ॐ ह्रीं शिवदूत्यै नमः । इति षट्कोणदेवीः
सम्पूज्य । अष्टदले अग्रदलमारभ्य दक्षावर्त्तनं । ॐ ह्रीं ब्राह्मणे नमः ।
ॐ ह्रीं माहेश्वर्यै नमः । ॐ ह्रीं कौमार्यै नमः । ॐ ह्रीं वैष्णव्यै नमः ।
ॐ ह्रीं वाराह्यै नमः । ॐ ह्रीं नारसिंह्यै नमः । ॐ ह्रीं ऐन्द्र्यै नमः ।
ॐ ह्रीं चामुण्डायै नमः । इति पत्रमूले सम्पूज्य । पत्राग्रे पूर्वादिप्रादक्षि-
ण्येन पूजयेत् । ॐ ह्रीं असिताङ्गभैरवाय नमः । ॐ ह्रीं रुद्रभैरवाय
नमः । ॐ ह्रीं चण्डभैरवाय नमः । ॐ ह्रीं क्रोधभैरवाय नमः । ॐ
ह्रीं उन्मत्तभैरवाय नमः । ॐ ह्रीं कपालीभैरवाय नमः । ॐ ह्रीं
भीषणभैरवाय नमः । ॐ ह्रीं संहारभैरवाय नमः । इति पत्राग्रे
सम्पूज्य । भूपुरान्तः पूर्वादिदिक्षु । ॐ ह्रीं इन्द्रायः नमः । ॐ ह्रीं
अग्नये नमः । ॐ ह्रीं यमाय नमः । ॐ ह्रीं निर्ऋतये नमः । ॐ ह्रीं
धरुणाय नमः । ॐ ह्रीं वायवे नमः । ॐ ह्रीं कुबेराय नमः । ॐ ह्रीं
ईशानाय नमः । ॐ ह्रीं ब्रह्मणे नमः । ॐ ह्रीं अनन्ताय नमः । इति
दिक्पतीन्यथास्थनं सम्पूज्य । भूपुराद्वहिरिन्द्रादिसमीपे । ॐ ह्रीं वज्राय
नमः । ॐ ह्रीं शक्तये नमः । ॐ ह्रीं दण्डाय नमः । ॐ ह्रीं खड्गाय
नमः । ॐ ह्रीं पाशाय नमः । ॐ ह्रीं ध्वजाय नमः । ॐ ह्रीं गदायै
नमः । ॐ ह्रीं त्रिशूलाय नमः । ॐ ह्रीं पद्माय नमः । ॐ ह्रीं चक्राय

नमः । इति सम्पूज्य । रक्तवन्दनालोडितं तन्दुलं मूलेन बिन्दौ संस्थाप्य तदुपरिरक्तवर्त्तिकं गोघृतादिपूरितं दीपं संस्थाप्य मूलेन प्रज्वालय तस्मिन्दीपे यथोक्तरूपां मूलदेवीमावाह्य यथा लब्धोपचारैः सम्पूज्य पूर्वोक्तपुष्पाञ्जलिनवकं नवश्लोकमन्त्रेण समर्प्य पाठाद्यनुष्ठानं समाप्यान्ते ब्राह्मणमुवासिनीबटुककुमार्यादिपूजां पूर्ववत्समापयेदिति शिवम् ॥

इतियामलोकचण्डिकादीपदानविधिः ।

अथ सम्पुटीकरणादिनानाविधप्रयोगाः

तत्रादौ सम्पुटलक्षणं सिद्धेश्वरीतन्त्रे

चिदम्बरसंहितायां च—

मन्त्रमादौ वदेत्सर्वं साध्यसंज्ञामनन्तरम् । विपरीतं पुनश्चान्ते मन्त्रं तत्सम्पुटं स्मृतम् ॥ १ ॥ अन्यच्च । मन्त्रमादौ समुच्चार्य ततो नामाखिलं वदेत् । अन्ते व्युत्क्रमतो मन्त्रमेष सम्पुट ईरितः ॥ २ ॥ अथ प्रयोगा-
श्चिदम्बरसंहितायाम् । अथ प्रयोगान्वक्ष्यामि चिदम्बरसुभाषितान् । सर्वत्र सम्पुटीकृत्य जातवेदस इत्यृचा । शतपाठान्महेशानि सर्वान्कामान-
वाप्नुयात् ॥ १ ॥ शरणागतदीनार्त्तमन्त्रस्य सम्पुटाच्छिवे । करोतु सान-
इत्यादि पादसम्पुटजापनात् ॥ २ ॥ एवं देव्यावरं लब्ध्वा मन्त्रसम्पुटितेन वै ।
सर्वकामाप्तिरित्युक्तं श्रीचिदम्बरसूतिना ॥ ३ ॥ [कांसोस्मितामृचं देवि
सम्पुटीकरणान्नरः । लक्ष्मीवाञ्छायते सद्यः शतपाठान्नसंशयः] ॥ ४ ॥
दिनान्येकोपञ्चाशद्रमाबीजेन सम्पुटम् । नित्यं पञ्चदशवृत्तौ लक्ष्मी-
वान्भवति ध्रुवम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा सा तदा देवी मन्त्रसम्पुटजापनात् ।
वाग्बीजसम्पुटेनापि विद्यावाञ्छतपाठतः ॥ ६ ॥ ज्ञानिनामपि चेतांसि
मन्त्रसम्पुटितेन वै । शतपाठाद्राजपत्न्यो मोहमेव्यन्ति नान्यथा । तन्मन्त्र-
लक्षजपनात्तदेव हि फलं शिवे ॥ ७ ॥ एकविंशद्दिनं देवि कामबीजेन
सम्पुटम् । प्रत्यहं तु दशावृत्त्या राजवर्यं भवेद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ नित्यं त्रिवारा-
देवं हि चत्वारिंशद्दिनं शिवे । एकाधिकं कार्यसिद्धिर्भवेदत्र न संशयः
॥ ९ ॥ इत्थं यदा यदा बाधा सम्पुट्या शतजापनात् । भारीशान्ति-
र्भवेत्क्षिप्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ १० ॥ त्रियंबकं महामन्त्रं सम्पुटं
शतजापनात् । अपमृत्युं हरेदाशु साधको नात्र संशयः ॥ ११ ॥ दुर्गं
स्मृतेति मन्त्रेण सम्पुटीकृत्यपार्वति । भवेदत्र न सन्देहः सर्वापत्ति-
निवारणम् ॥ १२ ॥ शतवारजपेनैव लक्षमन्त्रजपे न वै । दुर्गं स्मृतेति

मन्त्रस्तु द्विधाकृत्य महेश्वरि ॥१३॥ आद्यमर्द्धं समुच्चार्य यदन्ति यच्चदूरके ।
 ऋचान्तेतूत्तरार्द्धं तु योजयित्वा प्रयत्नतः ॥ १४ ॥ लक्षसंख्याजपेनैव
 सर्वापत्तिनिवारणम् । हिनस्तिदैत्यतेजांसि मन्त्रं लक्षं तथा युतम् ॥ १५ ॥
 सहस्रमथवाजप्त्वा कार्यलाघवगौरवात् । घण्टां कांस्यमयी बद्ध्वा
 माषभक्तं बलिचरेत् ॥ १६ ॥ मन्त्रमुच्चार्य तद्घण्टानादं कुर्याद्विचक्षणः ।
 तन्नादश्रवणाद्देवि पालयन्ते पिशाचकाः ॥ १७ ॥ रोगानशेषमन्त्रन्तु सम्पुटं
 विधिनाचरेत् । शतवारं महारोगनाशनं भवतिध्रुवम् ॥ १८ ॥ मन्त्र-
 लक्षजपेनैव रोगनाशो भवेद्ध्रुवम् । सर्वाबाधाप्रशमनं सम्पुट्याशत-
 वारकम् ॥ १९ ॥ पठनाद्वैरिनाशः स्यात्तथालक्षजपादपि । भगवत्या कृतं
 सर्वमित्यादिद्वादशोत्तरः ॥ २० ॥ शताक्षरो महामन्त्रो लक्षमावर्तयेद्व्रती ।
 सर्वकामाश्च सिद्धयन्ति सर्वापत्तिनिवारणम् ॥ २१ ॥ देविप्रपन्नात्तिमन्त्रं
 पूर्ववत्परिकीर्तितम् । भायाबीजपुटं कृत्वा फट्पल्लवसमन्वितम् ॥ २२ ॥ प्रत्यहं
 त्रिदशावृत्या शत्रुमुच्चातयेद्ध्रुवम् । एवमुक्त्वा समुत्पत्य सारूढा तं महा-
 मनुम् ॥ २३ ॥ सम्पुटीकृत्यजपनाच्छताच्छत्रुः प्रमीयते । व्याहृत्या सम्पुटी-
 कृत्य शतवारं पठेत्तत्त्वम् ॥ २४ ॥ पृथक् सप्तशतानां तु मन्त्रसिद्धयर्थ-
 मादरात् । पञ्चाश्रवार्णपुटितं कृत्वा जपविधिचरेत् ॥ २५ ॥ जपं नवार्ण-
 सम्पुट्या यद्यदिच्छतिसाधकः । तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति इहलोके परत्र च
 ॥ २६ ॥ नवार्णपुटितस्यास्याः सप्तशत्यास्तु पार्वति । एकावृत्यादिपाठानां
 फलं नित्यं शृणु प्रिये ॥ २७ ॥ वारैकमात्रपठनात्सर्वपापक्षयोभवेत् ।
 उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तिं पठेन्नरः ॥ २८ ॥ ग्रहदोषोपशान्त्यर्थं पञ्चावृत्तिं
 वरानने । महाभये समुत्पन्ने सप्तावृत्तिमुदीरयेत् ॥ २९ ॥ महामारी
 समुत्पन्ने नवावृत्तिं पठेत्प्रिये । राजवश्याय भूत्यै च रुद्रावृत्तिमुदीरयेत्
 ॥ ३० ॥ अर्कावृत्याकार्यसिद्धिर्वैरिनाशश्च जायते । मन्वावृत्यारिपार्वश्यं
 तथा स्त्री वश्यतामियात् ॥ ३१ ॥ सौख्यं पञ्चदशावृत्या श्रियं प्राप्नोति
 मानवः । कलावृत्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः ॥ ३२ ॥ राज्ञां भीति-
 विनाशाय वैरिणाञ्चाटनाय च । कुर्यात्सप्तदशावृत्तिं तथाष्टादशकं प्रिये ।
 ॥ ३३ ॥ महाव्रणविमोक्षार्थं विशत्यावर्तनं चरेत् । पञ्चविंशवर्तनाच्च
 भवेद्बन्धविमोक्षणम् ॥ ३४ ॥ सङ्कटे समनुप्राप्ते आयुषो नाश आगते ।
 वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये ॥ ३५ ॥ कुर्याद्यत्नाच्छतावृत्तिं ततः
 सम्पद्यते सुखम् । सहस्रावर्तनाल्लक्ष्मीरावुणोति स्वयं स्थिरा ॥ ३६ ॥ भुक्त्वा
 मनोगतान्कामान्भोगान्ते मोक्षमाप्नुयात् । तदन्ते हवनं कुर्याद्दशांशे न

जपस्यवै ॥ ३७ ॥ हुनेत्सर्पिः प्रयुक्तांश्च तिलधान्यादितन्दुलान् । धर्मार्थ-
 काममोक्षाणां संसिद्धयः पायसं हुनेत् ॥ ३८ ॥ मारणे मोहने चैव तथो-
 च्चाटनकर्मणि । वश्येमांसं त्रिमध्वक्तं मोहने मधुपायसम् ॥ ३९ ॥ स्तम्भने
 मातुलफलं वश्ये तु श्वेतसर्पपम् । पायसान्नैस्त्रिमध्वक्तैर्द्राक्षारम्भाफला-
 दिभिः ॥ ४० ॥ मातुलुङ्गरिक्षुदण्डैर्नारिकेलैस्तैरपि । जातीफलैराम्र-
 फलैरन्यैर्मधुरवस्तुभिः ॥ ४१ ॥ सप्तशत्या दशावृत्त्या प्रतिमन्त्रं हुतं चरेत् ।
 तदशक्तो नमोदेव्यै मन्त्रेणैव तु संख्यया ॥ ४२ ॥ तत्फलमाप्नोति नात्रकार्या
 विचारणा । धर्मार्थकाममोक्षाप्त्यै पूर्वाशाभिमुखो हुनेत् ॥ ४३ ॥ मोहने
 मारणे चैव हुनेद्वै दक्षिणामुखः । उच्चाट उत्तरास्यस्यादित्याह भगवा-
 न्भवः ॥ ४४ ॥ शान्तौ प्रत्यङ्मुखो भूत्वा जुहुयात्प्रयतो नरः । जपाद्य-
 शक्तो देवेशि ब्राह्मणान्वरयेच्छुचीन् ॥ ४५ ॥ अयुग्मब्राह्मणैः कार्यं युग्मे
 निष्फलतां व्रजेत् । अयुग्मदिवसैः क्षिप्रं विदध्याच्चण्डिकामलम् ॥ ४६ ॥
 अष्टमी नवमी चैव पूर्णिमाथ चतुर्दशी । यथैतेषु समाप्तिः स्यात्तथारम्भण-
 माचरेत् ॥ ४७ ॥ येन केन प्रकारेण चण्डीपाठयुतो नरः । इहभुक्त्वा-
 खिलान्भोगानन्ते देवीपदं लभेत् ॥ ४८ ॥ आदिमारभ्य प्रजपेत्सृष्टिक्रम
 उदाहृतः । जपेच्छक्रादिमारभ्य समाप्य वरवर्णिनि ॥ ४९ ॥ आद्याच्छक्रा-
 दिपर्यन्तं स्थितिक्रम उदाहृतः । अन्त्यमारभ्य आद्यन्तं संहारोऽयंक्रमो
 भवेत् ॥ ५० ॥ श्रीकामे शान्तिकामे च सृष्टिक्रम उदाहृतः । स्थितिपाठः
 सर्वकामे मुक्तिकामे च संहतिः ॥ ५१ ॥ अत्यन्तापदिसम्प्राप्ते संहारस्तु
 विशेषतः । होमे स्वाहान्तिमा एते पूजायां तु नमोऽन्तिमाः ॥ ५२ ॥
 तर्पणे तर्पयाम्यन्ता ऊहनीयाबुधैः सदा ॥

मरीचिकल्पे पुरश्चरणस्वरूपम्

कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णा चतुर्दशी । बृद्धयैकोत्तरया जाप्यं
 पूर्वसम्पुटितं तु तत् ॥ ५३ ॥ एवं देवि मयाप्रोक्तः पौरश्चरणिकः क्रमः ।
 तदन्ते हवनं कुर्यात्प्रतिश्लोकेन पायसा ॥ ५४ ॥ रात्रिसूक्तं प्रतिकृत्वं तथा
 देव्याश्च सूक्तकम् । हुत्वान्ते प्रजपेत्स्तोत्रमादौ पूजादिकं मुने ॥ ५५ ॥
 अत्र रहस्योक्तपूजा प्रकारो ग्रन्थारम्भे लिखित एव ग्राह्यः । यदा तु
 तत्तत्कामनाभेदेन तत्तच्चरित्रान्तर्गतस्य एकैकस्य मन्त्रस्योपासनं क्रियते ।
 यथा ज्ञानिनामपि चेतांसीति । दुर्गेस्मृतेति । सर्वाबाधा प्रशमनमिति ।
 शरणागतेत्यैवमादयः । तत्र प्रथमं पूर्वोक्तां पूजां समाप्य पुनस्तन्मन्त्र-

घटिततत्तच्चरित्रस्य तां तां देवतां सम्पूज्य तस्या निकटे दक्षे कालं वामे मृत्युं च सर्वारिष्टशान्तये सम्पूज्य तत्तच्चरित्रगतस्तोत्रेण । नमो देव्यै— विश्वेश्वरी—शक्रादय—इत्यादिकेन तां तां देवतां स्तुत्वा तत्तन्मन्त्रं जपेदिति क्रमः । अत्रैकैकस्य मन्त्रस्य ऋष्यादिकन्तु यदि नोपलभ्यते तदा यच्चरित्रस्थमन्त्रो भवति । तच्चरित्रस्थं ऋष्यादिकं तन्मन्त्रजपे ग्राह्यमिति सम्प्रदायः । अथ केषाञ्चिन्मन्त्राणां प्रयोगन्यासध्यानादीनि डामर-कात्यायनीक्रीडतन्त्रादिप्रोक्तानि संगृह्यन्ते—

प्रतिश्लोकमाद्यन्तयोः प्रणवं जपेन्मन्त्रसिद्धिरायुरैश्वर्यमोक्षादयो-भवन्ति । सप्रणवमनुलोमव्याहृतित्रयमादौ अन्तेतु विलोमं तदित्येवं प्रतिश्लोकं कृत्वा शतावृत्तिपाठे अतिशीघ्रं सिद्धिः । रोगादिक्षयापमृत्यु-वारणाय शताक्षरा गायत्रीमन्त्रेण प्रतिश्लोकमादौ पठितेन समस्ता-पन्निवृत्तिः क्षयकुष्ठादिसर्वरोगनाशश्च । शताक्षरागायत्रीत । गायत्री जातवेदश्च त्र्यम्बकश्च शताक्षरा । समस्तापन्निवृत्त्यर्थं श्लोकादौ च शताक्षरा । प्रतिश्लोकमादावन्ते च जातवेदसेति ऋचं पठेन्मन्त्रसिद्धिः । प्रतिश्लोकमादौ जातवेदसे इत्यृचं जपेत् सर्वं कामाः सिद्धयन्ति । अप-मृत्युनिवारणाय प्रतिश्लोकमादावन्ते च त्र्यम्बकमिति मन्त्रं पठेत् प्रति-श्लोकमादावन्ते च त्र्यम्बकं शतं जपेत् । लक्षमयुतं वा केवलं जपं कुर्यात्तद्दशांशं घृतक्षीरयुतं कमलं जुहुयादेवंकृतेऽपमृत्युनिवारणं भवति । अथ सर्वातिहरप्रयोगः । शरणागतदीनार्तश्लोको मन्त्रादिके पठेत् । भवेद्भोगारिमृत्यूनां नाशनं सर्वसिद्धिदम् । ॐ शरणागत इति मन्त्रस्य रुद्रात्मा सुमेधा ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीनारायणीदेवता ममामुकस्यवा सर्वात्तिहरणविनियोगः । स्वाहान्तः श्लोकजपः । पायसेनाथ वा घृताक्त-तिलेन होमः तर्पणादि पूर्ववत् । एवंकृते महाभयनिवृत्तिः । प्रतिश्लोकं प्रत्यर्द्धं वा करोतु सानः शुभहेतुरित्यर्द्धसम्पुटितं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिः । स्वाभीष्टवरप्राप्तये एवं देव्यावरमिति सम्पुटितेन प्रतिश्लोकपाठेन वा स्वाभीष्टवरप्राप्तिः । सर्वापन्निवारणाय प्रतिश्लोकं दुर्गे स्मृतेति पठेत् । सर्वत्रश्लोकशब्दो मन्त्रपरः । अथवा पूर्वं दुर्गे स्मृतेत्यर्थं पठित्वा ततो यदन्ति यच्चदूरके भयं विन्दति मामिह । पवमानावतन्महि यदुत्थितं भयं भगवति दुर्गे तत्सर्वं शमय स्वाहा । दुर्गा देवीं शरणमहम्प्रपद्ये प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे प्रयच्छ दारिद्र्यदुःखेत्यर्द्धं पठेत् । एवं कार्यानुसारेण लक्षमयुतं सहस्रं वा जपः । एवं कृते सर्वकामाप्तिः । अथ भयनिवृत्ति-

प्रकारः । अस्य श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतभवानीचरित्रान्तर्गतरिपुरो-
 गशमनार्थं सर्वाबाधेत्यस्यमन्त्रस्य भगवान्वेदव्यासऋषिरनुष्टुप्छन्दः
 शुम्भासुरविध्वंसिनी दुर्गा देवतारिपुनाशार्थं रोगनाशार्थं वा जपे विनि-
 योगः । प्रणवमादौ सर्वत्र ॐ सर्वाइत्यंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ बाधा प्रशमन-
 मिति तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि मध्यमाभ्यां वषट् ।
 ॐ एवमेतदिति अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ त्वयाकार्यमिति कनिष्ठाभ्यां
 वौषट् । ॐ अस्मद्वैरिविनाशनमिति करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं-
 हृदयादिः । अथ वर्णन्यासः । आदावोङ्कारोऽन्ते नमस्सर्वेषाम् । यथा ॐ
 सं नमः मूर्ध्नि । एवं वीं ललाटे । बां दक्षकर्णं । धां वामकर्णं । प्रं दक्ष-
 नासायाम् । शं वामनासायाम् । मं उत्तरोष्ठे । नं अधरोष्ठे । त्रं ऊर्ध्व-
 दन्तपंक्तौ । लों अधोदन्तपंक्तौ । क्यं जिह्वायाम् । स्यां कण्ठे । खि
 दक्षांसे । लें वामांसे । श्रं दक्षिणमणिबन्धे । रि वाममणिबन्धे । एं दक्ष-
 करतले । वं वामकरतले । में दक्षकरपल्लवे । तत् वामकरपल्लवे । त्वं
 हृदये । यां जठरे । कां नाभौ । व्यं गुह्ये । अं दक्षोरूमूले । स्मत् वामोरु-
 मूले । वें दक्षजानुनि । रि वामजानुनि । वि दक्षवामजङ्घयोः । नां
 दक्षपादांगुलीषु । शं वामपादांगुलीषु । नं पादयोः । समस्तमन्त्रेण व्यापकं-
 सर्वांगे । इति वर्णन्यासः । अथ ध्यानम् । पाणिग्रन्थनमोलितो रिपुणा-
 श्छिन्नन्त्यभीक्ष्णं मुहुर्विघ्नध्वंसकारिणी निजपदप्राप्तानवन्तीजनान् ।
 भक्तव्राणपरायणाभयकरी विद्वेषिणां सर्वतो भूयान्मे भवभूतये
 भगवती दुर्गारिगर्वापहा । एवं ध्यात्वा सर्वाबाधा प्रशमनमिति
 मन्त्रस्य लक्षजपः । गुग्गुलुहोमस्तर्पणादिः पूर्ववत् । एवं कृते इष्ट-
 कार्यसिद्धिः । वैरिनाशनमित्यत्ररोगनाशनमित्यप्यूहम् । इत्थं यदा यदा
 बाधेति श्लोकसम्पुटितेन महामारीशान्तिः । अस्य केवलं लक्षजपेनापि
 तदेवफलमिति । ततो वद्रे नृपोराज्यमिति श्लोकसम्पुटितेन गत-
 राज्यलाभः लक्षजपेनापि तदेवफलम् । होमस्त्वत्र मालूरपत्रमाक्षि-
 क्धृतेनेति । हिनस्तिदैत्यतेजांसीत्यनेनसदीपमाषभक्तबलिदानेन घण्टावा-
 दनेन च बालग्रहशान्तिः । जपस्त्वत्र कार्यलाघवगौरवेण सहस्रमयुतं वा
 घण्टावादनपूर्वकं भवेदिति । अद्येत्यादि देशकालोस्मृत्वा अमुकगोत्रोत्पन्न-
 स्यामुकशर्मणो ममातिप्रबलवैरिविनाशार्थमेवमुक्त्वेत्यस्यमन्त्रस्यानुष्ठान-
 महङ्करिष्ये । इति सङ्कल्प्य मूलेनकरशुद्धिं व्यापकं च कुर्यात् । यथा ॐ
 एवमुक्त्वेत्यस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्रीछन्दः श्रीमहाकालीदेवता वैरिविना-
 शार्थं जपे विनियोगः । ॐ एवमुक्त्वा समुत्पत्य अंगुष्ठाभ्यांनमः । ॐ

सर्वेष्टसिद्धिः सम्पद्विवृद्धिश्च । अथ भयनिवृत्तिप्रकारः । ॐ ज्वालाकराल-
मिति मन्त्रस्य शिवऋषिः भद्रकालीदेवता अनुष्टुप्छन्दः समस्तभय-
निवारणार्थं जपे विनियोगः । पादैः पूर्वोत्तरार्द्धाभ्यां षडङ्गः । पञ्चलक्ष-
जपः । साज्यगुग्गुलुहोमः । तर्पणादिपूर्ववत् । एवं कृते महाभयनिवृत्तिः ।
अथ सर्वाभीष्टप्राप्तिप्रकारः । ॐ अस्य इत्थं निशम्येति मन्त्रस्य विष्णु-
ऋषिरनुष्टुप्छन्दः श्रीमहालक्ष्मीदेवता ममामुकाभीष्टप्राप्त्यर्थं जपे
विनियोगः । ॐ इत्थं निशम्येत्यंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ देवानां वचांसि
तर्जनीभ्यां स्वाहा । ॐ मधुसूदनः मध्यमाभ्यां वषट् । ॐ चकार कोपं
अनामिकाभ्यां हुम् । ॐ शम्भुश्चक्रनिष्ठिकाभ्यां वौषट् । ॐ भ्रुकुटीकुटि-
लाननौ करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । एवं हृदयादिः अथ ध्यानम् । हस्त-
द्वयेन कमले धारयन्तीं सुलीलया । हारनूपुरसंयुक्तां लक्ष्मीं देवीं भजा-
म्यहम् । एवं ध्यात्वा इत्थं निशम्येति मन्त्रस्यायुतजपः । पायसहोमः ।
तर्पणमार्जनादिपूर्ववत् तदा सर्वेष्टसिद्धिरिति । अथ पत्नीप्राप्तिप्रकारः ।
साधको नाभिमात्रेऽम्भसि स्थित्वा कामराजपुटितं पत्नीं मनोरमां
देहीति मन्त्रं प्रत्यहमेकसहस्रं एवमष्टचत्वारिंशद्दिनावधिकृते पत्नीप्राप्ति-
रूपकार्यसिद्धिः । पायसहोमादिः पूर्ववदिति । अथ महाभयनिवृत्तिप्रकारः ।
ॐ सर्वस्वरूपेत्यस्य मन्त्रस्य शीघ्रं कार्यं प्राप्त्यर्थं लक्षचतुष्टयजपमहं करिष्ये ।
इति सङ्कल्प्य । ॐ सर्वस्वरूपेति मन्त्रस्य महेश्वरऋषिरनुष्टुप्छन्दः
श्रीदुर्गादेवता महाभयनिवृत्त्यर्थं जपे विनियोगः । ॐ ह्रां । ॐ ह्रीं ।
ॐ हूं । ॐ ह्रैं । ॐ ह्रौं । ॐ ह्रूं । इति करहृदयादिषडङ्गः । स्वाहा-
न्तोमन्त्रजपः । पायसैर्दशांशेन होमः । तर्पणादिः पूर्ववत् । नवसुवासिन्यो-
नवकुमार्यश्च भोज्याः । ताभ्योऽलङ्करणमपि यथाशक्ति देयम् । एवं कृते
महाभयनिवृत्तिरिति । त्वं वैष्णवीशक्तिरनन्तवीर्येति प्रतिश्लोकं पठेत्सद्यो
वशीकरणं दृष्टिपातेनेति । विद्याः समस्ताः इति योनिबीजसहितं प्रणवाद्यं
प्रतिश्लोकं पठेत् तदा विद्याप्राप्तिः । तद्दर्शनामयुतं वा त्रिमधुयुतं मालती-
पुष्पं जुहुयात् । तर्पणमार्जनादिपूर्ववत् । चालयन्सकलां पृथ्वीमिति
प्रतिश्लोकं कूर्चबीजसहितं पठेत् । तद्दर्शनादरिसेनापलायनं झटिति
स्यात् । सरितोमार्गवाहिन्य इति मन्त्रं प्रणवाद्यं प्रतिश्लोकं पठेत्तदा
स्वसैन्यस्य हर्षानन्दनिर्भयत्वप्राप्तिर्भवतीति । रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च
नागा इतिमन्त्रं वायुबीजयुक्तं प्रतिश्लोकं पठित्वा स्वसैन्यप्रदक्षिणं मन्त्रं
पठन्पूर्ववत्कुर्यात्तदा स्वसैन्यं बलवीर्यधैर्ययुक्तं युद्धक्षमं भवतीति । ददतुस्तौ

बलि चैवेति मन्त्रं प्रतिश्लोकं पठेत् अथवा मुखे बदामलवङ्गलाखदिर-
युतां ताम्बूलवीटीं धृत्वा लक्षं जपेत् । तद्दशांशं कमलं घृतमधुयुतं होमयेत्
तदा भगवत्या दर्शनं भवतीति । एवं भगवती देवीति मन्त्रं बालाबीज-
देवीबीजप्रणवसहितं प्रतिश्लोकं पठेत्तदा परचक्रादिभयनिवृत्तिः स्वदेश-
पालनं भवति । दशांशं त्रिमधुरैर्होमः । तर्पणादिपूर्ववदिति । ततश्शतेन
नेत्राणामिति मन्त्रं मायाबीजसहितं व्याहृतित्रययुक्तं प्रतिश्लोकं पठेदयुतं
वा जपेत्तदा कीर्त्तिमान्भवतीति । सिंहनादेन शुम्भस्येति मन्त्रं प्रतिश्लोकं
पठेद्वा मायाबीजयुक्तं सव्याहृतिकं लक्षं जपेत्तदा दुर्हृत्सुहृदयो भवति । सभां
जयति सर्वमान्योभवतीति । चकार कोपमतुलमिति मन्त्रं चन्द्रबीजयुक्तं
प्रतिश्लोकं पठेत् अथवा चन्द्रबीजयुक्तकेवलजपेनापि शत्रुध्वंसः जपस्त्व-
युतसंख्यः । पाठस्तु त्रयस्त्रिंशद्दिनपर्यन्तं तद्दशांशोहवनादिरपि । विष्णु-
मायादितो भ्रान्तिपर्यन्तं प्रणवश्रीबीजयुक्तं प्रतिश्लोकं पठेत्तदा सर्वं
सिद्धयति विघ्नशान्तिर्भवतीति । इति मातृगणं कुद्धमिति मन्त्रं प्रति-
श्लोकं पठेदथवा सप्रणवमग्निबीजसहितं मध्ये शत्रुनामोच्चार्य अयुतं
जपेत्तदा शत्रुनिरायुर्भवतीति । या श्रीःस्वयं सुकृतिनामिति मन्त्रं प्रति-
श्लोकं प्रणवाद्यं लक्ष्मीमायालक्ष्मीतिबीजत्रयाद्यं पठेत् । दशांशं क्षीरघृत-
मधूनि जुहुयात्तदातुला लक्ष्मीर्भवति । सर्वे मनोरथाः सिद्धयन्तीति । एषु
प्रयोगेषु प्रतिश्लोकं दीपाग्रे केवलनमस्कारकरणेऽतिशीघ्रं सिद्धिरिति ।
सर्वकामनायां प्रतिश्लोकं कामबीजसम्पुटितस्य एकचत्वारिंशद्दिनं त्रिरा-
वृत्तौ सर्वकामसिद्धिरिति । एकविंशतिदिनपर्यन्तमुत्तरीत्या प्रत्यहं काम-
राजपुटितं प्रतिश्लोकं दशावृत्तौ वशीकरणमिति । मायाबीजपुटितस्य
फट्पल्लवसहितस्य सप्तदिनपर्यन्तं त्रयोदशावृत्तौ उच्चाटनसिद्धिरिति ।
तादृशस्यैकदिनचतुष्टयमेकादशावृत्तौ सर्वोपद्रवनाशइति । एकोनपञ्चा-
शद्दिनपर्यन्तं प्रतिश्लोकलक्ष्मीबीजसम्पुटितस्य पञ्चदशावृत्तौ लक्ष्मी-
प्राप्तिरिति । प्रतिश्लोकं वाग्बीजसम्पुटितस्य शतावृत्त्या विद्याप्राप्तिरिति ।
सर्वोपद्रवनाशाय मायाबीजं कूचंबीजमिति बीजद्वयसम्पुटितं प्रतिश्लोकं
प्रत्यहमेकादशावृत्त्या शतावृत्त्या कार्यसिद्धिरिति । सप्तव्याहृतिसम्पुटितं
प्रतिश्लोकं पठेन्मन्त्रसिद्धिरिति । श्लोकस्यादावन्ते च सप्तव्याहृतिद्युतां
गायत्रीं पठेन्मन्त्रसिद्धिरिति । व्याहृतित्रययुतां गायत्रीं प्रतिश्लोकमादा-
वन्ते च पठेन्मन्त्रसिद्धिरिति । प्रतिश्लोकमादावन्ते च जातवेदसइत्यृचं
पठेन्मन्त्रसिद्धिरिति । प्राण इति ऋचं प्रतिश्लोकं पठेत्सर्वकार्यसिद्धिरिति ।

प्राणमृचस्तु । ॐ प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहाम्बेऽम्बिकेऽम्बालिके न
मानयति कश्चन ससस्त्यश्चकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीमिति । आद्या-
वृत्तिमनुलोमेन त्रयोदशाध्यायान्पठित्वा ततोविपरीतक्रमेण द्वितीयां
पठित्वा पुनरनुलोमेन तृतीयेत्येवमावृत्तित्रयेण उक्तेषु प्रकारेषु शीघ्रं
कार्यसिद्धिरिति । सन्तानार्थं सन्तानगोपालमन्त्रं प्रतिबलाकं पठेत् एवमेक-
चत्वारिंशद्दिनावधि जपेत् । होमतर्पणब्राह्मणभोजनादिरपि तत्तद्दशांशेन
एवं शतचण्डीसहस्रचण्डी च द्विजद्वाराकृते पुत्रावाप्तिरिति । अथलक्ष्मी-
प्राप्तिप्रकारः । जपेद्विल्वं समाश्रित्य मासमेकं तु योनरः । हुत्वाबिल्व-
दलैर्मासं मधुरत्रययोगतः । हुत्वा दशांशतो वापि कमलैः क्षीरसंयुतैः ।
धनदेन समां लक्ष्मीं प्राप्नुयादुत्तमां ध्रुवमिति । अथापरः प्रकारः ।
अथाष्टनेत्र २८ प्रमिताक्षरात्मकं विधाय पूर्वं कमलालयामनुम् । पश्चात्
पूर्वाद्धकमेवमुच्चरेद्दुर्गेस्मृतेति प्रथितं मनुं ततः ॥ १ ॥ हिरण्यवर्णमिति
पूर्णमन्त्रकं दारिद्र्यदुःखेति ततः पराङ्गम् । ततो जपेत्तं कमलालयामनुं
रीत्यैनयैकोऽत्र मनुः प्रकीर्तितः ॥ २ ॥ एवं मन्त्रन्यासयुक्तिप्रदिष्टा देद्या
लक्ष्मीसूक्तमात्रे व्यवस्था । या चाभ्यस्ता सन्ततं साधकेन्दैः सूते लक्ष्मीं
दुःखजातं निहन्ति ॥ ३ ॥ अथ कमलालयामन्त्रो यथा दक्षिणामूर्ति-
संहितायाम् । अथ वक्ष्ये महेशानि लक्ष्मीहृदयमन्त्रकम् । यस्य विज्ञान-
मात्रेण पलायन्ते महापदः ॥ १ ॥ प्रणवं पूर्वमुच्चार्य हरीमात्मकमक्षरम् ।
श्रोपुटं चाथकमले ब्रह्मा भानुस्तथैव च ॥ २ ॥ लाये मध्यगतां भूमिं
रुद्रस्थाने तु योजयेत् । प्रसीदयुगलं पूर्वबीजानि सम्पुटेन च ॥ ३ ॥
महालक्ष्मि हृदन्तोयमष्टाविशतिवर्णवानिति । प्रकाशस्तु । ॐ श्रीं ह्रीं
श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि नमः ।
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीवशुभां
ददासि । हिरण्यवर्णां हरिणां सुवर्णरजतस्रजाम् । चन्द्रां हिरण्ययीं लक्ष्मीं
जातवेदो म आवह । दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकार-
करणाय सदाद्रवित्ता ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्मि नमः ॥ १ ॥ एवं तां म आवह ॥ २ ॥ अश्वपूर्वाम्
॥ ३ ॥ कांसोस्मिताम् ॥ ४ ॥ चन्द्रां प्रभासां ॥ ५ ॥ आदित्यवर्णं ॥ ६ ॥
उपेतुमां ॥ ७ ॥ क्षुत्पिपासां ॥ ८ ॥ गन्धद्वारां ॥ ९ ॥ मनसःकाममाकूतं
॥ १० ॥ कर्दमेन प्रजाभूताः ॥ ११ ॥ आपः सृजन्तु ॥ १२ ॥ आर्द्रां पुष्करिणीं
पुष्टिं ॥ १३ ॥ आर्द्रायष्करिणीं यष्टिं ॥ १४ ॥ तां म आवह ॥ १५ ॥ यः शुचिः

॥ १६ ॥ इति पूर्ववत्षोडशचं जपञ्चशीघ्रं लक्ष्मीफलमवाप्नोति । अस्या-
 नुष्ठानं द्वादशशतं द्वादशसहस्रं वेति यामलोक्तेरिति । अथ नानाविध-
 सम्पत्प्राप्तिप्रकाराः । हिरण्यवर्णामित्यृचं प्रतिश्लोकं पठेच्चम्पकपुष्पं
 त्रिमधुप्लुतं दशांशं जुहुयात्तदा हिरण्यवृद्धिर्भवति । नवमुवासिनीर्नव-
 कुमारीश्च भोजयेदिति । तां म आवहेति ऋचं प्रतिश्लोकं सम्पुटितं
 वापठेत्तदा हेमरौप्यसमृद्धिर्भवति । दशांशं तिलाज्येन होम इति ।
 आदित्यवर्ण इत्यृचं प्रतिश्लोकं पठेत् त्रिमध्वक्तैर्बिल्वपुष्पैः फलैर्वा
 जुहुयात् । अत्रायं विशेषः बिल्वनिलयो बिल्वाशी एकविंशतिरात्रं
 कुर्यात्तदन्ते नवमुवासिनीर्भोजयेत्तदा अलक्ष्मीर्नश्यति महद्वनधान्यस-
 मृद्धिरिति । उपैतु मामित्यृचं प्रतिश्लोकं पठेन्नपापुष्पं जातिपुष्पं वा
 त्रिमधुप्लुतं जुहुयात्तदा यशोविवृद्धिरिति । क्षुत्पिपासेति ऋचं प्रतिश्लोकं
 पठेत् श्वेततिलसरोजबिल्वपत्रघृतैर्दशांशं जुहुयात् । तदा महादारिद्र्य-
 पीडितः सुखी भवति सम्पद्वृद्धिर्भवति बहुकालिकं कुलपरम्परागत-
 दारिद्र्यं नश्यतीति । गन्धद्वारामिति मन्त्रं प्रतिश्लोकं पठेत् कमलैर्मालूर-
 पत्रैः शुक्लतिलैर्मधुना सपिषा च जुहुयात्तदा क्षौमाम्बरपट्टाम्बरादि-
 वृद्धिर्भवतीति । कदमेनेति ऋचं प्रतिश्लोकं पठेत् नारिकेलैश्चूतफलै-
 र्द्राक्षाभिस्त्रिमधुयुतैर्जुहुयात्तदा सर्वसम्पत्समृद्धिर्भवतीति । आपः सृज-
 न्तिवति ऋचं प्रतिश्लोकं पठेत् व्रीहिभिर्वैर्गोधूमैस्त्रिमधुयुतैर्हुत्वा धान्य-
 समृद्धिर्भवतीति । आर्द्रा पुष्करिणीमित्यृचं प्रतिश्लोकं पठेत्त्रिमधुप्लुता-
 पूर्णैर्होमस्तदा पुत्रबन्धुजनसमृद्धिर्भवतीति । आर्द्रा यष्करिणीं यष्टिमित्यृचं
 प्रतिश्लोकं पठेत् दध्ना होमं कुर्यात् । तदा देशग्राममहीलाभइति । यः
 शुचिरिति प्रतिश्लोकं पठेद्गोक्षीरं जुहुयादन्नसमृद्धिरिति । एतत्प्रयोग-
 कर्तृणामेते नियमाः कार्याः । ते च नारायणीये । न जिघ्रन्नाक्रमेच्चाब्जं
 तद्वीजं न च भक्षयेत् । न स्यान्म्लष्टो न च छिन्द्याद्विल्वं भूमौ शयीत न ।
 लवणामलकं वर्जन्नागादित्यतिथौ क्रमात् । पञ्चम्यामुत्तरे च स्त्रीवज्या
 प्रत्यङ्मुखोऽशन । बिल्वैर्न माज्यद्वन्तांस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेच्च तान् ।
 प्रातर्भक्ष्यास्तिलास्ते च धात्र्या लक्ष्मीं च भक्षयेत् । धारयेन्मूध्नि
 तत्पुष्पमुत्तरे मधुरान्नभुक् । पायसं बिल्वबीजं च भक्षयेच्छुक्लपर्वणीति ।
 प्रयागसारेर्षि । धान्यगोगुरुहुताशनराणां नोस्वपेदुपरिनाप्यनुवंशम् ।
 नोत्तरापरशिरा नचनग्नौ नाद्रं पाणिचरणः श्रियमिच्छन् । नाभ्यञ्ज्या-
 दपि तैलमेव रजनीं नैवानुलिम्पेन्मुखे इति । अथमैत्रीकरणप्रयोगः । ॐ
 दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् । अभिवादो भवेदन्न कलिदोष-

प्रशान्तिदः । ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्निधयाम् । निर्वैरता च जायते सम्वादाग्ने प्रसीद मे । इति मन्त्रद्वयरूपं नलसूक्तं प्रतिश्लोकं पठेत्सवृतं पायसं हुनेत्तदा वैरिणोः परस्परवैरशान्तिर्मेत्रीकरणं चेति । अथ बन्धनादिव्यसनपरिहारप्रयोगः । ॐ नमः सुते निर्वहते तिग्मतेजो-
 स्यस्मयं विवृतावन्धमेतम् । यमेन त्वं यस्यासंविदानोत्तमेनाकेऽधिरोह्यै-
 नम् । इत्यृचं प्रतिश्लोकं पठेत् एवं शतपाठे कृते बन्धादिव्यसनान्मोक्षो भवति । अत्रैवं विशेषः साधकः पार्थिवं शिवलिङ्गं संपूज्य तत्समीपे पठदिति । अथ ज्वरनिवृत्तिप्रकारः । ॐ भस्मायुधाय विद्महे एकदंष्ट्राय धीमहि तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् । इति ज्वरगायत्रीं प्रतिश्लोकमित्यं प्रतिदिनमुत्पत्तिसंहारोत्पत्तिक्रमेण सप्तदिनपर्यन्तं जपेत्तदा ज्वराणां दारुणपीडाशान्तिरिति । अथ शूलनाशकप्रयोगः । ॐ मीदुष्टम शिवतम शिवोनः सुमना भव । परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्ति वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि । इत्यृचं प्रतिश्लोकं पठेत् । प्रथमं पार्थिवलिङ्गं संपूज्य पश्चात्पठेत्तदा शूलरोगनाशोभवति । अथ शत्रुनाशनप्रयोगः । कृष्णवर्णे महद्रूपे वृहत्कर्णे भयङ्करे । देवि देवि महादेवि ममशत्रु-
 विनश्यतु । इत्यृचं प्रतिश्लोकं संहारक्रमेणपठेत्तदाशत्रवो नश्यन्ति कटुतैलमरिचैर्होमः । द्रुतं गच्छ महामाये कृत्ये माहेश्वरि प्रिये । रिपोर्वलं निहत्याशु पशुपुत्रांश्च नाशय । इत्यृचं प्रतिश्लोकं संहारक्रमेण पठेत्तदा शत्रूणां मूलच्छेदो भवतीति शिवम् । अथ प्रसङ्गात्सर्वेषां सर्वकालोप-
 योगिसर्वपापहरं सर्वदुःखहरंसर्वकल्याणकल्पद्रुमं श्रीदुर्गानामानुष्ठानं लिख्यते । तच्च यथा रुद्रयामले । दुर्गानामजपोयस्य किं तस्यकथयामि ते । अहं पञ्चाननःकान्ते तब्जपादेव सुव्रते ॥ १ ॥ धनी पुत्री तथा ज्ञानी चिरंजीवी भवेद्भुवि । प्रत्यहंयोजपेद्भुक्त्या शतमष्टोत्तरं शुचिः ॥ २ ॥ अष्टोत्तरसहस्रं तु योजपेद्भुक्तिसंयुतः । प्रत्यहं परमेशानि तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३ ॥ धनार्थी धनमाप्नोति ज्ञानार्थी ज्ञानमेव च । रोगार्तो मुच्यते रोगाद्वदोमुच्येत बन्धनात् ॥ ४ ॥ भीतो भयात्प्रमुच्येत पापान्मुच्येत पातकी । पुत्रार्थी लभते पुत्रं देवि सत्यं न संशयः ॥ ५ ॥ अयुतं यो जपेद्भु-
 क्त्या प्रत्यहं परमेश्वरि । निग्रहानुग्रहे शक्तः स भवेत्कल्पपादपः ॥ ६ ॥ तस्य क्रोधे वसेन्मृत्युः प्रसादे परिपूर्णता । एवं सत्यं विजानीहि समर्थः सर्वकर्मसु ॥ ७ ॥ मासि मासि च योलक्षं जपं कुर्याद्विरानने । न तस्य ग्रह-
 पीडा स्यात्कदाचिदपि शाङ्करि ॥ ८ ॥ न चैश्वर्यं क्षयं याति न च सर्वभयं

भवेत् । नाग्निचौरभयं वापि न चारण्ये जले भयम् ॥ ९ ॥ पर्वतारोहणे
 नापि सिंहव्याघ्रभयं तथा । भूतप्रेतपिशाचानां भयं नापि भवेत्क्वचित्
 ॥ १० ॥ न च वैरिभयं कान्ते नापि दुष्टभयं भवेत् । परलोके भवेत्स्वर्गं
 सत्यं वैवीर्यवन्दिते ॥ ११ ॥ चन्द्रसूर्यसमीभूत्वा वसेत्कल्पायुतं दिवि ।
 वाजपेयसहस्रस्य यत्फलं स्याद्वरानने ॥ १२ ॥ तत्फलं समवाप्नोति दुर्गा-
 नामजपात्प्रिये । न दुर्गा नाम सहस्रं नामास्ति जगतीतले ॥ १३ ॥
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्मर्तव्यं साधकोत्तमैः । यस्य स्मरणमात्रेण पलायन्ते
 महापद इतिशिवम् ॥ १४ ॥ इत्थं भगवतीनामकीर्तनं सर्वकामदम् ।
 वर्ततां वाचि मेऽजस्रं ये न स्यां तत्कृपास्पदम् ॥ १५ ॥ एषेव जगतां-
 धात्री नानामन्त्रविभूषिता । दद्यान्मङ्गलमायुष्यं भक्तानां भक्तवत्सला
 ॥ १६ ॥ नानाचारव्रतधरेर्देवासुरनरादिभिः । याचिता पूरयत्यर्थान्दुर्ल-
 भांसा तनोतु शम् ॥ १७ ॥ निगमैरागमैर्नित्यमेकाचिद्या च कथ्यते ।
 सिद्धि कर्ममयीं दद्याद्भूक्तच्छोपात्तविग्रहा ॥ १८ ॥ श्रीसप्तशत्याः सर्वस्वं
 रहस्यं निखिलार्थदम् । भूयाच्छ्रीसद्गुरोः प्रीत्यै सम्प्रदायमर्हेतिशुः ॥ १९ ॥
 श्रीमद्दुर्गानन्दनाथः शङ्करो भक्तवत्सलः । प्रीयतां करुणामूर्तिर्भव-
 भीतिहरोगुरुः ॥ २० ॥ ननागमाच्च निगमात्सङ्गृहीतमिहाद्भुतम् ।
 भूमौ भूयाद्ब्राह्मणानां सदा कल्पतरूपमम् ॥ २१ ॥ दृष्ट्वानन्दन्तु सुधियः
 क्षाम्यन्तूलेखविभ्रमम् । नानावाक्यैकलिखने प्रायो मुह्यति लेखकः
 ॥ २२ ॥ प्रोद्धाटितं तच्चापल्यादनुघाट्यमपीह यत् । तत्क्षन्तव्यमशेषेति
 रोषोज्ञे नोचितः सुते ॥ २३ ॥ बाललौल्यमशेषं हि मातापित्रोः कृपा-
 स्पदम् । भवत्यपारकरुणे करुणामयि धीयताम् ॥ २४ ॥ राधाकृष्ण-
 तनूभवो वसुमती देवो द्विवेदी गिरासारज्ञः सरयूप्रसाद इति यः श्री-
 मत्ययोध्या पुरे । सोऽयं संश्रित उत्तमे जयपुरे श्रीमाधवेशप्रभुस्वर्द्धं
 ग्रन्थमिमं मनोहरतरं जग्रन्थ सर्वार्थदम् ॥ २५ ॥ येषां श्रौतादिकर्मा-
 चरणसरणिषूद्गाढरागानुबन्धोऽपि स्वप्नेऽपि तर्काहतनिगमकलानास्ति
 नास्तिक्यबुद्धिः । येषामन्तः प्रकामं शिशिरयतितरां भक्तिपीयूषधारा
 तेषामेवेष्टसिद्धिर्भवति गुह्यगोप्यस्थानुविश्वासाभाजाम् ॥ २६ ॥ सप्तशती-
 सर्वस्वमिदमद्भुतरचनाहारि । गजयुगखेटमहीमिते विक्रमवर्षेऽकारि
 ॥ २७ ॥ एतद्ग्रन्थरसामृतं साधुकुलानि पिबन्तु । अम्बापदकरुणाव-
 शात्कृतकृत्यानि भवन्तु ॥ २८ ॥ भोभोः साधकपुङ्गवाः सादरमिदं पठन्तु
 भवतां यद्विधिसाधनादङ्के श्रियो लुठन्तु ॥ २९ ॥

इति श्रीसप्तशतीसर्वस्वे द्विवेदिकुलसम्भवसरयूप्रसादसंगृहीते

उत्तरभागे साधनक्रमसंग्रहोनाम षष्ठोविश्रामः ।

आदितश्चतुर्विंशतितमोविश्रामः ॥ २४ ॥

समाप्तोऽयङ्ग्रन्थो भागत्रयात्मकः ।

प्रथमभागे पञ्च विश्रामाः । मध्यभागे त्रयोदशविश्रामाः ।

उत्तरभागे षड्विश्रामाः । एवं सर्वे चतुर्विंशतिविश्रामाः ।

॥ इति शिवम् ॥

मन्त्रमहोदधि

“मोहिनी” हिन्दी व्याख्या तथा “नौका” संस्कृत टीका सहित

अनुवादक और व्याख्याकार

शुकदेव चतुर्वेदी

मन्त्रमहोदधि भारतीय मन्त्रशास्त्र का सर्वाधिक प्रामाणिक तथा प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ है। इसमें मन्त्र साधना के सभी आवश्यक अंगों का सविस्तार वर्णन करने के पश्चात् प्रायः सभी प्रमुख देवी देवताओं, अर्धदेवताओं, पिशाचों, यक्षों, यक्षिणियों तथा षट्कर्मों के मन्त्रों और साधनाविधियों का सम्पूर्णतः, आद्योपान्त तथा विस्तृत उल्लेख है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त मन्त्र साधना की प्रामाणिक सामग्री से युक्त दूसरा कोई भी प्राचीन ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है।

मूल्य : १५०/-

हिन्दी मन्त्र महार्णव

मूल एवं हिन्दी अनुवाद

मन्त्र महार्णव में सभी प्रमुख देवताओं, देवियों दैत्यों, यक्षों, गन्धर्वों, किन्नरों, योगिनियों, अप्सराओं देवकन्याओं, नागकन्याओं, राक्षसों और प्रेतादि से सम्बद्ध मन्त्र तथा उनके अनुष्ठान के सम्पूर्ण विधान को विधिवत् और क्रमानुसार प्रस्तुत किया गया है। इनके अतिरिक्त प्राचीन रसायन, इन्द्रजाल, कल्पादि, स्वप्नसिद्धि, कर्ण-पिशाचिनी, पुत्रोत्पत्ति और अन्यान्य कर्मों की सम्पूर्ण विधियों का भी समावेश किया गया है।

देवता खण्ड { रंगीन चित्रों, यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित
सजिल्द पुस्तक का मूल्य १७५.००

देवी खण्ड { रंगन चित्रों, यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित
सजिल्द पुस्तक का मूल्य १७५.००

मिश्र खण्ड { यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित
सजिल्द पुस्तक का मूल्य १००.००

श्री विद्यारण्ययति विरचितम् श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

(मूलमात्र)

शाक्त तन्त्रों के अनुसार सर्वोच्च सत्ता का नाम महात्रिपुरसुन्दरी है जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सम्बद्ध तीन महाशक्तियों—महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली का सारतत्त्व है। महात्रिपुर सुन्दरी न केवल तीनों लोकों की सुन्दरी है वरन् ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और रुद्रलोक की अधिष्ठातृ देवी है।

प्रस्तुत महाग्रन्थ में प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से इसी महात्रिपुरसुन्दरी देवी की उपासना के विभिन्न पक्षों का विषद् वर्णन है। यह महात्रिपुरसुन्दरी देवी की विभिन्न विद्याओं का सर्वश्रेष्ठ संकलन है।

ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध प्रस्तुत है। उत्तरार्द्ध का प्रकाशन भी द्रुतगति से चल रहा है और शीघ्र उपलब्ध होगा।

मूल्य : १५०/-

तन्त्र मन्त्र सम्बन्धी कुछ अन्य प्रमुख प्रकाशन

१. मन्त्र महोदधि (नौका संस्कृत एवं मोहिनी हिन्दी टीका) १५०.००
२. कामरत्न तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) बेपर बैक २४/- सजिह्द २८/-
३. कुलार्णव तन्त्र (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) ७५.००
४. नारदपञ्चरात्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : १००/-
५. धनदारतिप्रिया तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : ५/-
६. मातृकाभेद तन्त्र (मूल एवं संस्कृत टिप्पणी सहित) १५/-
७. त्रिपुरासार समुच्चय (नागशङ्कृत एवं गोविन्दाचार्य की संस्कृत टीका) ८/-
८. बृहत् तन्त्रसार (मूलमात्र) मूल्य : १००/-
९. सप्तशतीसर्वस्वम् मूल्य : ६०/-
१०. त्रिपुरातापिन्युपनिषद् एवं त्रिपुरोपनिषद् मूल्य : ३/-
११. हनुमद्वाडवानल स्तोत्र एवं हनुमन्नांगुलास्त्र स्तोत्र मूल्य : १/-

प्राटय प्रकाशन

पोस्ट वाक्स नं० २०३७ वाराणसी-२२१ ००२

श्री विशारण्ययति विरचितम्

श्रीविद्यार्णवतन्त्रम्

(मूलमात्र)

शाक्त तन्त्रों के अनुसार सर्वोच्च सत्ता का नाम महात्रिपुरसुन्दरी है जो ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र से सम्बद्ध तीन महाशक्तियों—महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली का सारतत्त्व है। महात्रिपुर सुन्दरी न केवल तीनों लोकों की सुन्दरी है वरन् ब्रह्मलोक, विष्णुलोक और रुद्रलोक की अधिष्ठाता देवी है।

प्रस्तुत महाग्रन्थ में प्रत्यक्ष और परोक्षरूप से इसी महात्रिपुरसुन्दरी देवी की उपासना के विभिन्न पक्षों का विषद वर्णन है। यह महात्रिपुरसुन्दरी देवी की विभिन्न विद्याओं का सर्वश्रेष्ठ संकलन है।

ग्रन्थ का पूर्वाद्धि प्रस्तुत है। उत्तरार्द्ध का प्रकाशन भी द्रुतगति से चल रहा है और शीघ्र उपलब्ध होगा।

मूल्य : १५०/-

हिन्दी मन्त्र महार्णव

मूल एवं हिन्दी अनुवाद

| | |
|------------|--|
| देवता खण्ड | { रंगीन चित्रों, यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य १७५.०० |
| देवी खण्ड | { रंगीन चित्रों, यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य १७५.०० |
| मिश्र खण्ड | { यन्त्रों और ध्यान चित्रों सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य १००.०० |

तन्त्र मन्त्र सम्बन्धी कुछ अन्य प्रमुख प्रकाशन

१. मन्त्र महोदधि (नोका संस्कृत एवं मोहिनी हिन्दी टीका) १५०.००
२. कामरत्न तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) पेपर बक २४/- सजिल्द २८/-
३. कुलार्णव तन्त्र (मूल एवं अंग्रेजी अनुवाद) ७५.००
४. नारदपञ्चरात्रम् (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : १००/-
५. धनदारतिप्रिया तन्त्र (मूल एवं हिन्दी अनुवाद) मूल्य : ५/-
६. मातृकाभेद तन्त्र (मूल एवं संस्कृत टिप्पणी सहित) १५/-
७. त्रिपुरासार समुच्चय (नागमट्टकृत एवं गोविन्दाचार्य की संस्कृत टीका) ८/-
८. बृहत् तन्त्रसार (मूलमात्र) मूल्य : १००/-
९. सप्तशतिसर्वस्वम् मूल्य : ६०/-
१०. त्रिपुरातापिन्युपनिषद् एवं त्रिपुरोपनिषद् मूल्य : ३/-
११. हनुमद्वाडवानल स्तोत्र एवं हनुमन्नांगूलास्त्र स्तोत्र मूल्य : १/-

प्राच्य प्रकाशन

पोस्ट बाक्स नं० २०३७ वाराणसी-२२१ ००२